सतसई-सप्तक

सतसई-सप्तक

अर्थात्

तुलसी, बिहारी, मतिराम, रसनिधि,
रामसहाय, वृंद और विक्रम
सतसइयों का संग्रह

संग्रहकर्ता और संपादक

श्यामसुंदरदास

प्रयाग

हिंदुस्तानी एकडेमी, संयुक्त प्रांत

१९३१

भूमिका

आज दो वर्ष के लगभग होता है जब एक दिन मेरे मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि हिंदी की प्रसिद्ध प्रसिद्ध सतसइयों का एक संग्रह निकाला जाय तो अच्छा हो। तुलसी, बिहारी, मतिराम, रामसहाय और वृंद की सतसइयों पर तो सहसा ध्यान चला गया और यह विचार हुआ कि सतसई-पंचक के नाम से यह ग्रंथ प्रकाशित किया जाय। फिर ध्यान आया कि हिंदी मे रसनिधि के दोहे प्रसिद्ध हैं और अधिक संख्या में मिलते भी हैं। उनमें से यदि ७०० दोहे चुन लिए जायँ तो एक नई सतसई प्रस्तुत हो सकती है। इस विचार के अनुसार रसनिधि के दोहों का चुनना आरंभ हुआ और साथ ही एक सातवीं सतसई की खोज हुई। चंदन की सतसई भी प्रसिद्ध है, पर वह कहीं मिलती नहीं। इस बीच मे एक दिन स्वर्गवासी लाला भगवानदीन ने विक्रम सतसई का ध्यान दिलाया। खोज करने पर कुँअर कन्हैया जू की कृपा से चरखारी से उसकी एक प्रति प्राप्त हुई। एक दूसरी प्रति के प्राप्त करने का भी उद्योग किया गया पर उसमें सफलता न हुई। अस्तु इस प्रकार इन सात सतसइयों का संग्रह प्रस्तुत हो गया। हिंदुस्तानी एकडेमी ने इस सतसई-सप्तक के प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की और इस प्रकार इस ग्रंथ का छपना आरंभ हो गया। इसकी दीपिका तथा प्रस्तावना लिखने और मूल दोहों को पुनः संपादित करने में मेरे प्रिय शिष्य पंडित पीतांवरदत्त बड़थ्वालद ने मेरी विशेष सहायता की है जिसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ। साथ ही मित्रवर रत्नाकरजी ने कठिन

स्थलों का अर्थ सुलझाने तथा संदिग्ध पाठों के संशोधन में मेरी विशेष सहायता की है, जिसके लिये मैं उनका अत्यंत आभारी हूँ।

प्रतीकानुक्रमणिका भी यथासमय तैयार हो गई थी पर जब दुहराकर उसकी जाँच करने का समय आया तब पता लगा कि उसमें बहुत सी त्रुटियाँ हैं। यह काम पुनः करना पड़ा। इससे पुस्तक के प्रकाशन मे डेढ़ महीने का विलंब हो गया।

काशी
१३-५-२१

श्यामसुंदरदास

सूची

प्रस्तावना

रचना-शैली के विचार से काव्य दो प्रकार का होता है—एक मुक्तक और दूसरा प्रबंध। प्रबंध-काव्य में सब पद्य एक दूसरे के आसरे खड़े रहते हैं। वह एक सुसंगठित समाज है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के कार्य से लाभ उठाता है और स्वयं अपने कार्य से दूसरों को लाभ पहुँचाता है। एक के बिना दूसरा रह नहीं सकता। परंतु मुक्तक के राज्य में प्रत्येक पद्य स्वयं पूर्ण है। मुक्तक पद्य उस व्यक्ति के समान है जो स्वयं अपने लिये खेती करता है, कपड़ा बुनता है तथा अपने अस्तित्व के लिये सभी आवश्यक कार्यों को स्वयं करता है। मुक्तक काव्य में एक ही पद्य अपनी एक अलग दुनिया बनाकर रहता है। उसमें प्रत्येक पद्य की अलग सत्ता रहती है। अपने अस्तित्व के लिये उसे दूसरे पद्यों का सहारा नहीं लेना पड़ता। यद्यपि अभिनवगुप्ताचार्य ने कहा है—

'पूर्वापरनिरपेक्षापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम्।'

अर्थात् पूर्वापर प्रसंग के निर्देश के लिये और पद्यों का सहारा न होने पर भी जिसमें रस की अभिव्यक्ति हो जाय उसे मुक्तक कहते हैं, फिर भी यह आवश्यक नहीं कि मुक्तक पद्य में किसी रस की निष्पत्ति हो ही। उसमें सुभाषित मात्र भी हो सकता है, जिसमें केवल वाग्वैदग्ध्य की चमक हो। सुभाषित से हमारा तात्पर्य नीति-धर्म के उपदेश से युक्त सूक्ति से है। वास्तव में मुक्तक की स्वाभाविकता नीति-सुभाषित ही में परिलक्षित होती है। इसी लिये उसकी रचना में भी सौकर्य होता है। नीति-सुभाषित को पूर्वापर प्रसंग की

इतनी आवश्यकता नहीं रहती। परंतु जहाँ मुक्तक में रस का विचार रखा जाता है वहाँ मुक्तक-रचना बहुत कठिन हो जाती है। साहित्य-शास्त्र के अनुसार रस की निष्पत्ति के लिये विभाव, अनुभाव, संचारी भाव आदि बहुल सामग्री का स्थायी भाव के साथ मिश्रण आवश्यक है। प्रवंध की विस्तृत भूमि में इस सामग्री को जुटा रखने के लिये पर्याप्त स्थान रहता है। परंतु मुक्तक की संकीर्ण नली मे इस सामग्री को ला भरना बहुत कठिन काम है। प्रवंध मे तो प्रसंग की परिस्थिति के साहचर्य्य से शब्द की अभिधा शक्ति द्वारा इस विषय मे काम निकाल लिया जा सकता है, परंतु मुक्तककार को बार बार व्यंजना का आश्रय लेना पड़ता है। यह होते हुए भी यह बात नहीं है कि प्रत्येक दशा में मुक्तक-रचना प्रवंध-रचना से कठिन ही हो। दोनों की अपनी अपनी कठिनताएँ और सुविधाएँ हैं। मुक्तक मे बहुधा पूर्वापर प्रसंग की कल्पना का कार्य सहृदय पाठक या श्रोता पर छोड़ दिया जाता है। श्रोता को मुक्तक का आनंद लेने के लिये एक पूरे प्रसंग का स्वतः अध्याहार करना पड़ता है। इससे बहुधा मुक्तककार को स्वतः सहृदय-समाज की प्रतिभा का श्रेय भी मिल जाता है और कवि की कल्पना पर अप्रासंगिकता का दूषण नहीं लगने पाता, चाहे वस्तुतः वह उसमे हो ही। परंतु इस विषय में मुक्तककार से प्रवंधकार का उत्तरदायित्व बहुत बढ़ा-चढ़ा रहता है। उसकी रचना का सारा सौंदर्य उसी की कल्पना पर अवलंबित रहता है और प्रसंग का थोड़ा भी अनौचित्य सहसा खटक जाता है।

मुक्तक और प्रवंध में भेद होने पर भी वे ऐसी परस्पर-विरोधिनी शैलियाँ नहीं हैं कि उनमे एक दूसरे का साथ ही न बन पड़े। बिना एक पूरे प्रसंग की कल्पना के बहुधा मुक्तक पद्यों का समझ में न आना इस बात का प्रमाण है कि उसका स्वाभाविक स्थान प्रवंध

के बीच में ही है। मुक्तक एक ऐसी मुक्तामणि है जिसे चाहे आप शतकों, सप्तशतकों वा सहस्रकों की छोटी-बड़ी पिटारी में संग्रह करें अथवा किसी प्रबंध के सूत्र में गूथें। गोसाईं तुलसीदासजी की दोहावली और सतसई में कई मुक्तक दोहे ऐसे हैं जो रामचरित-मानस के प्रबंध-सूत्र से अलग करके संचित किए हुए मुक्ता-मणि हैं। यद्यपि मुक्ताएँ एक दूसरे से असंबद्ध एक राशि के रूप में कोष में भी जमा रखी जा सकती हैं, तथापि उनकी पूर्ण शोभा तभी खिल सकती है जब वे सूत्र में पिरोई जाकर हार में गुथ जायँ। इसी प्रकार मुक्तक पद्य भी अपना पूर्ण प्रभाव तभी डाल सकता है जब वह अपनी गर्वीली स्वच्छंदता को त्यागकर प्रबंध के बीच में अपना उचित आसन ग्रहण करे। प्रबंध का प्रभाव स्थायी होता है और मुक्तक का क्षणिक। प्रबंध में "उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा संघटित पूर्ण जीवन" का दर्शन करते हुए "कथा-प्रसंग की परि-स्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है।" किंतु "मुक्तक में रस के ऐसे स्निग्ध छींटे पड़ते हैं जिनसे हृदय-कलिका थोड़ी देर के लिये खिल उठती है।" उसमें अधिक से अधिक "एक मर्मस्पर्शी खंड-दृश्य" के सहसा सामने ले आए जाने के कारण पाठक या श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाता है सही, किंतु कुछ क्षणों ही के लिये। शैली की अत्यंत संक्षिप्तता के कारण प्रभाव भी कुछ क्षीण हो जाता है।

परंतु इस स्वावलंबी संक्षिप्तता का अपना ही उपयोग और महत्त्व है। इसके कारण मुक्तक का वहाँ उपयोग हो सकता है जहाँ प्रबंध का नहीं हो सकता। प्रबंध का आनंद उठाने के लिये स्वच्छंद अवकाश की आवश्यकता है। जहाँ मनुष्य एक दूसरे का समय कुछ आनंद-विनोद में व्यय कर रहे हैं वहाँ प्रबंध के लिये स्थान नहीं है। सभा-समाजों के लिये मुक्तक की ही संक्षिप्त रचना उपयुक्त है। विद्वान्

आलोचक पंडित रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में, जिनके एक दो वाक्यों का अवतरण हम ऊपर दे चुके हैं, "यदि प्रबंध-काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है।" सभा-समाजों की शोभा बढ़ाने के लिये एक वनस्थली की वनस्थली नहीं उठा ले आई जा सकती, जब कि गुलदस्तों और स्तवकों से सभा-मंडपों की सजावट करना अवसरोचित और स्वाभाविक है। मुक्तकों के इतने अधिक प्रचार का यही मूल कारण है। राजा-महाराजाओं की सभाओं तथा सहृदय कवि-मंडलियों में, जहाँ अनेक कवि अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाने को लालायित रहते हैं वहाँ, अपनी कवित्व-शक्ति का चमत्कार दिखाने के उद्देश्य से यदि कोई कवि प्रबंध-काव्य लिखकर ले जाय तो वह कहाँ तक अपने महत्त्व की सद्यःस्वीकृति की आशा कर सकता है? इसके लिये मुक्तक का ही आश्रय लिया जा सकता है। फलतः मुक्तक काव्य ने सभा-समाजों की चहल-पहल की वृद्धि में योग दिया और सभा-समाजों की चहल-पहल ने मुक्तक काव्य के प्रचार में। इन्हीं मुक्तकों का संग्रह हमें आजकल नाना शतकों, सप्तशतियों और भांडागारों में मिलता है।

मुक्तकों के संग्रहों में सात सौ की संख्या के लिये जितना आग्रह दिखाई देता है उतना और किसी संख्या के लिये नहीं। अमरुक ने शतक लिखा और रसनिधि ने हजारा लिखकर मुक्तक को हजारी का मनसब दिया सही, परंतु विशेषतः लोगों ने यही प्रयत्न किया कि उनके संग्रहों में लगभग सात सौ पद्य रहें। सात सौ से कुछ अधिक पद्य रहने पर भी उनके संग्रहों के नाम सप्तशती या सतसई ही रखे गए। 'सतसई' संस्कृत 'सप्तशती' का ही हिंदी रूप है। संस्कृत में गोवर्धनाचार्य की आर्यासप्तशती है, प्राकृत में सातवाहन की संग्रह की हुई गाथासप्तशती है। हिंदी में तो आठ नौ सतसइयों के नाम कहे जाते हैं जिनमें से छः के साथ रसनिधि

के रतनहजारा का संक्षिप्त संस्करण जोड़कर यह सतसई-सप्तक प्रस्तुत किया गया है। एक धार्मिक ग्रंथ दुर्गा सप्तशती में भी इसी संख्या को आदर दिया गया है। हाल में 'वियोगी-हरि' जी की वीर-सतसई निकली है। नहीं जानते कि इस सात सौ की संख्या में क्या विशेषता है, जिससे लोग इसे इतना पसंद करते हैं या यों ही अनुकरण मात्र पर 'सतसई' लिखने की प्रथा चल पड़ी है। कहते हैं मंत्र-साहित्य में भी सात की संख्या को महत्त्व दिया गया है। कदाचित् इसी कारण से साहित्य-क्षेत्र में भी उसका आदर हुआ हो। सप्तशती और सतसई श्रुति-मधुर नाम तो अवश्य हैं।

यदि सतसई लिखने की प्रथा अनुकरण ही पर चली हो तो इसमें संदेह नहीं कि आदिम आदर्श सातवाहन की गाथासप्तशती ने ही उपस्थित किया। गोवर्धनाचार्य्य ने गाथासप्तशती को ही देखा देखी संस्कृत में अपनी आर्यासप्तशती लिखी। उनकी एक आर्या से इस बात का संकेत मिलता है—

वाणी प्राकृत समुचितरसा बलेनैव संस्कृतं नीता।
निम्नानुरूपनीरा कलिंदकन्येव गगनतलम्॥

(वाणी प्राकृत ही में रसीली लगती है, उसे मैं बलपूर्वक संस्कृत में बदल रहा हूँ, नीचे बहनेवाली यमुना को आकाश की ओर ले जाने का प्रयत्न कर रहा हूँ।) "वाणी प्राकृत समुचितरसा" कहते हुए गाथासप्तशती पर उनकी दृष्टि थी इसमें संदेह नहीं, और "बलेनैव संस्कृतं नीता" से ध्वनित होता है कि उन्होंने किसी सीमा तक प्राकृत से अनुवाद किया है। आर्यासप्तशती में गाथासप्तशती का विषय और छंद-संख्या दोनों दृष्टियों से अनुकरण किया गया है। दुर्गासप्तशती और गाथासप्तशती में यदि कोई संबंध हो सकता है तो यही कि उसमें इसकी छंद-संख्या भर का अनुकरण है।

हिंदी में भी यह बात पाई जाती है। बिहारी तथा उन्हीं के ढंग के कुछ कवियों की सतसइयों में गाथासप्तशती और आर्या-सप्तशती को विषय और छंद-संख्या दोनो के संबंध में आदर्श माना गया है, जब कि तुलसीदास आदि कुछ कवियों ने केवल छंद-संख्या के संबंध में अपनी सतसइयों में इन प्राचीन सप्तशतियों का अनुसरण किया है। इन पिछली सतसइयों के लिये विषय की दृष्टि से महाभारत में विदुर अथवा भीष्म पितामह-कथित नीति का आदर्श चुना गया है। इनमे भक्ति-संबंधी कुछ मुक्तकों को छोड़कर, जिनकी गणना शांतरस में की जा सकती है, अधिकांश पद्य सूक्ति मात्र ही हैं। प्रस्तुत संग्रह मे उपर्युक्त दोनो प्रकार की रचनाएँ संगृहीत हैं। तुलसीदास और वृंद की सतसइयाँ सूक्ति-सतसइयाँ हैं और शेष शृंगार-सतसइयाँ।

पहले सूक्ति-सतसइयों को लीजिए। सूक्ति या सुभाषित का अर्थ ही अच्छे कथन से है। सूक्ति का प्रधान उद्देश्य उपदेश है। नित्य प्रति के व्यवहार में जिन बातों से लाभ उठाया जा सकता है उन्हीं बातों को सूक्तिकार एक मार्मिक और हृदयग्राही ढंग से कहता है, जिससे वह जनसाधारण के मन में चुभ जाती हैं। सूक्तिकार कोई नई बात कहने नहीं जाता। सामान्य अनुभूति के क्षेत्र के सामाजिक, नैतिक, धार्मिक और कभी कभी पारमार्थिक तथ्यों को ही वह एक नए और विशेष ढंग से कहता है। सामान्य अनुभूति-क्षेत्र की बात होने के कारण उसकी तथ्यता के विषय मे किसी को अधिक संदेह में पड़ने की अथवा छानबीन करने की आवश्यकता तो पड़ती नहीं, "यह बात कितनी सच्ची है, इस ढंग से यह मेरे मन में पहले क्यों नहीं आई" कुछ ऐसी मनोवृत्ति के साथ वह श्रोता के मन में अपने लिये और भी गहरा स्थान कर लेती है। सूक्ति का आधार वह चमत्कार है जिसमें कोई पुरानी बात आश्चर्य

के साथ नए रूप में देखी जाती है। इस प्रभाव को लाने के लिये सूक्तिकार के पास कई साधनों का होना आवश्यक है। सबसे पहले उसके कथन में कुछ वक्रता या बाँकापन होना चाहिए। उसे घुमाव-फिराव से बात कहनी चाहिए। बिल्कुल सीधे ढंग से कहने से बात का महत्त्व बहुत कुछ घट जाता है। सिंहद्वार या सदर फाटक से आक्रमण करनेवाले को दृढ़ अवरोध का सामना करना पड़ता है। इसी लिये किले में प्रवेश करने के लिये आक्रमण-कारी ऐसे किसी किनारे के छोटे-मोटे दरवाजे की टोह में रहते हैं जिसका कोट के निवासियों को उतना खयाल न हो। दिल में प्रवेश करने के लिये भी बात को ऐसे ही मार्ग ढूँढ़ने चाहिएँ। विदग्ध वाणी को ऐसे मार्ग सहज ही मिल जाते है। जो बात बहुत दिनों के शास्त्रार्थ और तर्क-वितर्क से किसी के मन में न जमाई जा सके वह सहसा किसी चतुराई भरी एक छोटी सी बाँकी उक्ति से एक क्षण में सुझाई जा सकती है। 'सहसा' शब्द पर विशेष ध्यान देना चाहिए। क्योंकि विदग्ध वाणी का प्रभाव भी बिना सहसा कहे बहुत कुछ क्षीण हो जाता है। अचानक और शीघ्र आक्रमण प्रभावशाली होता है। यदि आक्रांतों को तैयारी का अवसर दे दिया जाय तो फिर विजय अनिश्चय में पड़ गई। विजय आक्रांत को आश्चर्य में डालने मे है। आश्चर्य उतना अधिक गहरा होगा जितनी मात्रा मे उक्ति सहसा कही जायगी और वेग-पूर्ण होगी। इन्हीं गुणों के कारण कोई व्यक्ति प्रत्युत्पन्नमति कहलाता है। अवसर पर फबती बात को अचानक कह बैठना यही प्रत्युत्पन्न मति का लक्षण है। सूक्तिकार को प्रत्युत्पन्नमति होना चाहिए। यह बात तो विना कहे ही माननी चाहिए कि सूक्तिकार के पास ज्ञान का भांडार पर्याप्त होना चाहिए, परंतु उससे अधिक उसके पास अवसर के उपयुक्त उचित उपयोग करने की शक्ति होनी चाहिए।

जो व्यक्ति सुप्त स्मृति-भांडार में से प्रस्तुत घटना से मेल खाती हुई बातों को चुनकर एकाएक संबंध न घटित कर सके उसे अपनी प्रत्युत्पन्न मति और सभा-चातुरी का गर्व न करना चाहिए। दृष्टांत सूक्तिकार का सबसे बड़ा बल है। यदि उक्ति का बाँकपन तलवार की धार है तो दृष्टांत तलवार की मूठ है। मूठ पर जितना अधिकार रह सकेगा, प्रहार उतना ही गंभीर और मर्मभेदी होगा।

ऊपर हम सूक्ति में वक्रता अथवा उक्ति-वैचित्र्य का उल्लेख कर आए हैं। वक्रोक्ति से यह न समझना चाहिए कि अर्थ बिलकुल गोरखधंधे ही में बंद कर दिया जाय। ऐसा करना सूक्ति को उद्देश्य-भ्रष्ट करना होगा। जो बात समझ ही में न आवे उसका प्रभाव क्या हो सकता है? किसी उक्ति की प्रभविष्णुता की रक्षा तभी तक हो सकती है जब तक उसमें भाषा की स्वाभाविकता की रक्षा हो। भाषा बनावटी न होनी चाहिए। जहाँ तक हो उसे नित्य की बोलचाल की भाषा की तरह चलती होना चाहिए। बोलचाल की भाषा का संपूर्ण माधुर्य्य निचुडकर मुहावरे में आता है। परंतु मुहावरे का पूरा सौंदर्य बोलचाल की सरल और स्वाभाविक भाषा के संसर्ग में ही खिल सकता है। कृत्रिम भाषा के मेल में तो वह बहुत विरूप हो जायगा। कृत्रिम शैली के उदाहरण में गोसाईंजी के कूट रखे जा सकते हैं, जो हमारी समझ में किसी प्रकार भी उनके गौरव को बढानेवाले नहीं हो सकते। क्लिष्ट कल्पना और विदग्धता इन दोनो के प्रभाव परस्पर विरोधी होते हैं। बल्कि यों कहना चाहिए कि जिस रचना में क्लिष्ट कल्पना आ जाती है उसका कोई प्रभाव ही नहीं होता, जब कि विदग्धता-सिद्ध वाणी अत्यंत प्रभविष्णु होती है। प्रभविष्णुता और प्रसाद गुण अगल-बगल चलते हैं। जो बात जितनी सुगमता से समझ में आवेगी

वह हृदय पर उतना ही अधिक भी प्रभाव डालेगी। यही संक्षेप में सूक्ति के गुण हैं।

हम कह चुके हैं कि प्रस्तुत संग्रह में तुलसी-सतसई और वृंद-सतसई सूक्ति सतसइयों के अंतर्गत आती हैं। तुलसी-सतसई गोसाईं तुलसीदासजी के फुटकर दोहों का संग्रह है। गोसाईंजी की शिष्य-परंपरा में उनका जन्म-संवत् १५५४ माना जाता है। शिवसिंह सेंगर ने संवत् १५८३ में इनका जन्म होना लिखा है। पंडित रामगुलाम द्विवेदी के मत का समर्थन करते हुए डाक्टर ग्रिअर्सन १५८६ में उनका जन्म मानते हैं। हमने गोसाईंजी के जीवन-चरित में वेणीमाधवदास के साक्ष्य पर सं० १५५४ को ही ठीक माना है। वेणीमाधवदास के मूल गोसाईं-चरित के अनुसार इनका जन्म राजापुर में हुआ था। इनकी माता का नाम हुलसी था। इसका संकेत गोस्वामीजी की रचनाओं से भी मिलता है। इनके पिता राजगुरु थे। किंवदंती के अनुसार उनका नाम आत्माराम दूबे था। माता के गर्भ में ही इनके दाँत उग आए थे। जन्मते ही ये रोए-चिल्लाए नहीं बल्कि इन्होंने स्पष्टतया 'राम' शब्द का उच्चारण किया। इससे पहले कि बिरादरी के लोगों की सम्मति से पिता यह निश्चय कर सकें कि बालक का क्या करना चाहिए, हुलसी ने उसे अपनी एक दासी की सास के पास भेज दिया, जिसने पाँच वर्ष तक हरिपुर में उसका पालन-पोषण किया। हुलसी तो बालक को जन्म देने के दो ही तीन दिन पीछे मर गई थी। अब यह सास भी साँप के डसने से मर गई। कुलक्षणी समझकर पिता ने भी बालक की सँभाल नहीं की। कुछ दिनों तक तो बालक दरवाजे दरवाजे राम का नाम लेकर मागता फिरा। इसलिये लोग इसे रामबोला कहते थे। जन्मते ही राम कहना भी उसके रामबोला कहलाए जाने का एक कारण

था। इस दशा में स्वामी रामानंद के शिष्य अनंतानंद के चेले नरहर्यानंद ने उसका उद्धार किया और अपना शिष्य बनाकर वे उसका पालन-पोषण करने लगे। उन्होंने इनके सब संस्कार किए और रामबोला से बदलकर तुलसीदास नाम रखा। कुछ समय तक तुलसीदास अपने गुरु के साथ भ्रमण करते रहे और समय समय पर रामचंद्र की कथा सुनते रहे, जिससे इनके हृदय में उत्कट राम-भक्ति का बीज बोया गया। फिर पंद्रह वर्ष तक ये काशी में शेषसनातनजी के पास शिक्षा पाते रहे। उनके स्वर्गवासी होने पर जब ये राजापुर गए तो इनका सारा परिवार नष्ट हो चुका था। इनका विवाह यमुना के दूसरे तट पर स्थित तारपिता गाँव के किसी ब्राह्मण की कन्या के साथ हुआ था। अतिशय प्रेम के कारण एक दिन इनकी स्त्री के अपने मायके चले जाने पर ये भी उसके पीछे पीछे हो लिए। इस पर उसने इन्हें बहुत झिड़का जिससे इनको वैराग्य हो आया। इन्होंने चारों धाम की यात्रा की और जीवन पर्यंत अपने इष्टदेव का निरंतर आराधन करते हुए संवत् १६८० में अपनी इहलोक-लीला संवरण की।

सतसई के अतिरिक्त इन्होंने रामचरितमानस, गीतावली, विनय-पत्रिका, कवितावली, दोहावली आदि लगभग बारह उत्कृष्ट ग्रंथों की रचना की। पंडित रामगुलाम द्विवेदी के साथ कुछ लोगों को सतसई के गोसाईंजी रचित होने में संदेह है, क्योंकि इसमें कूट रचनाओं की अधिकता है। महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी ने उसे किसी गाजीपुर-निवासी तुलसी कायस्थ की रचना माना है, क्योंकि उसमें गणित का बहुत गहरा ज्ञान प्रदर्शित किया गया है, जो एक कायस्थ के ही उपयुक्त हो सकता है। कुछ ऐसे शब्दों का भी व्यवहार हुआ है जो गाजीपुर के अतिरिक्त

और कहीं प्रयोग में नहीं आते। यदि इस प्रकार की तर्क-शैली से काम लिया जाय तो गोसाईंजी के गनी गरीब इत्यादि शब्दों के प्रयोग करने से कोई गोसाईंजी को ईरान ले दौड़ेंगे और उनकी ज्योतिष-संबंधी रचनाओं के कारण उन्हें एक अन्य तुलसी जोशी की कल्पना करनी पड़ेगी। फिर जो लोग सतसई को गोसाईंजी की नहीं मानते वे दोहावली को उनकी मानते हैं। परंतु दोहावली के लगभग डेढ़ सौ दोहे सतसई में मिलते हैं और दोहावली भी कूट रचनाओं से खाली नहीं है। सतसई में की जानकी-उपासना से भी लोगों को इसके तुलसीकृत होने में संदेह होता है। परंतु वेणीमाधवदास के मूलचरित्र से स्पष्ट है कि जिस समय उन्होंने सतसई की रचना की उस समय उनका झुकाव जानकीजी की ओर अधिक हो रहा था। गोसाईंजी ने स्वयं सतसई का रचना-काल यों दिया है—

अहि-रसना (२) थन-धेनु (४) रस (६) गनपति (१) द्विज गुरुवार।
माधव सित सिय जनम तिथि सतसैया अवतार॥

इससे संवत् १६४२ वैशाख मास में सीता की जन्म-तिथि पर यह ग्रंथ लिखा गया है। वेणीमाधवदास ने भी इस ग्रंथ के लिखे जाने का यही समय दिया है। सं० १६४० में गोसाईंजी ने जनकपुर-यात्रा की। वेणीमाधवदास ने तो उन्हें जानकीजी के हाथ की खीर तक खिलाई है। तुलसी-सतसई के राजनीति और आत्मबोध-निरूपण सर्ग राजा जनक के स्मारक से लगते हैं। फिर जानकी-भक्ति राम-भक्ति की विरोधिनी भी नहीं है। उन्होंने सतसई में भिन्न भिन्न विषयों पर जो मत प्रकट किए हैं उनका अन्य ग्रंथों से विरोध भी नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त इस सतसई के कर्त्ता ने अपना निवास-स्थान गंगा किनारे लोलार्क के पास बताया है जो गोसाईं

तुलसीदासजी के सिवाय और किसी का निवास-स्थान नहीं हो सकता—

रवि चंचल अरु नक्षत्र, बीच सुवास विचारि।
तुलसिदास आसन करें, अवनिसुता उर धारि॥

इन सब बातों से हमें इस सतसई को गोसाईंजी कृत मानने में कोई अड़चन नहीं जान पड़ती।

तुलसी-सतसई मे सात सर्ग हैं। प्रथम सर्ग में भक्ति-विषयक दोहे हैं, द्वितीय में उपासना पराभक्ति के, तीसरे में सांकेतिक वक्रोक्ति से राम-भजन किया गया है। चौथे, पाँचवें और छठे मे क्रमश: आत्मबोध, कर्म-सिद्धांत और ज्ञान-सिद्धांत संबंधी दोहे और सातवें सर्ग के दोहों में राजनीति का निरूपण किया गया है। सूक्ति की जो कसौटी ऊपर निर्धारित की गई है उस पर गोसाईंजी के सब दोहे खरे नहीं उतरते। कुछ कबीर की साखी के ढंग पर कोरे उपदेश मात्र हैं जिनका महत्त्व यही है कि उनमें एक महान् तथ्य का कथन है। परंतु कथन में कितना ही महत्त्वपूर्ण तथ्य क्यों न हो जब तक वह प्रभावपूर्ण भी न हो तब तक उसका उतना मूल्य नहीं हो सकता।

ज्ञान गरीबी गुरुधरम, नरम वचन निरमोख।
तुलसी कबहुँ न छाँड़िए, सील सत्य संतोख॥

इस सामान्य उपदेश से हमारा ज्ञान भर बढ़ सकता है, उसका कुछ प्रभाव भी हमारे ऊपर पड़ेगा या नहीं यह बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर है; स्वयं इस उक्ति में कोई शक्ति नहीं है। प्रभावशाली होने के लिये सूक्ति में ज्ञान और शक्ति दोनों का सम्मिश्रण होना चाहिए। भारतीयों का सा अशक्त ज्ञान दुनिया के किसी काम में नहीं आ सकता, चाहे प्रत्येक देश के दो चार व्यक्ति उसकी प्रशंसा के पुल बाँधते रहें।

इसी प्रकार तुलसी-सतसई का एक सर्ग का सर्ग कूट-कविताओं से भरा है जिनकी रचना केवल इसलिये की गई जान पड़ती है कि गोसाईंजी अपने समय की सभी प्रचलित शैलियों में अपनी सिद्धहस्तता दिखाना चाहते थे। अन्यथा उनसे कोई विशेष प्रयोजन सिद्ध होता नहीं दिखाई देता। अर्थ तक पहुँचने के लिये ऐसी भूलभुलैयाँ से जाना पड़ता है कि लक्ष्य तक पहुँचने में कठिनता होती है। इस भूलभुलैयाँ के विशेषज्ञ टीकाकारों का भी विश्वास नहीं किया जा सकता। तुलसी-सतसई पर दो टीकाएँ हैं और दोनों में कूटों के संबंध मे मतभेद दिखाई देता है। सचमुच कूटों की रचना से गोसाईंजी का गौरव नहीं बढ़ा है, परंतु केवल इसी कारण हम एक तथ्य का अस्तित्व नहीं मिटा सकते।

इतना होने पर भी गोसाईंजी की सतसई में सुंदर मार्मिक सूक्तियाँ जहाँ-तहाँ बिखरी पड़ी हैं। उदाहरण स्वरूप थोड़ी सी यहाँ पर दी जाती हैं—

> हरे चरहिं तापहिं बरे, फरे पसारहिं हाथ।
> तुलसी स्वारथ मीत जग, परमारथ रघुनाथ॥

जगत् की स्वार्थपरता का कैसा स्पष्ट चित्र है। जब तक लता-वृक्षादि हरे रहते हैं वे चरे जाते हैं, जब उन पर फल लगते हैं तब सब लोग उनके फलों को खाते हैं परंतु जब पेड़ सूख जाते हैं तब उनके उपकार भुला दिए जाते हैं और लोग उन्हें जलाकर तापने लगते हैं।

> स्वामी होनो सहज है, दुरलभ होनो दास।
> गाडर लायो ऊन को, लाग्यो चरन कपास॥

नाम मात्र का स्वामी होना तो सहज है परंतु वास्तविक स्वामी वही हो सकता है जो उनकी सेवा करे जिनका वह स्वामी बनता है। ऊन के लिये यदि कोई भेड़ें लावे और उनकी देख-भाल और टहल-

सेवा न कर सके तो वे उसकी कपास भी चर लेंगी और शायद ला-परवाही के कारण लूट हो जाने से ऊन भी उनसे न मिल सकेगा।

चलब नीति-मग राम-पग प्रेम निबाहब नीक।
तुलसी पहिरिय सो बसन जो न पखारब फीक॥

इस बात को सभी पसंद करेंगे कि कपड़ा वही पहनना चाहिए जिसकी चटक धोने से फीकी न पड़े। जब सुननेवाले को मालूम होता है कि राम के चरणारविंद के सहारे न्याय-पूर्वक चलते हुए भगवत् प्रेम का निर्वाह करना सदा एकरस चटकवाले वस्त्र को पहनने के समान है तब उसकी रुचि उस दिशा की ओर मुड़ ही जाती है।

राजा को कैसा होना चाहिए, जरा यह भी सुन लीजिए—

बरखत हरखत लोग सब, करखत लखै न कोइ।
तुलसी भूपति भानु सम, प्रजा भाग बस होइ॥

सूर्य कब और कैसे पृथ्वी से रस को खींच लेता है, यह प्रकट रूप से किसी को भी नहीं देख पड़ता। किंतु जब पृथ्वी से खिंचा हुआ जल बरसता है तब सभी देखते हैं और प्रसन्न होते हैं। इसी प्रकार राजा को भी चाहिए कि वह कर इस प्रकार से उगाहे कि प्रजा को जान न पड़े और फिर कर रूप में आई हुई धनराशि को प्रकट रूप से प्रजा के हित में खर्च करे।

ऊपर दी हुई सूक्तियों में रचना-चातुर्य के सहारे अप्रस्तुत दृष्टांत का प्रभाव प्रस्तुत में आरोपित कर दिया गया है। इसी प्रकार की सूक्तियाँ कविता के अंतर्गत आ सकती हैं। कूट रचनाओं को कविता मानना प्रायः कविता का निरादर ही करना है। कभी कभी कूट में भी वाग्विदग्धता के दर्शन हो सकते हैं, जैसे नीचे लिखे इस कूट में—

जग ते रहु छत्तीस ह्वै, राम चरन छव-तीन।
तुलसी देखु बिचारि हिय, है यह मतो प्रवीन॥

इसमें बात को दृष्टि-पथ में प्रस्तुत करने का जो आकस्मिक और आश्चर्यकर ढंग है उससे मन पर बहुत शीघ्र और गहरा प्रभाव पड़ता है।

परंतु इसके लिये गोसाईं तुलसीदास के सदृश शक्तिशाली और तीव्र कल्पनावाले कवि की आवश्यकता है। गोसाईंजी में भी एक ही दो ऐसे कूट मिलते हैं और यह भी संभव है कि कुछ लोग इनको कूट मानने के लिये ही तैयार न हों।

इस संग्रह में दूसरी सूक्ति-सतसई वृंद की है। वृंद का जन्म संवत् १७०० के आश्विन की शुक्ला प्रतिपदा गुरुवार को मेड़ते में हुआ। इनके पिता कविरूपजी डिंगल भाषा के कवि थे। वृंद की शिक्षा काशी में हुई। इनके गुरु तारा पंडित ने इन्हें संस्कृत और पिंगल का अच्छा अध्ययन कराया था। काशी से लौटने पर पहले ये कुछ समय तक जोधपुर के महाराज जसवंतसिंह के दरबार में रहे। सं० १७३० में वजीर नवाब मुहम्मदशाह के द्वारा इनकी पहुँच औरंगजेब के दरबार में हुई, जहाँ इनको १०) प्रति दिवस के हिसाब से वेतन मिलता रहा। कुछ वर्ष पीछे औरंगजेब की आज्ञा से ये उसके नाती अजीमुश्शान के साथ रहने लगे। सं० १७४२ में कृष्णगढ़ के महाराज मानसिंह ने इन्हें अपने राजकुमार राजसिंह की शिक्षा के लिये नियुक्त किया। कुछ समय तक ये अजमेर के सूबेदार मिरजा कादरी की कन्या के शिक्षक भी रहे। समय समय पर ये दिल्ली बराबर आते रहते थे, क्योंकि ये स्थायी रूप से दरबारी कवि थे। अंत में औरंगजेब के पुत्रों में उत्तराधिकार के युद्ध होने पर नए बादशाह से महाराजा राजसिंह ने, जो उनकी तरफ से लड़कर विजयी हुए थे, वृंद को माँग लिया। तब से लगभग पंद्रह वर्ष तक वे इन महाराज के दरबार में रहे और अंत में कृष्णगढ़ ही में इन्होंने ८० वर्ष की आयु भोगकर संवत १७८० में इस नश्वर शरीर को छोड़ा।

वृंद बड़ी स्वतंत्र प्रकृति के मनुष्य थे। इनको बादशाह ने 'सच्ची कहनेवाला कविराज' की उपाधि दी थी। यद्यपि ये औरंगजेब के दरबारी कवि थे फिर भी इन्होंने अपनी स्वतंत्र प्रकृति का त्याग नहीं किया। संवत् १७३६ में जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंहजी के स्वर्गवासी होने पर औरंगजेब ने पचास मंदिर तुड़वाने का हुक्म दिया था। इस अवसर पर औरंगजेब की आड़े हाथों खबर लेते हुए वृंद ने कुछ कवित्त बनाए थे। उनमें से एक यहाँ दिया जाता है—

पहो शाह औरंग कहावत हौ पातिशाह
आप ही विचारो यह कैसी सुबहानगी।
जब महाराज काल ने डेरा कुचाह कूटे
तब क्यों न लरिकैं दिखाई तेग-बाजगी।
देस पर देस सूबा कंचन इनाम दीन्हे
कीन्हीं दिलजोई प्यार परवानगी।
जब जसवंत सुरपुर को सिधाए तब
तेग बाँधि आए, यह कैसी मरदानगी?

वृंद ने सत्य-स्वरूप रूपक वचनिका, अलंकार-सतसई, शृंगार-शिक्षा, हितोपदेशाष्टक, भाव-पंचाशिका आदि कई ग्रंथ लिखे, परंतु कोई उतना प्रसिद्ध नहीं हुआ जितनी कि उनकी रची हुई वृंद विनोद सतसई, जो इस संग्रह में वृंद-सतसई के नाम से दी गई है। इस ग्रंथ की रचना ढाका में संवत् १७६१ में हुई, जैसा कि कवि ने स्वयं ही ग्रंथ के अंत में कहा है—

संवत ससि(१)रस(६)बार(७)ससि(१) कातिक सुदि ससि वार।
सातैं ढाका शहर मैं, उपज्यो इहै विचार॥

गोसाईंजी की भाँति वृंद ने अपनी रचना में कूटों अथवा कोरे उपदेशों को स्थान नहीं दिया है। उनकी सूक्तियों में सर्वत्र एकरस

विदग्धता है। सूक्तियों के उपयुक्त कोई ऐसे गुण नहीं जो उनकी सूक्तियों में न पाए जाते हों। भाषा की सरलता, मुहावरों की प्रचुरता, कहावतों का बहुल प्रयोग ये सब बातें उनकी सूक्तियों में मिलती हैं।

वृंद की सतसई में भाषा के असाधु प्रयोग का एक ही उदाहरण हमें मिलता है—

खलजन सौं कहिए नहीं गूढ़ कबहुँ करि मेल।
यौं फैलै जग माहि ज्यौं जल पर 'बूँद कि तेल'॥

'तेल की बूँद' न कहकर 'बूँद की तेल' कहना यह एक बड़ा दोष है। परंतु अन्यत्र कहीं वाक्य-रचना का व्यतिक्रम वृंद की रचना में नहीं हुआ है इसी से इसको देखकर आश्चर्य होता है। और जगह भाषा बिल्कुल साफ है। बड़े चमत्कारी दृष्टांतों को ढूँढने में जितनी सिद्धहस्तता वृंद में दिखाई देती है उतनी और किसी सूक्तिकार में नहीं मिलती। साधारण सी साधारण घटना में से वे ऐसे आश्चर्यकर असाधारण दृष्टांत निकाल लेते हैं कि सुननेवाले को चकित रह जाना पड़ता है। ऊपर कहे गए तथ्यों के साक्षीभूत उनकी सूक्तियों के कुछ थोड़े से उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं—

पिसुन छल्यौ नर सुजन सों करत विसास न चूकि।
जैसे दाध्यो दूध कौ पीवत छाछहि फूँकि॥
वनती देख बनाइयै परन न दीजै खोट।
जैसी चलै बयार जब तैसी दीजै ओट॥
विधि के विरचे सुजनहू दुरजन सम ह्वै जात।
दीपहि राखै पवन ते अंचल वहै बुझात॥
भले बुरे सब एक से जौ लौं बोलत नाहि।
जान परत हैं काक पिक ऋतु वसंत के माहि॥
जैसौ बंधन प्रेम को तैसो बंध न और।
काठहिं भेदै कमल कौं छेद न निकरै भौंर॥

जे चेतन ते क्यों तजैं जाकौ जासों मोह।
चुंबक के पीछे लग्यो फिरत अचेतन लोह॥
हरत दैव निवल अरु दुर्बल ही के प्रान।
बाघ सिंह को छाँडिकै देत छाग वलिदान॥

वृंद की टक्कर का एक ही सूक्तिकार हुआ है, रहीम। कहते हैं कि रहीम ने भी एक सतसई लिखी थी परंतु उसके अब कुछ ही दोहे मिलते हैं। विहारी, मतिराम आदि शृंगार-सतसईकारों ने भी अपनी सतसइयों में कहीं कहीं पर सूक्तियाँ कही हैं और वड़ी सुंदर कही हैं, परंतु वे संख्या में वहुत कम हैं। अतएव उनकी गिनती सूक्तिकारों में नहीं हो सकती। गोसाईंजी ने भी कोई कोई सूक्तियाँ ऐसी कही हैं कि उनकी तुलना की सूक्ति हिंदी में ढूँढ़ निकालना कठिन है। परंतु ऐसी सूक्तियाँ उन्होंने वहुत कम कही हैं। उनमें अधिकांश कोरे उपदेश या कूट ही हैं। यदि गोसाईंजी और विहारी आदि कवियों की कीर्ति केवल सूक्तियों पर ही अवलंवित रखी जाय तो संभवतः उनको कल ही लोग भूल जायँ परंतु वृंद की कीर्ति सूक्तिकार होने ही में है। कविता के और क्षेत्रों में भी उन्होंने अपना हाथ आजमाया है, परंतु उन्हें सर्वत्र घोर असफलता हुई। हाँ, सूक्ति कहना उनकी अपनी विशेषता है जिसमें वे पूर्णतया सफल हुए हैं।

शृंगार-सतसइयाँ 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' की परिभाषा के अंतर्गत आती हैं। सूक्ति में रचना-चमत्कार मात्र के आ जाने से उसका उद्देश्य सिद्ध हो जाता है, परंतु शृंगारी कविता में जव तक रस का परिपाक न हो तव तक वह अपने उच्चतम आसन पर नहीं वैठ सकती। यहाँ पर थोड़े में इस वात पर विचार कर लेना आवश्यक है कि रस है क्या वस्तु।

"काव्य के आस्वाद को रस कहते हैं। रसों के आधार भाव हैं। जो भाव मन में बहुत काल तक रहकर उसे तन्मय कर दें वे ही रस हो जाते हैं। ऐसे भाव स्थायी भाव कहलाते हैं। अब तक प्रेम, हास, क्रोध, उत्साह, भय, घृणा, आश्चर्य, शोक और शांति ये नौ स्थायी भाव माने गए हैं। जो भाव मन में केवल अल्प काल तक संचरण कर चले जाते हैं वे संचारी भाव कहलाते हैं। ये प्रवृत्ति के अनुसार भिन्न भिन्न स्थायी भावों को रस की उच्च भूमि तक पहुँचाने में सहायक होते हैं। संचारी और स्थायी भावों के अतिरिक्त रस की निष्पत्ति के लिये विभावों और अनुभावों की आवश्यकता होती है। रसों को उदित और उद्दीप्त करनेवाली सामग्री विभाव कहलाती है। इसके तीन अंग हैं—आश्रय, आलंबन और परिस्थिति। विषयी आश्रय, विषय आलंबन और अनुकूल देशकाल परिस्थिति है। जैसे—सीता-विषयक प्रेम यदि राम में है तो राम को उसका आश्रय, सीता को आलंबन और जनकपुर के उपवन को परिस्थिति समझना चाहिए। परिस्थिति को साहित्यिक भाषा में उद्दीपन विभाव कहते हैं। अनुभाव आंतरिक मनोभाव का बाहरी शारीरिक लक्षण है। मुखमंडल की मुद्रा आदि भीतर के भावों को प्रकट करती ही हैं। जब ये कायिक लक्षण स्थायी भाव से मन की अत्यंत और विह्वलकारी तन्मयता सूचित करते हैं तब ये सात्त्विक कहलाते हैं। रोमांच, स्वेद, वैवर्ण्य, कंप, अश्रु, प्रलय, स्वरभंग और स्तंभ ये आठ सात्त्विक माने गए हैं। सात्त्विक लक्षण स्वतः प्रकट हो जाते हैं। परंतु कुछ कायिक परिवर्त्तन ऐसे भी होते हैं जिनमें प्रयत्न अपेक्षित रहता है। आँख नचाना, गर्दन मोड़ना, किसी अंग को दिखलाना, ये सब कार्य किए तो स्थायी भाव की उमंग की लपेट में जाते हैं परंतु किए जाते हैं इच्छावश। इन्हें 'हाव' कहते हैं। हावों का संबंध आलंबन से होता है और

सात्त्विक भावों का आश्रय से। इनमें कार्य-कारण का संबंध होता है। हावों को देखकर ही बहुधा सात्त्विक भावों का उदय होता है। परंतु यह अनिवार्य भी नहीं है। विना हावों के भी सात्त्विक हो सकते हैं। हावों और सात्त्विक भावों की भी अनुभावों के ही अंतर्गत गणना की जानी चाहिए, यद्यपि इनके अतिरिक्त और भी अनुभाव हो सकते हैं जिनकी गिनती ही नहीं हो सकती। अतएव आश्रय के हृदय में आलंबन को विशेष परिस्थिति में देखकर जो विशेष प्रकार का बहुत देर तक उसे मग्न कर देनेवाला उसकी आकृति से लक्ष्यमाण भाव उदय होता है उसकी अनुभूति का पाठक या श्रोता के हृदय में, रस के रूप में, आविर्भाव होता है। दांपत्य प्रेम से शृंगार, सतान-प्रेम से वात्सल्य, हास से हास्य, क्रोध से रौद्र, उत्साह से वीर, भय से भयानक, घृणा से वीभत्स, शोक से करुण, आश्चर्य से अद्भुत और शांति अथवा निर्वेद से शांत-रस का उदय होता है।"

इन सब रसों में से शृंगार-रस जितना सर्वप्रिय हुआ उतना कोई और रस नहीं। इसका भी कारण है। दांपत्य रति जितना व्यापक भाव है उतना सम्भवतः और कोई भाव नहीं। मनुष्य की वासना-वृत्ति को जितनी तृप्ति इस भाव से मिलती है उतनी और भावों से नहीं। इसके अतिरिक्त रस की आद्यंत संपूर्ण योजना की विवृति, शृंगार रस के अतिरिक्त और किसी रस मे नहीं होती। अनुभावों के अंतर्गत हावों तथा सात्त्विक भावों का और रसों में कोई स्थान नहीं। शृंगार-रस में आश्रय और आलंबन दोनो की क्रीड़ा-स्थली हृदय हो सकता है, और आश्रय और आलंबन का विभेद कवि के ही दृष्टि-कोण से होगा, वास्तविक नहीं और फिर भी वे स्थान बदलते हुए दिखाई देंगे। अन्य रसों के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती। उनमें आलंबन की अनुभूति आश्रय के स्थायी भाव का विषय

हो सकती है। किंतु स्थायी भाव आलंबन की अनुभूति का विषय कदापि नहीं हो सकता। जिसको देखकर आपको हँसी आती है वह आपसे रुष्ट होगा, आप पर हँसेगा नहीं। आपको आश्चर्य मे डालनेवाला दृश्य अथवा व्यक्ति आपको आश्चर्य में पड़ा हुआ देखकर आश्चर्य-चकित न होगा। जो स्वयं करुण दशा मे है उसके प्रति करुणा दिखलाने से वह कृतज्ञ होगा पर उसके हृदय में आपके प्रति करुणा का भाव उदय नहीं होगा। यही बात और रसों के विषय में समझिए। ऊपर संचारी भावों का उल्लेख हो चुका है। संचारी भाव तेंतीस होते हैं—१ चिंता, २ निद्रा, ३ सुप्त, ४ मद, ५ स्मृति, ६ अमर्प, ७ गर्व, ८ त्रास, ९ ईर्ष्या, १० दैन्य, ११ जड़ता, १२ हर्ष, १३ धृति, १४ शंका, १५ श्रम, १६ ग्लानि, १७ निर्वेद, १८ व्रीड़ा, १९ विबोध, २० मोह, २१ अपस्मार, २२ आवेग, २३ सुमति, २४ अवहित्थ, २५ तर्क, २६ उन्माद, २७ विषाद, २८ व्याधि, २९ चपलता, ३० उत्सुकता, ३१ उग्रता, ३२ मरण, ३३ अलसता। इनमे से अंतिम तीन को छोड़कर शेष सब शृंगार-रस की निष्पत्ति में सहायक होते हैं। और रसों मे इतने संचारियों का उपयोग नहीं हो सकता। हास्य मे केवल तीन, अद्भुत मे चार, वीभत्स मे पाँच, वीर मे छः, रौद्र मे आठ, भयानक मे दस और करुण मे ग्यारह संचारियों का उपयोग हो सकता है। कवि देव की सम्मति मे छल एक और संचारी भाव है, इसका भी शृंगार-रस में उपयोग हो सकता है। शृंगार-रस की इसी व्यापकता के कारण वह रसराज कहलाता है और इसी व्यापकता के कारण रस-विषयक ग्रंथ लिखनेवाले कवियों को रस-योजना को पूर्ण रूप से सोदाहरण समझाने के लिये उसका ही आश्रय लेना पड़ा है। रस-विषयक किसी ग्रंथ को ले लीजिए। उसमें शृंगार-रस का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलेगा। अन्य रसों का वर्णन बहुत

संक्षेप में किया हुआ पाइएगा। मध्य युग के साहित्य-प्रेमी राजा-महाराजाओं की विलास-प्रियता का भी शृंगार-रस के इस प्रचार में कुछ हाथ था, यह बात निस्संकोच कही जा सकती है। शृंगार-सतसइयों का रूप यद्यपि लक्षण-ग्रंथों का सा नहीं है तथापि इसमें कोई संदेह नहीं कि उनमें के पद्य भी साहित्य-शास्त्र के लक्षणों को ही सामने रखकर रचे गए हैं।

रस का जो निरूपण ऊपर किया गया है उससे रसीले मुक्तक रचनेवाले कवियों की कठिनता का अनुमान किया जा सकता है। परंतु सप्तशतियों और सतसइयों के संबंध में यह कठिनता और भी बढ़ जाती है, क्योंकि इनके लिये बहुत छोटे छंद चुने गए हैं। हम यह देख चुके हैं कि शृंगार-सतसइयों का आदर्श प्राकृत गाथा-सप्तशती ने प्रस्तुत किया। उसके अनुकरण पर संस्कृत में आर्या-सप्तशती लिखी गई। दोनों को ध्यान में रखकर बिहारी ने हिंदी में अपनी सतसई लिखी और हिंदी-सतसईकारों ने बिहारी-सतसई को अपना आदर्श बनाया। इन सब ग्रंथों को देखने से पता चलता है कि शार्दूलविक्रीड़ित, शिखरिणी आदि लंबे लंबे वृत्तों को छोड़कर प्राकृत में गाथा और संस्कृत मे आर्या छंद चुने गए तथा हिंदी में सवैए, कवित्त आदि लंबे छंदों को छोड़कर छोटा सा दोहा छंद चुना गया। कहीं कहीं दोहे के स्थान पर सोरठा भी देखा जाता है और विक्रम ने अपनी सतसई में कुछ बरवै भी कहे हैं। परंतु इससे वस्तु-स्थिति मे कोई अंतर नहीं आता क्योंकि सोरठा और दोहे में कोई विशेष अंतर नहीं। दोहे के पहले और दूसरे तथा तीसरे और चौथे चरणों के स्थान परिवर्तन कर देने मात्र ही से दोहा सोरठे में बदल जाता है। बरवै दोहे से छोटा ही छंद है, बड़ा नहीं। इतने छोटे छोटे छंदों में भी रस की इस विशद और पेचीली सामग्री को भर देना, यह सतसईकारों

का कठिन कर्त्तव्य है। इसमें वह जहाँ तक कृतकार्य होगा वहाँ तक साहित्य-शास्त्र की परिभाषा तथा रसिकों की दृष्टि में वह सफल कवि समझा जायगा।

प्रस्तुत संग्रह में पाँच शृंगार-सतसइयाँ हैं। समय तथा उत्कृष्टता दोनों की दृष्टि से पहला स्थान बिहारी-सतसई का है। बिहारी का जन्म संवत् १६५२ में ग्वालियर में हुआ था। उनके पिता का नाम केशवराय था और उनके दादा का वासुदेव। ये धौम्य-गोत्री घरबारी माथुर चौबे थे। इनकी माता के मर जाने पर इनके पिता ग्वालियर छोड़कर ओड़छे चले गए। उसके पास ही गुढ़ौ ग्राम में उनके गुरु टट्टी संप्रदायी सरसदेवजी के शिष्य नरहरिदासजी रहते थे जिनके यहाँ प्रसिद्ध आचार्य केशवदास भी आया-जाया करते थे। बाबू जगन्नाथदास जी रत्नाकर का अनुमान है कि नरहरिदासजी के अनुरोध से केशवदासजी ने बिहारी को कुछ काल तक अपने साथ रखा और काव्य-रीति की शिक्षा दी। अब सं० १६७० में नरहरिदास की अनुमति से बिहारी के पिता रहने के लिये वृंदावन आए तो बिहारी को भी साथ लेते आए। वृंदावन में भी बिहारी को नागरीदासजी जैसे कई साहित्य-मर्मज्ञों की संगति का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यहीं सं० १६५७ में उनकी शाहजादा शाह-जहाँ से भी जान-पहचान हुई। शाहजहाँ अपने पिता जहाँगीर के साथ आया था। जहाँगीर ने अपनी तुजुक जहाँगीरी में वृंदावन आने और वहाँ चित्सुखानंद स्वामी के दर्शन करने की बात का उल्लेख किया है। बिहारी की कविता सुनकर शाहजहाँ बड़ा प्रसन्न हुआ और उन्हें अपने साथ आगरे ले गया। यहाँ उनका खानखाना अब्दुर्रहीम के साथ परिचय हुआ। खानखाना ने भी उनकी कविता की प्रशंसा की। इनकी ख्याति और मान दिन दिन बढ़ने लगा। अपनी गुणग्राहकता का प्रदर्शन और शाहजहाँ को

प्रसन्न रखना ये दोनों शिकार एक ही ढेले से होते देख बहुत से राजा महाराजा बिहारी पर अपनी कृपा की वर्षा करने लगे। बहुत रियासतों से उनकी वार्षिक वृत्ति बँध गई और वे भिन्न भिन्न राजाओं के पास आने-जाने लगे।

सं० १६८१ के आस पास एक बार वे अपनी वार्षिक वृत्ति के संबंध मे आमेर पहुँचे। उस समय महाराज जयसिह आमेर की गद्दी पर थे। उन्होंने हाल ही में नया ब्याह किया था। नई रानी के प्रेम में वे इतना रम गए थे कि राज-काज की देख-भाल छोड़कर रात-दिन उसी के महल में पड़े रहते थे, बाहर निकलने का नाम न लेते थे। अंदर किसी की पहुँच नहीं होती थी। कहते हैं कि बाहर यह भी सुना गया कि महाराजा साहब कहते हैं कि कोई यदि हमारे रंग मे भंग करेगा तो हम उसका अंग-भंग कर देंगे। मंत्री लोग चिंतित थे और महारानी अनंतकुमारी (चौहानी रानी) को भी अत्यंत दुःख था। बिहारी के वहाँ पहुँचने पर मंत्रियों ने उनसे प्रार्थना की कि कोई ऐसा उपाय सोचिए जिसमे राजा चेतें और राज-काज निभे तथा चौहानी रानी प्रसन्न हों। बिहारी शाहजहाँ के प्रीतिपात्र थे। वे जानते थे कि महाराजा मुझे छेड़ने का साहस नहीं कर सकते। इस-लिये उन्होंने निर्भय होकर यह दोहा लिखकर राजा के पास भिजवा दिया—

> नहि पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल।
> अली कली ही सौं बँध्यौ आगैं कौन हवाल॥

दोहा पढते ही राजा को चेत हुआ। 'आगैं कौन हवाल' की गूढ़ व्यंजना भी राजा को सूझ गई। 'इस तरह बेखबर रहोगे तो आगे कैसे निभेगी। शाहजहाँ तुमसे भिड़ने का अवसर ही देख रहा है।' महाराज ने बिहारी का बड़ा उपकार माना। बहुत सी

स्वर्ण मुद्राएँ उनकी भेंटकर उन्होंने उनका सम्मान किया और आगे के लिये भी प्रति दोहा एक अशर्फी देने की प्रतिज्ञा की। राजा के बाहर आने से चौहानी रानी बड़ी प्रसन्न हुईं। उन्होंने भी बिहारी को बहुत पारितोषिक और काली पहाड़ी का गाँव भेंट किया तथा उन्हें अपनी ड्योढ़ी का कवि बना लिया। उन्होंने उक्त अवसर का एक चित्र भी खिचवाया जो अब तक जयपुर के महल में लगा है।

इस प्रकार बिहारी के आमेर में रहने का आयोजन हुआ और वे समय समय पर दोहे रचकर राजा जयसिंह को दिखाने और प्रतिज्ञा-नुसार अशर्फियाँ पाने लगे। येही दोहे आगे चलकर सतसई के रूप मे संगृहीत हुए। यह बात तो स्वयं बिहारी ने भी स्वीकार की है कि महाराजा जयसिंह के कहने पर ही सतसई के दोहों की रचना हुई—

हुकुम पाइ जय साहि को, हरि राधिका प्रसाद।
करी बिहारी सतसई, भरी अनेक सवाद॥

अनुमान होता है कि सतसई संवत् १७०४ के शीतकाल में पूर्ण हुई होगी, क्योंकि अंतिम दोहों मे बलख की लड़ाई का उल्लेख है जो इसी संवत् में समाप्त हुई थी। इस लड़ाई में महा-राज जयसिंह भी औरंगजेब की सहायता के लिये गए थे। वहाँ उन्होंने बड़ी वीरता से पठानों पर जय पाई और बड़ी युक्ति से सेना को बर्फ में दब जाने से बचाया—

सामाँ सेन, सयान की, सबै साहि कैं साथ।
बाहु-बली जयसाहि जू, फते तिहारैं हाथ॥
यौं दल काढ़े बलक तैं, तैं जयसिंह भुआल।
उदर अघासुर कैं परैं, ज्यौं हरि गाइ गुवाल॥

सुना जाता है कि बिहारी के एक भाई और एक बहिन भी थी। भाई इनसे बड़ा था और बहिन छोटी। इनका भानजा कुल-पति मिश्र भी अच्छा कवि हुआ। बिहारी को कोई संतान नहीं

हुई। उन्होंने अपने भतीजे निरंजनकृष्ण को गोद ले लिया था। इसी से उनका वंश चला। पत्नी की मृत्यु होने पर विहारी वृंदावन चले गए। निरंजनकृष्ण को वे आमेर ही छोड़ गए। इन्हीं निरंजनकृष्ण के गोकुलदास, उनके खेमकरन, उनके दयाराम, उनके मानिक-मनि, उनके गनेस और उनके बालकृष्ण हुए। इन बालकृष्ण के पुत्र अमरकृष्ण हुए। ऐसा जान पड़ता है कि निरंजनकृष्ण का दूसरा नाम कृष्णलाल था। कृष्णदत्त कवि ने सतसई पर सवैए लिखे हैं। वे इन कृष्णलाल से भिन्न हैं। लोग इन दूसरे कृष्ण कवि को भ्रमवश विहारी का पुत्र मानते हैं।

सतसई के अतिरिक्त कोई और भी रचना विहारी ने की है या नहीं इसका स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। कुछ लोगों को तो सतसई के भी विहारी कृत होने में संदेह है। विहारी का एक दोहाबद्ध जीवन-वृत्त मिला है जिसमें लिखा है कि सतसई के दोहे वास्तव में विहारी के नहीं उनकी स्त्री के बनाए हुए हैं। उसके अनुसार उनकी स्त्री घर पर कविता बनाया करती थी और ये राजाओं के दरबारों में जाकर उसे पढ आया करते थे। उसी वृत्त में यह भी लिखा है कि इनकी स्त्री ने चौदह सौ दोहे बनाए थे जिनमे से सात सौ चुनकर सतसई में रखे गए। स्त्री के द्वारा दोहों का रचा जाना किसी की उपजमात्र जान पड़ती है। उसको प्रमाणित करने के लिये कोई अन्य साक्ष्य नहीं मिलता। परंतु इससे यह जान पड़ता है कि विहारी ने केवल सात सौ दोहे नहीं रचे थे। कहते हैं, जोधपुर में दूहा-संग्रह नाम से पंद्रह सोलह सौ दोहों का एक संग्रह है जिसमें बहुत से दोहे विहारी के हैं। हो सकता है कि यह संपूर्ण संग्रह विहारी-कृत हो।

विहारी ने सतसई के अतिरिक्त कोई और रचना की हो या न की हो, परंतु उनके कीर्ति-विस्तार के लिये एक सतसई ही पर्याप्त है। जितना प्रचार उनकी सतसई का हुआ, रामचरितमानस को

छोड़कर उतना कदाचित् ही किसी अन्य ग्रंथ का हुआ हो। उसपर दर्जनों टीकाएँ हो चुकी हैं और अब तक होती जा रही हैं। कई कवियों ने उन पर सवैए, कुंडलिए और छप्पय बैठाने के प्रयत्न किए हैं परंतु कोई भी सफल न हुए और न हो ही सकते थे। इस सतसई के उर्दू और संस्कृत अनुवाद भी हो चुके हैं। संस्कृत अनुवाद शृंगार-सप्तशतिका नाम से पंडित परमानंद ने किया है और उर्दू अनुवाद गुलदस्तए-बिहारी नाम से बुंदेलखंड निवासी मुंशी देवीप्रसाद 'प्रीतम' ने। आधुनिक टीकाओं से पंडित पद्मसिंह शर्म्मा का संजीवन-भाष्य जितना प्रकाशित हुआ है उतना बहुत चुटीला और देखने ही योग्य है। परंतु न जाने क्यों उन्होंने अब तक उसे पूर्ण करने का कष्ट नहीं उठाया। बिहारी की सबसे गंभीर और मार्मिक टीका व्रजभाषा के दिग्गज विद्वान् बाबू जगन्नाथदासजी की बिहारी-रत्नाकर है।

रसिक समाज में बिहारी की सतसई का इतना प्रचार यों ही नहीं हुआ। उसका दृढ़ कारण था। काव्यरीति का कोई ऐसा अंग नहीं जिसकी खूबियाँ बिहारी की कविता में न मिलें। कहीं कहीं तो एक ही दोहे में रस की मधुर व्यंजना, अलंकारों की सुष्ठु योजना और शब्दों का लालित्य साथ साथ देखने को मिलता है—

जुरे दुहुनु के दृग झमकि, रुके न झीनैं चीर।
हलुकी फौज हरौल ज्यौं, परै गोल पर भीर॥
लाज लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहि।
ये मुँह जोर तुरंग ज्यौं, ऐंचत हू चलि जाहिं॥

इनकी पर्यवेक्षण शक्ति बहुत तीव्र थी। बारीक से बारीक बात भी इनकी आँखों से नहीं बच सकती थी। जिस दृश्य या चेष्टा को एक बार देख लेते उसका चित्र इनके मस्तिष्क में खिंच जाता था। उस आंतरिक सूक्ष्म चित्र को शब्द-चित्र मे अभिव्यक्त

करने की इनकी शक्ति अतुलनीय थी। नहाकर तालाब से निकल-कर आती हुई इस स्त्री का चित्र देखिए—

विहँसति सकुचति भी दिएँ, कुच आँचर विच बाँह।
भीजैं पट तट कौं चली, न्हाइ सरोवर माँह॥

इनके सरस हावों का वर्णन पढ़ते हुए एक चलचित्र सा आँखों के सामने खिंच जाता है, और ऐसा जान पड़ने लगता है मानों उन चेष्टाओं का हमारे सामने अभिनय हो रहा है। अपने कथन की पुष्टि में हम यहाँ पर केवल दो दोहे उदाहरण स्वरूप देते हैं—

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै, भौंहनु हँसै, दैन कहैं नटि जाइ॥
भौंह उँचै आँचरु उलटि, मौरि मोरि मुँह मोरि।
नीठि नीठि भीतर गई, दीठि दीठि सौं जोरि॥

ऐसे ही सजीव चित्रों के कारण इनकी कविता मे हृदय को आकर्षित कर लेने की शक्ति आई है। इस सूझ की स्वाभाविकता देखिए—

कर मुँदरी की आरसी, प्रतिविम्बौ प्यौ पाइ।
पीठि दियैं निधरक लखै, इकटक डीठि लगाइ॥

प्रेम के कारण बुद्धि को जो अभिनव स्फूर्ति प्राप्त हो जाती है उसमें प्रेमी व्यक्ति अपने ऐसी ही प्रेम के विषय को देखने के लिये अनेक युक्तियाँ निकाल लेते हैं। किसी के पाँव में काँटा चुभ जाता है तो किसी का अंचल किसी झाड़ो से उलझ जाता है। परंतु ऐसी नायिकाएँ भी अपने नायकों को क्षण भर ही देख सकती हैं। निधड़क पर्याप्त समय तक प्रिय को देख सकने की युक्ति विहारी की ही नायिकाओं को सूझती है, जिससे न प्रिय से झेपना पड़े और न लोगों का डर रहे। एक और युक्ति का दर्शन कीजिए—

मंजन करि खंजन-नयनि, बैठी ब्यौरति बार।
कच अँगुरिन विच दीठि दै, चितवति नंदकुमार॥

यह स्वाभाविक बात है कि अपने प्रिय के संबंध में सब कोई सभी बातें जानना चाहते हैं। वह कैसी स्थिति में रहता है, क्या करता है, हमें भी कभी याद करता है, यदि याद करता है तो प्रेम से या घृणा से। ये सब बातें हम जानना चाहते हैं और यदि हमें प्रिय के पास से आया हुआ कोई आदमी मिल जाता है तो हम उस पर इन प्रश्नों की झड़ी सी लगा देते हैं और उत्तर पाने पर भी हमारा जी नहीं भरता, बार बार पूछते ही जाते हैं। यही बात नीचे के दोहे में बिहारी की नायिका कर रही है—

फिरि फिरि बूझति कहु कहा, कह्यौ साँवरे गात ?
कहा करत, देखे कहाँ, अली चली क्यौं बात ?

कभी आप की ऐसी दशा हुई है कि हँसने का भी जी करता है और रोने का भी। ऐसी दशा को व्यक्त करना बड़ा कठिन होता है। इस दोहे में ऐसा ही भाव दिखाया है।

बालमु बारैं सौति कै, सुनि पर-नारि बिहार।
भो रसु अनुरसु रिस रली, रीझ खीझ इक बार ॥

बिहारी जो अपने छोटे छोटे दोहों में एक साथ रस की सारी सामग्री भर सके हैं उसका कारण यह है कि उन्होंने व्यंजना का बहुत अधिक आश्रय लिया है। हम यहाँ एक उदाहरण देंगे—

बिथुरयौ जावकु सौति पग, निरखि हँसी गहि गाँसु।
सलज हँसौंहीं लखि, लियौ, आधी हँसी उसाँसु ॥

सौत के पाँवों पर मेंहदी का रंग अच्छा नहीं लगा था, फैला हुआ सा था, जिससे मेंहदी लगानेवाला अनाड़ी मालूम पड़ता था। अपनी सौत से किसे द्वेष नहीं होता। यह देखकर नायिका को भी द्वेषपूर्ण हँसी आई है। उसने समझा, सौत को मेंहदी लगाना भी नहीं आता, वह नायक को क्या वश करेगी। सौत के लिये यह बड़ी लज्जा की बात थी। उसे नायिका के सामने लज्जा से गड़

जाना चाहिए था। पर वह उलटे सलज्ज हँसी हँसती है। इससे नायिका को विदित हो गया कि मेरा अनुमान गलत है। सौत ने अपने हाथ से मेंहदी नहीं लगाई है, नायक ने लगाई है। यह वस्तु-व्यंजना हुई। इससे भी फिर यह भाव व्यंजित हुआ कि नायक का सौत पर अत्यंत प्रेम है। यही समझकर अभी आधी हँस भी नहीं सकी थी कि नायिका विषाद के उच्छ्वास छोड़ने लगी।

इनके अलंकार भी बहुत स्वाभाविक लगते हैं। वे सिर उछाल उछालकर अपना अस्तित्व प्रकट नहीं करते। असंगति एक ऐसा अलंकार है कि जिसमें बहुत गढ़ंत की आवश्यकता होती है—परंतु इनके असंगति भी सुसंगति-पूर्ण होने से गढ़े से नहीं लगते। दो उदाहरण लीजिए—

> दृग उरुझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
> परति गाँठि दुरजन हिए, दई नई यह रीति॥
> दृगनु लगत, बेधत हियहि, बिकल करत अँग आन।
> ए तेरे सब तैं बिषम, ईछन तीछन बान॥

इसमें तो संदेह नहीं कि जहाँ गागर में सागर भरना होता है वहाँ बिना प्रयत्न के काम नहीं चल सकता। बिहारी की कविता भी बहुत परिश्रम से लिखी गई है। परंतु परिश्रम-प्रभव होने पर भी उसमें अस्वाभाविकता नहीं आई है, क्योंकि वास्तव में उनका परिश्रम उनकी काव्यानुभूति का सहायक मात्र है। इसी कारण उनकी कविता में बहुत कम उदाहरण ऐसे मिलते हैं जिनमें केवल चमत्कार हो। भाषा भी वे बहुत साफ और अधिकतर ब्रज की बोलचाल की प्रयोग में लाए हैं, जिसमें कुछ बुंदेलखंडीपन भी आ गया है।

उन्होंने शब्दों के साथ बलात्कार बहुत कम किया है। व्याकरण के नियमों का व्यतिक्रम उनकी रचनाओं में बहुत कम पाया जाता है। कहीं कहीं पर जो उनके शब्द अजनबी से लगते हैं वे इस

कारण कि उनका प्रयोग बहुत कम होता है जैसे बादल के अर्थ में बार्द और साफ के लिये अच्छे। ये शब्द अव्यवहृत अवश्य हैं पर हैं शुद्ध संस्कृत के। जहाँ कहीं इन्हें शब्दों को विकृत भी करना पड़ा है वहाँ पर इन्होंने ऐसा तोड़ मरोड़ नहीं किया है कि शब्द का रूप ही कुछ का कुछ हो जाय और भावाभिव्यक्ति में अड़चन पड़ने लगे। इसके एक दो ही अपवाद मिलते हैं, अधिक नहीं, जैसे स्मर के लिये समर और साँस के लिये संसो। फारसी, अरबी के भी कई शब्दों का इन्होंने प्रयोग किया है जैसे किबिलनुमा, ताफता, सबील, गनी इत्यादि। इनकी वाक्य-रचना बहुत गठी हुई है। उसमें एक भी शब्द भरती का नहीं पाया जा सकता। प्रत्येक शब्द किसी विशेष अभिप्राय से व्यवहृत हुआ है। परंतु इस ठूसाठूसी के कारण दूरान्वय का दोष तो इनकी कविता में पाया ही जाता है, भाव भी कहीं कहीं दुरूह हो गए हैं।

परंतु जहाँ इनमें इतनी विशेषताएँ हैं वहाँ एकाध त्रुटियाँ भी मिलती हैं। ऊपर हम इनकी स्वाभाविकता का उल्लेख कर आए हैं। परंतु ऐसे भी स्थल मिलते हैं जहाँ इन्होंने अपने इस गुण को छोड़ दिया है। और जहाँ पर यह बात हुई है वहाँ पर इन्होंने अस्वाभाविकता की हद कर दी है। इनकी अतिशयोक्तियों मे संभव असंभव का कुछ भी ध्यान नहीं किया गया है—

जिहि निदाघ दुपहर रहै, भई माघ की राति।
तिहिं उसीर की रावटी, खरी आवटी जाति॥
आड़े दै आले वसन, जाड़े हूँ की राति।
साहसु ककै सनेहवस, सखी सबै ढिग जाति॥

इसी प्रकार इन्होंने व्रज में गली गली में कृष्ण-विरह में आँसुओं की नदियाँ बहाई हैं, नायिका के घर के चारों पास से पूर्णिमा को छोड़कर सब तिथियों को निकलवा दिया है और विरह के दीर्घ

श्वासोच्छ्वासों को नायिका के दुर्बल शरीर के लिये हिंडोला बना दिया है।

मतिराम सतसई के रचयिता मतिराम त्रिपाठी हैं। इनका जन्म सं० १६७४ के लगभग हुआ था। ये तिकवाँपुर जिला कानपुर के रहनेवाले थे और बहुत बड़े कवि थे। परंपरा से यह सुना जाता है कि हिंदी के प्रसिद्ध कवि चिंतामणि इनके बड़े भाई थे और भूषण छोटे। तिकवाँपुर से दो तीन कोस पर बिल-ग्राम एक प्रसिद्ध कसबा है। यहाँ के रहनेवाले गुलामअली ने भी अपने ग्रंथ तजकिरा सर्व आजाद हिंद (सं० १८१०) में लिखा है कि चिंतामणि और भूषण इनके भाई थे। गुलामअली के मामा मीर जलील जाजमऊ और बैसवाड़े के दीवान रहिमतुल्ला के मित्र थे। रहिमतुल्ला बड़े गुणग्राही सज्जन थे और चिंतामणि का बड़ा आदर करते थे। अतएव गुलाम अली ऐसी स्थिति में थे कि उनको इस विषय में तथ्य मालूम हो जाता इससे मालूम होता है कि चिंतामणि, मतिराम और भूषण के भाई होने की बात तथ्य है, परंपरागत किंवदंती मात्र नहीं है। कुछ लोग कवि जटाशंकर को भी भाई मानते हैं परंतु इसके कोई प्रमाण नहीं मिलते।

ये बूँदी-नरेश छत्रशाल के पुत्र भावसिंह के आश्रित थे। भाव-सिंह के लिये इन्होंने 'ललित ललाम' की रचना की थी! इनका सबसे उत्कृष्ट ग्रंथ 'रसराज' है जिसको ये इससे पहले बना चुके थे। शिवाजी के पुत्र शंभाजी के दरबार में भी इनका रहना पाया जाता है। कमायूँ के राजा उदोतचंद के पुत्र ज्ञानचंद को इन्होंने 'अलंकार-चंद्रिका' लिखकर समर्पित की। जान पड़ता है कि ये कमायूँ से होकर गढ़वाल भी गए थे। वहाँ की राजधानी श्रीनगर में इन्होंने 'छंदसार पिंगल' ग्रंथ फतेहशाह को समर्पित किया था। कई राज्यों के पुस्तकालयों में उनके अन्य ग्रंथ भी मिलते हैं।

इनसे जान पड़ता है कि वहाँ के राजाओं को उन्होंने ये ग्रंथ समर्पित किए थे।

अपनी सतसई इन्होंने किसी भोगनाथ नामक राजा को समर्पित की थी। भोगनाथ का नाम सतसई में कई बार आता है। ग्रंथ की समाप्ति में इस प्रकार भोगनाथ की शुभ कामना की गई है।

तिरछी चितवनि स्याम की लसति राधिका ओर।
भोगनाथ कौं दीजियै, यह मन-सुख बर जोर॥

मतिराम की रस-प्रसविनी लेखिनी ने कविता की स्वाभाविक धारा को बहाया। उनकी कविताओं में उनके हार्दिक भाव देखने को मिलते हैं। उनकी कविता बिहारी की कविता की भाँति प्रयत्न-प्रसूत नहीं है। यह उनकी तन्मयता का फल है। यद्यपि उनके पद्यों की गठन इतनी चुस्त नहीं है जितनी बिहारी के पद्यों की; पर वह शिथिल भी नहीं है। उनके न भाव कृत्रिम हैं और न भाषा। उनकी सतसई को उनकी संपूर्ण रचना का रस समझना चाहिए। उसके अधिकांश दोहे उनके सर्वश्रेष्ठ ग्रंथों, रसराज और ललित-ललाम, से लिए गए हैं। अतएव उनमें मतिराम-प्रतिभा की संपूर्ण प्रभा चमक उठी है।

लिखति अवनि तल चरन सौं, बिहँसत बिमल कपोल।
अधनिकरे मुख-इंदु तें, अमृत बिंदु से बोल॥

इस एक दोहे में काव्य के न जाने कितने गुण आ गए हैं। इसमें स्पष्ट दो चित्र सामने आते हैं। एक तो तथ्य के लोक से संबंध रखता है और दूसरा कल्पना-जगत् से उसकी सौंदर्य-वृद्धि के लिये उतर आता है। यहाँ पर नायिका किसी ऐसे पुरुष से बातें कर रही है जिससे उसका नया नया स्नेह हुआ है। स्नेह-पात्र नायक के साथ बातें करने में उसे आनंद आ रहा है। इस-लिये उसके कपोल हँसते हुए से मालूम पडते हैं। परंतु साथ ही

उसे बड़ी ब्रीड़ा भी हो रही है। खुलकर बात करते नहीं बनता। ऐसे धीरे धीरे बोलती है मानो उसके वचन आधे ही मुँह से बाहर निकलते हों। जब मनुष्य को झेंप होने लगती है तब वह उसे छिपाने और स्वस्थचित्त होने के लिये कुछ और काम करने लगता है। कोई उँगली से बदन खुरचने लगता है, कोई पाँव के अँगूठे से पृथ्वी। यहाँ पर नायिका भी अपनी झेंप मिटाने के लिये पाँव से पृथ्वी पर कुछ लिख सी रही है। कैसा जीता जागता यथार्थ चित्र है। नायिका के अधनिकसे 'बोल' की पूर्ण अनुभूति कराने के लिये तुलना में अमृत टपकाते हुए चंद्रमा का चित्र सामने लाया गया है। नायिका के वचन न पूरे बाहर ही निकलते हैं न मुँह के अंदर ही रहते हैं, वैसे ही जैसे चंद्रमा से अमृत की बूँद पसीज रही हो परंतु अभी आधी ही बाहर निकल पाई है। इसमें सादृश्य के साथ साथ मुख की शोभा और वाणी की मिठास की कितनी तीव्र अनुभूति होती है। कितनी सुंदर और सार्थक अलंकार योजना है। इसके अतिरिक्त पूरे दोहे से शृंगार रस की जो अत्यंत मधुर व्यंजना निकल रही है उसके विषय में तो कोई कह ही क्या सकता है। इतना होने पर भी क्या दोहे का भाव समझने में कोई देर लगती है? प्रसाद गुण तो इनकी अपनी विशेषता है जो इनकी कविता के माधुर्य को हृदयंगम करने में सहायक होता है।

वेदांत में उपालंभ का आरोप कर विप्रलंभ की सरस व्यंजना का अवलोकन कीजिए—

> बरनत साँच प्रसंग कै, तुम कौं बेद गोपाल।
> हियैं हमारे बसत हौ, पीर न पावत लाल॥

मतिराम की भाषा ब्रज की शुद्ध और साफ बोली है। उन्होंने अपनी कविता में बिहारी की तरह अप्रचलित और विकृत शब्दों का प्रयोग कहीं नहीं किया है। इनके भाव मधुर, भाषा प्रांजल और रचना प्रवाहमयी है।

रसनिधि-सतसई रसनिधि कवि के 'रतन-हजारा' का संक्षिप्त संस्करण है। रसनिधि उपनाम है। इनका वास्तविक नाम पृथ्वीसिंह था। ये दतिया रियासत के अंतर्गत बरौनी इलाके के जागीरदार थे। इनकी जीवनी के विषय में बहुत बातें नहीं मालूम हैं। इनका रचनाकाल संवत् १६६० से संवत् १७१७ तक पाया जाता है। इन दोनों संवतों की इनकी रचनाएँ मिलती हैं। रतन-हजारा के अतिरिक्त इनके विष्णुपद और कीर्तन (स्तुति), कवित्त (प्रेम विषयक), बारहमासी, गीतसंग्रह, स्फुट दोहा, रसनिधिसागर, अरिल्ल, हिंडोले आदि कई ग्रंथ खोज में मिले हैं जो अधिकतर प्रेम से संबंध रखते हैं। ये बड़े प्रेमीजन जान पड़ते हैं। जो प्रेम इनके जीवन में व्याप्त था उसके ये अंध-भक्त थे। इनकी कविता से इनके प्रेम की तन्मयता झलकी पड़ती है। पर इस तन्मयता के साथ साथ इनकी अभिव्यंजना में संयम नहीं है। कहीं कहीं इन्होंने फारसी तबीयतदारी के फेर में पड़-कर, अत्यधिक अश्लीलता में पड़कर, सुरुचि की अवहेलना की है। जिन दोहों में यह बात पाई जाती है वे सतसई में नहीं आने पाए हैं। इनकी कविता की सरसता के कुछ उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं—

रसनिधि जब कबहूँ बहै, वह पुरबइया बाइ।
लगी पुरातन चोट जो, तब उभरति है आइ॥

तौ तुम मेरे पलन तैं, पलक न होते ओट।
व्यापी होती जो तुम्हैं, ओट भए की चोट॥

वह पीतांबर की पवन, जब तक लगै न आइ।
सुमन कली अनुराग की, तब तक क्यों बिगसाइ॥

दरदहि दै जानत लला, सुध लै जानत नाहिं।
कहो बिचारे नेहिया, तुव घाले किन जाहिं॥

जिहि ब्राह्मण पिय गमन कौ, सगुन दियौ ठहराइ।
सजनी ताहि बुलाइ दै, प्रान-दान लै जाइ॥
जो कहिए तो साँच कर, को मानै यह बात।
मन के पग छाले परे, पिय पै आवत जात॥

इन्होंने शृंगार-संबंधी चमत्कारी उक्तियाँ भी खूब कही हैं जिनमें यमक और श्लेष का अधिकतर आश्रय लिया गया है—

जौ कछु उपजत आइ उर, सो वे आँखैं देत।
रसनिधि आँखैं नाम इन, पायौ अरथ समेत॥
स्रवन सुनौ है यह नयौ, नेह नगर मैं भाव।
देत न तहँ मन भावतौ, मन के साटै पाव॥

एक ही भाव को इन्होंने कई बार दुहराया भी है, जिससे उनका रस किरकिरा हो जाता है। पुनरुक्ति वही सह्य हो सकती है जिसमें कुछ नवीनता भी हो। यह शक्ति इनमें नहीं देखी जाती। कहीं कहीं इनकी रचना शिथिल भी होती है। बिहारी के अनुकरण पर तो इन्होंने अपने दोहे प्रायः लिखे ही हैं। उनके भावों और यहाँ तक कि पदावली को भी ज्यों की त्यों ले लिया है परंतु इनके हाथ लगाने से ही उनकी कांति जाती रही है।

इन्होंने आत्म तत्त्व पर भी कुछ कहा है और सूफियों के संसर्ग से वे हिंदू-मुस्लिम ऐक्य के प्रयासी भी हुए हैं—

हिंदू मैं क्या और है, मुसलमान मैं और।
साहब सबका एक है, व्याप रहा सब ठौर॥

राम-सतसई के रचयिता रामसहाय दास हैं जो काशीनरेश महाराजा उदितनारायणसिंह के आश्रित कवि थे। इनके पिता का नाम भवानीदास था। ये चौबेपुर बनारस के रहनेवाले और जाति के अस्थाना कायस्थ थे। ये बड़े भक्तजन थे। लोग इन्हें भगत कहा करते थे। कविता में अपना उपनाम भी इन्होंने भगत

ही रखा था। इनका कविता काल संवत् १८६० से १८८० तक ठहरता है। इनकी सतसई मतिराम ही की भाँति सरस और स्वाभाविक है। उसमें माधुर्य और प्रसाद गुण की प्रचुरता है। पर ये भी सुरुचि का सर्वत्र विचार रख सके हैं, यह नहीं कहा जा सकता। फिर भी इनकी कविता रसवती होती थी, जिसके थोड़े से उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं—

जान कहौ तौ जाइए, कुसल रहौ हे कंत।
हौं बाचिहौं हिमंत सौं, सुख साचिहौं बसंत॥
निज घट उठवाती अरी, मो देती न उठाय।
आन कका के माथ की, साथ न जाउँ लवाय॥

जरा उल्लास का यह कौतुक देखिए—

आज रही गृह काज तजि, अजब तमासे माहिं।
डारि तुला तोली तियै, तुली छमासे नाहिं॥

उल्लास के आधिक्य से मनुष्य को ऐसा जान पड़ने लगता है जैसे वह बिलकुल हलका हो गया हो, जैसे वह आकाश में उड़ रहा है, पृथ्वी पर उसके पाँव ही नहीं पड़ते। ऊपर की अतिशयोक्ति मे इसी बात की व्यंजना है। सबकी भाँति इन्होंने भी अपनी सतसई बिहारी के अनुकरण पर लिखी है।

विक्रम-सतसई के रचयिता महाराज विक्रमसाहि बुंदेलखंड की चरखारी रियासत के राजा थे। इनका राजत्वकाल संवत् १८३९ से १८८६ तक रहा। इनका पूरा नाम विक्रमादित्य था। ये बड़े साहित्यानुरागी और गुणग्राही नरेश थे। इनके यहाँ कवियों का बड़ा सम्मान होता था। चतुर्दिक से कविवृंद यहाँ घिर आते थे। खुमान, भोज, प्रताप, प्रयागदास, विजयबहादुर और बिहारीलाल सदृश गुणी और अच्छे कविगण इनके आश्रय में रहते थे। इनके दरबार में रहनेवाले कवि बिहारीलाल सतसई के रचयिता

प्रसिद्ध कवि विहारीदास से भिन्न थे। वे तिरुवाँपुर के रहनेवाले थे। विक्रमादित्य स्वयं बहुत अच्छे कवि थे और विक्रम साहि के नाम से कविता किया करते थे। सतसई के अतिरिक्त इन्होंने श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध का हरिभक्ति-विलास नाम से हिंदी पद्यानुवाद किया और ब्रजलीला इत्यादि अन्य ग्रंथ भी लिखे। इनकी कविता साधारणतया अच्छी और सरस है। अपनी सतसई को इन्होंने विहारी का आदर्श सामने रखकर बनाया है, परंतु अनुकरण अनुकरण ही है। कला का वह उत्कर्ष इनकी कविता में नहीं पाया जाता जो विहारी और मतिराम की कविता में पाया जाता है। इनमें कोई ऐसी विशेषता नहीं दिखाई देती जो इनकी अपनी कही जाय। फिर भी इनकी कविता में रस की पर्याप्त व्यंजना है। यहाँ पर दो एक उदाहरण दे देना अच्छा होगा—

मिलत अगाऊ विन कहे, यहै दोष इन माहिं।
उर उरझावत हठ नयन, सुरझावत फिर नाहिं॥
मुख मीड़त अनखाति कति, कर कर टेढ़ी भौंह।
होरी में यों होत है, मेरी तेरी सौंह॥
होरी में जोरी करत, भोरी करि ब्रजवाल।
कहूँ तकत घालत कहूँ, भरि भरि मूठ गुलाल॥

खिले हुए कमलों के बीच में बैठी हुई रस कली के अप्रस्फुट नवल लावण्य को देखिए—

गौने आई नवल तिय, बैठी तियन समाज।
आस पास प्रफुलित कमल, बीच कली छवि साज॥

वय-संधि का यह कैसा सुंदर और स्वाभाविक चित्र है—

अरुन उदै लौं तरुनई, अँग अँग झलकी आइ।
छन-छन तिय तन ओस सी मिटत लरिकई जाइ॥

हम ऊपर कह चुके हैं कि बिहारी ने सतसई के दोहों की रचना करते समय अपने सामने गाथा सप्तशती और आर्या-सप्तशती का आदर्श रखा था। बिहारी के पीछे के सतसई-कारों ने बिहारी को अपना आदर्श बनाया। यह दिखलाने के लिये हम शृंगार-सतसई-कारों के कुछ ऐसे पद्य यहाँ दे देना आवश्यक समझते हैं जिनमें भाव-सादृश्य हो। इससे जहाँ यह स्पष्ट हो जायगा कि किसने कहाँ तक किसका अनुकरण किया है, यह अनुमान करने में भी सहायता मिलेगी कि किस कवि का कितना महत्त्व है। 'अनुमान' इसलिये कहते हैं कि हमारे विचार मे किसी कवि को बड़ा और किसी को छोटा मानना साहस का काम है, क्योंकि किसी कवि का वास्तविक महत्त्व उन पद्यों में हो ही नहीं सकता जिन्हें उसने दूसरों की नकल करके बनाया हो। जिस किसी को किसी कवि का महत्त्व देखना हो वह उसे नकल में नहीं, असल मे देखे। भिन्न-भिन्न कवियों के हार्दिक भाव भी टक्कर खा जाते हैं, परंतु उन्हीं के आधार पर फैसला दे देना न्याय-निपुणता नहीं है, क्योंकि बहुत से हार्दिक भाव टक्कर नहीं भी खाते और ऐसे टक्कर न खानेवाले भावों की तुलना करना मानों अपनी हँसी उड़ाना है। यह बात ठीक है कि संसार में कोई बात नई नहीं है। जो इस बात का गर्व करे कि मैं बिलकुल नई और सार्थक बात कह रहा हूँ, वह या तो मूर्ख है या पाखंडी। हाँ, निरर्थक नई बात कदाचित् कही जा सके, परंतु उस दशा में कहनेवाला कवि न होगा, पागल होगा। किंतु यह बात भी उतनी ही ठीक है कि बात पुरानी होकर भी नई हो सकती है। किसी दूसरे ने एक बड़ी अच्छी बात कही है, जो लोगों को पसंद आती है, हमें भी वही बात कहनी चाहिए, नक्काल की यह मानसिक स्थिति होती है। नक्काल दूसरों की पूँजी के आसरे पर अपना व्यापार चलाने की आशा रखता है, जब कि वास्तविक कवि को

अपने ही बल का भरोसा रहता है। वह उसी भाव को व्यक्त करता है जिसकी उसे स्वयं अनुभूति होती है। जिस बात का एक पूर्ववर्ती कवि अनुभव कर चुका है, उसी बात की अनुभूति परवर्ती कवि को भी हो सकती है। यही अनुभूति पुरानी बोतल में नई मदिरा भरती है। परवर्ती कवियों को पूर्ववर्ती कवियों के व्यक्त किए हुए भावों की जब गहरी अनुभूति होती है तब उन पर इस नवीन कवि के व्यक्तित्व की छाप लग जाती है। हम यहाँ पर यही बताने की चेष्टा करेंगे कि यह छाप हमारे कवियों की भाव-सादृश्ययुक्त कविताओं मे कहाँ तक पाई जाती है। इससे आगे बढ़कर कौन बड़ा और कौन छोटा कवि है, इस बखेड़े में हम नहीं पड़ेंगे।

यद्यपि उनकी भाषा की उछल-कूद में समालोचना के महत्त्व की बहुत कुछ हानि हुई है, फिर भी हिंदी-साहित्य के क्षेत्र में तुलनात्मक समालोचना की ओर सबसे पहला प्रबल प्रयत्न पंडित पद्मसिंह शर्म्मा ने किया है। उन्होंने इस बात को भली भाँति सिद्ध कर दिया है कि बिहारी ने अपने बहुत से दोहों के भाव सातवाहन की गाथाओं और गोवर्धनाचार्य की आर्याओं से पाए हैं, परंतु उन्होंने यह भी दिखलाया है कि बिहारी ने उन पर अपनी छाप लगा दी है, केवल नकल नहीं उतारी है। उनकी पुस्तक से इसके एक आध उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं।

गाथा-सप्तशती की एक गाथा है—

अव्वो दुक्करआरअ पुणो वि तंति करेसि गमणस्स।
अज्जवि ण होंति सरला वेणीअ तरंगिणो चिउरा॥ (३। ७३)
[अव्वो दुष्करकारक! पुनरपि चिंता करोषि गमनस्य।
अद्यापि न भवंति सरला वेण्यास्तरंगिणश्चिकुरा:॥]

वाह! क्या अनहोनी बात कहते हो। फिर जाने की सोचने लगे। अरे देखते नहीं गुलझट पड़े हुए बाल तो अभी तक सीधे ही नहीं हो रहे हैं।

इसी भाव को विहारी ने यों प्रकट किया है—

अजौं न आए सहज रँग विरह दूवरे गात।

अव ही कहा चलाइयति ललन चलन की वात ॥

आर्या और दोहा अपने अपने ढंग के दोनों अच्छे हैं। परंतु जिस उद्देश्य को दृष्टि में रखकर यह उक्ति कही जा रही है उसकी पूर्ति की ओर दोहा अधिक अग्रसर है। गाथा को सुनकर विदेश जाने को प्रस्तुत नायक को यही खयाल आयगा कि मैं वहुत जल्दी परदेश चला जा रहा हूँ और दूसरे यह कि मेरे चले जाने पर नायिका अपने वालों के संवंध में कुछ लापरवाह सी रहने लगेगी। उसे थोड़ा सा दुःख तो अवश्य होगा कि उसकी प्रिया के ऐसे सुंदर वालों की ऐसी दुर्दशा होगी, परंतु वह नायक को परदेश जाने से कदाचित ही रोक सके। अधिक संभावना यह है कि 'अच्छा !' कहकर वह चल देगा। किंतु दोहे को सुनकर निर्मम होकर उससे चले जाते नहीं वनेगा, क्योंकि उससे मन पर गहरी ठेस लगती है। गुलझट पड़े वालों की जगह दुवले अंगों की ओर नायक का ध्यान खींचकर विहारी ने नायक को उसके चले जाने से नायिका पर आनेवाली शारीरिक विपत्ति की सूचना दी है, जिसे पाने पर यदि वह सच्चा प्रेमी है तो उसे अपने कार्य पर फिर से वहुत सोच-विचार करने को वाध्य होना ही पड़ेगा। इसी से दोहा गाथा से अधिक प्रभविष्णु है।

अव एक आर्या लोजिए—

भ्रामं भ्रामं स्थितया स्नेहे तव पयसि तत्र तत्रैव।

आवर्तपतितनौकायितमनया विनयमपनीय ॥ ४२२ ॥

नायक के स्नेह-जल में पड़ी हुई नायिका (अपनी सखी की) विनय को न मानकर जलावर्त में पड़ी हुई नौका के समान फिर फिर वहीं घूम जाती है।

बिहारी ने इसी भाव को लेकर यह दोहा कहा है—

फिर फिर चित उतहीं रहतु टुटी लाज की लाव।
अंग अंग छवि झौंर मैं भयो भौंर की नाव॥

आर्या की नायिका में पर्याप्त तल्लीनता नहीं दिखाई देती। नायक के पास उसे ठहरने के लिये कुछ अपनी तरफ से भी जोर लगाना पड़ रहा है। उसके सब अंग उसके हृदय का साथ नहीं दे रहे हैं। उसके कान तो स्पष्ट ही हृदय का कहना नहीं मानते। उसके पास विनय को सुनने का अवसर है तभी तो वह उसे 'अप-नीय' कर सकी है, हटा सकी है। साथ ही उससे निर्लज्जता व्यंजित होती है। ऐसी निर्लज्जता कहीं देखी नहीं। मानो पहले ही से समाज की मर्यादा के बंधन तोड़ बैठी है। सखियाँ अवश्य उस पर कुढ़ती होंगी। परंतु बिहारी की नायिका हमारी सहानुभूति को आकर्षित करती है। वह निर्लज्ज नहीं है, विवश है। अपनी ओर से उसने पूरा प्रयत्न किया कि शिष्टाचार की रक्षा की जाय। परंतु जब लज्जा की रस्सी स्वतः टूट गई तब वह बेचारी क्या करती। उसका कोई अपराध नहीं था, उसकी विवशता का अपराध था जो उसकी तन्मयता का द्योतन करती है। केवल 'विनयमपनीय' और 'टुटी लाज की लाव' ने भेद किया है किंतु भेद है आकाश पाताल का।

जैसे बिहारी ने अपने से पहले के कवियों से भाव लिए हैं, वैसे ही उनसे पीछे के कवियों ने भी उनसे लिए हैं। पर जैसे बिहारी ने दूसरों से लिए हुए भावों पर अपनी छाप लगा दी है वैसे ही उनसे पीछे के कवि बिहारी से लिए गए भावों पर अपनी छाप लगाने को तो लगा गए हैं, पर वे अधिकतर सफल नहीं हुए हैं।

ऐसे उदाहरण बहुत दिए जा सकते हैं जिनमें बिहारी के पद्य औरों के उन्हीं भावों पर बैठाए हुए पद्यों से स्पष्ट ही उत्तम हैं।

भाषा की समास शक्ति और भाव की समाहार शक्ति बिहारी में चरम सीमा को प्राप्त हुई थी, इसी से उनकी कविता का अनुकरण करना कठिन काम था। जिस भाव को उन्होंने एक दोहे में कहा है उसी के लिये अन्य कवियों को कहीं कहीं दो दो दोहे कहने पड़े हैं और उस पर भी वे उसे पूरा नहीं प्रकाशित कर पाए हैं—

(१) दृग अरुझत टूटत कुटुम जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हिऐं दई नई यह रीति॥

बिहारी के इस एक दोहे का भाव प्रकाशित करने के लिये रसनिधि ने निम्नलिखित दो दोहे कहे हैं—

उरझत दृग बँधि जात मन कहो कौन यह रीति।
प्रेम नगर में आइकै देखो बड़ो अनीति॥
अद्भुत गति यह प्रेम की लखौ सनेही आय।
जुरै कहूँ टूटै कहूँ कहूँ गाँठ परि जाय॥

इतना वाग्विस्तार होने पर भी ये दोहे असमर्थ से हैं। दूसरा दोहा तो अपने भाव को स्वयं प्रकाशित कर ही नहीं सकता है। जो बिहारी के दोहे को नहीं जानता उसके लिये वह बुझौवल है।

(२) बर जीते सर मैन के ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनानु तें हरि नीके ये नैन॥

यह दोहा बिहारी का है। इसी भाव को लेकर रामसहाय कहते हैं—

खंजन कंज न सरि लहैं बलि अलि को न बखानि।
एनी की अँखियानि तें ए नीकी अँखियानि॥

उत्तरार्द्ध तो दोनों का एक ही है। हरिनी की जगह एनी रख दिया गया है। इतना भेद अवश्य है कि रामसहाय के दोहे मे दूसरा अँखियानि व्याकरण के अनुसार अशुद्ध है। पूर्वार्द्ध में कुछ भेद है। रामसहाय आँखों को खंजन और कमल से बढ़-

कर बताते हैं। खंजन, कंज और मृग-नयन तीनों एक ही गुण, सुंदरता, के द्योतक हैं। आँखों को तीनों में से एक से भी बढ़ा देना पर्याप्त होता। बिहारी ने यही किया है। और इस प्रकार थोड़े में उसका उपयोग उन्होंने बड़ी अच्छी तरह किया है जिससे उन्होंने रामसहाय से दो बातें अधिक कह डाली हैं। रामसहाय की नायिका की आँखें केवल सुंदर हैं, बिहारी की नायिका की आँखें मार करनेवाली हैं और विशेषता यह कि ये किसी बात में अपना सानी नहीं रखतीं—'ऐसे देखे मैं न'। मैन और मैं न के यमक की दाद देने का अवसर नहीं है।

(३) आँख मिचौनी हो रही है। बिहारी कहते हैं—

दृग मिहचत मृग-लोचनी भर्‌यो, उलटि भुज, बाथ।
जान गई तिय नाथ के हाथ परस हीं हाथ॥

मतिराम ने भी इस दोहे का अनुकरण करने की चेष्टा की है—

खेलत चोरमिहीचिनी परे प्रेम पहिचानि।
जानी प्रगटत परस तैं तिय-लोचन पिय-पानि॥

परंतु नक़ल अधूरी ही रह गई है। बिहारी ने घटना का पूर्ण चित्र अंकित किया है। चित्र गतिवान् है। प्रिय ने पीछे से आकर पत्नी की आँखें मीचीं। स्त्री ने भुजाएँ पीछे की ओर उलटकर उसका आलिंगन किया। क्यों? क्योंकि वह आँखों पर उसका हाथ लगते ही पहिचान गई कि ये पति के हाथ हैं। मतिराम का दोहा इसके सामने कुछ नहीं है। 'परे प्रेम पहिचानि' और 'जानी प्रगटत परस तैं' में शब्दों की कितनी फिजूल खर्ची की गई है। स्पर्श से ही जब पहचानना कहना था तो "परे प्रेम पहिचानि" की भूमिका बाँधने की क्या आवश्यकता थी। क्या उसी से प्रेम की व्यंजना नहीं हो जाती? और 'भर्‌यो, उलटि भुज, बाथ' ने बिहारी के दोहे में जो सजीवता डाल दी है वह मतिराम के दोहे में कहाँ है?

(४) एक उदाहरण विक्रम से भी दे देना ठीक होगा। सखी मुग्धा नायिका की मिष्ट-भाषिता की नायक से प्रशंसा करना चाहती है। बिहारी उससे कहलाते हैं—

छिनकु छबीले लाल वह, जौ लगि नहिं बतराति।
ऊख महूख पियूख की, तौ लगि भूख न जाति॥

नायिका के बोल इतने मीठे होते हैं कि यदि नायक उन्हें सुन ले तो उसे ऊख, मधु और अमृत की इच्छा ही न हो, इनकी इच्छा तभी तक रहती है जब तक वह बोलती नहीं है।

इसी के अनुकरण पर विक्रम कहते हैं—

कह मिश्री कह ऊखरस नहीं पियूष समान।
कलाकंद कतरा अधिक तुअ अधरारस पान॥

विक्रम ने 'बतराति' की जगह अधरारस पान रखा है। अच्छा, कोई बात नहीं। इससे कुछ विशेष अंतर नहीं पड़ता। परंतु जब मिश्री कह दी तब ऊख क्या चीज है और जब पीयूष का नाम ले चुके तब कलाकंद कहने की क्या आवश्यकता? ऊख महूख पियूख के क्रमोत्कर्ष के सामने विक्रम का दुष्क्रमत्व कितना बुरा लगता है। और कतरा हिंदी के लिये इतना अकाव्योपयोगी शब्द है कि उसके रहते कविता को कदाचित् कतराकर चला जाना पड़े। बिहारी की वचन-विदग्धता भी इसमें नहीं है।

(५) फिर देखिए बिहारी ने कहा है—

लिखन बैठि जाकी सबी गहि गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर॥

कुछ यही भाव रसनिधि भी इस दोहे में लाए हैं—

चतुर चितेरे तुव सबी लिखत न हिय ठहराइ।
कलम छुवत कर आँगुरी कटी कटाछन जाइ॥

रामसहाय ने इस दोहे में इस भाव को लिया है—

सगरब गरब खींचैं सदा चतुर चितेरे आय ।
पर वाकी बाँकी अदा नेकु न खींची जाय ॥

तीनों कवियों के चित्रकार चित्र नहीं खींच सके। रामसहाय का चित्रकार तो नायिका की बाँकी अदा के कारण चित्र खींचने में असमर्थ रहा। रूपाकार तो चित्रकार कागज पर बना सकता है। पर वह अदा को कैसे अंकित करेगा। रसनिधि के चित्रकार की तो उँगली ही कट गई है, नायिका के कटाक्ष इतने तेज हैं, फिर चित्र कैसे खींचे। यहाँ पर कहा जा सकता है कि कटाक्ष मर्म को वेधते हैं, हृदय पर प्रभाव डालते हैं। कुछ चाकू तो वे हैं नहीं कि चीर फाड़ के काम आवें। ठीक है जो लोग कटाक्षों से छुरी का काम लेते हैं वे कवित्व के क्षेत्र से बाहर चले जाते हैं।

राधा के दृग खेल में मूँदे नंदकुमार ।
करनि लगी दृग कोर सों भई छेदि उर पार ॥

यहाँ पर मतिराम ने कटाक्षों से हाथ भी छिदवा दिया है जो असंभव के साथ साथ अस्वाभाविक भी है। इसके विरोध में मतिराम के ही इस दोहे की स्वाभाविकता को देखिए जिसमें कटाक्षों की मार काट करने की शक्ति अपनी स्वाभाविक सीमा के अंतर्गत है—

लाल तिहारे नैन सर, अचिरज करत अचूक ।
बिन कंचुक छेदे करैं, छाती छेदि छटूक ॥

पहले बाहर की वस्तु पर छेद होना चाहिए तब उसके नीचे की। यहाँ ऊपर की वस्तु पर आँच भी नहीं आई है और नीचे की वस्तु कटकर छः टुकड़े हो गई है। बात है आश्चर्य की। असंभव को संभव कर दिया है। और वह भी स्वाभाविकता के साथ बिना किसी कष्ट-कल्पना के।

परंतु हमें तो रसनिधि का प्रयोग देखना है—

कलम छुवत कर आँगुरी कटी कटाछन जाइ।

पहली दृष्टि में तो यह प्रयोग अनुचित लग सकता है परंतु विचार करने से मालूम होगा कि यदि अभिधा से काम न लेकर लक्षणा से काम लें तो इसमें कोई अनौचित्य न देख पड़ेगा। कटाक्षों से उँगली कट गई। अभिप्राय यह कि कटाक्षों ने उँगलियों को बेकाम कर दिया। यह उनकी सामर्थ्य के बाहर की बात है कि कटाक्षों को चित्र पर उतार सकें।

रामसहाय के चित्रकार का घमंड नायिका की अदा ने उतार दिया, और रसनिधि की उँगलियाँ उसके कटाक्षों से कट गईं। पर विहारी का चित्रकार क्यों क्रूर हुआ, क्यों मूर्ख बना? विहारी स्वयं मौन हैं। वे इस विषय में कुछ नहीं कहते। क्या अदा से? या कटाक्षों से? या इसलिये कि—

अरुन उदै लौं तरुनई अँग अँग झलकी आइ।
छिन छिन तिय तन औस सी मिटत लरिकई जाइ॥

[लड़कपन के जाने और यौवन के आगम से पल पल में नायिका में परिवर्तन हो रहा है।]

जब तक चित्रकार एक बार चित्र बनाकर फिर नायिका की ओर देखता है तब तक उसका रूप बदल जाता है। परंतु किसी एक कारण से, कदाचित् सभी कारणों से जिनमें से सब का ऊपर उल्लेख नहीं हुआ है, मौन भी रहे तो ऐसा जिससे श्रेय बढ़े।

परंतु इससे यह न समझना चाहिए कि विहारी से पीछे के कवि सदा उनसे पिछड़े ही रहे। कई स्थलों पर निस्संदेह उनमें से कोई कोई विहारी से आगे भी बढ़ गए हैं। प्रमाण प्रस्तुत हैं। (१) विहारी नायिका की एड़ी की लाली पर अतिशयोक्ति करते हुए कहते हैं—

पाइ महावरु दैन को नाइनि बैठी आइ।
फिरि फिरि जानि महावरी एड़ी मीड़ति जाइ॥

रामसहाय ने भी यही बात कही है, यद्यपि केवल एड़ी के लिये नहीं—

छैल छबीली की छटा लहि महावरी संग ।
जानि परै नाइन लगै जबहिं निचोरन रंग ॥

और विक्रमसाहि ने भी—

सहज अरुन एड़ीनि की लाली लखै विसेखि ।
जावक दीबै जकि रही नाइन पाइन पेखि ॥

विक्रमसाहि ने ऐसा ही कुछ पाँव की उँगलियों के विषय में भी कहा है—

पाइन लखि लाली ललित नाइन अति सकुचात ।
चितै चितै मृदु आँगुरिन फिरि फिरि मीड़त जात ॥

बिहारी की नाइन को नायिका की एड़ी मे और महावर की गोली में कोई भेद नहीं दिखाई देता, वह एड़ी को महावर की गोली समझ-कर उसे मीड़ती जाती है, निस्संदेह बहुत भद्दी एड़ी है ! या नाइन अपने काम से अनभिज्ञ है । रामसहाय की नाइन को भी कुछ देर तक यह भ्रम रहता है किंतु वह अपना काम जानती है । अधिक रंग निकालने की इच्छा से वह एँड़ी या उँगली को निचोड़ने लगती है । जब रंग नहीं निकलता है, तब भेद खुलता है । जहाँ उँग-लियों की लाली के संबंध में विक्रमसाहि ने बिहारी की नकल की है वहां पर वे भी उसी भ्रम में पड़े हैं । इतना अवश्य है कि उनकी नाइन को डर है कि कहीं महावर और उँगली में भेद न जान पड़ने से नायिका की उँगली न मीड़ी जाय । इतनी होशियारी पर भी वह करती वही है जिससे बचना चाहती है । स्मरण रखना चाहिए कि यहां भ्रमालंकार न होकर वास्तविक भ्रम है । चमत्कार भ्रम का नहीं है, अतिशयोक्ति का है । बात का बतंगड़ जहाँ पर बनाया जाता है, वहाँ पर गुल गपाड़ा भी हो सकता है, पर रस नहीं आ सकता ।

किंतु पहले दोहे में जहाँ विक्रम ने बिहारी से केवल संकेत लिया है वहाँ उनके दोहे में बड़ी सरस स्वाभाविकता आ गई है।

सहज अरुन एड़ीनि की लाली लखै बिसेखि।
जावक दीवै जकि रही नाइन पाइन पेखि॥

नाइन ने अभी एँड़ियों पर महावर नहीं लगाई है। परंतु नायिका की एँड़ियों की स्वाभाविक लाली से नाइन को भान होता है कि मानो उनपर महावर लग चुकी है। इसी से वह कुछ सहमी सी सोच रही है कि महावर लगाऊँ या न लगाऊँ।

(२) नायक परदेश जाना चाहता है, उसे रोकने के लिये बिहारी की नायिका ने एक युक्ति सोची है—

पूस मास सुनि सखिनु पैं साईं चलत सवारु।
गहि कर बीन प्रवीन तिय राग्यौ राग मलारु॥

यही भाव विक्रम ने लिया है—

माँगी बिदा बिदेस कौ दै जराइ अनमोल।
बोली बोल न सुघर तिय किय अलाप हिंडोल॥

मतिराम भी कुछ ऐसा ही कहते हैं—

प्राननाथ परदेस कौं चलियै समै बिचारि।
स्याम नैन घन बाल के बरसन लागे बारि॥

बिहारी की नायिका जानती है कि यदि बरसात आरंभ हो जाय तो नायक को भी विरह की वेदना का शीघ्र अनुभव होने लगेगा और वह विदेश न जायगा। इसी लिये वह मलार राग गाती है। लोगों का विश्वास है कि मलार राग गाने से पानी बरसने लगता है। विक्रम की नायिका मलार की जगह हिंडोल गाती है। यह राग वसंत में गाया जाता है। प्रवीण गानेवाला हो तो, कहते हैं, हिंडोल गाने से वसंत ऋतु का आभास बिना ऋतु के भी मिल जाता है। यहाँ भी वही प्रभाव उद्दिष्ट है। बात एक ही है। दोनों नायिकाएँ

बड़ी प्रवीण जान पड़ती हैं। दोनों की प्रत्युत्पन्न मति है। परंतु इतने पर भी क्या हुआ ? कौन जानता है कि मलार गाने से बरसात और हिंडोल गाने से वसंत ऋतु हो ही जायगी। यह विश्वास भर है। हम समझते हैं कि दोनों को अंत में हताश होना पड़ा होगा। परंतु मतिराम की नायिका के साथ वह बात नहीं है। क्योंकि उसने तो साक्षात् बरसात की झड़ी लगा दी—

स्याम नैन घन बाल के बरसन लागे बारि।

मलार और हिंडोल गाकर क्रमशः बरसात और वसंत लाने के कृत्रिम प्रयत्नों के विरोध में आँखों से बरसती हुई यह झड़ी कितनी स्वाभाविक है! उसके पीछे कितनी द्रवणशीलता छिपी है। इसी से उसमें द्रावकता भी है।

(३) पहुँचति डटि रन-सुभट लौं रोकि सकैं सब नाहिं।
लाखनहूँ की भीर मैं आँखि उहीं चलि जाहिं॥

यह दोहा बिहारी का है। इसी की टक्कर पर रामसहाय ने लिखा है—

धीर अभय भट भेदि कै भूरि भरी हू भीर।
झमकि जुरहि दृग दुहुँनि के नेकु मुरहिं नहिं बीर॥

बिहारी ने नायिका की आँखों को सुभट माना है। उनका सुभटत्व इसी में है कि उन्हें नायक की ओर जाने से कोई नहीं रोक सकता, वे वहाँ चली ही जाती हैं। वहाँ जाकर भी कुछ सुभटत्व करती हैं या नहीं, बिहारी नहीं जानते। 'पहुँचति डटि रन सुभट लौं' के अनंतर 'उहीं चलि जाहिं' बहुत शिथिल लगता है। रामसहाय ने नायक-नायिका दोनों की आँखों को 'धीर अभय भट' बनाया है और उनके अभय भटत्व का पूरा निर्वाह किया है। 'भूरि भरी हू भीर' को बेधकर वे आपस में जुट जाती हैं—खूब मार करती हैं। फिर 'रोकि सकैं सब नाहिं' यह बड़ा असमर्थ

वाक्य है। बिहारी कहना चाहते हैं कि सब मिलकर भी नहीं रोक सकते, अर्थात् कोई नहीं रोक सकता परंतु वस्तुत: उसका अर्थ हो गया है—'सब नहीं' रोक सकते। कोई ही कोई रोक सकते हैं। इसके विरोध में 'नेकु मुरहि नहिं बीर' कितना जोरदार वाक्य है।

(४) कहा भयौ जो बीछुरे मो मन तो मन साथ।
उड़ो जाउ कितहूँ तऊ गुड़ी उड़ाइक हाथ॥

बिहारी के इस दोहे को देखकर रसनिधि को क्या अच्छी सूझी है—

उड़ी गुड़ो लौं मन फिरै डोर लाल के हाथ।
नैन तमासे को रहे लगे निरंतर साथ॥

बिहारी के दोहे का भाव रसनिधि के दोहे के पूर्वार्ध में आ गया है और उत्तरार्ध में एक अनूठी उक्ति ने चमत्कार को और भी बढ़ा दिया है। नायिका का मन उड़ा हुआ है। वह पतंग हो रही है जिसकी डोर नायक के हाथ में है। मन को तो नायक उड़ा रहा है, पर तुम्हारी आँखों को क्या हो गया, वे क्यों वहीं चली जाती हैं जहाँ तुम्हारा मन उड़कर जाता है। जब गुड़ी उड़ाई जा रही है तो आँखें क्या तमाशा न देखेंगी। आँखें तटस्थ नहीं रह सकतीं, जब से गुड़ी का उड़ना आरंभ हुआ है तब से उसको देखते रहना उनकी टेव हो गई है।

हमने ये उदाहरण इस उद्देश्य से नहीं दिए हैं कि शृंगारी कवियों में बिहारी को जो उच्च स्थान प्राप्त है उससे वे गिराए जायँ। परंतु हमारा तात्पर्य यह दिखलाने का है कि और कवि भी बिल्कुल बेकाम नहीं हैं। बिहारी बड़े हैं सही, लेकिन छोटे कवियों का भी अपना मूल्य है। साथ ही जैसा हम ऊपर स्पष्ट कर आए हैं, यह भी हमारा उद्देश्य है कि लोग यह जान जायँ कि दो कवियों के कुछ चुने हुए पद्यों को लेकर तुलना करने से चटपट किसी परिणाम

पर पहुँच जाना कितना भयावह है। ऐसे उदाहरण कम नहीं हैं जिनमें विशेषकर मतिराम और उनके बाद विक्रम बिहारी की बराबरी करने में समर्थ होते हैं, और कहीं कहीं तो वे उनसे बढ़ भी जाते हैं। रसनिधि और रामसहाय में भी ऐसे पद्य मिलते हैं परंतु बहुत कम। बिहारी के अनुकरण पर बहुत अच्छी कविता न लिख सकने के कारण हम किसी कवि के विषय में सामान्य मत नहीं स्थापित कर सकते। उन पद्यों के आधार पर जो मत निर्धारित होगा वह उन्हीं के संबंध में ठीक हो सकता है, वह सामान्य नियम के रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता।

फिर भी तुलना के लिये प्रस्तुत कवियों की समस्त रचनाओं को पढ़कर उनके संबंध में मन पर जो कोई सामान्य प्रभाव पड़ते हैं उनके आधार पर उनका थोड़ा बहुत आपेक्षिक महत्त्व अवश्य स्थिर किया जा सकता है। जैसे हम कह सकते हैं कि बिहारी के ऐसी भाषा की चुस्ती प्रस्तुत कवियों में से किसी में नहीं मिलती। परंतु जहाँ उनमें भाषा की चुस्ती है वहाँ ही कई स्थानों पर अभिव्यक्ति की कृत्रिमता और दूरान्वय आदि दोष भी आ गए हैं। मतिराम में भाषा की वैसी समास-शक्ति के वैसे दर्शन नहीं होते जैसे बिहारी में होते हैं, परंतु साथ ही उनकी भाषा शिथिल भी नहीं है। उसके साथ शैली और भाव की अकृत्रिमता के योग से उनकी रचनाएँ और भी चमक उठती हैं। हाव-विभावों और चेष्टाओं की जैसी सुंदर और सजीव योजना बिहारी में मिलती है वैसी और कवियों में नहीं देख पड़ती। यदि इस विषय में कोई बिहारी के निकट पहुँच सका है तो वह मतिराम ही हैं। विक्रम की रचनाओं में भी स्वाभाविकता का माधुर्य पर्याप्त है परंतु वे प्रत्यक्षवाद के इतने पक्षपाती मालूम होते हैं कि व्यंजना का उनके यहाँ कोई मूल्य ही नहीं माना जाता। जिस बात को और कवि केवल व्यंजित करते हैं उसे वे प्रत्यक्ष या नग्न रूप में कहकर

कभी कभी बहुत अश्लील हो जाते हैं। रसनिधि और रामसहाय भी समय समय पर जब अपने वास्तविक रूप में प्रत्यक्ष होते हैं तब उनके पद्य कविता की उच्च भूमि में पहुँच जाते हैं परंतु बहुधा उन्होंने बिना गहन अनुभूति के औरों के ही भावों को प्रदर्शित करने में अपना बल लगाया है, जिससे उनमें स्थान स्थान पर भावों और भाषा दोनों की शिथिलता आ गई है। परंतु जैसा हम कह चुके हैं, जहाँ तहाँ उनकी प्रतिभा वास्तविक काव्य के रूप में जगमगा उठी है।
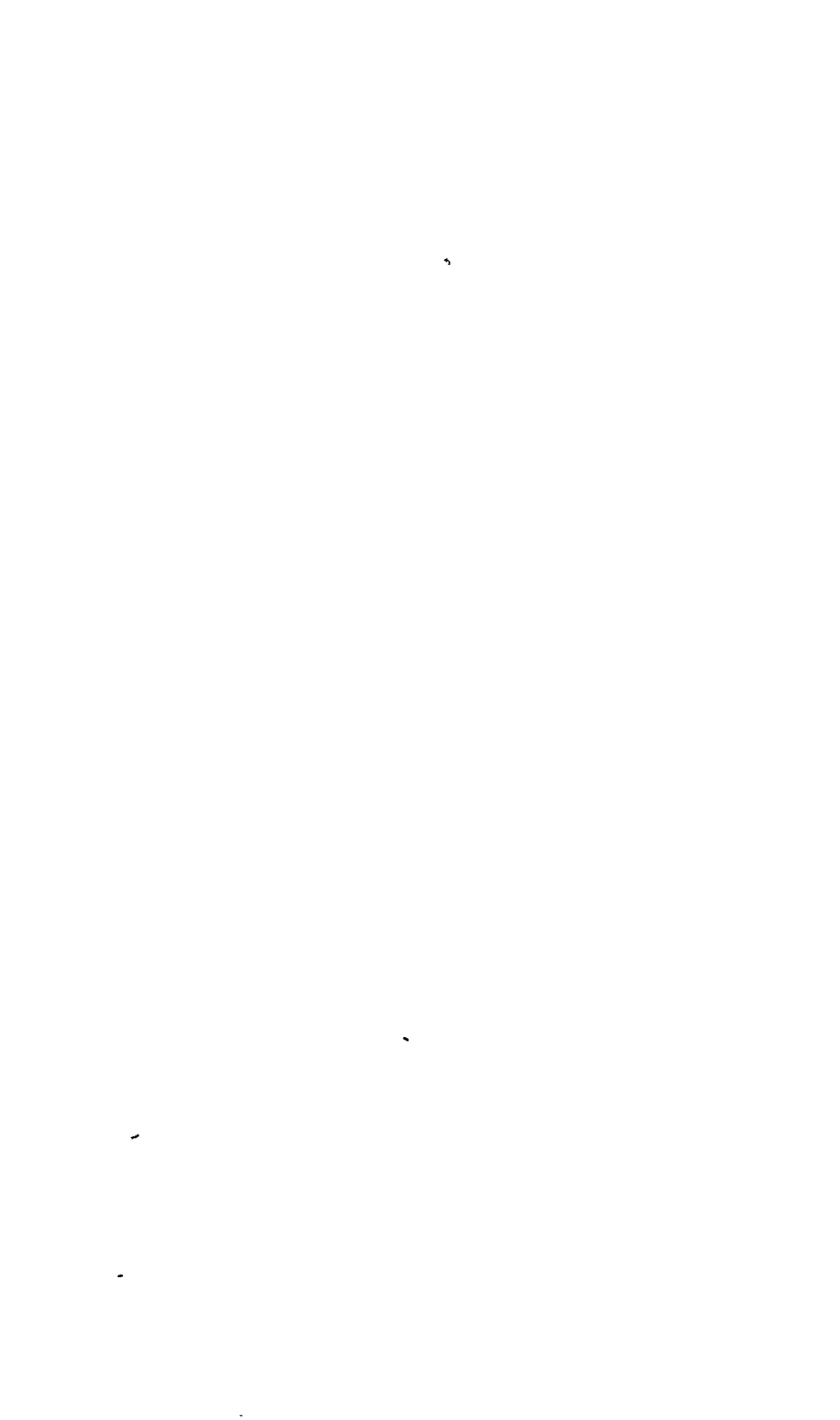
अशुद्धि-पत्र

पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२४	मोह	मोर
९	ंस	हंस
१९	कह तव	कहतव
१७	गा ँ	गाढ़ैं
८	सैनन	सैन न
१४	ँक	नैंक
२३	दियो	हियो
८	देह रहचटौ	नेह रहचटौ
२३	बिकल	बिकच
१४	मदर से	मदरसे
२१	बसनिका	बरुनिका
१४	ँसिकै	हँसिकै
३	तू सतुराई	तूस तुराई
१०	चोट न	चोटन
२५	काया	का या
६	गरबाहीं	गर बाहीं
४	के दार	केदार
६	मैन	मैं न
१०	पीक हवह	पी कह वह
४	कुकुद	कुमुद
२६	त ँ	तहँ
६	न ओढ	नवोढ़
२	उतरत	उत रत
९	रज के	रजनी

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
३००	१८	जग	जन
३०५	२६	मन	मग
३१७	१२	उसारे	उखारे
३४८	२	सपनि	सवति
३५२	१२	राजत'''वनी	राजति रवन वह रवनी
३५३	१३	लूं	तूं
३५५	६	चचतौ	चलतौ
,,	१०	अरवस	अर-वस
३६२	१६	मूंदव	मूंदै
,,	२०	खूदै	कूंदै
३६३	,,	अरोरैं	मरोरैं
३७५	८	जाती	जानी
३७६	३	देखिस चिह्न	देखि स-चिह्न
,,	,,	वाधिमान	बाँधि मान
३७६	२६	मद	मम
,,	,,	गड्डवा-...भेरि	गड्डु बागड़ तन बेरि
३७७	१२	नूह	नेह
३७८	३	वंशीवट	वंसी वट
,,	१६	गरभ	गरम
,,	२६	गावर	आगर
३८०	२	हरदफ	हरदव
,,	,,	हरदफ	अरदव
३६१	१	नारद	भा रद

(१) तुलसी-सतसई

प्रथम सर्ग

नमो नमो श्रीराम प्रभु परमातम परधाम।
जेहि सुमिरे सिध होत है तुलसी जन-मन-काम ॥ १ ॥
राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय तुलसी सुर-तरु तोर ॥ २ ॥
परम पुरुख पर-धाम बर जापर अपर न आन।
तुलसी सो समुझत सुनत राम सोई निरबान ॥ ३ ॥
सकल सुखद गुन जासु सो राम कामना-हीन।
सकल-काम-प्रद सरब-हित तुलसी कहहिँ प्रवीन ॥ ४ ॥
जाके रोम रोम प्रति अमित अमित ब्रह्मंड।
सो देखत तुलसी प्रगट अमल सु-अचल प्रचंड ॥ ५ ॥
जगत-जननि श्री जानकी जनक राम सुभ-रूप।
जासु कृपा अति अघ-हरनि करनि बिबेक अनूप ॥ ६ ॥
तात मातु पर जासु के तासु न लेस कलेस।
ते तुलसी तजि जात किमि निज घरतर पर-देस ॥ ७ ॥
पिता बिबेक-निधान बर मातु दया-जुत नेह।
तासु सुअन किमु पाइहैं अनत अटन तजि गेह ॥ ८ ॥
बुद्धि-बिनय-गति-हीन सिसु सुपथ कुपथ गत-ग्यान।
जननि जनक तेहि किमि तजहिँ तुलसी सरिस अजान ॥ ९ ॥
मात तात सिय राम रुख बुद्धि बिबेक प्रमान।
हरत अखिल अघ तरुन-तर तब तुलसी कछु जान ॥ १० ॥

जिनतें उदभव वर विभव ब्रह्मादिक संसार।
सुगति तासु तिनकी कृपा तुलसी वदहि विचार ॥ ११ ॥
ससि रवि सीता राम नभ तुलसी उरसि प्रमान।
उदित सदा अथवत न सो कुतसित तम कर हान ॥ १२ ॥
तुलसी कहत विचारि गुरु राम सरिस नहिँ आन।
जासु कृपा सुचि होत रुचि बिसद विवेक असान ॥ १३ ॥
राम सरूप अनूप जल हरत सकल मल-मूल।
तुलसी मम हिय जो लगहि उपजत सुख अनुकूल ॥ १४ ॥
रेफ रमित परमातमा सह अकार सिय रूप।
दीरघ मिलि विधि जीव इव तुलसी अमल अनूप ॥ १५ ॥
अनुस्वार कारन जगत ओंकार करन अकार।
मिलित अकार मकार मैं तुलसी हर-दातार ॥ १६ ॥
ग्यान विराग रु भगति सह मूरति तुलसी पेखि।
बरनत गति मति अनुहरत महिमा बिसद बिसेखि ॥ १७ ॥
नाम मनोहर जानि जिय तुलसी करि परिमान।
बरन-बिपरजय भेद तें कहौं सकल सुभ ग्यान ॥ १८ ॥
तुलसी सुभ-कारन समुझि गहत राम रस नाम।
असुभ-हरन सुचि सुभ-करन भगति-ग्यान-गुन-ग्राम ॥ १९ ॥
तुलसी राम समान वर सपनेहुँ अपर न आन।
तासु भजन-रति-हीन अति चाहसि गति परमान ॥ २० ॥
अहि-रसना थन-धेनु रस गनपति-द्विज गुरु वार।
माधव सित सिय-जनम-तिथि सतसैया अवतार ॥ २१ ॥
भरन हरन अति अमित विधि तत्त्व-अरथ कवि-रीति।
सांकेतिक सिद्धांत-मत तुलसी वदत विनीति ॥ २२ ॥
बिमल बोध कारन सु-मति सतसैया सुख-धाम।
गुरु-मुख पढ़ि गति पाइहैं बिरति भगति अभिराम ॥ २३ ॥

म-न-भ-य-ज-र-स-त-लाग जुत प्रगट छंद जत होय।
सो घटना सुखदा सदा कहत सु-कवि सब कोय ॥ २४ ॥
जन समान तत जान लघु अपर वेद गुरु मान।
संजोगादि विकल्प पुनि पदन अंत कहु जान ॥ २५ ॥
दीरघ लघु करि तहँ पढ़ब जहँ मुख लह बिसराम।
प्राकृति प्रगट प्रभाव यह जनित बुधाऽबुध -वाम ॥ २६ ॥
दुइ गुरु सीता सार गन राग सो गुरु लघु होइ।
लघु गुरु रमा प्रतच्छ गन जुग लघु हर गन सोइ ॥ २७ ॥
सहस नाम मुनि-भनित सुनि तुलसी-बल्लभ नाम।
सकुचत हिय हँसि निरखि सिय धरम-धुरंधर राम ॥ २८ ॥
दंपति रस रसना दसन परिजन वदन सु-गेह।
तुलसी हर-हित बरन सिसु संपति सहज सनेह ॥ २९ ॥
हिय निरगुन नयनन्हि सगुन रसना राम सुनाम।
मनहुँ पुरट-संपुट लसत तुलसी ललित ललाम ॥ ३० ॥
प्रभु-गुन-गन भूखन बसन वचन बिसेखि सुदेस।
राम-सु-कीरति कामिनी तुलसी करतब केस ॥ ३१ ॥
रघुबर-कीरति तिय-बदन क्यों कह तुलसी-दासु।
सरद प्रकास अकास छबि चारु चिबुक तिल जासु ॥ ३२ ॥
तुलसी सोहत नखत-गन सरद सुधाकर साथ।
मुकुता झालर झलक जनु राम सु-जस - सिसु-हाथ ॥ ३३ ॥
आतम बोध विवेक विनु राम भजत अलसात।
लोक सहित परलोक की अवसि विनासी बात ॥ ३४ ॥
बरु मराल मानस तजै चंद सीत रवि घाम।
मोह मदादिक कै तजै तुलसी तजै न राम ॥ ३५ ॥
आसन दृढ़ आहार दृढ़ सुमति ग्यान दृढ़ होय।
तुलसी बिना उपासना बिनु दुलहे की जोय ॥ ३६ ॥

राम-चरन-अवलंब बिनु परमारथ की आस।
चाहत बारिद-बुंद गहि तुलसी चढ़न अकास॥ ३७॥
राम नाम तरु-मूल रस आठ पात फल एक।
जुग लसंत सुभ चारि जग बरनत निगम अनेक॥ ३८॥
राम-काम-तरु परिहरत सेवत कलि-तरु ठूठ।
स्वारथ परमारथ चहत सकल मनोरथ झूठ॥ ३९॥
तुलसी केवल काम-तरु रामचरित आराम।
निसिचर कलि-कर निहत तरु मोहि कहत बिधि बाम॥ ४०॥
स्वारथ परमारथ सकल सुलभ एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता उचित न तुलसी तोर॥ ४१॥
हित सन हित रति राम सन रिपु सन वैर बिहाय।
उदासीन संसार मन तुलसी सहज सुभाय॥ ४२॥
तिल पर राखेउ सकल जग बिदित बिलोकत लोग।
तुलसी महिमा राम की को जग जानन जोग॥ ४३॥
जहाँ राम तहँ काम नहिँ जहाँ काम नहिँ राम।
तुलसी कबहूं होत नहिँ रवि रजनी एक ठाम॥ ४४॥
राम दूरि माया प्रबल घटत जानि मन मांह।
बढ़त भूरि रवि दूरि लखि सिर पर पग-तर छांह॥ ४५॥
संपति सकल जगत्र की स्वासा सम नहिँ होइ।
सो स्वासा तजि राम-पद तुलसी अलग न खोइ॥ ४६॥
तुलसी सी अति चतुरता राम-चरन लवलीन।
पर-मन पर-धन हरन को गनिका परम प्रवीन॥ ४७॥
चतुराई चूल्हे परे जम गहि ग्यानहिँ खाय।
तुलसी प्रेम न राम-पद सब जर मूल नसाय॥ ४८॥
प्रेम सरीर प्रपंच रुज उपजी अधिक उपाधि।
तुलसी भली सो बैदई बेगि बांधई ब्याधि॥ ४९॥

राम बिटप तरु बिसद बर महिमा अगम अपार।
जा कहँ जहँ लगि पहुँच है ता कहँ तहँ लगि डार॥ ५०॥
तुलसी कोसल-राज भजु जनि चितवै केहुँ ओर।
पूरन राम मयंक मुख करु निज नयन चकोर॥ ५१॥
ऊंचे नीचे कहुँ मिलै हरि-पद परम पियूख।
तुलसी काम मयूख तें लागै कवनिहुँ रूख॥ ५२॥
स्वामी होनो सहज है दुरलभ होनो दास।
गाडर लाए ऊन को लाग्यो चरन कपास॥ ५३॥
चलब नीति-मग राम-पग प्रेम निबाहब नीक।
तुलसी पहिरिय सो बसन जो न पखारत फीक॥ ५४॥
तुलसी राम कृपालु तें कहि सुनाउ गुन दोस।
होय दूबरी दीनता परम पीन संतोस॥ ५५॥
सुमिरन सेवन राम-पद राम-चरन पहिचानि।
ऐसेहु लाभ न ललक मन तौ तुलसी हित-हानि॥ ५६॥
सब संगी बाधक भए साधक भए न कोय।
तुलसी राम कृपालु तें भली होय सो होय॥ ५७॥
तुलसी मिटइ न कलपना गए कलप-तरु छांह।
जौं लगि द्रवइ न करि कृपा जनक-सुता को नाह॥ ५८॥
बिलग बिलग सुख निकट दुख जनम मरन सोइ रीति।
रहियत राखे राम के तजे ते उचित अनीति॥ ५९॥
जाय कहब करतूति बिनु जाय जोग बिनु छेम।
तुलसी जाय उपाय सब बिना राम-पद-प्रेम॥ ६०॥
तुलसी रामहिं परिहरैं निपट हानि सुनु मोद।
जिमि सुरसरि गत सलिल बर सुरा सरिस गंगोद॥ ६१॥
हरे चरहिँ तापहिँ बरे फरे पसारहिँ हाथ।
तुलसी स्वारथ-मीत जग परमारथ रघुनाथ॥ ६२॥

तुलसी खोटे दाम कर रघुपति राखत मान।
ज्यों मूरख उपरोहितहिं देत दान जजमान ॥ ६३ ॥
ज्यों जग बैरी मीन को आपु सहित परिवार।
त्यों तुलसी रघुनाथ बिन आपनि दसा विचार ॥ ६४ ॥
तुलसी राम भरोस सिर लिए पाप धरि मोट।
ज्यो व्यभिचारिनि नारि कहँ बड़ो खसम की ओट ॥ ६५ ॥
स्वामी सीतानाथ जी तुम लगि मेरी दौर।
तुलसी काग जहाज कहँ सूझत और न ठौर ॥ ६६ ॥
तुलसी सब छल छाड़ि कै कीजै राम सनेह।
अंतर पति सों है कहा जिन देखी सब देह ॥ ६७ ॥
सबही को परखे लखे बहुत कहे का होइ।
तुलसी तेरो राम तजि हित जग और न कोइ ॥ ६८ ॥
तुलसी हम सो राम सों भलो मिलो है सूत।
छोड़े बनइ न संग्रहे ज्यों घर माहँ कपूत ॥ ६९ ॥
कोटि विघन संकट विकट कोटि सत्रु जौं साथ।
तुलसी बल नहिं करि सकैं जौ सुदिष्ट रघुनाथ ॥ ७० ॥
लगन मुहूरत जोग बल तुलसी गनत न काहि।
राम भए जेहि दाहिने सबै दाहिने ताहि ॥ ७१ ॥
प्रभु प्रभुता जा कहँ दई बोल सहित गहि बांह।
तुलसी ते गाजत फिरहिं राम-छत्र की छांह ॥ ७२ ॥
साधन सांसति सब सहत सुमन सुखद फल लाहु।
तुलसी चातक जलद की रीझ बूझ बुध काहु ॥ ७३ ॥
चातक जीवन जलद कहँ जानत समय सुरीति।
लखत लखत लखि परत है तुलसी प्रेम-प्रतीति ॥ ७४ ॥
जीव चराचर जहँ लगं है सब को प्रिय मेह।
तुलसी चातक मन बसेउ घन सों सहज सनेह ॥ ७५ ॥

डोलत बिपुल बिहंग बन पियत पोखरिन बारि।
सु-जस धवल चातक नवल तोर भुवन दस-चारि॥ ७६॥
मुख मीठे मानस मलिन कोकिल मोर चकोर।
सु-जस सलिल चातक बलित रहेउ भुवन भरि तोर॥ ७७॥
मांगत डोलत है नहीं तजि घर अनत न जात।
तुलसी चातक भगत की उपमा देत लजात॥ ७८॥
तुलसी तीनों लोक महँ चातकही को माथ।
सुनियत जासु न दीनता किए दूसरो नाथ॥ ७९॥
प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि।
जाचक जगत अधीन इन किए कनौड़ो दानि॥ ८०॥
ऊंची जाति पपीहरा पियत न नीचो नीर।
कै जांचै घनस्याम सों कै दुख सहै सरीर॥ ८१॥
कै बरसै घन समय सिर कै भरि जनम निरास।
तुलसी जाचक चातकहि तऊ तिहारी आस॥ ८२॥
चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोख।
याते' प्रेम पयोधि बर तुलसी जोग न रोख॥ ८३॥
तुलसी चातक मांगनो एक एक घन दानि।
देत सो भू-भाजन भरत लेत घूंट भरि पानि॥ ८४॥
ह्वै अधीन जांचै नहीं सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी मांगनहिं को बारिद बिनु देइ॥ ८५॥
पवि पाहन दामिनि गरज झरि झकोर खर खीझ।
दोस न प्रीतम रोस लखि तुलसी रागहिं रीझ॥ ८६॥
को न जिआए जगत महँ जीवन-दायक पानि।
भयो कनौड़ो चातकहि पयद प्रेम पहिचानि॥ ८७॥
मान राखिवो मांगिबो पिय सों सहज सनेहु।
तुलसी तीनों तब फबै जब चातक मत लेहु॥ ८८॥

तुलसी चातक ही फबै मान राखिबो प्रेम।
वक्र बूंद लखि स्वाति को निदरि निबाहै नेम ॥ ८९ ॥
उपल बरखि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक जलद तजि कबहुँ आन की ओर ॥ ९० ॥
बरखि परुख पाहन जलद पच्छ करै टुक टूक।
तुलसी तदपि न चाहिए चतुर चातकहिं चूक ॥ ९१ ॥
रटत रटत रसना लटी तृखा सूखि गे अंग।
तुलसी चातक के हिए नित नूतनहि तरंग ॥ ९२ ॥
गंगा जमुना सुरसती सात सिंधु भरि पूरि।
तुलसी चातक के मते बिना स्वाति सब धूरि ॥ ९३ ॥
तुलसी चातक के मते स्वातिहुँ पियत न पानि।
प्रेम-तृखा बाढ़ति भली घटे घटेगी कानि ॥ ९४ ॥
सर सरिता चातक तजेउ स्वातिहु सुधि नहिं लेइ।
तुलसी सेवक बस कहा जो साहिब नहिं देइ ॥ ९५ ॥
ग्रास पपीहा पयद को सुनि हो तुलसीदास।
जो अँचवै जल स्वाति को परिहरि बारह मास ॥ ९६ ॥
चातक घन तजि दूसरो जिअत न नाई नारि।
मरत न मांगै अरध-जल सुरसरिहू को वारि ॥ ९७ ॥
ब्याधा बधेउ पपीहरा परेउ गंग-जल जाइ।
चोंच मूंदि पीवे नहीं धिग पीवन पन जाइ ॥ ९८ ॥
बधिक बधे परि पुन्य जल उपर उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम-पट मरत न लायी खोंच ॥ ९९ ॥
चातक सुतहि सिखाव नित आन नीर जनि लेहु।
यह हमरे कुल को धरम एक स्वाति सों नेहु ॥१००॥
दरस परस नहिं आन जल बिनु स्वाती सुनु तात।
सुनत चेचुआ चित चुभेउ समुझि नीति वर बात ॥१०१॥

तुलसी चातक देत सिख सुतहि बार ही बार।
तात न तरपन कीजियो बिना बारि-धर-धार ॥१०२॥
चरग चंगु-गत चातकहिं नेम प्रेम की पीर।
तुलसी पर-बस हाड़ पर परिहैं पुहुमी-नीर ॥१०३॥
अंड फोरि किय चेटुआ तुख पर-नीर निहारि।
गहि चंगुल चातक चतुर डारेउ बाहर बारि ॥१०४॥
होत न चातक पातकी जीवन-दानि न मूढ़।
तुलसी गति प्रह्लाद की समुझि प्रेम-पथ गूढ़ ॥१०५॥
तुलसी के मत चातकहिं केवल प्रेम - पियास।
पियत स्वाति जल जान जग जांचत बारह मास ॥१०६॥
एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
स्वाति सलिल रघुनाथ बर चातक तुलसीदास ॥१०७॥
आलबाल मुकुताहलनि हिय सनेह तरु - मूल।
होइ हेतु चित चातकहिं स्वाति-सलिल अनुकूल ॥१०८॥
राम-प्रेम बिनु दूबरो राम-प्रेम सह पीन।
बिसद सलिल सरवर बरन जन तुलसी मन-मीन ॥१०९॥
आप बधिक बर बेस धरि करेउ कुरंगम राग।
तुलसी जो मृग - मन मुरै परै प्रेम - पट दाग ॥११०॥

द्वितीय सर्ग

खेलत बालक ब्याल सँग मेलत पावक हाथ।
तुलसी सिसु पितु मातु इव राखत सिय-रघुनाथ ॥१११॥
तुलसी केवल राम - पद लागै सरल सनेह।
तौ घर घट बन बाट महँ कतहुँ रहे किन देह ॥११२॥

कै ममता करु राम-पद कै ममता परिहेलु।
तुलसी दुइ महँ एक अब खेल छाँड़ि छल खेलु ॥११३॥
कै तोहि लागहिं राम प्रिय कै तू प्रभु-प्रिय होहि।
दुइ महँ रुचै जो सुगम सो तुलसी कीबे तोहि ॥११४॥
रावनारि कै दास सँग कायर चलहिं कु-चाल।
खर दूखन मारीच सम सूढ़ भाइ बन काल ॥११५॥
तुलसी-पति दरबार मों कमी वस्तु कछु नाहिँ।
करम-हीन कलपत फिरत चूक चाकरी माहिँ ॥११६॥
राम गरीब-नेवाज हैं राज देत जन जानि।
तुलसी मन परिहरत नहिं घुरविनियाँ की बानि ॥११७॥
घर कीन्हे घर होत है घर छोड़े घर जाय।
तुलसी घर बन बीचही रहहु प्रेम-पुर छाय ॥११८॥
राम राम रटिबो भलो तुलसी खता न खाय।
लरिकाई को पैरिबो धोखेहु बूड़ि न जाय ॥११९॥
तुलसी बिलँब न कीजिए भजि लीजै रघुबीर।
तन तरकस तें जात हैं स्वास सरीखे तीर ॥१२०॥
राम-नाम सुमिरत सुजस भाजन भए कुजाति।
कु-तरुक सुर-पुर-राज-मग लहत भुवन बिख्याति ॥१२१॥
नाम-महातम साखि सुनु नर की केतिक बात।
सरवर पर गिरिवर तरे ज्यों तरुवर के पात ॥१२२॥
ग्यान गरीबी गुरु-धरम नरम बचन निरमोख।
तुलसी कबहुँ न छाड़िए सील सत्य संतोख ॥१२३॥
असन बसन सुत नारि सुख पापिहु के घर होय।
संत-समागम राम-धन तुलसी दुरलभ दोय ॥१२४॥
तुलसी नीरहि के बसे असरि पाइए थाह।
बंगहि जाय न पाइए सर सरिता अवगाह ॥१२५॥

पग अंतर मग अगम जल जल-निधि जल संचार।
तुलसी करिया करम बस बूड़त तरत न बार ॥१२६॥
तुलसी हरि-अपमान तें होत अकाज समाज।
राज करत रज मिलि गए सदल सकुल कुरु-राज ॥१२७॥
तुलसी मीठे बचन तें सुख उपजत चहुँ ओर।
बसीकरन यह मंत्र है परिहरु बचन कठोर ॥१२८॥
राम-कृपा तें होत सुख राम-कृपा बिनु जात।
जानत रघुबर भजन तें तुलसी सठ अलसात ॥१२९॥
सनमुख ह्वै रघुनाथ के देहु सकल जग पीठि।
तजे कैंचुरी उरग कहँ होत अधिक अति दीठि ॥१३०॥
मरजादा दूरहि रहे तुलसी किए बिचार।
निकट निरादर होत है जिमि सुरसरि-बर-बार ॥१३१॥
राम कृपा-निधि स्वामि मम सब बिधि पूरन काम।
परमारथ पर धाम पर संत-सुखद-बर धाम ॥१३२॥
रामहिँ जानहि राम रटु भजु रामहिँ तजु काम।
तुलसी राम-अजान नर किमि पावहि पर-धाम ॥१३३॥
तुलसी-पति-रति अंक सम सकल साधना सून।
अंक रहित कछु हाथ नहिं अंक सहित दस गून ॥१३४॥
तुलसी अपने राम कहँ भजन करहु निरसंक।
आदि अंत निरबाहिबो जैसे नव को अंक ॥१३५॥
दुगुने तिगुने चौगुने पंच षष्ट औ सात।
आठहु तें पुनि नव गुने नव के नव रहि जात ॥१३६॥
नव के नव रहि जात हैं तुलसी किए बिचार।
रमेउ राम इमि जगत मे नहीं द्वैत बिसतार ॥१३७॥
तुलसी राम सनेह करु त्यागु सकल उपचार।
जैसे घटत न अंक नव नव के लिखत पहार ॥१३८॥

अंक अगुन आखर सगुन सामुझि उभय प्रकार।
खोए राखे आपु भल तुलसी चारु बिचार॥१३९॥
जेहि विधि तें सब राम-मय समुझहु सुमति-निधान।
याते सकल विरोध तजु भजु सब समुझ न आन॥१४०॥
राम कामना-हीन पुनि सकल - काम - दातार।
याही तें परमातमा अव्यय अमज उदार॥१४१॥
जो कछु चाहत सो करत हरत भरत गत भेद।
काहु सुखद काहू दुखद जानत हैं बुध वेद॥१४२॥
संत-कमल मधु-मास कर तुलसी बरन विचार।
जग-सरवर तर भरन-कर जानहु जल-दातार॥१४३॥
एक सृष्टि मों जाहि विधि प्रगट तीन कर भेद।
सात्विक राजस तामसहिँ जानत हैं बुध वेद॥१४४॥
सो विधि रघुबर नाम महँ बरतमान गुन तीन।
चंद्र भानु अपि अनल विधि हरि हर कहहिँ प्रवीन॥१४५॥
अनल रकार अकार रवि जानु मकार मयंक।
हरी अकार रकार विधि मः महेस निरसंक॥१४६॥
बन अग्यान कहँ दहन कर अनल प्रचंड रकार।
हरि अकार हर मोह तम तुलसी कहहि विचार॥१४७॥
त्रिविध-ताप-हर ससि सतर जानहु मरम मकार।
विधि हरि हर गुन तीन को तुलसी नाम अधार॥१४८॥
भानु कृसानु मयंक को कारन रघुबर नाम।
विधि हरि संभु सिरोमनी प्रनत सदा सुख-धाम॥१४९॥
अगुन अनूपम सगुन निधि तुलसी जानत राम।
करता सकल जगत्र को भरता सब मन-काम॥१५०॥
छत्र मुकुट सब विधि अचल तुलसी जुगल हलंत।
सकल बरन सिर पर रहत महिमा अमल अनंत॥१५१॥

रामानुज सदगुन बिमल स्याम राम-अनुहार।
भरता भरत सो जगत को तुलसी लसत अकार ॥१५२॥
राजत राजस ता अनुज बरद धरनि-धर धीर।
बिधि विहरत अति आसु-कर तुलसी जन-गन-पीर ॥१५३॥
हरन करन संकट सतर समर-धीर बलधाम।
मः महेश अरि-दमन बर लखन-अनुज अरि काम ॥१५४॥
राम सदा सम सील-धर सुख-सागर पर-धाम।
अज कारन अद्वैत नित समतर पद अभिराम ॥१५५॥
होनहार सह जान सब बिभव बीच नहिँ होत।
गगन गिरह करिबो कवै तुलसी पढ़त कपोत ॥१५६॥
तुलसी होत सिखै नहीं तन गुन-दूखन-धाम।
भखन सिखिन कौने कहेउ प्रगट बिलोकहु काम ॥१५७॥
गिरत अंड संपुट अरुन जलज पच्छ अनयास।
अलल सुअन उपदेस केहि जात सो उलटि अकास ॥१५८॥
बिबिध चित्र जल-पात्र बिच अधिक नून सम सूर।
कब कौने तुलसी रचेउ केहि बिधि पच्छ मयूर ॥१५९॥
काक-सुता गृह ना करै यह अचरज बड़ बाय।
तुलसी केहि उपदेस सुनि जननि-पिता घर जाय ॥१६०॥
सुपथ कुपथ लीन्हे जनित स्व-स्वभाव अनुसार।
तुलसी सिखवत नाहिँ सिसु मूषक हनत मजार ॥१६१॥
तुलसी जानत है सकल चेतन मिलत अचेत।
कीर जात उड़ि पिय निकट बिनहिँ पढ़े रति देत ॥१६२॥
होनहार सब आप तें वृथा सोच करि जौन।
कंज सृंग तुलसी मृगन कहो उमेठत कौन ॥१६३॥
सुख चाहत सुख में बसत है सुख-रूप बिसाल।
संतत जा बिधि मान-सर कबहुँ न तजत मराल ॥१६४॥

नीति प्रीति जस अजस गति सब कहँ सुभ पहिचानि।
बस्तो हस्तो हस्तिनी देति न पति रति दानि ॥१६५॥
तुलसी अपने दुखद तें को कहु रहत अजान।
कीस कुंत-अंकुर बनहि उपजत करत निदान ॥१६६॥
जथा धरनि सब बीज-मय नखत अकास निवास।
तथा राम सब-धरम-मय जानत तुलसीदास ॥१६७॥
पुहमी पानी पावकहु पौनहु माहं समाइ।
ता कहँ जानत राम अपि बिनु गुरु किमि लखि जाइ ॥१६८॥
अगुन ब्रह्म तुलसी सोई सगुन बिलोकत सोइ।
दुख सुख नाना भाँति को तेहि बिरोध तें होइ ॥१६९॥
सूर जथा रन जीति कै पलटि आव चलि गेह।
तिमि गति जानहु राम की तुलसी संत सनेह ॥१७०॥
परमातम-पद राम पुनि दीजे संत सुजान।
जे जग महँ विचरहिँ धरे देह बिगत अभिमान ॥१७१॥
चौथो संख्या जीव की सदा रहत रत काम।
ब्रह्म न संत न राम रत निसि बासर बसि बाम ॥१७२॥
सुख पाए हरखत हँसत खीझत लहे बिखाद।
प्रगटत दुरत निरय परत केवल रत बिख स्वाद ॥१७३॥
नाना विधि की कलपना नाना विधि को संग।
सूछम अरु असथूल तन कबहुँ तजत नहिँ रोग ॥१७४॥
जैसे कुष्टी की दसा गलित रहत दोउ देह।
चिंदुहु की गति तैसई अंतरहू गति एह ॥१७५॥
त्रिधा देह गति एक विधि कबहूँ ना गति आन।
बिबिध कष्ट पावहिँ सदा निरखहिँ संत सुजान ॥१७६॥
रामहिँ जानैं संत वर संतहिँ राम प्रमान।
संतहिँ केवल राम प्रभु रामहि संत न आन ॥१७७॥

तातें संत दयाल वर देत राम धन रीति।
तुलसी यह जिय जानि कै करिय विहठि अति प्रीति ॥१७८॥
तुलसी संत सु-अंब-तरु फूलि फरहिँ पर-हेतु।
ये इत तें पाहन हनैं वे उत तें फल देतु ॥१७९॥
सुख दुख दोनों एक सम संतन के मन माहिँ।
मेरु उदधि गत मुकुर जिमि भार भीजवो नाहिँ ॥१८०॥
तुलसी राम सुजान को राम जनावै सोइ।
रामहि जानै राम-जन आन कवहुँ नहिँ होइ ॥१८१॥
सो गुरु राम सुजान सम नहीं विखमता-लेस।
ताकी कृपा-कटाच्छ तें रहे न कठिन कलेस ।१८२॥
गुरु कह तव समुझै सुनै निज करतव कर भोग।
कह तव गुरु करतव करै मिटै सकल भव-रोग ॥१८३॥
सरनागत तेहि राम को जिन्ह दिय धी सिय-रूप।
जा पदनि-घर उदय भए नासे भ्रम-तम-कूप ॥१८४॥
जा पद पाए पाइए आनँद पद उपदेस।
संसय रोग नसाय सव पावै पुनि न कलेस ॥१८५॥
मेधा सीता सम समुझि गुरु विवेक सम राम।
तुलसी सिय सम सो सदा भएउ विगत मग वाम ॥१८६॥
आदि मध्य अवसान गत तुलसी एक समान।
तेई संत सरूप सुभ जे अनित्य गति भान ॥१८७॥
एई सुद्ध उपासना परा भगति की रीति।
तुलसी एहि मग पग धरे रहै रामपद प्रीति ॥१८८॥
जहँ तें जो आएउ सो है जाइ जहाँ है सोइ।
तुलसी विन गुरु-देव के किमि जानै कहु कोइ ॥१८९॥
अपगत खे सोई अवनि सो पुनि प्रगट पताल।
कहा जनम कहँ मरन अपि समुझहि सुमति रसाल ॥१९०॥

संग दोख तें भेद अस मधु मदिरा मकरंद।
गुरु - गम तें देखहि प्रगट पूरन परमानंद ॥१९१॥
डावर सागर कूप गत भेद दिखाई देत।
है एकै दूजो नहीं द्वैत ग्यान के हेत ॥१९२॥
गुन गत नाना भांति तेहि प्रगटत कालहि पाइ।
जानि जाइ गुरु-ग्यान तें बिनु जाने भरमाइ ॥१९३॥
तुलसी तरु फूलत फरत जेहि विधि कालहि पाय।
तैसेही गुन - दोख - गत प्रगटत समय सुभाय ॥१९४॥
दोखहुँ गुन की रीति यह जानु अनल गति देखि।
तुलसी जानत सो सदा जेहि बिबेक सु-बिसेखि ॥१९५॥
गुरु तें आवत ग्यान उर नासत सकल बिकार।
जथा निलय-गत दीप तें मिटत सकल अँधियार ॥१९६॥
जद्यपि अवनि अनेक सुख तोय तामरस ताल।
संतत तुलसी मानसर तदपि न तजत मराल ॥१९७॥
तुलसी तोरत तीर-तरु मानस हंस बिहार।
बिगत नलिन अति मलिन जल सुरसरिहू बढ़ियार ॥१९८॥
जो जल जीवन जगत को परसत पावन जौन।
तुलसी सो नीचे ढरत ताहि निवारत कौन ॥१९९॥
जो करता है करम को सो भोगत नहिं आन।
बोअनहार लुनिहै सोई देनी लहइ निदान ॥२००॥
रावन रावन को हनेउ दोख राम को नाहिं।
निज हित अनहित देखु किन तुलसी आपुहि माहिं ॥२०१॥
सुमिरु राम भजु राम-पद देखु राम सुनु राम।
तुलसी समुझहु राम कहँ अह-निसि यह तुव काम ॥२०२॥
रज अप अनल अनिल नभ जड़ जानत सब कोइ।
यह चैतन्य सदा समुझु कारज-रत दुख होइ ॥२०३॥

निज कृत बिलसत सो सदा बिनु पाए उपदेस।
गुरु-पद पाइ सुमग धरै तुलसी हरइ कलेस ॥२०४॥
सलिल सुकर सोनित समुझ मल अरु असथि समेत।
बाल कुमार जुवा जरा है सो समुझु करु चेत ॥२०५॥
ऐसहि गति अवसान की तुलसी जानत हेतु।
तातैं यह गति जानि जिय अबिरल हरि चित चेतु ॥२०६॥
जानै राम सरूप जब तब पावै पद संत।
जनम मरन पद तें रहित सुखमा अमल अनंत ॥२०७॥
दुख-दायक जाने भले सुख-दायक भजु राम।
अब हमको संसार को सब विधि पूरन काम ॥२०८॥
आपुहि मद को पान करि आपुहि होत अचेत।
तुलसी विविध प्रकार को दुख उतपति एहि हेत ॥२०९॥
जासों करसि बिरोध हठि कहु तुलसी को आन।
सो तैं सब नहिँ आन तब नाहक होसि मलान ॥२१०॥
चाहसि सुख जेहि मारि कै सो तो मारि न जाय।
कौन लाभ बिख तें बदलि तैं तुलसी विख खाय ॥२११॥
कोह द्रोह अघ मूल है जानत को कहु नाहिँ।
दया धरम-कारन समुझि को सुख पावत नाहिँ ॥२१२॥
बनो बनायो है सदा समुझ रहित दो सूल।
अरुन बरन केहि काम को बिना बास को फूल ॥२१३॥

तृतीय सर्ग

जनक-सुता दस-जान-सुत उरग-ईस अ-म जौर।
तुलसिदास दस पद परसि भव सागर गौ पौर ॥२१४॥

तुलसी तेरो राग-घर तात मातु गुरु देव।
ता तजि तोहि न उचित अव रुचित आन पद-सेव ॥२१५॥
तरक - विसेख - निखेध - पति - उर-मानस सुपुनीत।
बसत मराल ल-रहित करि तेहि भजु पलटि बिनीत ॥२१६॥
सुकलाऽऽदिहिँ कल देहु एक अंत-सहित सुख-धाम।
दै कमला कल मध्य को अंत सकल सुख-धाम ॥२१७॥
बीज धनंजय रवि सहित तुलसी तथा मयंक।
प्रगट तहाँ नहिँ तम तमी सम चित रहत असंक ॥२१८॥
रंजन कानन कोकनद वंस विमल अवतंस।
गंजन पुरहित-अरि सदल जग-हित मानस-हंस ॥२१९॥
जग तें रहु छत्तीस ह्वै राम-चरन छव तीन।
तुलसी देखु बिचारि हिय है यह मतो प्रवीन ॥२२०॥
कं दिग दून नछत्र हनि गुनी अनुज तेहि कीन।
जेहि हरि कर मनि मान हनि तुलसी तेहि पद लीन ॥२२१॥
सिला-साप-मोचन चरन हरन-सकल जंजाल।
भरन करन सुख सिद्धि-तर तुलसी परम कृपाल ॥२२२॥
मरन-विपति-हर धुर-धरम धरा-धरन वल-धाम।
सरन तासु तुलसी चहत वरन सकल अभिराम ॥२२३॥
विहँग वीच रैयत तृतिय पति पति तुलसी तोर।
तासु विमुख सुख अति विलम सपनेहु होसि न भोर ॥२२४॥
दुतिय कोल राजिव प्रथम वाहन निहचय माहिँ।
आदि एक कल दै भजहु वेद-विदित गुन जाहि ॥२२५॥
वसत जहाँ राघव-जलज तेहि मिति गो जेहि संग।
भज तुलसी तेहि अरि-सु-पद करि उर प्रेम अभंग ॥२२६॥
भजहु तरनि-अरि-आदि कहँ तुलसी आत्मज अंत।
पंचानन लहि पदुम मथि गहे विमल मन संत ॥२२७॥

वनिता सैल-सुतास की तासु जनम को ठाम।
तेहि भजु तुलसीदास हित प्रनत सकल-सुख-धाम ॥२२८॥
भजु पतंग-सुत-आदि कहँ मृत्युंजय-अरि अंत।
तुलसी पुष्कर - जग्य - कर चरन - पांसु इच्छंत ॥२२९॥
उलटे तासी तासु पति सौ हजार मन सत्थ।
एक-सून-रथ तनय कहँ भजसि न मन समरत्थ ॥२३०॥
दुतिय तृतिय हर कासनहि तेहि भजु तुलसीदास।
का कासन आसन किए सास न लहै उपास ॥२३१॥
आदि दुतिय अवतार कहँ भजु तुलसी नृप-अंत।
कमल प्रथम अरु मध्य सह वेद-बिदित मत संत ॥२३२॥
जेहि न गनेउ कछु मानसहु सुर-पति-अरि-भव-त्रास।
जेहि पद सुचिता-अवधि-भव तेहि भजु तुलसीदास ॥२३३॥
नैन करन-गुन-धरन बर ता वर धरन विचार।
चरन सतर तुलसी चहसि उबरन सरन-अधार ॥२३४॥
भजु हरि आदिहिँ वाटिका भरि ता राजिव-अंत।
करता पद बिस्वास भव-सरिता तरसि तुरंत ॥२३५॥
जड़-मोहन-बरनादि कहँ सह चंचल चित चेत।
भजु तुलसी संसार-अहि नहिँ गहि करत अचेत ॥२३६॥
अमर-अधिप-वारन-बरन दूसर अंत अगार।
तुलसी इखु-सह राग-धर तारन तरन अधार ॥२३७॥
जौ उरबिज चाहसि झटिति तौ करि घटित उपाय।
सुमनस-अरि-अरि-वर-चरन-सेवन सरल सुभाय ॥२३८॥
दुतिय पयोधर परम-धन वाग-अंत-जुत सोय।
भजु तुलसी संसार-हित या तें अधिक न कोय ॥२३९॥
पति पयोधि पावन पवन तुलसी करहु विचार।
आदि-दुतिय अरु अंत-जुत ता मत तव निस्तार ॥२४०॥

हंस कपट रस सहित गुन अंत आदि प्रथमंत ।
भजु तुलसी तजि वाम गति जेहि पद रत भगवंत ॥२४१॥
कना समुझि क वरन हरहु अंत-आदि-जुत सार ।
स्त्री-कर तम-हर वरन वर तुलसी सरन उवार ॥२४२॥
अंक दसा रस-आदि जुत पांडु-सूनु मह अंत ।
जानि सुअन सेवक सतर करिहैं कृपा तुरंत ॥२४३॥
झटिति सखाहि विचारि हिय आदि वरन हरि एक ।
अंत प्रथम स्वर दे भजहु जा उर तत्त्व-विवेक ॥२४४॥
आदि चंद्र चंचल सहित भजु तुलसी तजु काम ।
अघ-गंजन रंजन सुजन भव-भंजन सुख-धाम ॥२४५॥
विगत देह-तनुजा-सु-पति पद रति सहित सनेम ।
जौ अति मति चाहसि सु-गति नै तुलसी करु प्रेम ॥२४६॥
करता सुचि-सुर-सर-सुता ससि सारँग महि जान ।
आदि-अंत सह प्रथम-जुत तुलसी समुझु न आन ॥२४७॥
गिरिजा-पति कल आदि इक नक्खत हरि जुघ जान ।
आदि-अंत भजु अंत पुनि तुलसी सुचि मन मान ॥२४८॥
रितु-पति पद पुन पङ्कि युत प्रथम आदि पुनि लेहु ।
अंत हरन पद दुतिय महँ मध्य वरन सह नेहु ॥२४९॥
वाहन सेख सु-मधुप रव भरत-नगर जुत जान ।
हरि भरि सहित विपरज करि आदि मध्य अवसान ॥२५०॥
तुलसी उडुगन को वरन वनज - सहित दोउ अंत ।
ता कहँ भजु संसय - समन रहित एक कल अंत ॥२५१॥
वारिज वारिज वरन वर वरनत तुलसीदास ।
आदि आदि भजु आदि पद पाए परम प्रकास ॥२५२॥
भजु तुलसी कुलिसांत कहँ सह अगार तजि काम ।
सुख-सागर नागर ललित वली अली पर - धाम ॥२५३॥

चंचल सहितऽरु चंचला अंत अंत - जुत जान ।
संत-सास्त्र-संमत समुझि तुलसी करु परमान ॥२५४॥
आदि बसंत इकार है आसय तासु बिचार ।
तुलसी तासु सरन परे कासु न भएउ उबार ॥२५५॥
धरा धरा-धर बरन-जुग सरन हरन भव-भार ।
करन सतरतर परम पद तुलसी धरमाधार ॥२५६॥
बरन धनंजय - सूनु - पति चरन - सरन - रति नाहिँ ।
तुलसी जग-बंचक बिहठि किए बिधाता ताहि ॥२५७॥
तुलसी रजनी पुरनिमा हार-सहित लखि लेहु ।
आदि अंत-जुत जानि करु तासों सरल सनेहु ॥२५८॥
भानु गोत्र तमि तासु पति कारन अति हित जाहि ।
ग्यान - सु - गति - जुत सुख सदन तुलसी मानत ताहि ॥२५९॥
भजु तुलसी ओघादि कहँ सहित तत्त्व-जुत-अंत ।
भव आयुर-जय जासु बल मन चल अचल करंत ॥२६०॥
देत कहा नृप काज पर लेत कहा इत राज ।
अंत - आदि - जत-सहित भजु जौ चाहसि सुभ काज ॥२६१॥
चंद्र-रमनि भजु गुन-सहित समुझि अंत अनुराग ।
तुलसी जौ यह बनि परै तौ तव पूरन भाग ॥२६२॥
जिनके हरि बाहन नहीं दधि-सुत-सुत जेहि नाहिँ ।
तुलसी ते नर तुच्छ हैं बिना समीर उड़ाहिँ ॥२६३॥
रबि चंचल अरु ब्रह्म - द्रव बीच सु - बास बिचारि ।
तुलसिदास आसन करे अवनि-सुता उर धारि ॥२६४॥
बन बनिता हगकोपमा जुत करु सहित विवेक ।
अंत आदि तुलसी भजहु परिहरि मन कर टेक ॥२६५॥
उरबी अंतहु आदि - जुत कुल - सोभा - कमलादि ।
करि बिपरज ऐसेहि भजहु तुलसी समन बिखादि ॥२६६॥

तौ तोहि कहँ सब कोउ सुखद करहिँ कहा तब पांच।
हरव तृतिय वारिज-वरन तज वलीन सुनु सांच ॥२६७॥
तजहु सदा सुभ-आसु-अरि भजु सुमनस-अरि-काल।
सजु मत ईस अवंतिका तुलसी विमल विसाल ॥२६८॥
एत-वंस वर वरन जुग सेतु जगत सब जान।
चेत सहित सुमिरन करत हरत सकल अघ-खान ॥२६९॥
मैत्री वरन यकार को सह स्वर आदि विचारि।
पंच प-वरगहि जुत सहित तुलसी ताहि सँभारि ॥२७०॥
हल व्रम-मध्य समान जुत या तें अधिक न आन।
तुलसी ताहि विसारि सठ भरमत फिरत भुलान ॥२७१॥
कौन जाति सीता सती को दुखदा कटु वाम।
को कहिए ससिकर दुखद सुखदायक को राम ॥२७२॥
को संकर गुरु-वाग वर सिव-हर को अभिमान।
करता को अज जगत को भरता को हरि जान ॥२७३॥
स्वर स्रेयस राजीव-गुन करु तेहि दृढ़ पहिचान।
पंच प-वरगहि जुत सहित तुलसी ता हित मान ॥२७४॥
होत हरख का पाय धन विपति तजे का धाम।
दुखदा कुमति कुनारितर प्रति सुखदायक राम ॥२७५॥
वीर कवन सह मदन-सर धीर कवन रत राम।
कवन कूर हरि-पद-विमुख को कामी वस वाम ॥२७६॥
कारन को कं जीव को खं गुन कह सब कोय।
जानत को तुलसी कहत सो पुनि आन न होय ॥२७७॥
जासु आस सर देव को अरु आसन हरि-वाम।
सकल दुखद तुलसी तजहु मध्य तासु सुख-धाम ॥२७८॥
तुलसी वरन विकल्प तें औ चप-तृतिय-समेत।
अन-समुझे जड़ सरिस नर समुझे साधु सचेत ॥२७९॥

चंचल तिय भजु प्रथम हरि जो चाहसि परधाम ।
तुलसी कहहिँ सुजन सुनहु यही सयानप-काम ॥२८०॥
कुलिस-धरम-जुग-अंत-जुत भजु तुलसी तजु काम ।
असुभ-हरन संसय-समन सकल-कला-गुन-धाम ॥२८१॥
स्त्री-कर को, रघुनाथ, हर, अनय कहत सब कोय ।
सुखदा को जानति सुमति तुलसी समता दोय ॥२८२॥
बैर-मूल-हर हित-बचन, प्रेम मूल उपकार ।
दो'हा' सरल सनेह - मय तुलसी किए बिचार ॥२८३॥
प्राग कवन, गुरु-लघु, जगत तुलसी अवर न आन ।
स्रेष्ठ कवन हरि-भगति सम को लघु लोभ समान ॥२८४॥
बरन दुतिय नासक निरय तुलसी अंत रसाल ।
भजहु सकल स्त्री-कर सदन जन-पालक खल-साल ॥२८५॥
चप स्रेयस-स्वर-सहित गुनि यम-जुत दुखद न आन ।
तुलसी हल - जुत ते कुसल अंतिकार सह जान ॥२८६॥
तुलसी यम गुन बोध बिनु कहु किमि मिटइ कलेस ।
ताते' सतगुरु सरन गहि जाते' पद - उपदेस ॥२८७॥
भगन जगन का सों करसि राम-अपर नहिँ कोय ।
तुलसी पति-पहिचान बिनु कोउ तुल कबहुँ न होय ॥२८८॥
तुलसी तगन बिहीन नर सदा नगन के बीच ।
तिनहिँ यगन कैसे लहइ परे सगन के कीच ॥२८९॥
इंद्र-रवँनि सुर देव-रिषि रुकुमिनि-पति सुभ जान ।
भोजन दुहिता काक अलि आनँद असुभ समान ॥२९०॥
को हित संत अहित कुटिल नासक को हित लोभ ।
पोखक तोखक दुखद अरि सोखक तुलसी छोभ ॥२९१॥
सदा नगन-पद-प्रीति जेहि जानु नगन-सम ताहि ।
जगन ताहि जय जुत रहत तुलसी संसय नाहिँ ॥२९२॥

भगन भगति करु भरम तजि तगन सगन विधि होय।
सगन-सुभाव तजो समुझि भजे न दूखन कोय ॥२९३॥
मृगज-असन स जुक्त जू बिहरत तीर सुधीर।
जग्य-पाप-भय-त्रान-पद राजत सो-रघुबीर ॥२९४॥
बान-जुक्त जू तट निकट बिहरत राम सुजान।
तुलसी कर-कमलन ललित लसत सरासन बान ॥२९५॥
मृदु सेवक सिर-रुह रुचिर सीस तिलक भ्रू बंक।
धनु सर गहि जनु तड़ित जुत तुलसी लसत मयंक ॥२९६॥
ंस कमल बिच बरन जुग तुलसी अति प्रिय जाहि।
तीन लोक महँ जो भजै लहै तासु फल ताहि ॥२९७॥
आदि म है अंतहु म है मध्य र है तेहि जान।
अनजाने जड़ जीव सब समुझे संत सुजान ॥२९८॥
आदि द है मध्ये र है अंत द है सो बात।
राम बिमुख के होत है राम भजन तें जात ॥२९९॥
ललित चरन कटि कर ललित लसत ललित बनमाल।
ललित चिबुक द्विज अधर सह लोचन ललित बिसाल ॥३००॥
भरन हरन अन्वय अमल सहित बिकल्प बिचार।
कह तुलसी मति अनुहरत दोहा अरथ अपार ॥३०१॥
विसिष्ठाद्यलंकार महँ संकेतादि सु-रीति।
कहे बहुरि आगे कहब समुझब सु-मति बिनीति ॥३०२॥
कोस अलंकृत संधि गति मैत्री बरन बिचार।
हरन भरन सु-बिभगति बल कबिहि अरथ निरधार ॥३०३॥
देस काल करता करम बुधि बिद्या गति हीन।
ते सुर-तरु-तर दारिदी सुर-सरि-तीर मलीन ॥३०४॥
देस काल गति हीन जे करता करम न ग्यान।
तेऽपि अरथ-मग पग धरहिँ तुलसी स्वान समान ॥३०५॥

अधिकारी बस ओसरी भलो जानिबो मंद।
सुधा-सदन वसु वारहें चौथे चौथिउ चंद ॥३०६॥
नर घर नभ-सर वर सलिल वन-ज विनय बिग्यान।
सु-मति सुक्तिका सारदा स्वाती कहहिं सुजान ॥३०७॥
सम दम समता दीनता दान दयादिक रीत।
दोख दुरत हर दरद दर उर घर बिमल बिनीत ॥३०८॥
धरम धुरीन सु-धीर-धर धारन वर पर-पीर।
धरा धरा-धर सम अचल वचन न बिचल सु-थीर ॥३०९॥
चौतिस के प्रस्तार में अरथ भेद परमान।
करहु सुजन तुलसी कहत या विधि तें पहचान ॥३१०॥
वेद विखम क वरन सुतर सतर राम की रीति।
तुलसी भरत न भरि हरत भूलि हरहु जनि प्रीति ॥३११॥
वन तें गुन कहि जानिए तातें दिग दिग तीन।
तुलसी यह जिय समुझि करि जग-जित संत प्रवीन ॥३१२॥
चंद्र अनल नहिँ है कहूं झूंठो बिना बिवेक।
तुलसी ते नर समुझिहैं जिनहिँ ग्यान रस एक ॥३१३॥
सतसैया तुलसी सतर तम हरि पर-पद देत।
तुरित अविद्या जन दुरित वर तुल सम करि लेत ॥३१४॥

चतुर्थ सर्ग

चौदह चारि अठारहो पढ़े सुने का होइ।
तुलसी अपने राम कहँ जौं लगि लखै न कोइ ॥३१५॥
तन सुखाइ पंजर करै धरै रैन दिन ध्यान।
तुलसी मिटै न वासना बिना विचारे ग्यान ॥३१६॥

कलप-बिरिछ को चित्र लिखि कीन्हे विनय हजार ।
वित्त न पावइ ताहि सों तुलसी देखु विचार ॥३१७॥
बैठि निसागम निलय महँ करै दीप की बात ।
तुलसी देखु विचार उर नहिँ तम नेक नसात ॥३१८॥
गृह सुंदरि पुनि निकट कवि आंगन अमृत-मूरि ।
ते अति लघु तें लघु रहहिँ विनु समझे अति दूरि ॥३१९॥
यह तन अनुपम अयन वर उपमा रहित सुचैन ।
समुझ रहित रटि पचि मरै करत सकल अध्यैन ॥३२०॥
रसना सुत पहिचान बिनु कहहु न कवन भुलान ।
जानै कोउ हरि-गुरु-कृपा उदित भए रवि-ग्यान ॥३२१॥
त्रिविध भांति को सवद वर विघट न लट परमान ।
कारन अविरल फल अपितु तुलसी अविद भुलान ॥३२२॥
दिग-भ्रम जा विधि होत है कौन भुलावत ताहि ।
जानि परत गुरु-ग्यान तें सब जग संसय माहिँ ॥३२३॥
कारन चार विचार वर वरन न अपर न आन ।
सदा सोउ गुन-दोख-मय लखि न परत बिनु ग्यान ॥३२४॥
यह करतब सब ताहि को जेहि तें वह परमान ।
तुलसी मरम न पाइहैं बिनु सद-गुरु-वर-दान ॥३२५॥
दिग-भ्रम-कारन चारि ते जानहिँ संत सुजान ।
ते कैसे लखि पाइहैं जे वोहि बिषय भुलान ॥३२६॥
सुख-दुख-कारन सो भएउ रसना को सुत बीर ।
तुलसी सो तब लखि परइ करै कृपा वर धीर ॥३२७॥
अपने खोदे कूप महँ गिरे जथा दुख होइ ।
तुलसी सुखप्रद समुझि हिय रचत जगत सब कोइ ॥३२८॥
ता विधि तें अपनो विभव दुखद सुखद करतार ।
तुलसी कोउ कोउ संत वर कीन्हें विरचि विचार ॥३२९॥

रसनाही के सुत उपर करत निरंतर प्रीति।
तेहि पाछे सब जग लगेउ समुझ न रीति अरीति ॥३३०॥
माया मन तें ईस भनि ब्रम्हा विस्नु महेस।
सुर देवी औ ब्रम्ह लौं रसना-सुत उपदेस ॥३३१॥
वरन धार वारिधि अगम को गम करइ अपार।
जन-तुलसी सत-संग-बल पाए विसद विचार ॥३३२॥
गहि सु-वेल विरलइ समुझि वहिगे अपर हजार।
कोटिन बूड़े खवर नहिं तुलसी कहहिं विचार ॥३३३॥
स्रवन सुनत देखत नयन तुलत न विविध विरोध।
कहहु केहि चहि मानिए केहि विधि करिय प्रवोध ॥३३४॥
स्रवनात्मक ध्वन्यात्मक वरनात्मक विधि तीन।
त्रिविध सबद अनुभव अगम तुलसी कहहिं प्रवीन ॥३३५॥
कहत सुनत आदिहि वरन देखत वरन-विहीन।
दृस्यमान चर-अचर-गन एकहि एक न लीन ॥३३६॥
पांच भेद चर-गन विपुल तुलसी कहहिं विचार।
नर पसु स्वेदज खग कृमी वुध जन मत निरधार ॥३३७॥
अदि विरोध तिन महँ प्रवल प्रगट परत पहिचान।
अस्थावर गति अपर नहिं तुलसी कहहिं प्रमान ॥३३८॥
रोम रोम ब्रह्मांड प्रभु देखत तुलसीदास।
विनु देखे कैसे कोऊ सुनि मानै विसुआस ॥३३९॥
वेद कहत जहँ लगि जगत तेहि तें अलग न आन।
तेहि अधार विहरत लखु तुलसी परम प्रमान ॥३४०॥
सरखप सूझत जाहि कहँ ताहि सुमेरु असूझ।
कहेउ न सो समुझत अवुझ तुलसी विगत विवूझ ॥३४१॥
कहत अउर समुझत अउर गहत तजत कछु और।
कहे सुने समुझत नहीं तुलसी अति मति वौर ॥३४२॥

देखेउ करइ अदेख इव अनदेखेउ बिसुआस।
कठिन प्रबलता मोह की जल कह परम पियास॥३४३॥
सोई सेमर सोइ सुआ सेवत पाइ वसंत।
तुलसी महिमा मोह की सुनत सराहत संत॥३४४॥
सुनत स्रवन देखत नयन संसय समन समान।
तुलसी समता असम भै कहत आन कहँ आन॥३४५॥
बस हा भै अरि हित अहित सोऽपि न समुझत हीन।
तुलसी हीन मलीन मति मानत परम प्रवीन॥३४६॥
भटकत पद अद्वैतता अटकत ग्यान गुमान।
सटकत बितरन तें बिहरि फटकत तुख अभिमान॥३४७॥
जो चाहत तेहि बिनु दुखित सुखित रहित तेहि होय।
तुलसी सो अतिसय अगम सुगम राम तें होय॥३४८॥
मातु पिता निज बालकहिँ करहिँ इष्ट उपदेस।
सुनि मानै विधि आपु जेहि निज सिर सहै कलेस॥३४९॥
सब सों भलो मनाइबो भलो होन की आस।
करत गगन को गेडुआ सो सठ तुलसीदास॥३५०॥
वलि मिसु देखत देवता कर मिस मानव-देव।
मुए मारि अविचार-रत स्वारथ-साधक एव॥३५१॥
बिना बीज तरु एक भव साखा दल फल फूल।
को बरनै अतिसय अमित सब बिधि अकल अतूल॥३५२॥
सुक पिक मुनि गन बुध बिबुध फल आस्रित अति दीन।
तुलसी ते सब विधि रहित सो तरु तासु अधीन॥३५३॥
को नहिँ सेवत आइ भव को न सेइ पछिताय।
तुलसी बादहिँ पचत है आपुहिँ आप नसाय॥३५४॥
कहत विविध फल बिमल तेहि लहत न एक प्रमान।
भरम प्रतिष्ठा मानि मन तुलसी कथत भुलान॥३५५॥

मृग-जल घट भरि विविध विध सींचत नभ-तरु-मूल ।
तुलसी मन हरखित रहत बिनहिँ लहे फल फूल ॥३५६॥
सोऽपि कहहिँ हम कहँ लहेउ नभ-तरु को फल फूल ।
ते तुलसी तिन तें बिमल सुनि मानहिँ मुद-मूल ॥३५७॥
तेऽपि तिनहिँ जांचहिँ बिनय करि करि बार हजार ।
तुलसी गाडर के ढरन जानो जगत विचार ॥३५८॥
ससि कर स्रग रचना किए अति सोभा सरसात ।
स्वरग सुमन अवतंस खल चाहत अचरज बात ॥३५९॥
तुलसी बोल न बूझई देखत देख न जोइ ।
तिन सठ को उपदेस का करब सयाने लोइ ॥३६०॥
जो न सुने तेहि का कहिय कहा सुनाइय ताहि ।
तुलसी तेहि उपदेसहीं तासु सरिस मति जाहि ॥३६१॥
कहत सकल घट राम-मय तो खोजत केहि काज ।
तुलसी कहँ यह कुमति सुनि उर आवत अति लाज ॥३६२॥
अलख कहहिं देखन चहहिं ऐसो परम प्रवीन ।
तुलसी जग उपदेसहीं बनि बुध अबुध मलीन ॥३६३॥
हहरत हारत रहित बिद रहत धरे अभिमान ।
ते तुलसी गुरुआ बनहिं कहि इतिहास पुरान ॥३६४॥
निज नैनन देखत नहीं गही आंधरे बांह ।
कहत मोह बस तेहि अधम परम हमारे नाह ॥३६५॥
गगन-वाटिका सींचहीं भरि भरि सिंधु-तरंग ।
तुलसी मानहिं मोद मन ऐसे अधम अभंग ॥३६६॥
हखत करत रचना विहरि रंग-रूप सम तूल ।
विहँग बदन विष्टा करत तातें भयो न तूल ॥३६७॥
चाह तिहारी आप तें मान न आनन आन ।
तुलसी करु पहिचान पति जातें अधिक न मान ॥३६८॥

आतम-बोध विचार यह तुलसी कर उपकार।
कोउ कोउ राम-प्रसाद तें पावत पर-मति पार ॥३६९॥
जहां तोख तहँ राम हैं राम तोख नहिं भेद।
तुलसी देखि गहत नहीं सहत विविध विधि खेद ॥३७०॥
गो-धन गज-धन बाजि-धन और रतन-धन खान।
जब आवत संतोख धन सब धन धूरि समान ॥३७१॥
कुथि रटि अटत बिमूढ लट घट उदघटत न ग्यान।
तुलसी रटत हटत नहीं अतिसय गत अभिमान ॥३७२॥
भू भुजंग गत दाम भव कामन विविध विधान।
तो तन बरतत मान जत तत तुलसी परमान ॥३७३॥
भोडर सुक्ति विभव पडिक मनि गति प्रगट लखात।
मनि भोडर अपि सुक्ति तें विलग बिजानत तात ॥३७४॥
राम-चरन-पहिचान विनु मिटी न मन की दौर।
जनम गँवाए बादही रटत पराए पौर ॥३७५॥
सुनै बरन मानै बरन बरन बिलग नहिँ ग्यान।
तुलसी सु-गुरु-प्रसाद-बल परै बरन पहिचान ॥३७६॥
विटप बेलि गन बाग के माला-कार न जान।
तुलसी ता विधि विद बिना करता राम भुलान ॥३७७॥
करतबही सों करम है कह तुलसी परमान।
करनहार करता सोई भोगै करन निदान ॥३७८॥
तुलसी लट पद ते भटक अटक अपि तु नहिँ ग्यान।
ता तें गुरु-उपदेस बिनु भरमत फिरत भुलान ॥३७९॥
ज्यों बरधा बनिजार के फिरत घनेरे देस।
खांड़ भरे भुस खात हैं बिन गुरु के उपदेस ॥३८०॥
बुद्धिहिँ बारत अनय पद स्वऽपि न पदारथ लीन।
तुलसो ते रासभ सरिस निज मन गनहिँ प्रवीन ॥३८१॥

कहत बिबिध देखे बिना गहत अनेक न एक।
ते तुलसी सुनहा सरिस बानी बदहिँ अनेक ॥३८२॥
बिनु पाए परतीत अति करत जथारथ हेत।
तुलसी अबुध अकास इव भरि भरि मूठी लेत ॥३८३॥
बसन बारि बांधत बिहठि तुलसी कौन बिचारि।
हानि लाभ बिधि बोध बिनु होत नहीं निरधार ॥३८४॥
काम क्रोध मद लोभ की जब लगि मन में खान।
का पंडित का मूरखौ दोऊ एक समान ॥३८५॥
उत कुल की करनी तजी इत न भजे भगवान।
तुलसी अधबर के भए ज्यौं बधूर के पान ॥३८६॥
कीर सरिस बानी पढ़त चाखन चाहत खांड़।
मन राखत बैराग महँ घर महँ राखत रांड़ ॥३८७॥
राम-चरन परचे नहीं बिनु साधुन-पद नेह।
मूड़ मुड़ाए बादही भांड़ भए तजि गेह ॥३८८॥
काह भए बन बन फिरे जौं बनि आएउ नाहि।
बनते बनते बनि गएउ तुलसी घरही माहिँ ॥३८९॥
जो गति जानै बरन की तन-गति सो अनुमान।
बरन-बिंदु-कारन जथा तथा जानु नहिँ आन ॥३९०॥
बरन-जोग भौ नाम जग जानु भरम को मूल।
तुलसी करता है तुही जानि मानु जनि भूल ॥३९१॥
नाम जगत सम समुझु जग बस्तु न करु चित चैन।
बिंदु गए जिमि गैन ते रहत ऐन को ऐन ॥३९२॥
आपुहि ऐन बिचारु विधि सिद्धि बिमल मति मान।
आन बासना बिंदु सम तुलसी परम प्रमान ॥३९३॥
धन धन कहे न होत कोउ समुझि देखु धनमान।
होत धनिक तुलसी कहत दुखित न रहत जहान ॥३९४॥

हिम की मूरति के हिए लगी नीर की प्यास।
लगत सवद गुरु तर निकर सोसैं रही न आस ॥३९५॥
जाके उर वर वासना भई भास कछु आन।
तुलसी ताहि विडंवना केहि विधि कथहिँ प्रमान ॥३९६॥
रुज तन-भव परिचय विना भेखज कर किमि कोइ !
जानि परइ भेखज करइ सहज नास रुज होइ ॥३९७॥
मानस व्याध कुचाह तव सतगुरु वैद समान।
जासु वचन अलवल अवसि होत सकल रुज हान ॥३९८॥
रुचि वाढ़इ सतसंग महँ नीति-छुधा अधिकाइ।
होत ग्यान वल पीन अल त्रिजिन विपति मिटि जाइ ॥३९९॥
सुकुल पच्छ ससि स्वच्छ जिमि किसन पच्छ दुति-हीन।
वढ़त घटत विधि भाँति विद तुलसी कहहिँ प्रवीन ॥४००॥
सत-संगति सित पच्छ सम असित असंत-प्रसंग।
जानु आपु कहँ चंद्र सम तुलसी वक्त अभंग ॥४०१॥
तीरथ-पति सत-संग सम भगति देव-सरि जान।
विधि उलटी गति राम की तरनि-सुता अनुमान ॥४०२॥
वर मेधा मानहु गिरा धीर धरम न्यग्रोध।
मिलन त्रिवेनी मल-हरनि तुलसी तजहु विरोध ॥४०३॥
समुझव सम मज्जन विसद मल अनीति गइ धोइ।
अवसि मिलन संसय नहीं सहज राम-पद होइ ॥४०४॥
छमा विमल वारानसी सुर-अपगा सम भक्ति।
ग्यान विसेसर अति विसद लसत दया सह सक्ति ॥४०५॥
वसत छमा गृह जासु मन वारानसी न दूरि।
विलसति सुरसरि भगति जहँ तुलसी नय-क्रिय भूरि ॥४०६॥
सित कासी मगहर असित लोभ मोह मद काम।
हानि लाभ तुलसी समुझि वास करहु वसु जाम ॥४०७॥

गए पलटि आवै नहीं है सो करु पहिचान।
आज सोई सोइ कालिह है तुलसी भरम न मान ॥४०८॥
बरतमान आधीन दोउ भावी भूत बिचार।
तुलसी संसय मन न करु जो है सो निरुवार ॥४०९॥
मान-सरोबर मन मधुर राम सुजस सुचि नीर।
हरइ त्रिजिन बुधि बिसद अति बुध नय अगम सुधीर ॥४१०॥
अलंकार कबि-रीति-जुत भूखन दूखन प्रीति।
बारि-जात बरनन विविध तुलसी बिमल बिनीति ॥४११॥
विनय विचार सुहृदता सोइ पराग रस गंध।
कामादिक तेहि सर लसत तुलसी घाट प्रबंध ॥४१२॥
प्रेम उमगि कबितावली चली सरित सुचि सार।
राम बरा पुरि मिलन हित तुलसी हरख अपार ॥४१३॥
तरल तरंग सुछंद बर हरत द्वैत तरु मूल।
बैदिक लौकिक बिधि बिमल लसत बिसद बर कूल ॥४१४॥
संत-सभा बिमला नगरि सकल-सुमंगल-खानि।
तुलसी-उर सुर-सर सुता लसत सुथल अनुमानि ॥४१५॥
मुकत मुमुच्छु बर बिखयि स्रोता त्रिबिध प्रकार।
ग्राम नगर पुर जुग सु-तट तुलसी कहहिँ बिचार ॥४१६॥
बारानसी बिराग नहिँ सैल-सुता-मन होय।
तिमि अवधहि सरजू न तज कहत सु-कबि सब कोय ॥४१७॥
कहव सुनव समुझव सो पुनि सुनि समुझाइव आन।
स्रम-हर घाट प्रबंध बर तुलसी परम प्रमान ॥४१८॥

पंचम सर्ग

जतन अनूपम जासु वर सकल-कला-गुन-धाम।
अबिनासी अव्यय अमल सो यह तनु धरि राम ॥४१९॥
सदा प्रकासक रूप यर अस्त न अपर न आन।
अप्रमेय अद्वैत अज या तें दुरत न ग्यान ॥४२०॥
जानहिँ हंस रसाल कहँ तुलसी संत न आन।
जाकी कृपा-कटाच्छ तें पाए पद निरबान ॥४२१॥
तजत सलिल अपि पुनि गहत घटत बढ़त नहिँ रीति।
तुलसी यह गति उर निरखि करिय राम-पद-प्रीति ॥४२२॥
चुंबक आहन रीति जिमि संतन हरि सुख-धाम।
जानति रिच्छ-रसम सफरि तुलसी जानत राम ॥४२३॥
भरत हरत दरसत सबहि पुनि अदरस सब काहु।
तुलसी सु-गुरु-प्रसाद-बल होत परम पद लाहु ॥४२४॥
जथा प्रतच्छ सरूप यहु जानत है सब कोय।
तथा हि लय-गति को लखब असमंजस अति सोय ॥४२५॥
जथा सकल अप जात अपि रविमंडल के माहिँ।
मिलन तथा जिव राम पद होत तहां लय नाहिँ ॥४२६॥
करम कोस सँग लै गयो तुलसी अपनी खानि।
जहां जाइ बिलसै तहां परै कहां पहिचानि ॥४२७॥
ज्यों धरनी महँ हेतु सब रहत जथा धरि देह।
त्यों तुलसी लय राम महँ मिलन कबहुँ नहिँ एह ॥४२८॥
सोखक पोखक समुझ सुचि राम-प्रकास-सरूप।
जथा तथा बिसु देखिए जिमि आदरस अनूप ॥४२९॥
करम मिटाए मिटत नहिँ तुलसी किए बिचार।
करतबही को फेर है या बिधि सार असार ॥४३०॥

एक किए है दूसरे बहुरि तीसरो अंग।
तुलसी कैसहु ना मिटै अतिसय करम तरंग ॥४३१॥
इन दोउन्ह तें रहित भौ कोउ न राम तजि आन।
तुलसी यह गति जानिहैं कोउ कोउ संत सुजान ॥४३२॥
संतन को लै अभि-सदन समुझहिं सुगति प्रवीन।
करम-बिपरजय कबहुँ नहिं सदा राम-रस लीन ॥४३३॥
सदा एक-रस संत सिय निहचय निसिकर जान।
राम-दिवाकर दुख-हरन तुलसी सील-निधान ॥४३४॥
संतन की गति उरबिजा जानहु ससि परमान।
रमित रहत रस-मय सदा तुलसी रति नहिँ आन ॥४३५॥
जात-रूप जिमि अनल मिलि ललित होत तन ताय।
संत सीतकर सीय तिमि लसहिँ राम-पद पाय ॥४३६॥
आपुहि बाँधत आपु हठि कौन छुड़ावत ताहि।
सुख-दायक देखत सुनत तदपि सो मानत नाहिँ ॥४३७॥
जौन तार तें अधम गति उरध तौन गति जात।
तुलसी मकरी तंतु इव कबहुँ न करम नसात ॥४३८॥
जहाँ रहत तहँ सह सदा तुलसी तेरी बानि।
सुधरै बिधि-बस होइ जब सत-संगति पहिचानि ॥४३९॥
रवि रजनीस धरा तथा यह असथिर असथूल।
सूछम गुन को जीव कर तुलसी सो तन-मूल ॥४४०॥
आवत आप रवि तें जथा जात तथा रबि मांहि।
जहँ तें प्रगट तहाँ दुरत तुलसी जानत ताहि ॥४४१॥
प्रगट भए देखत सकल दुरत लखत कोइ कोइ।
तुलसी यह अतिसय अगम बिनु गुरु सुगम न होइ ॥४४२॥
या जग जे नय-हीन नर बरबस दुख-मग जाहिं।
प्रगटत दुरत महा-दुखी कहँ लगि कहियत ताहि ॥४४३॥

सुख-दुख-मग अपने गहे मग कहुँ लगत न धाय।
तुलसी राम-प्रसाद बिन सो किमि जानो जाय ॥४४४॥
महि तें रवि रवि तें अवनि सपनेहुँ सुख कहुँ नाहिँ।
तुलसी तब लगि दुखित अति ससि-मग लहत न ताहि ॥४४५॥
संतन की गति सीत-कर लेस कलेस न होय।
सो सिय पद सुखदा सदा जासु परम-पद सोय ॥४४६॥
तजत अमिय ससि जान जग तुलसी देखत रूप।
गहत नहीं सब कहँ बिदित अतिसय अमल अनूप ॥४४७॥
ससि-कर सुखद सकल जगत को तेहि जानत नाहिँ।
कोक कमल कहँ दुखद कर जदपि दुखद नहिँ ताहि ॥४४८॥
बिन देखे समुझे सुने सोउ भव मिथ्या-बाद।
तुलसी गुरु गम कै लखै सहजहिँ मिटै बिखाद ॥४४९॥
बरखि बिस्व हरखित करत हरत ताप अघ-प्यास।
तुलसी दोख न जलद कर जो जल जरै जवास ॥४५०॥
चंद्र देव अमि लेत बिख देखहु मनहिँ बिचार।
तुलसी तिमि सिय संत बर महिमा बिसद अपार ॥४५१॥
रसमि बिदित रवि-रूप लखु सीत सीत-कर जान।
लसत जोग जस-कार भव तुलसी समुझु समान ॥४५२॥
लेत अवनि रवि अंसु कहँ देत अमिय अप-सार।
तुलसी सूछम को सदा रवि रजनीस अधार ॥४५३॥
भूमि भानु असथूल अप सकल चराचर-रूप।
तुलसी बिनु गुरु ना लहै यह मत अमल अनूप ॥४५४॥
तुलसी जे नय-लीन नर ते निसि-कर-तन-लीन।
अपर सकल रवि गत भए महा-कष्ट अति दीन ॥४५५॥
तुलसी कवनहुँ जोग तें सत-संगति जब होय।
राम-मिलन संसय नहीं कहहिँ सु-मति सब कोय ॥४५६॥

सेवक पद सुख-कर सदा दुख-द सेव्य-पद जान।
जथा बिभीखन रावनहि तुलसी समुझु प्रमान ॥४५७॥
सीत-उष्ण-कर-रूप सम निसि-दिन कर करतार।
तुलसी तिन कहँ एक नहिँ निरखहु करि निरधार ॥४५८॥
नहिँ नयनन्ह काहू लखेउ धरत नाम सब कोइ।
तातें सांचो है समुझु भूठ कबहुँ नहिँ होइ ॥४५९॥
वेद कहत सबको बिदित तुलसी अमिय-सुभाव।
करत पान अरु रुज हरत अबिरल अमल प्रभाव ॥४६०॥
गंध सीत अपि उष्णता सबहि बिदित जग जान।
महि बन अनल सो अनिल गत बिन देखे परमान ॥४६१॥
इन महँ चेतन अमल अल बिलखत तुलसीदास।
सो पद गुरु-उपदेस सुनि सहज होत परकास ॥४६२॥
येहि विधि तें बर बोध यह गुरु-प्रसाद कोउ पाव।
हैं ते अल तिहुँ काल महँ तुलसी सहज प्रभाव ॥४६३॥
काक-सुता-सुत वा सुता मिलत जननि पितु धाय।
आदि-मध्य-अवसान गत चेतन सहज सुभाय ॥४६४॥
समता स्वारथ-हीन तें होत सु-बिसद बिवेक।
तुलसी यह नितही फबै जिनहिँ अनेक न एक ॥४६५॥
सब स्वारथ स्वारथ रटत तुलसी घटत न एक।
ज्ञान-रहित अज्ञान-रत कठिन कु-मन कर टेक ॥४६६॥
स्वारथ सो जानहु सदा जासों विपति नसाय।
तुलसी गुरु-उपदेस बिनु सो किमि जानेउ जाय ॥४६७॥
कारज स्वारथ-हित करै कारन करै न होइ।
मनवा ऊख बिसेख तें तुलसी समझहु सोइ ॥४६८॥
कारन कारज जान तो सब काहू परमान।
तुलसी कारन कार जो सो तैं अपर न आन ॥४६९॥

बिन करता कारज नहीं जानत है सब कोइ।
गुरु-मुख स्रवन सुनत नहीं प्राप्त कवन विधि होइ ॥४७०॥
करता कारन कारजहु तुलसी गुरु परमान।
लोपत करता मोह-बस ऐसउ अबुध मलान ॥४७१॥
अनिल सलिल बिधि जोग तें जथा वीचि बहु होइ।
करत करावत नहिँ कछुक करता कारन सोइ ॥४७२॥
छेम-धरन करतार कर तुलसी-पति पर-धाम।
सो बरतर ता सम न कोउ सब बिधि पूरन-काम ॥४७३॥
करता कारन सार-पद अव्यय अमल अभेद।
करम घटत अपि बढ़त है तुलसी जानत बेद ॥४७४॥
स्वेद-ज जौन प्रकार तें आप करै कोउ नाहिँ।
भएउ प्रगट तेहि के सुनौ कौन बिलोकत ताहि ॥४७५॥
भई बिखमता करम महँ समता किए न होइ।
तुलसी समता समुझ कर सकल मान मद धोइ ॥४७६॥
सम-हित सहित समस्त जग सुहृद जानु सब काहु।
तुलसी यह मत धारु उर दिन प्रति अति सुख लाहु ॥४७७॥
यह मन महँ निहचय धरहु है कोउ अपर न आन।
कासन करत बिरोध हठि तुलसी समुझु प्रमान ॥४७८॥
महि जल अनल सो अनिल नभ तहाँ प्रगट तुव रूप।
जानि जाइ बर बोध तें अति सुभ अमल अनूप ॥४७९॥
जो पै आकसमात तें उपजै बुद्धि बिसाल।
ना तौ अति छल हीन है गुरु-सेवन कछु काल ॥४८०॥
कारज जुग जानहु हिए नित्य अनित्य समान।
गुरु - गम ते देखत सु - जन कह तुलसी परमान ॥४८१॥
महि मयंक ग्रह-नाथ को आदि ग्यान भव भेद।
ता विधि तेई जीव कहँ होत समुझ बिनु खेद ॥४८२॥

परो फेर निज करम महँ भ्रम भव को यह हेत।
तुलसी कहत सु-जन सुनहु चेतन समुझ अचेत ॥४८३॥
नाम - कार दूखन नहीं तुलसी किए बिचार।
करमन की घटना समुझि ऐसे बरन उचार ॥४८४॥
सु-जन कु-जन महि गत जथा तथा भानु ससि माहिँ।
तुलसी जानत ही सुखी होत समुझ बिन नाहिँ ॥४८५॥
मातु-तात-भव रीति जिमि तिमि तुलसी गति तोरि।
मातु न तात न जानु तब है तेहि समुझ बहोरि ॥४८६॥
सरब सकल तैं है सदा बिसलेसित सब ठौर।
तुलसी जानहिँ सुहृद ए ते अति मति-सिर-मौर ॥४८७॥
अलंकार घटना कनक रूप नाम गुन तीन।
तुलसी राम-प्रसाद तें परखहिँ परम प्रवीन ॥४८८॥
एक पदारथ बिबिध गुन संग्या अगम अपार।
तुलसी सु-गुरु - प्रसाद तें पाए पद निरधार ॥४८९॥
गंधन मूल उपाधि बहु भूखन तन गन जान।
सोभा गुन तुलसी कहहिँ समुझहिँ सुमति-निधान ॥४९०॥
जैसो जहां उपाधि तहँ घटित पदारथ रूप।
तैसो वहां प्रभास मन गुन गन सुमति अनूप ॥४९१॥
जानु वस्तु असथिर सदा मिटत मिटाए नाहिँ।
रूप नाम प्रगटत दुरत समुझि बिलोकहु ताहि ॥४९२॥
पेखि रूप संग्या कहब गुन सु-बिवेक बिचार।
इतनोई उपदेस बर तुलसी किए बिचार ॥४९३॥
सदा सगुन सीता-रमन सुख-सागर बल-धाम।
जन तुलसी परखे परम पाए पद बिस्राम ॥४९४॥
सगुन पदारथ एक नित निरगुन अमित उपाधि।
तुलसी कहहिँ बिसेख तें समुझ सुगति सुठि साधि ॥४९५॥

जथा एक कहँ बेद गुन ता महँ को कछु नाहिँ।
तुलसी बरतत सकल है समुझत कोउ कोउ ताहिँ ॥४९६॥
तुलसी जानत साधु-जन उदय-अस्त-गत भेद।
बिन जाने कैसे मिटै बिबिध जनन मन-खेद ॥४९७॥
संसय सोक स-मूल रुज देत अमित दुख ताहि।
अहि अनुगत सपने बिबिध जाइ पराय न जाहि ॥४९८॥
तुलसी सांचो सांप है जब लगि खुलैं न नैन।
सो तब लगि जब लगि नहीं सुनै सु-गुरु-बर बैन ॥४९९॥
पूरन परमारथ दरस परस न जौ लगि आस।
तौ लगि खन न अघात नर जौ लगि जल न प्रगास ॥५००॥
तौ लगि हम तें सब बड़ो जौ लगि है कछु चाह।
चाह रहित कह को अधिक पाय परम-पद थाह ॥५०१॥
कारन करता है अचल अपि अनादि अज-रूप।
तातें कारज बिपुल-तर तुलसी अमल अनूप ॥५०२॥
करता जानि न परत है बिन गुरु-बर-परसाद।
तुलसी निज सुख बिधि-रहित केहि बिधि मिटै बिखाद ॥५०३।
मृन-मय घट जानत जगत बिन कुलाल नहिँ होइ।
तिमि तुलसी करता रहित करम करै कहु कोइ ॥५०४॥
तातें करता-ग्यान करु जा तें करम प्रधान।
तुलसी ना लखि पाइहौ किए अमित अनुमान ॥५०५॥
अनूमान साछी रहित होत नहीं परमान।
कह तुलसी परतच्छ जो सो कहु अपर को आन ॥५०६॥
मृद कारन करता सहित कारज किए अनेक।
जौं करता जानै नहीं तौ कहु कवन बिबेक ॥५०७॥
स्वरन-कार करता कनक कारन प्रगट लखाय।
अलंकार कारज सुख-द गुन सोभा सरसाय ॥५०८॥

चामीकर भूखन अमित करता करतव भेद।
तुलसी जे गुरु-गम-रहित ताहि रमित अति-खेद ॥५०९॥
तन निमित्त जहँ जो भयो तहँ सोई परमान।
जिन जाने माने तहाँ तुलसी कहहिँ सु-जान ॥५१०॥
मृन-मय भाजन विविध विधि करता मन भव-रूप।
तुलसी जाने ते सुख-द गुरु-गम-ग्यान अनूप ॥५११॥
सब देखत मृत भाजनहि कोउ कोउ लखत कुलाल।
जाके मन के रूप बहु भाजन विलघु विसाल ॥५१२॥
एकै रूप कुलाल को माटी एक अनूप।
भाजन अमित विसाल लघु तौ करता मन रूप ॥५१३॥
जहाँ रहत बरनत तहाँ तुलसी नित्य सरूप।
भूत न भावी ताहि कह अतिसय अमल अनूप ॥५१४॥
स्वास समीर प्रतच्छ अप स्वच्छादर्स लखात।
तुलसी राम-प्रसाद बिन अविगति जानि न जात ॥५१५॥
तुलसी तुल रहि जात है जुग-तन अचल उपाधि।
यह गति तेहि लखि परत जेहि भई सुमति सुठि साधि ॥५१६॥
करता कारन काल के जोग करम मत जान।
पुनः काल करता दुरत कारन रहत प्रमान ॥५१७॥

षष्ठ सर्ग

जल थल तन गत है सदा तैं तुलसी तिहुँ काल।
जनम मरन समुझे बिना भासत समन विसाल ॥५१८॥
तैं तुलसी करता सदा कारन सबद न आन।
कारज संग्या सुख-दुख-द बिनु गुरु तेहि किमु जान ॥५१९॥

कारज-रत करता समुझि सुख दुख भोगत सोइ।
तुलसी श्री-गुरुदेव बिन दुख-प्रद दूरि न होइ ॥५२०॥
कारन सबद सरूप है संग्या गुन भव जान।
करता सुर-गुरु ते सुखद तुलसी अपर न आन ॥५२१॥
गंध बिभावरि नीर रस सलिल अनल गत ग्यान।
वायु वेग कहँ बिनु लखे बुध-जन कहहिँ प्रमान ॥५२२॥
अनुस्वार अच्छर रहित जानत हैं सब कोइ।
कह तुलसी जहँ लगि बरन तासु रहित नहिँ होइ ॥५२३॥
आदिहु अंतहु है सोई तुलसी और न आन।
बिनु देखे समुझे बिना किमि कोउ करै प्रमान ॥५२४॥
रहित बिंदु सब बरन तें रेफ रहित सब जान।
तुलसी स्वर-संजोग तें होत बरन पद मान ॥५२५॥
अनुस्वार सूछम जथा जथा बरन असथूल।
जो सूछम असथूल सो तुलसी कबहुँ न भूल ॥५२६॥
अनिल अनल पुनि सलिल रज तन गत तन तब होइ।
बहुरि सो रज गत जल अनल मरुत सहित रवि सोइ ॥५२७॥
औरो भेद सिधांत यह निरखु सु-मति करि सोइ।
तुलसी सुत भव जोग बिनु पितु संग्या नहिँ होइ ॥५२८॥
संग्या कह तब गुन समुझ सुनब सबद परमान।
देखब रूप बिसेस है तुलसी बेद बखान ॥५२९॥
होत पिता तें पुत्र जिमि जानत को कहु नाहिँ।
जौ लगि सुत परसो नहीं पितु पद लहइ न ताहि ॥५३०॥
तिमि बरनहिँ तें बरन कर संग्या बरन सँजोग।
तुलसी होइ न बरन कर जौ लगि बरन बियोग ॥५३१॥
तुलसी देखहु सकल कहँ पहि बिधि सुत आधीन।
पितु-पद परखि सु-दृढ़ भएउ कोउ कोउ परम प्रबीन ॥५३२॥

जहँ देखो सुत-पद सकल भएउ पिता-पद लोप।
तुलसी सो जानै सोई जासु अमोलिक चोप ॥५३३॥
ख्यात सुश्रन तिहुँ लोक महँ महा-प्रबल अति सोइ।
जो कोउ तेहि पाछे करै सो पुनि आगे होइ ॥५३४॥
तुलसी होत नहीं कछुक सुश्रन रहित व्यवहार।
ताही तें अगरज भएउ सब बिधि तेहि प्रचार ॥५३५॥
सुश्रन देखि भूले सकल भए अति परम अधीन।
तुलसी जेहि समुझाइए सो मन करत मलीन ॥५३६॥
मानत सो साँचो हिए सुनत सुनावत बादि।
तुलसी ते समुझत नहीं जो पद अमल अनादि ॥५३७॥
जाहि कहत हैं सकल सो जेहि कहतब सो ऐन।
तुलसी ताहि समुझि हिए अजहुँ करै चित चैन ॥५३८॥
तुलसी जो है सो नहीं कहत आन सब कोइ।
एहि बिधि परम बिडंबना कहहु न काको होइ ॥५३९॥
गुरु करिबो सिद्धांत यह होइ जथारथ बोध।
अनुचित उचित लखाइ उर तुलसी मिटत बिरोध ॥५४०॥
सत-संगति को फल यही संसय रहइ न लेस।
ह्वै असथिर सुचि सरल चित पावै पुनि न कलेस ॥५४१॥
जौं मरिबो पद सबनि को जहँ लगि साधु असाधु।
कवन हेतु उपदेस गुरु सत-संगति भव बाधु ॥५४२॥
जौं भावी कछु है नहीं भूठो गुरु सत-संग।
ऐसि कुमति तें छूट गुरु संतन को परसंग ॥५४३॥
जौं लौं लखि नाहीं परत तुलसी पर-पद आप।
तौ लगि मोह-बिवस सकल कहत पूत कहँ बाप ॥५४४॥
जहँ लगि संग्या बरन-भव जासु कहे तें होइ।
ते तुलसी सो है स-चल आन कहां कहु कोइ ॥५४५॥

अपने नैननि देखि जे चलहिँ सु-मति वर लोग।
तिनहिँ न बिपति बिखाद रुज तुलसी सुमति सु-जोग ॥५४६॥
मृगा गगन-चर ग्यान बिनु करत नहीं पहिचान।
पर बस सठ हठि तजत सुख तुलसी फिरत भुलान ॥५४७॥
कहा कहौं तेहि तोहि को जेहि उपदेसहु तात।
तुलसी कहत सु-दुख सहत समुझ रहित हित-बात ॥५४८॥
बिनु काटे तरु-वर जथा मिटै कौन विधि छाहिँ।
त्यों तुलसी उपदेस बिनु निहसंसय कोउ नाहिँ ॥५४९॥
अपनो करतब आपु लखि सुनि गुनि आपु विचार।
तौ तोहि को दुखदा कहा सुखदा सुमति अधार ॥५५०॥
ब्राह्मन बर विद्या-विनय सुरुति-बिबेक-निधान।
पथ-रति अनय-अतीत मति सहित दया स्रुति-मान ॥५५१॥
विनय छत्र सिर जासु के प्रति पद पर-उपकार।
तुलसी सो छत्री सही रहित सकल-व्यभिचार ॥५५२॥
वैस्य विनय मगु पगु धरै हरै कटुक बर बैन।
सदय सदा सुचि रुचि सरल ताहि अचल सुख ऐन ॥५५३॥
सूद्र छुद्र पथ परिहरै हृदय बिप्र - पद मान।
तुलसी मन समता सु-मति सकल जीव सम जान ॥५५४॥
हेतु बरन बर सुचि रहनि रस निरास सुख-सार।
चाह न काम-सुरा न रम तुलसी सु-दृढ़ बिचार ॥५५५॥
जथा लाभ संतोख-रत गृह मग बन सम रीति।
ते तुलसी सुख-मय सदा जिन तन बिभव बिनीति ॥५५६॥
रहै जहां विचरै तहां कमी कहूं कछु नाहिँ।
तुलसी तहँ आनंद सँग जात जथा रुग छाहिँ ॥५५७॥
करत तरक जेहि की सदा सो मन दुख-दातार।
तुलसी जौं समुझै नहीं तो तेहि तजइ बिचार ॥५५८॥

कहत सुनत समुझत लखत तेहि तें बिपति न जाइ।
तुलसी सब तें बिलग है जौ लगि नहिँ ठहराइ॥५५९॥
सुनत कोटि कोटिन कहत कौड़ी हाथ न एक।
देखत सकल पुरान स्रुति तापर रहित बिबेक॥५६०॥
समुझत है संतोख धन या तें अधिक न आन।
गहत नहीं ता तें कहत तुलसी अबुध मलान॥५६१॥
कहा होत देखे सुने अरु समुझे सब रीति।
तुलसी जौ लगि होत नहिँ सुखद राम-पद प्रीति॥५६२॥
कोटिन साधन के किए अंतर मल नहिँ जाइ।
तुलसी जौ लगि सकल गुन सहित न करम नसाइ॥५६३॥
चाह बनी जौ लगि सकल तौ लगि साधन सार।
ता महँ अमित कलेस-कर तुलसी देखु बिचार॥५६४॥
चाह किए दुखिया सकल ब्रह्मादिक सब कोइ।
निहचलता तुलसी कठिन राम कृपा बस होइ॥५६५॥
अपनो करम न आपु कहँ भलो मंद जेहि काल।
तब जानब तुलसी भई अतिसय बुद्धि बिसाल॥५६६॥
तुलसी जौ लौं लखि परत देह प्रान कै भेद।
तौ लगि कैसे कै मिटइ करम-जनित बहु खेद॥५६७॥
जोइ प्रान सो देह है प्रान देह नहिँ दोय।
तुलसी जो लखि पाइहै सो निरदय नहिँ होय॥५६८॥
तुलसी तैं झूठो भयो करि झूठे संग प्रीति।
है साँचो है साँच जब गहै राम की रीति॥५६९॥
झूठी रचना साँच है रचत नहीं अलसात।
बरजेहू झगरत बिहठि नेकु न बूझत बात॥५७०॥
करम खरी कर मोह थल अंक चराचर जाल।
भरत हरत भरि हरि गनत जगत ज्योतिसी काल॥५७१॥

कहत काल किल सकल बुध ताकर यह ब्यवहार।
उतपति-थिति-लय होत है सकल तासु अनुहार ॥५७२॥
अंकुर किसलय दल बिपुल साखा-जुत घर मूल।
फूलि परत रितु अनुहरत तुलसी सकल सतूल ॥५७३॥
कहतब करतब सकल तेहि जाहि रहित नहिँ आन।
जान न मान न आन विधि अनूमान अभिमान ॥५७४॥
हानि लाभ जय बिजय विधि ज्ञान दान सनमान।
खान पान सुचि रुचि अरुचि तुलसी विदित विधान ॥५७५॥
सालक पालक सम बिखम भरम मगन गति ज्ञान।
अट घट लट नट नादि जहँ तुलसी रहित न जान ॥५७६॥
कठिन करम-करनी कथन करता कारक काम।
काय-कष्ट-कारन करम होत काल सह साम। ५७७॥
चित रत वित ब्यवहार बिधि अगम सुगम जय मीच।
धीर धरम धारन हरन तुलसी परत न बीच ॥५७८॥
खरब आतमा बोध वर खर बिनु कबहुँ न होइ।
तुलसी खसम-बिहीन जे ते खर-तर नहिँ सोइ ॥५७९॥
सबद रूप बिबरन बिसद तासु जोग भव नाम।
करता नर बहु जाति तेहि संग्या सब गुन-धाम ॥५८०॥
नाम जाति गुन देखिकै भएउ प्रबल उर भर्म।
तुलसी गुरु उपदेस विनु जानि सकै को मर्म ॥५८१॥
अपन करम बर मानि कै आपु बँधेउ सब कोइ।
कारज-रत करता भएउ आपु न समुझत सोइ ॥५८२॥
करता कारन को लखै कारज अगम प्रभाव।
जो जहँ सो तहँ तहँ हरख तुलसी सहज सुभाव ॥५८३॥
तुलसी विनु गुरु को लखे बरतमान बिपरीत।
कहु केहि कारन तें भएउ सूर उसन ससि सीत ॥५८४॥

करता कारन करम तेँ पर परमातम ग्यान।
होत न बिनु उपदेस गुरु जौ पढ़ वेद पुरान ॥५८५॥
प्रथम ग्यान समुझै हिए विधि निखेद व्यवहार।
उचितानुचितहिँ हेरि हिय करतव करइ सँभार ॥५८६॥
जब मन महँ ठहराइ विधि स्रो-गुरु-बर-परसाद।
एहि विधि परमातम लखै तुलसी मिटइ बिखाद ॥५८७॥
बरबस करत बिरोध हठि होन चहत अक-हीन।
गहि गति बक वृक स्वान इव तुलसी परम प्रवीन ॥५८८॥
घ्राक करम भेखज विदित लखत नहीं मति-हीन।
तुलसी सठ अक-बस बिहठि दिन दिन दीन मलीन ॥५८९॥
करता ही तें करम-जुग सो गुन-दोख सरूप।
करत भोग करतब जथा होइ रंक किन भूप ॥५९०॥
वेद पुराणहु सास्त्र जत तत बुधि-बल अनुमान।
निज कर करि करि है बहुरि कह तुलसी परिमान ॥५९१॥
बिबिध प्रकार कथन करै जाहि जथा भौ भान।
तुलसी सु-गुरु प्रसाद-बल कोइ कोइ कहइ प्रमान ॥५९२॥
उर डर 'अतिलघु होन की भौ लघु सुरति भुलानि।
स्वरन-लाहु लखि परत नहिँ लखत लोह की हानि ॥५९३॥
नयन-दोख निज कहत नहिँ बिबिध बनावत बात।
सहत जानि तुलसी बिपति तदपि न नेक लजात ॥५९४॥
करत चातुरी मोह-बस लखत न निज-हित-हान।
सुक मरकट इव गहत हठ तुलसी परम-सुजान ॥५९५॥
दुखिया सकल प्रकार सठ समुझि परत तेहि नाहि।
लखत न कंटक मीन जिमि असन भखत भ्रम माहिँ ॥५९६॥
तुलसी निज मन-कामना चहत सून कहँ सेइ।
बचन गाय सब के बिबिध कहहु पयस को देइ ॥५९७॥

बातहि बातहि बनि पड़ै नातहि बात नसाय।
बातहि आदिहि दीप भी बातहि अंत बुताय ॥५९८॥
बातहि तें बनि आवही बातहि तें बन जात।
बातहि तें बरवर मिलत बातहिँ तें बैरात ॥५९९॥
बात बिना अतिसय बिकल बातहि तें हरखात।
बनत बात बर बात तें करत घात बर घात ॥६००॥
तुलसी जाने बात बिनु बिगरत हर एक बात।
अनजाने दुख बात के जानि परे कुसलात ॥६०१॥
प्रेम बैर अरु पुन्य अघ जस अपजस जय हान।
बात बीज इन सबन को तुलसी कहहिँ सुजान ॥६०२॥
बंचक-बिधि-रत नय-रहित बिधि हिंसा अति लीन।
तुलसी जग महँ बिदित बर नरक निसेनी तीन ॥६०३॥
सद्धा भजन गुरु साधु द्विज जीव-दया सम जान।
सुख-द सु-नय-रत सत्य-व्रत सरग सप्त सोपान ॥६०४॥
जे नर जग गुन-दोख-जुत तुलसी बदत बिचार।
कबहुँ सुखी कबहूँ दुखी उदय-अस्त-ब्यवहार ॥६०५॥
कारज जुग कै जुगल तम काल अचल बलवान।
त्रिबिधि बिबल हैं ते हठहि तुलसी कहहि प्रमान ॥६०६॥
अनुभव अमल अनूप गुरु कछुक साध्य-गति होइ।
घचह काल-क्रम-दोख तें कहहिँ सु-बुध सब कोइ ॥६०७॥
सब बिधि पूरन धाम बर राम अपर नहिँ आन।
जाके कृपा-कटाच्छ तें होत हिए दृढ़ ग्यान ॥६०८॥
सो स्वामी सो तर सखा सो बर-सुख दातार।
तात मात आपद-हरन सो असमय-आधार ॥६०९॥
सुख-द दुख-द कारन कठिन जानत को तेहि नाहिँ,
जानेहु पर बिनु गुरु-कृपा करतब बनत न काहि ॥६१०॥

तुलसी सकल प्रधान है बेद-बिदित सुख-धाम।
ता महँ समुझब कठिन अति जुगल भेद गुन नाम ॥६११॥
नाम कहत सुख होत है नाम कहत दुख जात।
नाम कहत दुख जात दुरि नाम कहत सुख-खात ॥६१२॥
नाम कहत वैकुंठ सुख नाम कहत अघ खान।
तुलसी ता तें उर समुझि करहु नाम पहिचान ॥६१३॥
चारो चौदह अष्ट-दस रस समुझे भरि पूरि।
नाम भेद समुझे बिना सकल समुझ महँ धूरि ॥६१४॥
वार दिवस निसि मास सित असित बरख परमान।
उत्तर दक्खिन आस रवि भेद सकल महँ जान ॥६१५॥
करम सुभासुभ मित्र अरि रोदन हसन बखान।
और भेद अति अमित है कहँ लगि कहिय प्रमान ॥६१६॥
जहँ लगि जन देखब सुनब समुझब कहब सु-रीत।
भेद बिना कछु है नहीं तुलसी वदहिँ विनीत ॥६१७॥
भेद याहि बिधि नाम महँ बिनु गुरु जान न कोय।
तुलसी कहहिँ बिनीत बर जो बिरंचि सिव होय ॥६१८॥

सप्तम सर्ग

तिनहिँ पढ़े तिनहीं सुने तिनहिँ सुमति-परगास।
जिन आसा पाछे करी गहि अवलंब निरास ॥६१९॥
तब लगि जोगी जगत-गुरु जब लगि रहै निरास।
जब आसा मन मे जगी जग गुरु जोगी दास ॥६२०॥
हित पुनीत स्वारथ सबहिँ अहित असुचि बिनु चाड़।
निज मुख मानिक सम दसन भूमि परत भी हाड़ ॥६२१॥

निज गुन घटत न नाग-नग हरखि परिहरत कोल।
गुंजा प्रभु भूखन करे ता तें बढ़इ न मोल ॥६२२॥
देइ कुसुम करि वास तिल परिहरि खरि रस लेत।
स्वारथ-हित भू-तल भरे मन मेचक तन सेत ॥६२३॥
अँसुअन पथिक निरास तें तट मुँह सजल सरूप।
तुलसी किन बंचे नहीं इन मरुथल के कूप ॥६२४॥
तुलसी मित्र महा सुखद सवहि मित्र की चाड़।
निकट भए विलसत सकल एक छपाकर छाड़ ॥६२५॥
मित्र-कोप वर तर सुखद धनहित मृदुल कराल।
द्रुम-दल सिसिर सुखात सव सह निदाघ अति लाल ॥६२६॥
खल नर गुन मानैं नहीं मेटहिँ दाता-ओप।
जिमि जल तुलसी देत रवि जलद करत तेहि लोप ॥६२७॥
वरखत हरखत लोग सव करखत लखत न कोइ।
तुलसी भूपति भानु-सम प्रजा-भाग-वस होइ ॥६२८॥
समय परें सु-पुरुख नरहि लघु करि गनिय न कोइ।
नायक पीपर-बीज-सम बचै तो तरु-वर होइ ॥६२९॥
वड़े राम-रत जगत में कै पर-हित चित जाहि।
प्रेम-पंज निवही जिन्हें वड़े सो सवही चाहि ॥६३०॥
माली-भानु-कृसानु-सम नीति-निपुन महिपाल।
प्रजा-भाग वस होहिँगे कवहिँ कवहिँ कलिकाल ॥६३१॥
तुलसी संतन तें सुने संतत यहै विचार।
तन धन चंचल अचल जग जुग जुग पर-उपकार ॥६३२॥
ऊंचहिँ आपद विभव वर नीचहिँ दत्त न होइ।
हानि वृद्धि द्विजराज कहँ नहिँ तारा-गन कोइ ॥६३३॥
वड़े रतहिँ लघु के गुनहिँ तुलसी लघुहि न हेत।
गुंजा तें मुकुता अरुन गुंजा होत न स्वेत ॥६३४॥

होहिँ बड़े लघु समय सह तौ लघु सकहिँ न काढ़ि।
चंद दूबरो कूबरो तऊ नखत तें बाढ़ि ॥६३५॥
उरग तुरग नारी नृपति नर नीचो हथियार।
तुलसी परखत रहव नित इन्हहिँ न पलटत बार ॥६३६॥
दुरजन आपु समान करि को राखइ हित-लागि।
तपत तोय सह जाहि पुनि पलटि बुतावत आगि ॥६३७॥
मंत्र तंत्र तंत्री त्रिया पुरुख अस्त्र धन पाठ।
प्रति गुन जोग वियोग तें तुरत जाहिँ ये आठ ॥६३८॥
नीच निचाई नहिँ तजइ जौं पावइ सत-संग।
तुलसी चंदन विटप वसि विनु विख भै न भुअंग ॥६३९॥
दुरजन दरपन सम सदा करि देखो हिय दौर।
सनमुख की गति और है विमुख भए कछु और ॥६४०॥
मित्र क अवगुन मित्र जो पर पहँ भाखत नाहिँ।
कूप छांह जिमि आपनी राखत आपुहि माहिँ ॥६४१॥
तुलसी सो समरथ सु-मति सुकृती साधु सुजान।
जो विचारि व्यवहरइ जग खरच लाभ अनुमान ॥६४२॥
सिख्य सखा सेवक सचिव सु-तिय सिखावन सांच।
समुझि करिय पुनि परिहरिय पर-मन-रंजन पांच ॥६४३॥
तूठहिँ निज रुचि काज करि रूठहिँ काज विगारि।
तिया तनय सेवक सखा मन के कंटक चारि ॥६४४॥
नगर नारि भोजन सचिव सेवक सखा अगार।
सरस परिहरे रंग रस निरस विखाद विकार ॥६४५॥
दीरघ-रोगी दारिदी कटु-बच लोलुप लोग।
तुलसी प्रान समान तउ तुरत त्यागिवे जोग ॥६४६॥
धाय लगे लोहा ललकि खैंचि लेइ नइ नीचु।
समरथ पापी सों वयर जानि वेसाही मीचु ॥६४७॥

तुलसी स्वारथ सामुहो परमारथ तन पीठि।
अंध कहे दुख पाइहै डिठिआरे केहि डीठि ॥६४८॥
अन-समुझे अनु-सोचनो अवसि समुझिए आपु।
तुलसी आपन समुझ विनु पल पल पर परितापु ॥६४९॥
कूप खनहिँ मंदिर जरत लावहिँ धारि वबूर।
वोए लव चह समय बिनु कुमति-सिरोमनि कूर ॥६५०॥
निडर अनय करि अन-कुसल बीसवाहु सम होय।
गयो गयो कह सुमति सव भयो कुमति कह कोय ॥६५१॥
वहु सुत वहु रुचि वहु वचन वहु अचार व्यवहार।
इनको भलो मनाइवो यह अग्यान अपार ॥६५२॥
अपजस जोग कि जानकी मनि चोरी की कान्ह।
तुलसी लोग रिझाइवो करसि कातिवो नान्ह ॥६५३॥
माँगि मधुकरी खात जे सोवत पाय पसारि।
पाप प्रतिष्ठा बढ़ि परी तातेँ वाढ़ी रारि ॥६५४॥
लही आँखि कव आँधरो वाँझ पूत कव पाय।
कव कोढ़ो काया लही जग वहराइच जाय ॥६५५॥
या जग की विपरीत गति काहि कहौं समुझाय।
जल जल गौ झख वाँधि गौ जन तुलसी मुसकाय ॥६५६॥
कै जुझिवो कै वूझिवो दान कि काय-कलेस।
चारि चारु परलोक-पथ जथा-जोग उपदेस ॥६५७॥
वुध किसान सर वेद निज मतेँ खेत सव सींच।
तुलसी कृखि-गति जानिवो उत्तम मध्यम नीच ॥६५८॥
सहि कु-वोल साँसति सकल पाय अनट अपमान।
तुलसी धरम न परिहरिय कहि करि गए सु-जान ॥६५९॥
अनहित ज्यौं पर-हित किए आपन हित तम जान।
तुलसी चारु विचार मति करिय काज सम मान ॥६६०॥

मिथ्या माहुर सु-जन कहँ खलहिँ गरल सम साँच।
तुलसी परसि पराइ जिमि पारद पावक आँच ॥६६१॥

तुलसी खल बानी विमल सुनि समुझव हिय हेरि।
राम-राज-बाधक भई मंद मंथरा चेरि ॥६६२॥

दान दयादिक जुद्ध के बीर धीर नहिँ आन।
तुलसी कहहिँ विनीत इति ते नर बर परमान ॥६६३॥

तुलसी साथी विपति के विद्या विनय विवेक।
साहस सु-करित सत्य-व्रत राम-भरोसो एक ॥६६४॥

तुलसी असमय के सखा साहस धरम बिचार।
सु-करित सील स्वभाव रिजु राम-चरन-आधार ॥६६५॥

विद्या विनय विवेक रति रीति जासु उर होइ।
राम-परायन सो सदा आपद ताहि न कोइ ॥६६६॥

बिनु प्रपंच वरु भीख भलि नहिँ फल किए कलेस।
बावन बलि सों लीन्ह छलि दीन्ह सबहि उपदेस ॥६६७॥

बिबुध-काज बावन बलिहिँ छलो भलो जिय जानि।
प्रभुता तजि बस भे तदपि मन तें गइ न गलानि ॥६६८॥

बड़े बड़े तें छल करहिँ जनम कनौड़े होहिँ।
तुलसी स्री-पति-सिर लसै बलि बावन गति सोहिँ ॥६६९॥

खल उपकार विकार फल तुलसी जान जहान।
मेढक मर्कट बनिक बक कथा सत्य उपखान ॥६७०॥

जो मूरख उपदेस के होते जोग जहान।
दुरजोधन कहँ बोधि किन आए स्याम सुजान ॥६७१॥

हित पर बढ़त बिरोध जब अन-हित पर अनुराग।
राम विमुख विधि बाम गति सगुन अघाय अभाग ॥६७२॥

साहसही सिख कोप-बस किए कठिन परिपाक।
सठ संकट-भाजन भएउ हठि कु-जाति कपि काक ॥६७३॥

मारि सींह करि खोज लै करि गत मत्र विन त्रास।
मुए नीच विन मीच तें ये इनके विस्वास ॥६७४॥
रीझ आपनी बूझ पर खीझ विचार विहीन।
ते उपदेस न मानहीं मोह-महोदधि-मीन ॥६७५॥
समुझि सु-नीति कु-नीति-रत जागतही रह सोइ।
उपदेसिबो जगाइबो तुलसी उचित न होइ ॥६७६॥
परमारथ-पथ मत समुझि लसत विखय लपटान।
उतरि चिता तें अध-जरी मानहुँ सती परान ॥६७७॥
तजत अमिय उपदेस गुरु भजत विखय-विख-पान।
चंद किरन धोखे पयस चाटत जिमि सठ स्वान ॥६७८॥
सुर-सदनन तीरथ पुरिन निपटि कु-चाल कु-साज।
मनहुँ मवासे मारि कलि राजत सहित समाज ॥६७९॥
चोर चतुर वटपार नट प्रभु-प्रिय भडुआ भंड।
सव भच्छक परमारथी कलि सु-पंथ पाखंड ॥६८०॥
गोंड गवांर नृपाल कलि जनम महा-महि-पाल।
साम न दान न भेद कलि केवल दंड कराल ॥६८१॥
काल तोपची तुपक महि दारू अनय कराल।
पाप पलीता कठिन गुरु गोला पुहुमी-पाल ॥६८२॥
राग रोख गुन दोख को साखी हृदय-सरोज।
तुलसी विकसत मित्र लखि सकुचत देखि मनोज ॥६८३॥
वैर सनेह सयानपहिँ तुलसी जे नहिँ जान।
ते कि प्रेम-मग पग धरत पसु विनु पूछ विखान ॥६८४॥
राम-दास पहँ जाय के जो नर कथहि सयान।
तुलसी अपनी खाड़ महँ खाक मिलावहिँ स्वान ॥६८५॥
त्रिविधि एक-विधि प्रभु-अगुन प्रजहि सवांरहिँ राउ।
कर तें होत कृपाण को कठिन घोर घन-घाउ ॥६८६॥

काल बिलोकत ईस-रुख भानु काल अनुहार।
रबिहिँ राहु राजहिँ प्रजा बुध व्यवहरहिँ बिचार ॥६८७॥
जथा अमल पावन पवन पाय सु-संग कु-संग।
गहत सु-बास कु-बास तिमि काल महीस-प्रसंग ॥६८८॥
भलउ चलत पथ पोच भय नृप नियोग नय नेम।
कु-तिय सु-भूखन भूखियत लोह नेवारित हेम ॥६८९॥
सुधा कु-नाज सु-नाज फल आम असन सम जान।
सु-प्रभु प्रजा-हित लेहिँ कर सामादिक अनुमान ॥६९०॥
पाके पकए बिटप दल उत्तम मध्यम नीच।
फल नर लहहिँ नरेस तिमि करि बिचार मन बीच ॥६९१॥
धरनि - धेनु चरि धरम - तिनु प्रजा - सु-बत्स पिन्हाइ।
हाथ कछू नहिँ लागिहै किए गोठ की गाय ॥६९२॥
कंट कंट ह्वै परत गिरि साखा सहस खजूरि।
गरहिँ कु-नृप करि करि कु-नय सो कुचाल भुवि भूरि ॥६९३॥
भूमि रुचिर रावन-सभा अंगद-पद महिपाल।
धर्म - राम नय - सीय-बल अचल होइ तिहुँ काल ॥६९४॥
प्रीति राम-पद नीति-रत धरम-प्रतीत सुभाय।
प्रभुहि न प्रभुता परिहरै कबहुँ बचन-मन - काय ॥६९५॥
करके कर मन के मनहिँ वचन वचन गुन जानि।
भूपहिँ भूलि न परिहरहिँ विजय - विभूति सयानि ॥६९६॥
गोली वान सु- मंत्र सर समुझि उलटि गति देख।
उत्तम मध्यम नीच प्रभु-वचन बिचारि विसेख ॥६९७॥
सत्रु सयाने सलिल इव राख सीस रिपु नाव।
बूड़त लखि डगमगत अति चपरि चहूँ दिसि धाव ॥६९८॥
रैयत राज-समाज घर तन धन धरम सु-बाहु।
सत्य सु-सचिवहिँ सौंपि सुख विलसहिँ नित नर-नाहु ॥६९९॥

रसना मंत्रो दसन जन तोख पोख सब काज।
प्रभु कै सेन पदादिका बालक राज समाज ॥७००॥
लकड़ी डौवा करछुली सरस काज अनुहारि।
सु-प्रभु जो नाहिँन परिहरइ सेवक सखा बिचारि ॥७०१॥
प्रभु समीप छोटे बड़े निबल होहिँ बलवान।
तुलसी प्रगट बिलोकिए कर अँगुली अनुमान ॥७०२॥
तुलसी भल बर तरु बढ़त निज मूलहिँ अनुकूल।
सकल भांति सब कहँ सुखद दलन सहित फल फूल ॥७०३॥
स-धन स-गुन स-धरम सगन स-बल सु-साईं महीप।
तुलसी जे अभिमान बिन ते त्रिभुवन के दीप ॥७०४॥
साधन समय सु-सिद्ध लहि उभय मूल अनुकूल।
तुलसी तीनौ समय सम ते महि मंगल-मूल ॥७०५॥
रामायन अनुहरत सिख जग भौ भारत रीति।
तुलसी सठ की को सुनै कलि कुचालि परतीति ॥७०६॥
सु-हित सुखद गुन-जुत सदा काल-जोग दुख-होय।
घर धन जारत अनल जिमि त्यागे सुख नहिँ कोय ॥७०७॥
तुलसी सर-बर खंभ जिमि तिमि चेतन घट माहिँ।
सूख न तपनहुँ तनक सों समुझ सु-बुध-जन ताहि ॥७०८॥
तुलसी झगड़ा बड़न के बीच परहु जनि धाय।
लडैं लोह पाहन दोऊ बीच रुई जरि जाय ॥७०९॥
अरथ आदि इन परिहरहु तुलसी सहित बिचार।
अंत गहन सब कहँ सुने संतन मत-सुख-सार ॥७१०॥
गहु उकार बिबिचार पद मा फल हानि बिमूल।
अहो जान तुलसी जतन बिन जाने इव सूल ॥७११॥
नीच निरावहिँ निरस तरु तुलसी सींचहिँ ऊख।
पोखत पयद समान सब बिखय ऊख के रूख ॥७१२॥

लोक वेदहूँ लौं दगौ नाम भले को पोच।
धरम-राज जम गाज पवि कहत सकोच न सोच ॥७१३॥
तुलसी देवल देव के लागे लाख करोरि।
काग अभागे हगि भरे महिमा भई न थोरि ॥७१४॥
भलो कहहि जाने बिना बिन जाने अपवाद।
ते नर गावँर जानि जिय करब न हरख बिखाद ॥७१५॥
तन-धन महिमा धरम जेहि जा कहँ सह अभिमान।
तुलसी जियत विडंबना परिनामहु गति जान ॥७१६॥
बड़े विबुध दरबार तें भूमि भूप-दरबार।
जापक पूजक देखियत सहत निरादर-भार ॥७१७॥
खग मृग मीत पुनीत किय बनहुँ राम नय-पाल।
कुनय बालि रावन घरहिँ सुखद बंधु किय काल ॥७१८॥
राम-लखन विजयी भए बनहुँ गरीब-नेवाज।
मुखर बालि-रावन गए घरही सहित समाज ॥७१९॥
ठाढो द्वार न दै सकहिँ तुलसी जे नर नीच।
निदरहिँ बलि हरिचंद कहँ का किय करन दधीच ॥७२०॥
तुलसी निज कीरति चहहिँ पर की कीरति खोय।
तिनके मुँह मसि लागिहै मिटिहि न मरिहैं धोय ॥७२१॥
नीच चंग-सम जानिबो सुनि लखि तुलसी-दास।
ढीलि देत महि गिरि परत खैंचत चढ़त अकास ॥७२२॥
सह-बासी काची भखहिँ पुर-जन पाक प्रवीन।
काल-छेप केहि विधि करहिँ तुलसी खग मृग मीन ॥७२३॥
बड़े पाप बाढ़े किए छोटे करत लजात।
तुलसी ता पर सुख चहत विधि पर बहुत रिसात ॥७२४॥
सुमति निवारहिँ परिहरहिँ दल सुमनहु संग्राम।
स-कुल गए तनु बिन भए साखी जादव काम ॥७२५॥

कलह न जानब छोट करि कठिन परम परिनाम।
लगत अनल लघु नीच घर जरत धनिक-धन-धाम ॥७२६॥
जूझे तें भल बूझिबो भली जीति तें हारि।
डहके ते डहकाइवो भलो जो करिय बिचारि ॥७२७॥
तुलसी तीनि प्रकार तें हित अनहित पहिचानि।
परवस परे परोस वसि परे मामला जान ॥७२८॥
दुरजन वदन कमान सम वचन विमुंचत तीर।
सज्जन उर वेधत नहीं छमा सनाह सरीर ॥७२९॥
कौरव पांडव जानिबो क्रोध छमा को सीम।
पांचहिं मारि न सौ सके सवै निपाते भीम ॥७३०॥
जो मधु दीन्हे तें मरे माहुर देउ न ताउ।
जग जिति हारे परसु-धर हारि जिते रघु-राउ ॥७३१॥
रोस न रसना खोलिए वरु खोलिय तरवारि।
सुनत मधुर परिनाम हित वोलिय वचन विचारि ॥७३२॥
तुलसी मीठो अमिय तें मांगी मिलै जो मीच।
सुधा सुधाकर समय विन कालकूट तें नीच ॥७३३॥
पाही खेती लगनवटि रिन कुब्याज मग-खेतु।
वैर वड़े सों आपने कियो पांच दुख हेतु ॥७३४॥
रीझि खीझि गुरु देत सिख सखा सु-साहिव साधु।
तोरि खाय फल होय भल तरु काटे अपराधु ॥७३५॥
चढे वधूरहि चंग ज्यों ग्यान ज्यों सोक-समाज।
करम धरम सुख संपदा तिमि जानिवो कुराज ॥७३६॥
पेट न फूटत विन कहे कहे न लागत ढेर।
वोलव वचन विचार-जुत समुझि सु-फेर कु-फेर ॥७३७॥
प्रीति सगाई सकल विधि वनिज उपाय अनेक।
कल-वल-छल कलि-मल-मलिन डहकत एकहि एक ॥७३८॥

दंभ सहित कलि धरम सब छल समेत व्यवहार।
स्वारथ सहित सनेह सब रुचि अनुहरत अचार ॥७३९॥
धातु-वाद निरुपाधि वर सद-गुरु लाभ सुमीत।
देव-दरस कलिकाल महँ पोथिन दुरे सभीत ॥७४०॥
फोरहिँ सिल लोढ़ा सदन लागे अढुक पहार।
कायर कूर कपूत कलि घर घर सरिस डहार ॥७४१॥
जौ जगदीस तौ अति भलो जौ महीस तौ भाग।
जनम जनम तुलसी चहत राम-चरन-अनुराग ॥७४२॥
का भाखा का संसकृत भाव चाहिए सांच।
काम जो आवै कामरी का लै करिय कमाच ॥७४३॥
बरन विसद मुकता सरिस अरथ सूत्र-सम-तूल।
सतसैया जग वर विसद गुन सोभा-सुख-मूल ॥७४४॥
भूप कहहिँ लघु गुनिन कहँ गुनी कहहिँ लघु भूप।
महि गिरि पर गत लखत जिमि तुलसी खरब सरूप ॥७४५॥
वर माला वाला सुमति उर धारै जुत नेह।
सुख सोभा सरसाय नित लहै राम-पति-गेह ॥७४६॥
दोहा चारु विचारु चलु परिहरि वाद-विबाद।
सुकृत सीम स्वारथ अवधि परमारथ मरजाद ॥७४७॥

---

(२) बिहारी-सतसई

मेरी भव - बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँईं परैं स्यामु हरित-दुति होइ ॥ १ ॥
अपने अँग के जानि कै जोबन-नृपति प्रवीन।
स्तन मन नैन नितंब कौ बड़ौ इजाफा कीन ॥ २ ॥
अर तैं टरत न बर-परे दई मरक मनु मैन।
होड़ाहोड़ी बढ़ि चले चितु चतुराई नैन ॥ ३ ॥
औरै ओप कनीनिकनु गनी घनी सिरताज।
मनौं धनी के नेह की बनीं छनीं पट लाज ॥ ४ ॥
सनि कज्जल चख-झख-लगन उपज्यौ सुदिन सनेहु।
क्यौं न नृपति ह्वै भोगवै लहि सुदेसु सबु देहु ॥ ५ ॥
सालति है नटसाल सी क्यौं हूं निकसति नाहिं।
मनमथ - नेजा - नोक सी खुभी खुभी जिय माहिं ॥ ६ ॥
जुवति जोन्ह मैं मिलि गई नैंक न होति लखाइ।
सौंधे कैं डोरैं लगी अली चली सँग जाइ ॥ ७ ॥
हौं रीझी लखि रीझिहौ छबिहिं छबीले लाल।
सोनजुही सी होति दुति मिलत मालती माल ॥ ८ ॥
बहके सब जिय की कहत ठौरु कुठौरु लखैं न।
छिन औरै छिन और से ए छबि छाके नैन ॥ ९ ॥
फिरि फिरि चितु उतहीं रहतु टुटी लाज की लाव।
अंग-अंग-छबि-झौंर मैं भयौ भौंर की नाव ॥ १० ॥
नीकी दई अनाकनी फीकी परी गुहारि।
तज्यौ मनौ तारन-बिरदु बारक बारनु तारि ॥ ११ ॥

चितई ललचौहैं चखनु डटि घूँघट-पट माँह।
छल सौं चली छुवाइकै छिनकु छबीली छांह॥ १२॥

जोग-जुगति सिखए सबै मनौ महामुनि मैन।
चाहत पिय-अद्वैतता कानतु सेवत नैन॥ १३॥

खरी पातरी कान की कौन वहाऊ बानि।
आक-कली न रली करै अली अली जिय जानि॥ १४॥

पिय-बिछुरन कौ दुसहु दुखु हरपु जात प्यौसार।
दुरजोधन लौं देखियति तजत प्रान इहि बार॥ १५॥

झीनैं पट मैं झुलमुली झलकति ओप अपार।
सुरतरु की मनु सिंधु मैं लसति सपल्लव डार॥ १६॥

डारे ठोड़ी-गाड़ गहि नैन-बटोही मारि।
चिलक-चौंध मैं रूप-ठग हांसी-फांसी डारि॥ १७॥

कीनैं हूं कोरिक जतन अब कहि काढ़ै कौनु।
भो मन मोहन-रूपु मिलि पानी मैं को लौनु॥ १८॥

लग्यो सुमनु ह्वैहै सफलु आतप-रोसु निवारि।
वारी वारी आपनी सींचि सुहृदता-वारि॥ १९॥

अजौ तर्‌यौना हीं रह्यौ स्रुति सेवत इक-रंग।
नाक-वास वेसरि लह्यौ बसि मुकुतनु कैं संग॥ २०॥

जम-करि-मुँह तरहरि पर्‌यो इहिँ धरहरि चित लाउ।
बिषय-तृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाउ॥ २१॥

पलनु पीक अंजनु अधर धरे महावरु भाल।
आजु मिले सु भली करी भले बने हौ लाल॥ २२॥

लाज गरब आलस उमग भरे नैन मुसकात।
राति रमी रति देति कहि औरै प्रभा प्रभात॥ २३॥

पति रति की बतियां कहीं सखी लखी मुसकाइ।
कै कै सबै टलाटलीं अलीं चलीं सुखु पाइ॥ २४॥

तो पर वारौं उरबसी सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन कै उर वसी ह्वै उरबसी समान॥ २५॥
कुच-गिरि चढ़ि अति थकित ह्वै चली डीठि मुँह-चाड़।
फिरि न टरी परियै रही गिरी चिबुक की गाड़॥ २६॥
वेधक अनियारे नयन वेधत करि न निषेधु।
वरवट वेधतु मो हियौ तो नासा कौ वेधु॥ २७॥
लीनैं मुहुँ दीठि न लगै यौं कहि दीनौ ईठि।
दूनी है लागन लगी दियैं दिठौना दीठि॥ २८॥
चितवनि रूखे दृगनु की हाँसी विनु मुसकानि।
मानु जनायौ मानिनी जानि लियौ पिय जानि॥ २९॥
सव ही त्यौं समुहाति छिनु चलति सवनु दै पीठि।
वाही त्यौं ठहराति यह कविलनवी लौं दीठि॥ ३०॥
कौन भाँति रहिहै विरदु अव देखिवी मुरारि।
वीधे मोसौं आइ कै गीधे गीधहिँ तारि॥ ३१॥
कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन मैं करत हैं नैननु हीं सव वात॥ ३२॥
वाही की चित चटपटी धरत अटपटे पाइ।
लपट वुझावत विरह की कपट भरेऊ आइ॥ ३३॥
लखि गुरुजन विच कमल सौं सीसु छुवायौ स्याम।
हरि सनमुख करि आरसी हियैं लगाई वाम॥ ३४॥
पाइ महावरु दैंन कौं नाइनि वैठी आइ।
फिरि फिरि जानि महावरी एड़ी मीड़ति जाइ॥ ३५॥
तोहीं निरमोही लग्यौ मो ही इहैं सुभाउ।
अन आऐं आवै नहीं आऐं आवतु आउ॥ ३६॥
नेहु न नैननु कौं कछू उपजी वड़ी वलाइ।
नीर भरे नित प्रति रहैं तऊ न प्यास वुझाइ॥ ३७॥

नहिं परागु नहिं मधुर मधु नहिं विकासु इहिं काल।
अली कली ही सौं बँध्यौ आगैं कौन हवाल॥ ३८॥
लाल तुम्हारे विरह की अगनि अनूप अपार।
सरसै वरसैं नीर हूं झर हूं मिटै न झार॥ ३९॥
देह दुलहिया की वढ़ै ज्यौं ज्यौं जोवन-जोति।
त्यौं त्यौं लखि सौत्यैं सवैं वदन मलिन दुति होति॥ ४०॥
जगतु जनायौ जिहिं सकलु सो हरि जान्यौ नांहि।
ज्यों आंखिनु सब देखियै आंखि न देखी जांहि॥ ४१॥
मंगलु विंदु सुरंगु मुखु ससि केसरि आड़ गुरु।
इक नारी लहि संगु रसमय किय लोचन-जगत॥ ४२॥
पिय तिय सौं हँसि कै कह्यौ लखैं दिठौना दीन।
चंदमुखी मुखचंदु तैं भली चंद समु कीन॥ ४३॥
कौंहर सी एड़ीनु की लाली देखि सुभाइ।
पाइ महावरु देइ को आपु भई वे-पाइ॥ ४४॥
खेलन सिखए अलि भलैं चतुर अहेरी मार।
कानन-चारी नैन-मृग नागर नरनु सिकार॥ ४५॥
रस-सिँगार - मंजनु किए कंजनु भंजनु दैन।
अंजनु रंजनु हूं विना खंजनु गंजनु नैन॥ ४६॥
साजे मोहन - मोह कौं मोहीं करत कुचैन।
कहा करौं उलटे परे टोने लोने नैन॥ ४७॥
याकैं उर औरै कछू लगी विरह की लाइ।
पजरै नीर गुलाव कैं पिय की वात वुझाइ॥ ४८॥
कहा लेहुगे खेल पैं तजौ अटपटी वात।
नैंक हँसौंहीं हैं भई भौंहैं सौंहैं खात॥ ४९॥
डारी सारी नील की ओट अचूक चुकैं न।
मो मन मृगु करवर गहैं अहे अहेरी नैन॥ ५०॥

दीरघ सांस न लेहि दुख सुख साईंहिँ न भूलि।
दई दई क्यों करतु है दई दई सु कबूलि ॥ ५१ ॥
वैठि रही अति सघन बन पैठि सदन-तन मांह।
देखि दुपहरी जेठ की छांहौं चाहति छांह ॥ ५२ ॥
हा हा वदनु उघारि दृग सफल करैं सव कोइ।
रोज सरोजनु कैं परै हँसी ससी की होइ ॥ ५३ ॥
होमति सुखु करि कामना तुमहिँ मिलन की लाल।
ज्वालमुखी सी जरति लखि लगनि-अगनि की ज्वाल ॥ ५४ ॥
सायक-सम मायक नयन रँगे त्रिविध रँग गात।
झखौ विलखि दुरि जात जल लखि जलजात लजात ॥ ५५ ॥
मरी डरी कि टरी विथा कहा खरी चलि चाहि।
रही कराहि कराहि अति अव मुँह आहि न आहि ॥ ५६ ॥
कहा भयौ जौ वीछुरे मो मनु तो मन साथ।
उड़ी जाउ कित हूं तऊ गुड़ी उड़ाइक-हाथ ॥ ५७ ॥
लखि लोने लोइननु कैं कोइनु होइ न आजु।
कौनु गरीवु निवाजिवौ कित तूठ्यौ रतिराजु ॥ ५८ ॥
सीतलताऽरु सुवास कौ घटै न महिमा-मूरु।
पीनसवारैं जौ तज्यौ सोरा जानि कपूरु ॥ ५९ ॥
कागद पर लिखत न वनत कहत सँदेसु लजात।
कहिहै सवु तेरौ हियौ मेरे हिय की वात ॥ ६० ॥
वंधु भए का दीन के को तार्‌यौ रघुराइ।
तूठे तूठे फिरत हौ झूठे विरद कहाइ ॥ ६१ ॥
जव जव वै सुधि कीजियै तव तव सव सुधि जाहिँ।
आंखिनु आंखि लगी रहैं आंखैं लागति नाहिँ ॥ ६२ ॥
कौन सुनै कासौं कहौं सुरति विसारी नाह।
वदावदी ज्यौं लेत हैं ए वदरा वदराह ॥ ६३ ॥

मैं हो जान्यौ लोइननु जुरत बाढ़िहै जोति।
को हो जानतु दीठि कौं दीठि किरकिटी होति॥ ६४॥
गहकि गांसु औरै गहे रहे अधकहे बैन।
देखि खिसौंहैं पिय-नयन किए रिसौंहैं नैन॥ ६५॥
मैं तोसौं कै वा कह्यौ तू जिन इन्हैं पत्याइ।
लगालगी करि लोइननु उर मैं लाई लाइ॥ ६६॥
वर जीते सर मैन के ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनानु तैं हरि नीके ए नैन॥ ६७॥
थोरैं ही गुन रीझते बिसराई वह बानि।
तुमहूँ कान्ह मनौ भए आजकाल्हि के दानि॥ ६८॥
अंग अंग नग जगमगत दीपसिखा सी देह।
दिया बढ़ाऐं हूं रहै बड़ौ उज्यारौ गेह॥ ६९॥
छुटी न सिसुता की झलक झलक्यौ जोबनु अंग।
दीपति देह दुहूनु मिलि दिपति ताफता-रंग॥ ७०॥
कब कौ टेरतु दीन रट होत न स्याम सहाइ।
तुमहूं लागी जगत-गुरु जग-नाइक जग-बाइ॥ ७१॥
सकुचि न रहियै स्याम सुनि ए सतरौंहैं बैन।
देत रचौंहौं चित कहे नेह-नचौंहैं नैन॥ ७२॥
पत्रा हीं तिथि पाइयै वा घर कैं चहुँ पास।
नित प्रति पून्यौई रहै आनन - ओप - उजास॥ ७३॥
बसि सकोच दसबदन बस सांचु दिखावति बाल।
सिय लौं सोधति तिय तनहिँ लगनि-अगनि की ज्वाल॥ ७४॥
जौ न जुगति पिय मिलन की धूरि मुकति-मुँह दीन।
जौ लहियै सँग सजन तौ धरक नरक हूँ की न॥ ७५॥
चमक तमक हांसी ससक मसक झपट लपटानि।
ए जिहिँ रति सो रति मुकति और मुकति अति हानि॥ ७६॥

मोहूं सौं तजि मोहु, दृग चले लागि उहिं गैल।
छिनकु छ्वाइ छबि-गुर-डरी छले छबीलैं छैल ॥ ७७ ॥
कंज-नयनि मंजनु किए बैठी ब्यौरति बार।
कच-अँगुरी-बिच दीठि दै चितवति नंदकुमार ॥ ७८ ॥
पावक सो नयननु लगै जावकु लाग्यौ भाल।
मुकुरु होहुगे नैंक मैं मुकुरु बिलोकौ लाल ॥ ७९ ॥
रहति न रन जयसाहि-मुख लखि लाखनु की फौज।
जाँचि निराखरऊ चलै लै लाखनु की मौज ॥ ८० ॥
दियौ सु सीस चढ़ाइ लै आछी भाँति अएरि।
जापैं सुखु चाहतु लियौ ताके दुखहिँ न फेरि ॥ ८१ ॥
तरिवन-कनकु कपोल-दुति बिच बीच ही बिकान।
लाल लाल चमकतिं चुनी चौका-चीन्ह-समान ॥ ८२ ॥
मोहि दयौ मेरौ भयौ रहतु जु मिलि जिय साथ।
सो मनु बाँधि न सौंपिए पिय सौतिनि कैं हाथ ॥ ८३ ॥
कुंज-भवनु तजि भवन कौं चलियै नंदकिसोर।
फूलति कली गुलाब की चटकाहट चहुँ ओर ॥ ८४ ॥
कहति न देवर की कुबत कुल-तिय कलह डराति।
पंजर-गत मंजार-ढिँग सुक ज्यौं सूकति जाति ॥ ८५ ॥
औरै भाँति भएऽब ए चौसरु चंदनु चंदु।
पति बिनु अति पारतु बिपति मारतु मारुतु मंदु ॥ ८६ ॥
चलन न पावतु निगम-मगु जगु उपज्यौ अति त्रासु।
कुच-उतंग गिरिबर गह्यौ मैना मैनु मवासु ॥ ८७ ॥
त्रिबली नाभि दिखाइ कर सिर ढकि सकुचि समाहि।
गली अली की ओट कै चली भली बिधि चाहि ॥ ८८ ॥
देखत बुरै कपूर ज्यौं उपै जाइ जिन लाल।
छिन छिन जाति परी खरी छीन छबीली बाल ॥ ८९ ॥

हँसि उतारि हिय तैं दई तुम जु तिहिँ दिनी लाल।
राखति प्रान कपूर ज्यौं वहै चुहुटिनी-माल॥ ९०॥

कोऊ कोरिक संग्रहौ कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा विपति-विदारनहार॥ ९१॥

द्वैज सुधादीधिति-कला लखि लखि दीठि लगाइ।
मनौ अकास-अगस्तिया एकै कली लखाइ॥ ९२॥

गदराने तन गोरटी ऐपन - आड़ लिलार।
हूठ्यौ दै इठलाइ दृग करै गँवारि सुवार॥ ९३॥

तंत्री-नाद कवित्त-रस सरस-राग रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े तरे जे बूड़े सब अंग॥ ९४॥

सहज सचिक्कन स्याम-रुचि सुचि सुगंध सुकुमार।
गनतु न मनु पथु अपथु लखि विथरे सुथरे वार॥ ९५॥

सुदुति दुराई दुरति नहिँ प्रगट करति रति-रूप।
छुटैं पीक औरै उठी लाली ओठ अनूप॥ ९६॥

वेई गड़ि गाड़ैं परीं उपट्यौ हारु हियैं न।
आन्यौ मोरि मतंगु मनु मारि गुरेरनु मैन॥ ९७॥

नैंक न झुरसी बिरह-झर नेह-लता कुम्हिलाति।
नित नित होति हरी हरी खरी झालरति जाति॥ ९८॥

हेरि हिँडोरैं गगन तैं परी परी सी टूटि।
धरी धाइ तिय वीच ही करी खरी रस लूटि॥ ९९॥

नैंक हँसौंहीं वानि तजि लख्यौ परतु मुहुँ नीठि।
चौका - चमकनि - चौंध मैं परति चौंधि सी डीठि॥१००॥

प्रगट भए द्विजराज-कुल सुवस वसे व्रज आइ।
मेरे हरौ कलेस सब केसव केसवराइ॥१०१॥

केसरि कै सरि क्यौं सकै चंपकु कितकु अनूपु।
गात-रूपु लखि जातु दुरि जातरूप कौ रूपु॥१०२॥

मकराकृति गोपाल कैं सोहत कुंडल कान।
धरयौ मनौ हिय-धर समरु ड्योढ़ी लसत निसान ॥१०३॥

खौरि-पनिच भृकुटी-धनुपु वधिकु समरु तजि कानि।
हनतु तरुन-मृग तिलक-सर सुरकं-भाल भरि तानि ॥१०४॥

नीकौ लसतु लिलार पर टीकौ जरितु जराइ।
छविहिँ वढ़ावतु रवि मनौ ससि-मंडल मैं आइ ॥१०५॥

लसतु सेत सारी ढप्यौ तरल तरयौना कान।
परयौ मनौ सुरसरि-सलिल रवि-प्रतिविवु विहान ॥१०६॥

हम हारीं कै कै हहा पाइनु पारयौ प्यौरु।
लेहु कहा अजहूं किए तेह-तरेरयौ त्यौरु ॥१०७॥

सतर भौंह रूखे वचन करति कठिनु मनु नीठि।
कहा करौं ह्वै जाति हरि हेरि हँसौंहो डीठि ॥१०८॥

वाहि लखैं लोइन लगै कौन जुवति की जोति।
जाकैं तन की छांह-ढिग जोन्ह छांह सी होति ॥१०९॥

कहा कहौं वाकी दसा, हरि प्राननु कै ईस।
विरह-ज्वाल जरिवो लखैं मरिवौ भई असीस ॥११०॥

जेती संपति कृपन कैं तेती सूमति जोर।
वढ़त जात ज्यौं ज्यौं उरज त्यौं त्यौं होत कठोर ॥१११॥

ज्यौं ज्यौं जोवन-जेठ दिन कुच मिति अति अधिकाति।
त्यौं त्यौं छिन छिन कटि-छपा छीन परति नित जाति ॥११२॥

तेह-तरेरौ त्यौरु करि कत करियत दृग लोल।
लीक नहीं यह पीक की स्रुति-मनि-झलक कपोल ॥११३॥

नैंक न जानी परति यौं परयौ विरह तनु छामु।
उठति दियैं लौं नांदि हरि लियै तिहारौ नामु ॥११४॥

नभ-लाली चाली निसा चटकाली धुनि कीन।
रति पाली आली अनत आए वनमाली न ॥११५॥

सोवत सपनैं स्याम-घनु हिलि मिलि हरत वियोगु।
तब हीं टरि कितहूं गई, नींदौ नींदनु जोगु ॥११६॥
संपति केस सुदेस नर नवत दुहुनि इक बानि।
विभव सतर कुच नीच नर नरम विभव की हानि ॥११७॥
कहत सबै कवि कमल से मो मत नैन पखानु।
नतरुक कत इन विय लगत उपजतु विरह-कृसानु ॥११८॥
हरि हरि बरि बरि उठति है करि करि थकी उपाइ।
वाकौ जुरु बलि वैद जौ तो रस जाइ तु जाइ ॥११९॥
यह विनसतु नगु राखि कै जगत बड़ौ जसु लेहु।
जरी बिषम जुर जाइयै आइ सुदरसनु देहु ॥१२०॥
या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यौं ज्यौं बूड़ै स्याम रँग त्यौं त्यौं उज्जलु होइ ॥१२१॥
विय सौतिनु देखत दई अपने हिय तैं लाल।
फिरति सबनु मैं डहडही उहैं मरगजी माल ॥१२२॥
छला छबीले लाल कौ नवल नेह लहि नारि।
चूँबति चाहति लाइ उर पहिरति धरति उतारि ॥१२३॥
नित संसौ हंसौ बचतु मनौ सु इहिं अनुमानु।
बिरह-अगिनि-लपटनु सकतु झपटि न मीचु-सचानु ॥१२४॥
थाकी जतन अनेक करि नैंक न छाड़ति गैल।
करी खरी दुबरी सु लगि तेरी चाह-चुरैल ॥१२५॥
लाज गहौ वेकाज कत घेरि रहे घर जांहि।
गोरसु चाहत फिरत हौ गोरसु चाहत नांहि ॥१२६॥
घाम घरीक निवारियै कलित ललित अलि-पुंज।
जमुना-तीर तमाल-तरु मिलित मालती-कुंज ॥१२७॥
उन हरकी हँसि कै इतै इन सौंपी मुसकाइ।
नैन मिलैं मन मिलि गए दोऊ मिलवत गाइ ॥१२८॥

परयौ जोरु बिपरीत रति रुपी सुरत-रन-धीर ।
करति कुलाहलु किंकिनी गह्यौ मौनु मंजीर ॥१२९॥
बिनती रति बिपरीत की करी परसि पिय पाइ ।
हँसि अनबोलैं हीं दियौ ऊतरु दियौ बताइ ॥१३०॥
कैसैं छोटे नरनु तैं सरत बड़नु के काम ।
मढ़यौ दमामौ जातु क्यौं कहि चूहे कैं चाम ॥१३१॥
सकत न तुव ताते बचन मो रस कौ रसु खोइ ।
खिन खिन औटे खीर लौं खरौ सवादिलु होइ ॥१३२॥
कहि लहि कौनु सकै दुरी सौनजाइ मैं जाइ ।
तन की सहज सुबास बन देती जौ न बताइ ॥१३३॥
चाले की बातैं चलीं सुनत सखिनु कैं टोल ।
गोएँ हूँ लोइन हँसत बिहँसत जात कपोल ॥१३४॥
सनु सूक्यौ बीत्यौ बनौ ऊखौ लई उखारि ।
हरी हरी अरहरि अजौं धरि धरहरि जिय नारि ॥१३५॥
आए आपु भली करी मेटन मान-मरोर ।
दूरि करौ यह देखिहै छला छिगुनिया-छोर ॥१३६॥
मेरे बूझत बात तू कत बहरावति बाल ।
जग जानी बिपरीत रति लखि बिंदुली पिय-भाल ॥१३७॥
फिरि फिरि बिलखी ह्वै लखति फिरि फिरि लेति उसासु ।
साईं सिर-कच-सेत लौं बीत्यौ चुनति कपासु ॥१३८॥
डगकु डगति सी चलि ठठुकि चितई चली निहारि ।
लिए जाति चितु चोरटी वहै गोरटी नारि ॥१३९॥
करी बिरह ऐसी तऊ गैल न छाड़तु नीचु ।
दीनैं हूँ चसमा चखनु चाहै लहै न मीचु ॥१४०॥
जपमाला छापा तिलक सरै न एकौ कामु ।
मन-काँचै नाचै बृथा साँचै राँचै रामु ॥१४१॥

जो वाके तन की दसा देख्यौ चाहत आपु।
तौ वलि नैंक विलोकियै चलि अचकां चुपचापु ॥१४२॥
जटित नीलमनि जगमगति सींक सुहाई नांक।
मनौ अली चंपक-कली वसि रसु लेतु निसांक ॥१४३॥
फेरु कछुक करि पौरि तैं फिरि चितई मुसकाइ।
आई जावनु लैन जिय नेहैं चली जमाइ ॥१४४॥
जदपि तेज रौहाल-वल पलकौ लगी न वार।
तौ ग्वैंड़ौ घर कौ भयौ पैंड़ौ कोस हजार ॥१४५॥
पूस-मास सुनि सखिनु पैं साईं चलत सवारु।
गहि कर वीन प्रवीन तिय राग्यौ रागु मलारु ॥१४६॥
वन वन कौं निकसत लसत हँसत हँसत इत आइ।
दृग-खंजन गहि लै चल्यौ चितवनि-चैंपु लगाइ ॥१४७॥
मरनु भलौ वरु विरह तैं यह निहचय करि जोइ॥
मरन मिटै दुखु एक कौ विरह दुहूं दुखु होइ ॥१४८॥
हरपि न वोली लखि ललनु निरखि अमिलु सँग साथु।
आंखिनु हीं मैं हँसि धरौ सीस हियैं धरि हाथु ॥१४९॥
को जानै ह्वै है कहा व्रज उपजी अति आगि।
मन लागैं नैननु लगैं चलै न मग लगि लागि ॥१५०॥
घरु घरु डोलत दीन ह्वै जनु जनु जाचतु जाइ।
दियैं लोभ चसमा चखनु लघु पुनि वड़ौ लखाइ ॥१५१॥
लै चुभकी चलि जाति जित जित जल केलि अधोर।
कीजत केसरि-नीर से तित तित के सरि नीर ॥१५२॥
छिरके नाह नवोढ़ दृग कर-पिचकी-जल-जोर।
रोचन रँग लाली भई वियं तिय-लोचन-कोर ॥१५३॥
कहा लड़ैते दृग करे परे लाल वेहाल।
कहुँ मुरली कहुँ पीत पटु कहूँ मुकुट वनमाल ॥१५४॥

राधा हरि हरि राधिका बनि आए संकेत।
दंपति रति-विपरीत-सुखु सहज सुरतहूं लेत ॥१५५॥
चलत पाइ निगुनी गुनी धनु मनि-मुत्तिय-माल।
भेंट होत जयसाहि सौं भागु चाहियतु भाल ॥१५६॥
जसु अपजसु देखत नहीं देखत सांवल गात।
कहा करौं लालच-भरं चपल नैन चलि जात ॥१५७॥
नख सिख रूप भरे खरे तौ मागत मुसकानि।
तजत न लोचन लालची ए ललचौंहीं बानि ॥१५८॥
छुै छिगुनी पहुँचौ गिलत अति दीनता दिखाइ।
बलि बावन कौ ब्यौंतु सुनि को बलि तुम्हे पत्याइ ॥१५९॥
नैना नैंक न मानहीं कितौ कह्यौ समुझाइ।
तनु मनु हारैं हूं हँसैं तिन सौं कहा बसाइ ॥१६०॥
मोहन मूरति स्याम की अति अदभुत गति जोइ।
बसतु सु-चित अंतर तऊ प्रतिबिंबितु जग होइ ॥१६१॥
लटकि लटकि लटकतु चलतु डटतु मुकुट की छांह।
चटक भरयो नटु मिलि गयौ अटक भटक बट मांह ॥१६१॥
मलिन देह वेई बसन मलिन बिरह कैं रूप।
पिय-आगम औरै चढ़ी आनन ओप अनूप ॥१६३॥
रँगराती रातैं हियैं प्रियतम लिखी बनाइ।
पाती काती बिरह की छाती रही लगाइ ॥१६४॥
लाल अलौकिक लरिकई लखि लखि सखी सिहांति।
आज कालिह मैं देखियतु उर उकसौंही भांति ॥१६५॥
बिलखी डभकौंहैं चखनु तिय लखि गवनु बराइ।
पिय गहबरि आएँ गरैं राखी गरैं लगाइ ॥१६६॥
प्रतिबिंबित जयसाहि दुति दीपति दरपन-धाम।
सबु जगु जीतन कौं करयौ काय ब्यूहु मनु काम ॥१६७॥

बाल कहा लाली भई लोइन-कोइनु मांह।
लाल तुम्हारे दृगनु की परी दृगनु मैं छांह ॥१६८॥
तरुन कोकनद बरन बर भए अरुन निसि जागि।
वाही कैं अनुराग दृग रहे मनौ अनुरागि ॥१६९॥
तजतु अठान न हठ परयो सठमति आठौ जाम।
भयौ बामु वा बाम कौं रहै कामु बेकाम ॥१७०॥
आवत जात न जानियतु तेजहिं तजि सियरानु।
घरहँ जँवाई लौं घट्यौ खरौ पूस दिन-मानु ॥१७१॥
चलत चलत लौं लै चलैं सब सुख संग लगाइ।
ग्रीषम-बासर सिसिर-निसि प्यौ मो पास बसाइ ॥१७२॥
बेसरि - मोती - दुति - झलक परी ओठ पर आइ।
चूनौ होइ न चतुर तिय क्यो पट पोंछयौ जाइ ॥१७३॥
चितु बितु बचतु न हरत हठि लालन-दृग बरजोर।
सावधान के बटपरा ए जागत के चोर ॥१७४॥
बिकसित नवमल्ली - कुसुम निकसित परिमल पाइ।
परसि पजारति बिरहि-हिय बरसि रहे की बाइ ॥१७५॥
गोप अथाइनु तैं उठे गोरज छाई गैल।
चलि बलि अलि अभिसार की भली सँझौखैं सैल ॥१७६॥
पहुँचति डटि रन-सुभट लौ रोकि सकैं सब नांहि।
लाखनु हूं की भीर मैं आंखि उहीं चलि जांहि ॥१७७॥
सरस सुमिल चित-तुरँग की करि करि अमित उठान।
गोइ निबाहैं जीतियै खेलि प्रेम-चौगान ॥१७८॥
हँसि हँसि हेरति नवल तिय मद के मद उमदाति।
बलकि बलकि बोलति बचन ललकि ललकि लपटाति ॥१७९॥
मिलि चंदन-बेंदी रही गोरैं मुँह न लखाइ।
ज्यौं ज्यौं मद-लाली चढ़ै त्यौं त्यौं उघरति जाइ ॥१८०॥

मैं समुझ्यौ निरधार यह जगु काँचो काँच सौ।
एकै रूपु अपार प्रतिबिंबित लखियतु जहाँ ॥१८१॥

जहाँ जहाँ ठाढ़ौ लख्यौ स्यामु सुभग-सिरमौरु।
बिन हूं उन छिनु गहि रहतु दृगनु अजौं वह ठौरु ॥१८२॥

रँगी सुरत-रँग पिय हियैं लगी जगी सब राति।
पैंड़ पैंड़ पर ठठुकि कै ऐंड़-भरी ऐंड़ाति ॥१८३॥

लालन लहि पाएँ दुरै चोरी सौंह करैं न।
सीस चढ़े पनिहा प्रगट कहैं पुकारैं नैन ॥१८४॥

तुरत सुरत कैसैं दुरत मुरत नैन जुरि नीठि।
डौंड़ो दै गुन रावरे कहति कनौड़ी डीठि ॥१८५॥

मरकत - भाजन - सलिल - गत इंदु-कला कैं बेख।
झींन झगा मैं झलमलै स्यामगात - नख-रेख ॥१८६॥

बालमु बारैं सौति कैं सुनि परनारि - बिहार।
भो रसु अनरसु रिस रली रीझ खीझ इक बार ॥१८७॥

दुरत न कुच बिच कंचुकी चुपरी सारी सेत।
कवि-आंकनु के अरथ लौं प्रगटि दिखाई देत ॥१८८॥

भई जु छबि तन बसन मिलि बरनि सकैं सु न बैन।
आंग-ओप आंगी दुरी आंगी आंग दुरै न ॥१८९॥

सोनजुही सी जगमगति अँग अँग जोबन - जोति।
सुरँग कसूंभी कंचुकी दुरँग देह-दुति होति ॥१९०॥

बड़े न हूजै गुननु बिनु बिरद-बड़ाई पाइ।
कहत धतूरे सौं कनकु गहनौ गढ़यौ न जाइ ॥१९१॥

कनकु कनक तैं सौगुनौ मादकता अधिकाइ।
उहिं खाएं बौराइ इहिं पाएं हीं बौराइ ॥१९२॥

डीठिबरत बांधी अटनु चढ़ि धावत न डरात।
इतहिं उतहिं चित दुहुनु के नट लौं आवत जात ॥१९३॥

झटकि चढ़ति उतरति अटा नैंक न थाकति देह।
भई रहति नट कौ बटा अटकी नागर-नेह ॥१९४॥
लोभ लगे हरि-रूप के करी साँटि जुरि जाइ।
हौं इन बेची बीच हीं लोइन बड़ी बलाइ ॥१९५॥
चिलक चिकनई चटक सौं लफति सटक लौं आइ।
नारि सलोनी साँवरी नागिनि लौं डसि जाइ ॥१९६॥
तो रस राँच्यौ आन बस कहौ कुटिल-मति कूर।
जीभ निबौरी क्यौं लगै बौरी चाखि अँगूर ॥१९७॥
जुरे दुहुनु के दृग झमकि रुके न झीनैं चीर।
हलुकी फौज हरौल ज्यौं परै गोल पर भीर ॥१९८॥
केसर केसरि-कुसुम के रहे अंग लपटाइ।
लगे जानि नख अनखुली कत बोलति अनखाइ ॥१९९॥
दृग मिहचत मृग-लोचनी भर्यौ उलटि भुज बाथ।
जानि गई तिय नाथ के हाथ परस हीं हाथ ॥२००॥
तजि तीरथ हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुराग।
जिहिं ब्रज-केलि-निकुंज मग पग पग होतु प्रयागु ॥२०१॥
खिन खिन मैं खटकति सु हिय खरी भीर मैं जात।
कहि जु चली अनहीं चितै ओठनु हीं बिच बात ॥२०२॥
अजौं न आए सहज रँग बिरह-दूबरैं गात।
अब हीं कहा चलाइयति ललन चलन की बात ॥२०३॥
अपनैं कर गुहि आपु हठि हिय पहराई लाल।
नौल सिरी औरै चढ़ी बौलसिरी की माल ॥२०४॥
नई लगनि कुल की सकुच बिकल भई अकुलाइ।
दुहूं ओर ऐंची फिरति फिरकी लौं दिनु जाइ ॥२०५॥
इत तैं उत उत तैं इतै छिनु न कहूं ठहराति।
जक न परति चकरी भई फिरि आवति फिरि जाति ॥२०६॥

निसि अँधियारी नील पटु पहिरि चली पिय-गेह।
कहैा दुराई क्यों दुरै दीप-सिखा सी देह ॥२०७॥
रह्यौ ढीठु ढाढ़सु गहैं ससहरि गयैा न सूरु।
मुर्यौ न मनु मुरवानु चभि भै चूरनु चपि चूरु ॥२०८॥
सोहत अँगुठा पाइ कै अनवटु जर्यौ जराइ।
जीत्यौ तरिवन-दुति सु ढरि पर्यौ तरनि मनु पाइ ॥२०९॥
जंघ जुगुल लोइन निरे करे मनौ बिधि मैन।
केलि-तरुनु दुख दैन ए केलि तरुन-सुख-दैन ॥२१०॥
रही पकरि पाटी सु रिस भरे भौंह चितु नैन।
लखि सपनैं तिय आनरत जगतहु लगत हियैं न ॥२११॥
किय हाइलु चित-चाइ लगि बजि पाइल तुव पाइ।
पुनि सुनि सुनि मुँह-मधुर-धुनि क्यौं न लालु ललचाइ ॥२१२॥
लीनैं हूं साहस सहसु कीनैं जतन हजारु।
लोइन लोइन-सिंधु तन पैरि न पावत पारु ॥२१३॥
पट की ढिग कत ढांपियति सोभित सुभग सुबेख।
हद-रद-छद छबि देति यह सद-रद-छद की रेख ॥२१४॥
नाह गरजि नाहर-गरज बोलु सुनायौ टेरि।
फँसी फौज मैं बंदि-बिच हँसी सबनु तनु हेरि ॥२१५॥
बाल-बेलि सूखी सुखद इहिं रूखी रुख-घाम।
फेरि डहडही कीजियै सुरस सींचि घनस्याम ॥२१६॥
औंघाई सीसी सुलखि बिरह-बरनि बिललात।
बिच हीं सूखि गुलाबु गौ छीटौ छुई न गात ॥२१७॥
तजी संक सकुचति न चित बोलत बाकु कुबाकु।
दिन छिनदा छाकी रहति छुटतु न छिनु छबि-छाकु ॥२१८॥
फिरि फिरि बूझति कहि कहा कह्यौ सांवरे गात।
कहा करत देखे कहां अली चली क्यौ बात ॥२१९॥

नव नागरि-तन-मुलुकु लहि जोबन - आमिर - जौर।
घटि बढ़ि तैं बढ़ि घटि रकम करीं और की और ॥२२०॥
कीजै चित सोई तरे जिहिँ पतितनु के साथ।
मेरे गुन - औगुन - गननु गनौ न गोपीनाथ ॥२२१॥
मृगनैनी दृग की फरक उर - उछाह तन - फूल।
बिन हीं पिय-आगम उमगि पलटन लगी दुकूल ॥२२२॥
रहे बरोठे मैं मिलत पिउ प्राननु के ईसु।
आवत आवत की भई बिधि की घरी घरी सु ॥२२३॥
रवि बंदौं कर जोरि ए सुनत स्याम के बैन।
भए हँसौंहैं सबनु के अति अनखौंहैं नैन ॥२२४॥
हौं हीं बौरी बिरह-बस कै बौरौ सबु गाउँ।
कहा जानि ए कहत हैं ससिहिँ सीतकर नाउँ ॥२२५॥
अनी बड़ी उमड़ी लखैं असि बाहक भट भूप।
मंगलु करि मान्यौ हियैं भो मुँहु मंगलु रूप ॥२२६॥
सोवत जागत सुपन-बस रस रिस चैन कुचैन।
सुरति स्यामघन की सु रति बिसरैं हूं बिसरै न ॥२२७॥
संगति सुमति न पावहीं परे कुमति कैं धंध।
राखौ मेलि कपूर मैं हींग न होइ सुगंध ॥२२८॥
बड़े कहावत आप सौं गरुवे गोपीनाथ।
तौ बदिहौं जौ राखिहौ हाथनु लखि मनु हाथ ॥२२९॥
कौड़ा आंसू-बूंद कसि सांकर बरुनी सजल।
कीने बदन निमूंद दृग - मलिंग डारे रहत ॥२३०॥
ज्यौ सरद-राका-ससी करति क्यौं न चित चेतु।
मनौ मदन छितिपाल कौ छांहगीरु छबि देतु ॥२३१॥
ढरे ढार तेहीं ढरत दूजैं ढार ढरैं न।
क्यौंहूं आनन आन सौं नैना लागत नै न ॥२३२॥

सोवत लखि मन मानु धरि ढिग सोयौ प्यौ आइ।
रही सुपन की मिलनि मिलि तिय हिय सौं लपटाइ ॥२३३॥
जोन्ह नहीं यह तमु वहै किए जु जगत निकेतु।
होत उदै ससि के भयौ मानहु ससहरि सेतु ॥२३४॥
जात जात वितु होतु है ज्यौं जिय मैं संतोपु।
होत होत जौ होइ तौ होइ घरी मैं मोपु ॥२३५॥
तन भूपन अंजन हगनु पगनु महावर-रंग।
नहिँ सोभा कौं साजियतु कहिबैं हीं कौं अंग ॥२३६॥
पाइ तरुनि-कुच उच्च पदु चिरम ठग्यौ सबु गाउँ।
छुटैं ठौरु रहिहै वहै जु हो मोलु छवि नाउँ ॥२३७॥
नित प्रति एकत हीं रहत वैस वरन मन एक।
चहियत जुगल किसोर लखि लोचन जुगल अनेक ॥२३८॥
मन न धरति मेरौ कह्यौ तूं आपनैं सयान।
अहे परनि परि प्रेम की परहथ पारि न प्रान ॥२३९॥
नख-रेखा सोहैं नई अलसौंहैं सब गात।
सौंहैं होत न नैन ए तुम सौंहैं कत खात ॥२४०॥
हरि कीजति विनती यहै तुम सौं बार हजार।
जिहिँ तिहिँ भाँति डर्‌यौ रह्यौ पर्‌यौ रहौं दरबार ॥२४१॥
भौंह उँचै आँचरु उलटि मौरि मोरि मुँह मोरि।
नीठि नीठि भीतर गई दीठि दीठि सौं जोरि ॥२४२॥
रस की सी रुख ससिमुखी हँसि हँसि बोलत बैन।
गूढ़ मानु मन क्यौं रहै भए बूढ़-रँग नैन ॥२४३॥
जिहिँ निदाघ-दुपहर रहै भई माघ की राति।
तिहिँ उसीर की रावटी खरी आवटी जाति ॥२४४॥
रहो दहेंड़ी ढिग धरी भरी मथनिया वारि।
फेरति करि उलटी रई नई विलोवनहारि ॥२४५॥

देवर-फूल-हने जु सु सु उठे हरषि अँग फूलि।
हँसी करति औषधि सखिनु देह-ददोरनु भूलि ॥२४६॥
फूले फदकत लै फरी पल कटाच्छ करवार।
करत बचावत पिय-नयन-पाइक घाइ हजार ॥२४७॥
पहुला-हारु हियैं लसै सन की वेदी भाल।
राखति खेत खरे खरे खरे उरोजनु बाल ॥२४८॥
लई सौंह सी सुनन की तजि मुरली धुनि आन।
किए रहति नित राति दिनु कानन लागे कान ॥२४९॥
तूं मति मानै मुकतई कियैं कपट चित कोटि।
जौ गुनही तौ राखियै आंखिनु मांझ अगोटि ॥२५०॥
गिरि तैं ऊंचे रसिक-मन बूड़े जहां हजारु।
वहै सदा पसु नरनु कौं प्रेम-पयोधि पगारु ॥२५१॥
भावकु उभरौंहौं भयौं कछुकु परयो भरुआइ।
सीप-हार कैं मिसि हियौ निसि दिन हेरत जाइ ॥२५२॥
गली अँधेरी सांकरी भौ भटभेरा आनि।
परे पिछाने परसपर दोऊ परस पिछानि ॥२५३॥
कहि पठई जिय-भावती पिय आवन की बात।
फूली आंगन मैं फिरै अंग न अंग समात ॥२५४॥
जिन दिन देखे वे कुसुम गई सु बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब मैं अपत कँटीली डार ॥२५५॥
मैं बरजी कै बार तू इत कित लेति करौट।
पँखुरी लगैं गुलाब की परिहै गात खरौट ॥२५६॥
नीचीयै नीची निपट दीठि कुही लौं दौरि।
उठि ऊंचैं नीचौ दयौ मनु कुलिंगु झपि झौरि ॥२५७॥
सूर उदित हूं मुदित मन मुखु सुखमा की ओर।
चितै रहत चहुँ ओर तैं निहचल चखनु चकोर ॥२५८॥

स्वेद-सलिलु रोमांच-कुसु गहि दुलही अरु नाथ।
दियौ हियौ सँग हाथ कैं हथलेयैं हीं हाथ ॥२५९॥

दच्छिन पिय ह्वै वाम-बस बिसराईं तिय आन।
एकै बापरि कैं बिरह लागी बरष बिहान ॥२६०॥

मोहूं दीजै मोपु ज्यौं अनेक अधमनु दियौ।
जौ बाँधैं ही तोपु तौ बाँधौ अपनैं गुननु ॥२६१॥

चितु तरसतु मिलत न बनतु बसि परोस कैं बास।
छाती फाटी जाति सुनि टाटी-ओट उसास ॥२६२॥

जालरंध्र-मग अँगनु कौ कछु उजास सौ पाइ।
पीठि दिऐ जगत्यौ रह्यौ डीठि झरोखैं लाइ ॥२६३॥

परतिय-दोषु पुरान सुनि लखि मुलकी सुख दानि।
कसु करि राखी मिश्र हूं मुँह-आई मुसकानि ॥२६४॥

सहित सनेह सकोच सुख स्वेद कंप मुसकानि।
प्रान पानि करि आपनैं पान धरे मो पानि ॥२६५॥

सीरैं जतननु सिसिर रितु सहि बिरहिनि-तन-तापु।
बसिबे कौं ग्रीषम दिननु पर्‌यो परोसिनि पापु ॥२६६॥

सोहतु संगु समान सौं यहै कहै सबु लोगु।
पान-पीक ओठनु बनै काजर नैननु जोगु ॥२६७॥

तूं रहि हौं हीं सखि लखौं चढ़ि न अटा बलि बाल।
सबहिनु बिनु हीं ससि-उदै दीजतु अरघु अकाल ॥२६८॥

दियौ अरघु नीचैं चलौ संकटु भानैं जाइ।
सुचिती ह्वै औरौ सबै ससिहिँ बिलोकैं आइ ॥२६९॥

ललित स्याम लीला ललन बढ़ी चिबुक छबि दून।
मधु छाक्यौ मधुकरु पर्‌यौ मनौ गुलाब प्रसून ॥२७०॥

सबै सुहाएई लगैं बसैं सुहाऐं ठाम।
गोरैं मुँह बेंदी लसैं अरुन पीत सित स्याम ॥२७१॥

भए बटाऊ नेहु तजि वादि बकति बेकाज।
अब अलि देत उराहनौ अति उपजति उर लाज ॥२७२॥
मानु करत बरजति न हौं उलटि दिवावति सौंह।
करी रिसौंहीं जाहिँगी सहज हँसौंहीं भौंह ॥२७३॥
तिय तिथि तरुन किसोर वय पुन्यकाल-सम दोनु।
काहूं पुन्यनु पाइयतु बैस संधि संक्रोनु ॥२७४॥
गनती गनिबे तैं रहे छत हूं अछत समान।
अलि अब ए तिथि औम लौं परे रहौ तन प्रान ॥२७५॥
सबै हँसत करतार दै नागरता कैं नावँ।
गयौ गरबु गुन कौ सरबु गएं गँवारैं गावँ ॥२७६॥
जाति मरी बिछरी घरी जल सफरी की रीति।
खिन खिन होति खरी खरी अरी जरी यह प्रीति ॥२७७॥
पिय-प्राननु की पाहरू करति जतन अति आपु।
जाकी दुसह दसा परयौ सौतिनिहूं संतापु ॥२७८॥
अहे कहै न कहा कह्यौ तोसौं नंदकिसोर।
बड़बोली बलि होति कत बड़े दृगनु कैं जोर ॥२७९॥
दियौ जु पिय लखि चखनु मैं खेलत फाग-खियालु।
बाढ़त हूं अति पीर सु न काढ़त बनतु गुलालु ॥२८०॥
मैं तपाइ त्रयताप सौं राख्यौ हियौ हमामु।
मति कबहुँक आऐं यहां पुलकि पसीजै स्यामु ॥२८१॥
बहकि बड़ाई आपनी कत रांचत मति-भूल।
बिनु मधु मधुकर कैं हियैं गडै न गुड़हर-फूल ॥२८२॥
आड़े दै आले बसन जाड़े हूं की राति।
साहसु ककै सनेह-बस सखी सबै ढिग जाति ॥२८३॥
सब अँग करि राखी सुघर नाइक नेह सिखाइ।
रसजुत लेति अनंत गति पुतरी पातुर-राइ ॥२८४॥

सुनत पथिक-मुँह माह-निसि चलति लुवैं उहिं गाम।
बिनु बूझैं बिनु हीं कहैं जियति बिचारी बाम ॥२८५॥

अनत बसे निसि की रिसनु उर बरि रही बिसेखि।
तऊ लाज आई झुकत खरे लजौहैं देखि ॥२८६॥

सुरँगु महावरु सौति-पग निरखि रही अनखाइ।
पिय-अँगुरिनु लाली लखैं खरी उठी लगि लाइ ॥२८७॥

मानहु मुँह-दिखरावनी दुलहिहिं करि अनुरागु।
सासु सदनु मनु ललन हूं सौतिनु दियौ सुहागु ॥२८८॥

कत सकुचत निधरक फिरौ रतियौ खोरि तुम्हैं न।
कहा करौ जौ जाइ ए लगैं लगौंहैं नैन ॥२८९॥

आपु दियौ मनु फेरि लै पलटैं दीनी पीठि।
कौन चाल यह रावरी लाल लुकावत डीठि ॥२९०॥

गोपिन सँग निसि सरद की रमत रसिक रस-रास।
लहाछेह अति गतिनु की सबनु लखे सब-पास ॥२९१॥

स्याम - सुरति करि राधिका तकति तरनिजा-तीरु।
अँसुवनु करति तरौंस कौ खिनकु खरौंहीं नीरु ॥२९२॥

गोपिनु कैं अँसुवनु भरी सदा असोस अपार।
डगर डगर नै ह्वै रही बगर बगर कैं बार ॥२९३॥

दुचितैं चित हलति न चलति हँसति न झुकति बिचारि।
लखत चित्र पिउ लखि चितै रही चित्र लौं नारि ॥२९४॥

कन दैवौ सौंप्यौ ससुर बहू थुरहथी जानि।
रूप - रहचटैं लगि लग्यौ मांगन सबु जगु आनि ॥२९५॥

निरखि नवोढ़ा नारि तन छुटत लरिकई लेस।
भौ प्यारौ प्रीतमु तियनु मनहु चलत परदेस ॥२९६॥

प्रान प्रिया हिय मैं बसै नखरेखा - ससि भाल।
भलौ दिखायौ आइ यह हरि - हर - रूप रसाल ॥२९७॥

तिय निय हिय जु लगी चलत पिय-नख-रेख-खरौंट।
सूखन देत न सरसई खोंटि खोंटि खत-खौंट ॥२९८॥
सघन कुंज घन घन-तिमिरु अधिक अँधेरी राति।
तऊ न दुरिहै स्याम वह दीप सिखा सी जाति ॥२९९॥
स्वारथु सुकृतु न श्रमु वृथा देखि विहंग विचारि।
बाज पराएँ पानि परि तूं पच्छीनु न मारि ॥३००॥
सीस-मुकट कटि-काछनी कर-मुरली उर-माल।
इहिं बानक मो मन सदा बसौ बिहारी लाल ॥३०१॥
भृकुटी-मटकनि पीतपट चटक लटकती चाल।
चलचख चितवनि चोरि चितु लियौ बिहारी लाल ॥३०२॥
संगति-दोषु लगै सबनु कहे ति साँचे बैन।
कुटिल बंक भ्रुव सँग भए कुटिल बंक गति नैन ॥३०३॥
जरी-कोर गोरैं बदन बढ़ी खरी छवि देखु।
लसति मनौ बिजुरी किए सारद ससि परिवेखु ॥३०४॥
चितवनि भोरं भाइ की गोरैं मुँह मुसकानि।
लागति लटकि अली-गरैं चित खटकति नित आनि ॥३०५॥
इहिं द्वैहीं मोती सुगथ तूं नथ गरबि निसाँक।
जिहिं पहिरैं जग-दृग ग्रसति लसति हँसति सी नाँक ॥३०६॥
हरि-छवि-जल जब तैं परे तब तैं छिनु बिछुरैं न।
भरत ढरत बूड़त तरत रहत घरी लौं नैन ॥३०७॥
मार-सुमार-करी डरी मरी मरीहिं न मारि।
सींचि गुलाब घरी घरी अरी बरीहिं न बारि ॥३०८॥
क्यौं हूं सहबात न लगै थाके भेद-उपाइ।
हठ-दृढ़ गढ़-गढ़वै सु चलि लीजै सुरँग लगाइ ॥३०९॥
वो ही को छुटि मानु गौ देखत हीं ब्रजराज।
रही घरिक लौं मान सी मान करें की लाज ॥३१०॥

न ए बिससियहि लखि नए दुरजन दुसह-सुभाइ।
आँटैं परि प्राननु हरत काँटैं लौं लगि पाइ॥३११॥

सखि सोहति गोपाल कैं उर गुंजनु की माल।
बाहिर लसति मनौ पिए दावानल की ज्वाल॥३१२॥

गहिली गरबु न कीजियै समै-सुहागहिं पाइ।
जिय की जीवनि जेठ सो माह न छांह सुहाइ॥३१३॥

हँसि हँसाइ उर लाइ उठि कहि न रुखौंहैं बैन।
जकित थकित ह्वै तकि रहे तकत तिलौंछे नैन॥३१४॥

तीज-परब सौतिनु सजे भूषन बसन सरीर।
सबै मरगजे-मुँह करीं इहां मरगजैं चीर॥३१५॥

गढ़-रचना बरुनी अलक चितवनि भौंह कमान।
आघु बँकाई हीं चढ़ै तरुनि तुरंगम तान॥३१६॥

इत आवति चलि जाति उत चली छसातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरैं सैं रहै लगी उसासनु साथ॥३१७॥

उर न टरै नींद न परै हरै न काल-विपाकु।
छिनकु छाकि उछकै न फिरि खरौ विषमु छवि-छाकु॥३१८॥

रमन कह्यौ हठि रमन कौं रति बिपरीत विलास।
चितई करि लोचन सतर सजल सरोस सहास॥३१९॥

ऐंचति सी चितवनि चितै भई ओट अलसाइ।
फिरि उझकनि कौं मृगनयनि दृगनि लगनिया लाइ॥३२०॥

नर की अरु नल-नीर की गति एकै करि जोइ।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै तेतौ ऊंचौ होइ॥३२१॥

भूषन-भारु सँभारिहै क्यौं इहिं तन सुकुमार।
सूधे पांय न धर परैं सोभा हीं कैं भार॥३२२॥

मुँह मिठासु दृग चीकने भौंहैं सरल सुभाइ।
तऊ खरैं आदर खरौ खिन खिन हियौ सकाइ॥३२३॥

जदपि नाहिँ नाहीं नहीं बदन लगी जक जाति।
तदपि भौंह-हांसी-भरिनु हांसीयै ठहराति ॥३२४॥
छुटन न पैयतु छिनकु बसि नेह-नगर यह चाल।
मारयौ फिरि फिरि मारियै खूनी फिरै खुस्याल ॥३२५॥
चुनरी स्याम सतार नभ मुँह ससि की उनहारि।
नेह दबावतु नींद लौं निरखि निसा सी नारि ॥३२६॥
कहत सबै बेंदी दियैं आंकु दसगुनौ होतु।
तिय-लिलार बेंदी दियैं अगनितु बढ़तु उदोतु ॥३२७॥
तर झरसी ऊपर गरी कज्जल-जल छिरकाइ।
पिय पाती बिनहीं लिखी बांची बिरह-बलाइ ॥३२८॥
बिरह सुकाई देह नेहु कियौ अति डहडहौ।
जैसैं बरसैं मेह जरै जवासौ जौ जमै ॥३२९॥
देखी सो न जुही फिरति सोनजुही सैं अंग।
दुति-लपटनु पट सेत हूं करति बनौटी रंग ॥३३०॥
बढ़त बढ़त संपति-सलिलु मन-सरोजु बढ़ि जाइ।
घटत घटत सु न फिरि घटै बरु समूल कुम्हिलाइ ॥३३१॥
ह्यां न चलै बलि रावरी चतुराई की चाल।
सनख हियैं खिन खिन नटत अनख बढ़ावत लाल ॥३३२॥
डीठि न परतु समान-दुति कनकु कनक सैं गात।
भूपन कर करकस लगत परसि पिछाने जात ॥३३३॥
करतु मलिन आछी छबिहिँ हरतु ज सहजु बिकासु।
अंगरागु अंगनु लगै ज्यौं आरसी उसासु ॥३३४॥
पहिरि न भूपन कनक के कहि आवत इहिँ हेत।
दरपन के से मोरचे देह दिखाई देत ॥३३५॥
जदपि चवाइनु चीकनी चलति चहूं दिसि सैन।
तऊ न छाड़त दुहुनु के हँसी रसीले नैन ॥३३६॥

अनरस हूं रसु पाइयतु रसिक रसीली पास।
जैसैं सांठे की कठिन गांठ्यौ भरी मिठासु ॥३३७॥

गोरी छिगुनी नखु अरुनु छला स्यामु छबि देइ।
लहत मुकति रति पलकु यह नैन त्रिबेनी सेइ ॥३३८॥

उर मानिक की उरबसी डटत घटतु दृग-दागु।
छलकतु बाहिर भरि मनौ तिय-हिय कौ अनुरागु ॥३३९॥

सहज सेत पँचतोरिया पहिरत अति छबि होति।
जलचादर के दीप लौं जगमगाति तन-जोति ॥३४०॥

कोटि जतन कोऊ करै परै न प्रकृतिहिँ बीचु।
नल-बल जलु ऊँचैं चढ़ै अंत नीच को नीचु ॥३४१॥

लगत सुभग सीतल किरन निसि-सुख दिन अवगाहि।
माह ससी-भ्रम सूर-त्यौं रहति चकोरी चाहि ॥३४२॥

तपन-तेज तपु-ताप तपि अतुल तुलाई मांह।
सिसिर-सीतु क्यौंहुँ न कटै बिनु लपटैं तिय नांह ॥३४३॥

रहि न सकी सब जगत मैं सिसिर-सीत कैं त्रास।
गरम भाजि गढ़वै भई तिय-कुच अचल मवास ॥३४४॥

झूठे जानि न संग्रहे मन मुँह निकसे बैन।
याही तैं मानहु किए बातनु कौं बिधि नैन ॥३४५॥

सुघर-सौति-बस पिउ सुनत दुलहिनि दुगुन हुलास।
लखी सखी तन दीठि करि सगरब सलज सहास ॥३४६॥

लिखन बैठि जाकी सबी गहि गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर ॥३४७॥

दुनहाई सब टोल मैं रही जु सौति कहाइ।
सु तैं ऐंचि प्यौ आपु त्यौं करी अदोखिल आइ ॥३४८॥

दृगनु लगत बेधत हियहिँ बिकल करत अँग आन।
ए तेरे सब तैं बिषम ईछन-तीछन बान ॥३४९॥

पीठि दियै हीं नैंक मुरि कर घूंघट-पटु टारि।
भरि गुलाल की मूठि सौं गई मूठि सी मारि ॥३५०॥
गुनी गुनी सबकैं कहैं निगुनी गुनी न होतु।
सुन्यौ कहूं तरु अरक तैं अरक समानु उदोतु ॥३५१॥
छुटत मुठिन सँग हीं छुटी लोक-लाज कुल-चाल।
लगे दुहुनु इक बेर ही चल चित नैन गुलाल ॥३५२॥
ज्यौं ज्यौं पटु झटकति हठति हँसति नचावति नैन।
त्यौं त्यौं निपट उदारहूं फगुवा देत बनै न ॥३५३॥
ज्यौं ज्यौं पावक लपट सी तिय हिय सौं लपटाति।
त्यौं त्यौं छुही गुलाब सैं छतिया अति सियराति ॥३५४॥
भाल-लालबेंदी - छए छुटे बार छबि देत।
गह्यौ राहु अति आहु करि मनु ससि सूर समेत ॥३५५॥
तिय कित कमनैती पढ़ी बिनु जिहि भौंह-कमान।
चलचित - बेझैं चुकति नहिं बंक बिलोकनि-बान ॥३५६॥
दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यौं न बढ़ै दुख-दंदु।
अधिक अँधेरो जग करत मिलि मावस रवि चंदु ॥३५७॥
ललन-चलनु सुनि पलनु मैं अँसुवा झलके आइ।
भई लखाइ न सखिनु सौं झूठैं हीं जमुहाइ ॥३५८॥
कंचन-तन-धन-बरन बर रह्यो रंगु मिलि रंग।
जानी जाति सुबास हीं केसरि लाई अंग ॥३५९॥
खरैं अदब इठलाहटी उर उपजावति त्रासु।
दुसह संक बिस कौ करै जैसे सोंठि-मिठासु ॥३६०॥
तौ लगु या मन-सदन मैं हरि आवैं किहिं बाट।
बिकट जटे जौ लगु निपट खुटैं न कपट-कपाट ॥३६१॥
है कपूर मनिमय रही मिलि तन-दुति मुकतालि।
छिन छिन खरी बिचच्छिनौ लखति छ्वाइ तिनु आलि ॥३६२॥

दृग उरझत टूटत कुटुम जुरत चतुर-चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हियैं दई नई यह रीति॥३६३॥

नहिं नचाइ चितवति दृगनु नहिँ बोलति मुसकाइ।
ज्यौं ज्यौं रूखी रुख करति त्यौं त्यौं चितु चिकनाइ॥३६४॥

वैसीयै जानी परति झगा ऊजरे माहँ।
मृगनैनी लपटत जु यह बेनी उपटी बाहँ॥३६५॥

प्यासे दुपहर जेठ के फिरे सबै जलु सोधि।
मरुधर पाइ मतीरु हीं मारू कहत पयोधि।३६६॥

विषम बृपादित की तृपा जिए मतीरनु सोधि।
अमित अपार अगाध जलु मारौ मूड़ पयोधि॥३६७॥

निपट लजीली नवल तिय बहकि बारुनी सेइ।
त्यौं त्यौं अति मीठी लगति ज्यौं ज्यौं ढीठ्यौ देइ॥३६८॥

सरस कुसुम मँडरातु अलि न झुकि झपटि लपटातु।
दरसत अति सुकुमारु तनु परसत मन न पत्यातु॥३६९॥

निरदय नेहु नयौ निरखि भयौ जगतु भय भीतु।
यह न कहूं अब लौं सुनी मरि मारियै जु मीतु॥३७०॥

भजन कह्यौ तातैं भज्यौ भज्यौ न एकौ वार।
दूरि भजन जातैं कह्यौ सो तैं भज्यौ गँवार॥३७१॥

नैन लगै तिहिँ लगनि जु न छुटैं छुटैं हूं प्रान।
काम न आवत एक हूं तेरे सौक सयान॥३७२॥

उडति गुड़ी लखि ललन की अँगना अँगना माहँ।
बौरी लौं दौरी फिरति छुवति छबीली छाहँ॥३७३॥

ऊंचै चितै सराहियतु गिरह कबूतरु लेतु।
झलकित दृग मुलकित बदनु तनु पुलकित किहिँ हेतु॥३७४॥

लागत कुटिल कटाच्छ-सर क्यौं न होहिँ बेहाल।
कढ़त जि हियहिँ दुसाल करि तऊ रहत नटसाल॥३७५॥

जनमु जलधि पानिपु विमल भौ जग आघु अपारु ।
रहै गुनी ह्वै गर परयौ भलैं न मुकता हारु ॥३७६॥
गहै न नेकौ गुन गरवु हँसौ सवै संसारु ।
कुच उच पद लालच रहै गरैं परैं हूं हारि ।३७७॥
तज्यौ आंच अव विरह की रह्यौ प्रेम-रस भीजि ।
नैननु कैं मग जलु वहै हियौ पसीजि पसीजि ॥३७८॥
छला परोसिन हाथ तैं छलु करि लियौ पिछानि ।
पियहिं दिखायौ लखि विलखि रिस-सूचक मुसकानि ॥३७९॥
हठि-हितु करि प्रीतम-लियौ कियौ जु सौति सिँगारु ।
अपनैं कर मोतिनु गुह्यौ भयौ हरा हर-हारु ॥३८०॥
वसै वुराई जासु तन ताही कौ सनमानु ।
भलौ भलौ कहि छोड़ियै खोटैं ग्रह जपु दानु ॥३८१॥
वै ठाढ़े उमदाहु उत जल न वुझै वड़वागि ।
जाही सौं लाग्यौ हियौ वाही कैं हिय लागि ॥३८२॥
ढीठि परोसिनि ईठि ह्वै कहे जु गहे सयानु ।
सवै सँदेसे कहि कह्यौ मुसकाहट मैं मानु ॥३८३॥
छिनकु चलति ठठुकति छिनकु भुज प्रीतम-गल डारि ।
चढ़ी अटा देखति घटा विज्जु-छटा सी नारि ॥३८४॥
धनि यह द्वैज जहां लख्यौ तज्यौ दृगनु दुख-दंदु ।
तुम भागनु पूरव उयौ अहो अपूरवु चंदु ॥३८५॥
लरिका लेवे कैं मिसनु लंगरु मो ढिग आइ ।
गयौ अनाचक आंगुरी छाती छैलु छुवाइ ॥३८६॥
ढीठ्यौ दै वोलति हँसति पोढ़-विलास अपोढ़ ।
त्यौं त्यौं चलत न पिय-नयन छकए छकी नवोढ़ ॥३८७॥
रनित भृंग-घंटावली झरित दान मधु-नीरु ।
मंद मंद आवतु चल्यौ कुंजरु कुंज-समीरु ॥३८८॥

रह्यो रुकी क्यौं हूं सु चलि आधिक राति पधारि।
हरति तापु सब द्यौस कौ उर लगि यारि बयारि ॥३८६॥
चुवति स्वेंद मकरंद-कन तरु-तरु-तर बिरमाइ।
आवतु दच्छिन देस तैं थक्यौ बटोही बाइ ॥३६०॥
पतवारी माला पकरि और न कछू उपाउ।
तरि संसार-पयोधि कौं हरि-नावैं करि नाउ ॥३६१॥
लपटी पुहुप-पराग-पट सनी स्वेद मकरंद।
आवति नारि नवोढ़ लौं सुखद वायु गति मंद ॥३६२॥
ललन सलोने अरु रहे अति सनेह सौं पागि।
तनक कचाई देत दुख सूरन लौं मुँह लागि ॥३६३॥
न करु न डरु सत्रु जगु कहतु कत बिनु काज लजात।
सौंहैं कीजै नैन जौ सांची सौंहैं खात ॥३६४॥
रहिहैं चंचल प्रान ए कहि कौन की अगोट।
ललन चलन की चित धरी कल न पलनु की ओट ॥३६५॥
जौ चाहत चटक न घटै मैलौ होइ न मित्त।
रज राजसु न छुवाइ तौ नेह-चीकनौं चित्त ॥३६६॥
कोरि जतन कीजै तऊ नागर-नेहु दुरै न।
कहैं देत चितु चीकनौ नई रुखाई नैन ॥३६७॥
लाल तुम्हारे रूप की कहौ रीति यह कौन।
जासौं लागत पलकु दृग लागत पलक पलौ न ॥३६८॥
कालबूत दूती बिना जुरै न और उपाइ।
फिरि ताकैं टारैं बनै पाकैं प्रेम-लदाइ ॥३६६॥
रह्यौ ऐंचि अंतु न लहै अवधि-दुसासनु बीरु।
आली बाढ़तु बिरहु ज्यौं पंचाली कौ चीरु ॥४००॥
यह बरिया नहिँ और की तूं करिया वह सोधि।
पाहन-नाव चढ़ाइ जिहिँ कीने पार पयोधि ॥४०१॥

पावक-झर तैं मेह-झर दाहक दुसह बिसेखि।
दहै देह वाकैं परस याहि दृगनु हीं देखि ॥४०२॥
चलित ललित श्रम-स्वेदकन कलित अरुन मुख तैं न।
बन - बिहार थाकी तरुनि खरे थकाए नैन ॥४०३॥
कुढँगु कोपु तजि रँग-रली करतिं जुवति जग जोइ।
पावस गूढ़ न बात यह बूढ़नु हूं रँगु होइ ॥४०४॥
न जक धरत हरि हिय धरैं नाजुक कमला बाल।
भजत भार-भय-भीत ह्वै घनु चंदनु बनमाल ॥४०५॥
नासा मोरि नचाइ जे करी कका की सौंह।
काँटे सी कसकैं ति हिय गड़ी कँटीली भौंह ॥४०६॥
क्यों बसियै क्यौं निबहियै नीति नेह-पुर नांहि।
लगालगी लोइन करैं नाहक मन बँधि जांहि ॥४०७॥
ललन-चलनु सुनि चुपु रही बोली आपु न ईठि।
राख्यौ गहि गाढ़ैं गरैं मनौ गलगली डीठि ॥४०८॥
अपनी गरजनु बोलियतु कहा निहोरौ तोहिं।
तू प्यारौ मो जीय कौं मो ज्यौ प्यारौ मोहिं ॥४०९॥
रह्यौ चकितु चहुँधा चितै चितु मेरौ मति भूलि।
सूर उयैं आए रही दृगनु सांझ सी फूलि ॥४१०॥
अति अगाधु अति औथरौ नदी कूपु सरु बाइ।
सो ताकौ सागरु जहां जाकी प्यास बुझाइ ॥४११॥
कपट सतर भौहैं करीं मुख अनखौंहैं बैन।
सहज हसौंहैं जानि कै सौंहैं करति न नैन ॥४१२॥
मानहु बिधि तन-अच्छ छवि स्वच्छ राखिबैं काज।
दृग - पग - पोंछन कौं करे भूषन पायंदाज ॥४१३॥
बिरह-बिथा-जल-परस-बिन बसियतु मो-मन-ताल।
कछु जानत जल-थंभ-बिधि दुर्जोधन लौं लाल ॥४१४॥

रुख रूखी मिस-रोष मुख कहति रुखौंहैं बैन।
रूखे कैसैं होत ए नेह चीकने नैन ॥४१५॥

पति-रितु-औगुन-गुन बढ़तु मानु माह कौ सीतु।
जातु कठिन ह्वै अति मृदौ रवनी-मनु नवनीतु ॥४१६॥

त्यौं त्यौं प्यासेई रहत ज्यौं ज्यौं पियत अघाइ।
सगुन सलोने रूप की जु न चख-तृषा बुझाइ ॥४१७॥

अरुन - धरन तरुनी - चरन - अँगुरी अति सुकुमार।
चुवत सुरँगु रँगु सी मनौ चपि बिछियनु कैं भार ॥४१८॥

मोर-मुकुट की चंद्रिकनु यौं राजत नँदनंद।
मनु ससिसेखर की अकस किय सेखर सतचंद ॥४१९॥

अधर धरत हरि कैं परत ओठ डीठि पट जोति।
हरित बांस की बांसुरी इंद्रधनुष - रँग होति ॥४२०॥

तौ अनेक औगुन-भरिहिँ चाहै याहि बलाइ।
जौ पति संपति हूं बिना जदुपति राखे जाइ ॥४२१॥

प्रीतम दृग मिहचत प्रिया पानि-परस-सुखु पाइ।
जानि पिछानि अजान लौं नैंकु न होति जनाइ ॥४२२॥

देखौं जागत वैसियै सांकर लगी कपाट।
कित ह्वै आवत जात भजि को जानै किहिँ बाट ॥४२३॥

करु उठाइ घूंघटु करत उझरत पट-गुझरौट।
सुख-मोटैं लूटीं ललन लखि ललना की लौट ॥४२४॥

करौ कुवत जगु कुटिलता तजौं न दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल हिय बसत त्रिभंगी लाल ॥४२५॥

निज करनी सकुचेहिँ कत सकुचावत इहिँ चाल।
मोहूं से नित-बिमुख-त्यौं सनमुख रहि गोपाल ॥४२६॥

मोहिँ तुम्हैं बाढ़ी बहस को जीतै जदुराज।
अपनैं अपनैं बिरद की दुहूं निबाहन लाज ॥४२७॥

दूरि भजत प्रभु पीठि दै गुन विस्तारन काल।
प्रगटत निर्गुन निकट रहि चंग-रंग भूपाल ॥४२८॥
कहै यहै स्रुति सुम्रित्यौ यहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसकहीं पातक राजा रोग ॥४२९॥
जो सिर धरि महिमा मही लहियति राजा राइ।
प्रगटत जड़ता अपनियैं सु मुकटु पहिरत पाइ ॥४३०॥
को कहि सकै बड़ेनु सौं लखै बड़ीयौ भूल।
दीने दई गुलाब की इन डारनु वे फूल ॥४३१॥
समै समै सुंदर सबै रूपु कुरूपु न कोइ।
मन की रुचि जेती जितै तित तेती रुचि होइ ॥४३२॥
या भव-पारावार कौं उलँघि पार को जाइ।
तिय-छवि-छाया ग्राहिनी ग्रहै बीचहीं आइ ॥४३३॥
दिन दस आदरु पाइकै करि लै आपु बखानु।
जौ लगि काग सराधपखु तौ लगि तौ सनमानु ॥४३४॥
मरतु प्यास पिंजरा-परयौ सुआ समै कैं फेर।
आदरु दै दै बोलियतु बाइसु बलि की बेर ॥४३५॥
बेई कर ब्यौरनि वहै ब्यौरौ कौन बिचार।
जिनहीं उरझ्यौ मो हियौ तिनहीं सुरझे बार ॥४३६॥
इहीं आस अटक्यौ रहतु अलि गुलाब कैं मूल।
ह्वैहैं फेरि बसंत ऋतु इन डारनु वे फूल ॥४३७॥
वे न इहाँ नागर बढ़ी जिन आदर तो आब।
फूल्यो अनफूल्यो भयौ गवँई गावँ गुलाब ॥४३८॥
चल्यो जाइ ह्याँ को करै हाथिनु कौ ब्यापार।
नहिँ जानतु इहिँ पुर बसैं धोबी ओड़ कुँभार ॥४३९॥
खरी लसति गोरैं गरैं धँसति पान की पीक।
मनौ गुलीबँद-लाल की लाल लाल दुति-लीक ॥४४०॥

पाइल पाइ लगी रहै लगौ अमोलिक लाल।
भोडर हूं की भासिहै बेंदी भामिनि-भाल ॥४४१॥
कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगौ इतौ उदोतु।
वंक वकारी देत ज्यौं दामु रुपैया होतु ॥४४२॥
रहि न सक्यौ कसु करि रह्यौ वस करि लीनौ मार।
भेदि दुसार कियौ हियौ तन-दुति भेदै सार ॥४४३॥
खल-बढ़ई बलु करि थके कटै न कुबत-कुठार।
आलवाल उर झालरी खरी प्रेम-तरु-डार ॥४४४॥
स्यौं विजुरी मनु मेह आनि इहां विरहा धरे।
आठौ जाम अछेह दृग जु बरत बरसत रहत ॥४४५॥
कत वेकाज चलाइयति चतुराई की चाल।
कहे देति यह रावरे सब गुन निरगुन माल ॥४४६॥
उनकौ हितु उनहीं बनै कोऊ करौ अनेकु।
फिरतु काक गोलकु भयौ दुहूं देह ज्यौं एकु ॥४४७॥
वड़े वड़े छबि-छाक छकि छिगुनी-छोर छुटैं न।
रहै सुरँग रँग रँगि उहीं नह-दी महदी नैन ॥४४८॥
बाढ़तु तो उर उरज-भरु भरि तरुनई-बिकास।
बोझनु सौतिनु कैं हियैं आवति रूंधि उसास ॥४४९॥
अलि इन लोइन-सरनु कौ खरौ विषम संचारु।
लगैं लगाऐं एक से दुहूंनु करत सुमारु ॥४५०॥
मूड़ चढ़ाऐंऊ रहै परयौ पीठि कच-भारु।
रहै गरैं परि राखिवौ तऊ हियैं पर हारु ॥४५१॥
करतु जातु जेती कटनि वढ़ि रस-सरिता-सोतु।
आलवाल उर प्रेम-तरु तितौ तितौ दृढ़ु होतु ॥४५२॥
राति द्यौस हौंसै रहै मानु न ठिकु ठहराइ।
जेतौ औगुनु ढूंढ़ियै गुनै हाथ परि जाइ ॥४५३॥

मनु न मनावन कौं करै देतु रुठाइ रुठाइ।
कौतुक-लाग्यौ प्यौ प्रिया-खिझहूं रिझवति जाइ ॥४५४॥
विरह-विपति-दिनु परत हीं तजे सुखनु सब अंग।
रहि अब लौं अब दुखौ भए चलाचलौ जिय-संग ॥४५५॥
नयैं विरह वढ़ती विथा खरी विकल जिय बाल।
बिलखी देखि परोसिन्यौ हरखि हँसी तिहिं काल ॥४५६॥
छतौ नेहु कागर हियैं भई लखाइ न टांकु।
विरह-तचैं उघरयौ सु अब सेंहुड़ कैसो आंकु ॥४५७॥
फूलीफाली फूल सी फिरति जु विमल-विकास।
भोर तरैयां होहु ते चलत तोहिं पिय-पास ॥४५८॥
अरी खरी सटपट परी विधु आधैं मग हेरि।
संग-लगैं मधुपनु लई भागनु गली अँधेरि ॥४५९॥
चलतु घैरु घर घर तऊ घरी न घर ठहराइ।
समुझि उहीं घर कौं चलै भूलि उहीं घर जाइ ॥४६०॥
इक भीजैं चहलैं परैं बूड़ैं बहैं हजार।
किते न औगुन जग करै वै-नै चढ़ती बार ॥४६१॥
गाढ़ैं ठाढ़ैं कुचनु ठिलि पिय-हिय को ठहराइ।
उकसौंहैं हीं तौ हियैं दई सबै उकसाइ ॥४६२॥
दीप-उजेरैं हूं पतिहिं हरत बसनु रति-काज।
रही लपटि छवि की छटनु नैंकौ छुटी न लाज ॥४६३॥
लखि दौरत पिय-कर-कटकु बास-छुड़ावन-काज।
वरुनी-वन गाढ़ै हगनु रही गुढ़ौ करि लाज ॥४६४॥
सकुचि सुरत-आरंभ हीं विछुरी लाज लजाइ।
ढरकि ढार ढुरि ढिग भई ढीठि ढिठाई आइ ॥४६५॥
सकुचि सरकि पिय-निकट तैं मुलकि कछुक तनु तोरि।
कर आंचर की ओट करि जमुहानी मुँहु मोरि ॥४६६॥

देह लग्यौ ढिग गेहपति तऊ नेहु निरबाहि।
नीची अँखियनु हीं इतै गई कनखियनु चाहि ॥४६७॥
मारयौ मनुहारिनु भरी गारयौ खरी मिठाहिं।
वाकौ अति अनखाहटौ मुसकाहट बिनु नाहिँ ॥४६८॥
नाचि अचानक हीं उठे बिनु पावस बन मोर।
जानति हौं नंदित करी यह दिसि नंद-किसोर ॥४६९॥
मैं यह तोही मैं लखी भगति अपूरब बाल।
लहि प्रसाद-माला जु भौ तनु कदंब की माल ॥४७०॥
जाकैं एकाएक हूं जग ब्यौसाइ न कोइ।
सो निदाघ फूलै फरै आकु डहडहौ होइ ॥४७१॥
बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करैं भौंहनु हँसै दैन कहैं नटि जाइ ॥४७२॥
रही लट्टू ह्वै लाल हौं लखि वह बाल अनूप।
कितौ मिठास दयौ दई इतै सलोनैं रूप ॥४७३॥
नहिं पावसु ऋतुराजु यह तजि तरवर चित-भूल।
अपतु भऐं बिनु पाइहै क्यौं नव दल फल फूल ॥४७४॥
बन बाटनु पिक बटपरा लखि बिरहिनु मत मैं न।
कुहौ कुहौ कहि कहि उठैं करि करि राते नैन ॥४७५॥
दिसि दिसि कुसुमित देखियत उपबन बिपिन समाज।
मनहुँ बियोगिनु कौं कियौ सर-पंजर ऋतुराज ॥४७६॥
टटकी धोई धोवती चटकीली मुख-जोति।
लसति रसोई कै बगर जगरमगर दुति होति ॥४७७॥
सोहति धोती सेत मैं कनक-बरन-तन बाल।
सारद-बारद-बीजुरी-भा रद कीजति लाल ॥४७८॥
बहु धनु लै अहसानु कै पारौ देत सराहि।
बैद-बधू हँसि भेद सौं रही नाह-मुँह चाहि ॥४७९॥

रहौ गुही वेनी लखे गुहिवे के त्यौनार।
लागे नीर चुचान जे नीठि सुकाए वार ॥ ४८०॥
मीत न नीति गलीतु ह्वै जौ धरियै धनु जोरि।
खाऐं खरचैं जौ जुरै तौ जोरियै करोरि ॥४८१।
दुरैं न निघटघट्यौ दियैं ए रावरी कुचाल।
विषु सी लागति है वुरी हँसी खिसी की लाल ॥४८२॥
छाले परिवे कैं डरनु सकै न हाथ छुवाइ।
झझकत हियैं गुलाव कैं झँवा झँवैयत पाइ ॥४८३॥
तिय-तरसौंहैं मुनि किए करि सरसौंहैं नेह।
धर-परसौंहैं ह्वै रहे झर-वरसौंहैं मेह ॥४८४॥
घन-घेरा छुटि गौ हरषि चली चहूं दिसि राह।
कियौ सुचैनौ आइ जगु सरद-सूर-नरनाह ॥४८५॥
पावस-घन-अँधियार महि रह्यौ भेदु नहिं आनु।
रात द्यौस जान्यौ परतु लखि चकई चकवानु ॥४८६॥
अरुन सरोरुह कर चरन दृग खंजन मुख चंद।
समै आइ सुंदरि सरद काहि न करति अनंद ॥४८७॥
नाहिंन ए पावक प्रवल लुवैं चलैं चहुँ पास।
मानहु विरह वसत कैं ग्रीषम लेत उसास ॥४८८॥
कहलाने एकत वसत अहि मयूर मृग वाघ।
जगतु तपोवन सौ कियौ दीरघ दाव निदाघ ॥४८९॥
पग पग मग अगमन परत चरन अरुन दुति झूलि।
ठौर ठौर लखियत उठे दुपहरिया से फूलि ॥४९०॥
नीच हियैं हुलसे रहैं गहे गेंद के पोत।
ज्यौं ज्यौं माथैं मारियत त्यौं त्यौं ऊंचे होत ॥४९१॥
ज्यौं ज्यौं वढ़ति विभावरी त्यौं त्यौं वढ़त अनंत।
ओक ओक सव लोक-सुख कोक-सोक हेमंत ॥४९२॥

रह्यौ मोहु मिलनौ रह्यौ यौं कहि गहैं मरोर।
उत दै सखिहिं उराहनौ इत चितई मो ओर ॥४९३॥
नहिं हरि लौं हियरा धरौ नहिं हर लौं अरधंग।
एकत ही करि राखियै अंग अंग प्रति अंग ॥४९४॥
कियौ सबै जगु काम बस जीते जिते अजेइ।
कुसुम-सरहिं सर धनुप कर अगहनु गहन न देइ ॥४९५॥
छकि रसाल-सौरभ सनें मधुर माधुरी-गंध।
ठौर ठौर झौंरत झँपत भौंर-झौंर मधु-अंध ॥ ४९६ ॥
मिलि विहरत बिछुरत मरत दंपति अति रति-लीन।
नूतन विधि हेमंत सबु जगतु जुराफा कीन ॥४९७॥
पल सोहैं पगि पीक-रँग छल सोहैं सब बैन।
बल-सौहैं कत कीजियत ए अलसौंहैं नैन ॥४९८॥
कत लपटइयतु मो गरैं सो न जु ही निसि सैन।
जिहिं चंपक-बरनी किए गुल्लाला-रँग नैन ॥४९९॥
नैंक उतै उठि बैठियै कहा रहे गहि गेहु।
छुटी जाति नह-दी छिनकु महदी सूकन देहु ॥५००॥
लटुवा लौं प्रभु कर गहैं निगुनी गुन लपटाइ।
वहै गुनी-कर तैं छुटैं निगुनीयै ह्वै जाइ ॥५०१॥
है हिय रहति हई छई नइ जुगती जग जोइ।
दीठिहिं दीठि लगै दई देह दूबरी होइ ॥५०२॥
जज्यौं उझकि झांपति बदनु झुकति बिहँसि सतराइ।
तत्यौं गुलाल-मुठी झुठी झझकावत प्यौ जाइ ॥५०३॥
छिनकु छबीले लाल वह नहिं जौ लगि बतराति।
ऊख महूप पियूप की तौ लगि भूख न जाति ॥५०४॥
अँगुरिनु उचि भरु भीति दै उलमि चितै चख लोल।
रुचि सौं दुहूं दहूंनु के चूमे चारु कपोल ॥५०५॥

नागरि विविध विलास तजि वसी गवेंलिनु माँहि।
मूढ़नि मैं गनवी कि तू, हूठ्यौ दै इठलांहि ॥५०६।
बिथुरयौ जावकु सौति-पग निरखि हँसी गहि गांसु।
सलज हँसौंहीं लखि लियौ आधी हँसी उसांसु ॥५०७॥
मो सौं मिलवति चातुरी तूं नहि भानति भेउ।
कहे देत यह प्रगट हीं प्रगट्यौ पूस पसेउ ॥५०८॥
सौंहैं हूं हेरयौ न तैं केती द्याई सौंह।
एहो क्यौं वैठी किए ऐंठी ग्वैंठी भौंह ॥५०९॥
ही औरै सी ह्वै गई टरी औधि कैं नाम।
दूजैं कै डारी खरी वौरी वौरैं आम ॥५१०॥
सही रँगीलैं रति-जगैं जगी पगी सुख चैन।
अलसौंहैं सौंहैं कियैं कहैं हँसौंहैं नैन ॥५११॥
कहा कुसुमु कह कौमुदी कितक आरसी जोति।
जाकी उजराई लखैं आंखि ऊजरी होति ॥५१२॥
पहिरत हीं गोरैं गरैं यौं दौरी दुति लाल।
मनौ परसि पुलकित भई वौलसिरी की माल ॥५१३॥
रस भिजए दोऊ दुहुनु तउ टिकि रहे टरैं न।
छवि सौं छिरकत प्रेम-रँगु भरि पिचकारी नैन ॥५१४॥
कारे वरन डरावने कत आवत इहिं गेह।
कै वा लखी सखी लखैं लगैं थरथरी देह ॥५१५॥
कर के मीड़े कुसुम लौं गई विरह कुम्हिलाइ।
सदा-समीपिनि सखिनु हूं नीठि पिछानी जाइ ॥५१६॥
चितवत जितवत हित हियैं कियैं तिरीछे नैन।
भीजैं तन दोऊ कँपैं क्यौं हूं जप निवरैं न ॥५१७॥
कियौ जु चिवुक उठाइ कै कंपित कर भरतार।
टेढ़ीयै टेढ़ी फिरति टेढ़ैं तिलक लिलार ॥५१८॥

भौ यह ऐसोई समौ जहां सुखद दुखु देत।
चैत-चांद की चांदनी डारति किए अचेत ॥५१९॥

कत कहियत दुखु देन कौं रचि रचि बचन अलीक।
सबै कहाउ रह्यौ लखैं लाल महावर-लीक ॥५२०॥

लोपे कोपे इंद्र लौं रोपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सबै गो गोपी गोपाल ॥५२१॥

ढोरी लाई सुनन की कहि गोरी मुसुकात।
थोरी थोरी सकुच सी भोरी भोरी बात ॥५२२॥

आज कछू औरै भए छए नए ठिक ठैन।
चित के हित के चुगल ए नित के होहिं न नैन ।५२३॥

छुटै न लाज न लालचौ प्यौ लखि नैहर-गेह।
सटपटात लोचन खरे भरे सकोच सनेह ॥५२४।

ह्यां तैं ह्वां ह्वां तैं इहां नेको धरति न धीर।
निसि दिन डाढ़ी सी फिरति बाढ़ी गाढ़ी पीर ॥५२५॥

बिरह-बिकल बिनु हीं लिखी पाती दई पठाइ।
आंक-बिहूनीयौ सुचित सूनैं बांचत जाइ ॥५२६॥

समरस समर सकोच बस बिबस न ठिक ठहराइ।
फिरि फिरि उझकति फिरि दुरति दुरि दुरि उझकति आइ ॥५२७॥

फिरत जु अटकत कटनि बिनु रसिक सु रस न खियाल।
अनत अनत नित नित हितनु चित सकुचत कत लाल ॥५२८॥

अरैं परै न करै हियौ खरैं जरैं पर जार।
लावति घोरि गुलाब सौं मलै मिलै घनसार ॥५२९॥

दोऊ चोर-मिहीचनी खेलु न खेलि अघात।
दुरत हियैं लपटाइ कै छुवत हियैं लपटात ॥५३०॥

मिसि हीं मिसि आतप दुसह दई और बहराइ।
चले ललन मन भावतिहिं तन की छांह छिपाइ ॥५३१॥

लहलहाति तन तरुनई लचि लग लौं लकि जाइ।
लगैं लांक लोइन भरी लोइनु लेति लगाइ ॥५३२॥

रही अचल सी ह्वै मनौ लिखी चित्र की आहि।
तजैं लाज डर लोक कौ कहौ विलोकति काहि ॥५३३॥

पल न चलैं जकि सी रही थकि सी रही उसास।
अबहीं तनु रितयौ कहौ मनु पठयौ किहिं पास ॥५३४॥

मैं लै दयौ लयौ सु कर छुवत छिनकि गौ नीरु।
लाल तिहारौ अरगजा उर ह्वै लग्यौ अबीरु ॥५३५॥

चलौ चलैं छुटि जाइगौ हठु रावरैं सँकोच।
खरे चढ़ाए हे ति अब आए लोचन लोच ॥५३६॥

कहे जु वचन वियोगिनी विरह-विकल विललाइ।
किए न को अँसुवा सहित सुवा ति बोल सुनाइ ॥५३७॥

छिप्यौ छवीलौ मुँहु लसै नीलै अंचर-चीर।
मनौ कलानिधि झलमलै कालिंदी कैं नीर ॥५३८॥

मानु तमासौ करि रही विवस वारुनी सेइ।
झुकति हँसति हँसि हँसि झुकति झुकि झुकि हँसि हँसि देइ ॥५३९॥

सदन सदन के फिरन की सद न छुटै हरि-राइ।
रुचै तितै विहरत फिरौ कत विहरत उरु आइ ॥५४०॥

प्रलय-करन वरषन लगे जुरि जलधर इक साथ।
सुरपति-गरबु हर्‌यौ हरषि गिरिधर गिरि धरि हाथ ॥५४१॥

करे चाह सौं चुटकि कै खरैं उड़ौंहैं मैन।
लाज नवाएँ तरफरत करत खूँद सी नैन ॥५४२॥

ज्यौं ज्यौं आवति निकट निसि त्यौं त्यौं खरी उताल।
झमकि झमकि टहलैं करै लगी रहचटैं वाल ॥५४३॥

रही पैज कीनी जु मैं दीनी तुमहिं मिलाइ।
राखहु चंपकमाल लौं लाल हियैं लपटाइ ॥५४४॥

दोऊ चाह भरे कछू चाहत कह्यौ कहैं न।
नहिं जाँचकु सुनि सूम लौं बाहिर निकसत बैन ॥५४५॥

सुभर भर्‌यौ तुव गुन कननु पकयौ कपट कुचाल।
क्यौं धौं दार्‌यौ ज्यौं हियौ दरकतु नाहिँन लाल ॥५४६॥

चितु दै देखि चकोर त्यौं तीजै भजै न भूख।
चिनगी चुगै अँगार की चुगै कि चंद-मयूख ॥५४७॥

तुहूं कहति हौं आपु हूं समुझति सबै सयानु।
लखि मोहनु जौ मनु रहै तौ मन राखौं मानु ॥५४८॥

धुरवा होहिँ न अलि उठै धुवां धरनि चहुँ कोद।
जारत आवत जगत कौं पावस प्रथम पयोद ॥५४९॥

नख-रुचि-चूरनु डारि कै ठगि लगाइ निज साथ।
रह्यौ राखि हठि लै गए हथाहथी मनु हाथ ॥५५०॥

चलत देत आभारु सुनि उहीं परोसिहिं नाह।
लसी तमासे की दृगनु हांसी आंसुन मांह ॥५५१॥

सुरति न ताल न तान की उठ्यौ न सुरु ठहराइ।
एरी रागु बिगारि गौ बैरी बोलु सुनाइ ॥५५२॥

पजर्‌यौ आगि बियोग की बह्यौ बिलोचन नीर।
आठौं जाम हियौ रहै उड़्यौ उसास समीर ॥५५३॥

उरु उरुझ्यौ चितचोर सौं गुरु गुरुजन की लाज।
चढ़ैं हिंडोरैं सैं हियैं कियैं बनै गृह-काज ॥५५४॥

पट सौं पोंछि परी करौ खरी भयानक भेष।
नागिनि ह्वै लागति दृगनु नागबेलि-रँग-रेख ॥५५५॥

तो लखि मो मन जो लही सो गति कही न जाति।
ठोड़ी गाड़ गड़्यौ तऊ उड़्यौ रहै दिन राति ॥५५६॥

मैं लखि नारी-ज्ञानु करि राख्यौ निरधारु यह।
वहई रोग निदानु वहै बैदु औषद वहै ॥५५७॥

जो तिय तुम मन भावती राखी हियैं बसाइ।
मोहिं झुकावति दृगनु ह्वै वहई उझकति आइ ॥५५८॥
दोऊ अधिकाई भरे एकैं गौं गहराइ।
कौनु मनावै को मनै मानै मन ठहराइ ॥५५९॥
उर लीनै अति चटपटी सुनि मुरली-धुनि धाइ।
हौं निकसी हुलसी सु तौ गौ हुलसी हिय लाइ ॥५६०॥
व्रजबासिनु कौ उचित धनु जो धन रुचित न कोइ।
सु चित न आयौ सुचितई कहौ कहाँ तैं होइ ॥५६१॥
हठु न हठीली करि सकैं यह पावस ऋतु पाइ।
आन गांठि घुटि जाइ त्यौं मान-गांठि छुटि जाइ ॥५६२॥
तेऊ चिरजीवी अमर निधरक फिरौ कहाइ।
छिनु बिछुरैं जिनकी नहीं पावस आइ सिराइ ॥५६३॥
भेटत बनै न भावतौ चितु तरसतु अति प्यार।
धरति लगाइ लगाइ उर भूषन बसन हथ्यार ॥५६४॥
वाही दिन तैं ना मिट्यौ मानु कलह कौ मूलु।
भलैं पधारे पाहुने ह्वै गुडहर कौ फूलु ॥५६५॥
मोहिं लजावत निलज ए हुलसि मिलत सब गात।
भानु-उदै की ओस लौं मानु न जानति जात ॥५६६॥
तो तन अवधि-अनूप रूपु लग्यौ सब जगत कौ।
मो दृग लागे रूप दृगनु लगी अति चटपटी ॥५६७॥
रहैं निगोड़े नैन डिगि गहैं न चेत अचेत।
हौं कसु कै रिस के करौं ये निसुके हँसि देत ॥५६८॥
मोहूं सौं बातनु लगैं लगी जीभ जिहिं नाइ।
सोई लै उर लाइयै लाल लागियतु पाइ ॥५६९॥
नावक-सर से लाइ कै तिलकु तरुनि इत ताँकि।
पावक-झर सी झमकि कै गई झरोखा झाँकि ॥५७०॥

सुख सौं बीती सब निसा मनु सोए मिलि साथ।
मूका मेलि गहे सु छिनु हाथ न छोड़े हाथ ॥५७१॥
बाम बांह फरकति मिलैं जौ हरि जीवनमूरि।
तौ तोहीं सौं भेटिहौं राखि दाहिनी दूरि ॥५७२॥
छुटे छुटावत जगत तैं सटकारे सुकुमार।
मनु बांधत बेनी बँधे नील छबीले बार ॥५७३॥
इहिँ बसंत न खरी अरी गरम न सीतल बात।
कहि क्यौं झलके देखियत पुलक पसीजे गात ॥५७४॥
चित पितमारक-जोगु गनि भयौ भयैं सुत सोगु।
फिरि हुलस्यौ जिय जोइसी समुझैं जारज-जोगु ॥५७५॥
चमचमात चंचल नयन बिच घूंघट पट झीन।
मानहु सुरसरिता बिमल जल उछरत जुग मीन ॥५७६॥
रहि मुँहु फेरि कि हेरि इत हित समुहौ चितु नारि।
डीठि-परस उठि पीठि के पुलके कहैं पुकारि ॥५७७॥
बिछुरैं जिए सकोच इहिँ बोलत बनत न बैन।
दोऊ दौरि लगे हियैं किए लजौंहैं नैन ॥५७८॥
मोहिँ करत कत बावरी करैं दुराउ दुरै न।
कहे देत रँग राति के रँग निचुरत से नैन ॥५७९॥
छिपैं छिपाकर छिति छुवैं तम ससिहरि न सँभारि।
हँसति हँसति चलि ससिमुखी मुख तैं आंचरु टारि ॥५८०॥
अपनैं अपनैं मत लगे बादि मचावत सोरु।
ज्यौं त्यौं सब कौं सेइबौ एकै नंद-किसोरु ॥५८१॥
लहि सूनैं घर करु गहत दिठादिठी की ईठि।
गड़ी सु चित नाहीं करति करि ललचौंहीं डीठि ॥५८२॥
पिय कैं ध्यान गही गही रही वही ह्वै नारि।
आपु आपु हीं आरसी लखि रीझति रिझवारि ॥५८३॥

बुरौ बुराई जौ तजै तौ चितु खरौ डरातु।
ज्यौं निकलंकु मयंकु लखि गनैं लोग उतपातु ॥५८४॥
मरिबे को साहसु ककै बढ़ै विरह की पीर।
दौरति ह्वै समुही ससी सरसिज सुरभि समीर ॥५८५॥
कब को ध्यान लगी लखौं यह घरु लगिहै काहि।
डरियतु भृंगी-कीट लौं मति वहई ह्वै जाइ ॥५८६॥
बिलखी लखै खरी खरी भरी अनख बैराग।
मृगनैनी सैनन भजै लखि बेनी के दाग ॥५८७॥
अनियारे दीरघ दृगनु किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरै कछू जिहिँ बस होत सुजान ॥५८८॥
झुकि झुकि झपकौंहैं पलनु फिरि फिरि जुरि जमुहाइ।
बींदि पिआगम नींद-मिसि दीं सब अली उठाइ ॥५८९॥
ओछे बड़े न ह्वै सकैं लगौ सतर ह्वै गैन।
दीरघ होहिँ न नैंक हूं फारि निहारैं नैन ॥५९०॥
गह्यौ अबोलौ बोलि प्यौ आपुहिँ पठै बसीठि।
दीठि चुराई दुहुनु की लखि सकुचौंहीं दीठि ॥५९१॥
दुख-हाइनु चरचा नहीं आनन आनन आन।
लगी फिरैं ढूका दिए कानन कानन कान ॥५९२॥
हितु करि तुम पठयौ लगैं वा बिजना की बाइ।
टली तपति तन की तऊ चली पसीना न्हाइ ॥५९३॥
ध्यान आनि ढिग प्रानपति रहति मुदित दिन राति।
पलकु कँपति पुलकित पलकु पलकु पसीजति जाति ॥५९४॥
सकै सताइ न बिरहु त्रिरहु निसि दिन सरस सनेह।
रहै वहै लागी दृगनु दीप-सिखा सी देह ॥५९५॥
विरह जरी लखि जीगननु कह्यौ न डहि कै बार।
अरी आउ भजि भीतरी बरसत आजु अँगार ॥५९६॥

फिरि घर कौं नूतन पथिक चले चकित चित भागि।
फूल्यौ देखि पलासु बन समुही समुझि दवागि ॥५९७॥
गड़ी कुटुम की भीर मैं रही बैठि दै पीठि।
तऊ पलकु परि जाति इत सलज हँसौंहीं डीठि ॥५९८॥
नाउँ सुनत हीं ह्वै गयौ तनु औरै मनु और।
दबै नहीं चित चढ़ि रह्यौ अबै चढ़ाऐं त्यौर ॥५९९॥
दुसह सौति-सालैं सु हिय गनति न नाह-बियाह।
धरे रूप गुन कौ गरबु फिरै अछेह उछाह ॥६००॥
डिगत पानि डिगुलात गिरि लखि सब ब्रज बेहाल।
कंपि किसोरी दरसि कै खरैं लजाने लाल ॥६०१॥
और सबै हरषी हँसतिँ गावतिँ भरी उछाह।
तुँहीं बहू बिलखी फिरै क्यौं देवर कैं ब्याह ॥६०२॥
बाल छबीली पियनु मैं बैठी आपु छिपाइ।
अरगट हीं पानूस सी परगट होति लखाइ ॥६०३॥
एरी यह तेरी दई क्यौं हूं प्रकृति न जाइ।
नेह भरै हिय राखियै तउ रूखियै लखाइ ॥६०४॥
इहिँ काँटैं मो पाइ गड़ि लीनी मरति जिवाइ।
प्रीति जनावत भीति सौं मीति जु काढ़्यौ आइ ॥६०५॥
नांक चढ़ै सीबी करै जितै छबीली छैल।
फिरि फिरि भूलि वहै गहै प्यौ कँकरीली गैल ॥६०६॥
नटि न सीस साबित भई लुटी सुखनु की मोट।
चुप करि ए चारी करति सारी परी सलोट ॥६०७॥
जिहिँ भामिनि भूषनु रच्यौ चरन-महावर भाल।
उहीं मनौ अँखियाँ रँगीं ओठनु कैं रँग लाल ॥६०८॥
तूं मोहन-मन गड़ि रही गाढ़ी गड़नि गुवालि।
उठै सदा नटसाल ज्यौं सौतिनु कै उर सालि ॥६०९॥

लाज-लगाम न मानहीं नैना मो बस नाहिँ।
ए मुँहजोर तुरंग ज्यौं ऐंचत हूं चलि जाहिँ ॥६१०॥
कर-मुँदरी की आरसी प्रतिबिंवित प्यौ पाइ।
पीठि दियैं निधरक लखै इकटक डीठि लगाइ ॥६११॥
इती भीर हूं भेदि कै कित हूं ह्वै इत आइ।
फिरै डीठि जुरि डीठि सौं सब की डीठि बचाइ ॥६१२॥
लाई लाल बिलोकियै जिय की जीवन-मूलि।
रही भौन के कोन मैं सोनजुही सी फूलि ॥६१३॥
ओठु उँचै हांसी भरी दृग भौंहनु की चाल।
मो मनु कहा न पी लियौ पियत तमाकू लाल ॥६१४॥
जे तब होत दिखा दिखी भई अमी इक आंक।
दगैं तीरछी डीठि अब ह्वै बीछी कौ डांक ॥६१५॥
नैंकौ उहिँ न जुदी करी हरषि जु दी तुम माल।
उर तैं वासु छुट्यौ नहीं बास छुटैं हूं लाल ॥६१६॥
विहँसि बुलाइ विलोकि उत प्रौढ़ तिया रस घूमि।
पुलकि पसीजति पूत कौ पिय-चूम्यौ मुँहु चूमि ॥६१७॥
देख्यौ अनदेख्यौ कियैं अँगु अँगु सबै दिखाइ।
पैठति सी तन मैं सकुचि बैठी चितै लजाइ ॥६१८॥
पटु पाखै भखु कांकरै सपर परेई संग।
सुखी परेवा पुहुमि मैं एकै तुहीं बिहंग ॥६१९॥
अरे परेखौ को करै तुहीं विलोकि बिचारि।
किहिँ नर किहिँ सर राखियै खरैं बढ़ैं परिपारि ॥६२०॥
तौ बलियै भलियै बनी नागर नंद-किसोर।
जौ तुम नीकै कै लख्यौ मो करनी की ओर ॥६२१॥
चाह भरीं अति रस भरीं बिरह भरीं सब बात।
कोरि सँदेसे दुहुनु के चले पौरि लौं जात ॥६२२॥

सुनि पग-धुनि चितई इतै न्हाति दियैं हीं पीठि।
चकी झुकी सकुची डरी हँसी लजी सी डीठि ॥६२३॥

कर लै सूंघि सराहि हूं रहे सबै गहि मौनु।
गंधी अंध गुलाब कौ गवईं गाहकु कौनु ॥६२४॥

मिलि चलि चलि मिलि मिलि चलत आंगन अथयौ भानु।
भयो मुहूरत भोर कौ पौरिहिं प्रथमु मिलानु ॥६२५॥

पचरँग रँग बेंदी खरी उठै ऊगि मुख-जोति।
पहिरै चीर चिनौटिया चटक चौगुनी होति ॥६२६॥

हँसि ओठनु बिच करु उचै कियैं निचौंहैं नैन।
खरैं अरैं प्रिय कैं प्रिया लगी बिरी मुख दैन ॥६२७॥

वारौं बलि तो दृगनु पर अलि खंजन मृग मीन।
आधी डीठि-चितौनि जिहिं किए लाल आधीन ॥६२८॥

जात सयान अयान ह्वै वे ठग काहि ठगैं न।
को ललचाइ न लाल के लखि ललचौंहैं नैन ॥६२९॥

लखि लखि अँखियनु अधखुलिनु आंगु मोरि अँगिराइ।
आधिक उठि लेटति लटकि आलस-भरी जम्हाइ ॥६३०॥

प्रेमु अडोलु डुलै नहीं मुँह बोलैं अनखाइ।
चित उनकी मूरति बसी चितवनि मांहि लखाइ ॥६३१॥

नाक मोरि नाही ककै नारि निहोरैं लेइ।
छुवत ओठ पिय आंगुरिनु बिरी बदन प्यौ देइ ॥६३२॥

गिरै कंपि कछु कछु रहै कर पसीजि लपटाइ।
लैयौ मुठी गुलाल भरि छुटत झुठी ह्वै जाइ ॥६३३॥

देखत कछु कौतिगु इतै देखौ नैंक निहारि।
कब की इकटक डटि रही टटिया अँगुरिनु फारि ॥६३४॥

कर लै चूमि चढ़ाइ सिर उर लगाइ भुज भेटि।
लहि पाती पिय की लखति बांचति धरति समेटि ॥६३५॥

चकी जकी सी ह्वै रही बूझैं बोलति नीठि ।
कहूं डीठि लागी लगी कै काहू की डीठि ॥६३६॥
भावरि अनभावरि भरे करौ कोरि बकवादु ।
अपनी अपनी भाति कौ छुटै न सहजु सवादु ॥६३७॥
दूर्यौ खरे समीप कौ लेत मानि मन मोदु ।
होत दुहुनु के दृगनु हीं बतरसु हँसी बिनोदु ॥६३८॥
मुखु उघारि पिउ लखि रहत रह्यौ न गौ मिस सैन ।
फरके ओठ उठे पुलक गए उघरि जुरि नैन ॥६३९॥
पिय-मन रुचि ह्वैबौ कठिनु तन-रुचि होहु सिँगार ।
लाखु करौ आँखि न बढ़ैं बढ़ैं बढ़ाऐ बार ॥६४०॥
मनमोहन सौं मोहु करि तूं घनस्यामु निहारि ।
कुंजबिहारी सौं बिहरि गिरधारी उर धारि ॥६४१॥
मैं मिसहा सोयौ समुझि मुँहु चूम्यौ ढिग जाइ ।
हँस्यौ खिसानी गल गह्यौ रही गरैं लपटाइ ॥६४२॥
नीठि नीठि उठि बैठि हूं प्यौ प्यारी परभात ।
दोऊ नींद भरैं खरैं गरैं लागि गिरि जात ॥६४३॥
तनक झूठ न सवादिली कौन बात परि जाइ ।
तिय-मुख रति-आरंभ की नहिँ झूठियै मिठाइ ॥६४४॥
नहिँ अन्हाइ नहिँ जाइ घर चितु चिहुँट्यौ तकि तीर ।
परसि फुरहरी लै फिरति विहँसति धँसति न नीर ॥६४५॥
सटपटाति सैं ससिमुखी मुख घूंघट-पटु ढांकि ।
पावक-झर सी झमकि कै गई झरोखा झांकि ॥६४६॥
ज्यौं कर त्यौं चिकुटी चलति ज्यौं चिकुटी त्यौं नारि ।
छवि सौं गति सी लै चलति चातुर कातन-हारि ॥६४७॥
बुधि अनुमान प्रमान श्रुति किऐं नीठि ठहराइ ।
सूछम कटि पर ब्रह्म की अलख लखी नहिँ जाइ ॥६४८॥

खिचैं मान अपराध हूं चलि गै बढ़ैं अचैन।
जुरत डीठि तजि रिस खिसी हँसे दुहुनु के नैन ॥६४९॥

रूप-सुधा-आसव छक्यौ आसव पियत बनै न।
प्यालैं ओठ प्रिया-बदन रह्यौ लगाऐं नैन ॥६५०॥

यौं दलमलियतु निरदई दई कुसुम सौ गातु।
करु धरि देखौ धरधरा उर कौ अजौं न जातु ॥६५१॥

किती न गोकुल कुलबधू किहिँ न काहि सिख दीन।
कौनैं तजी न कुल-गली ह्वै मुरली-सुर-लीन ॥६५२॥

खलित बचन अधखुलित दृग ललित स्वेद-कन-जोति।
अरुन बदन छबि मदन की खरी छबीली होति ॥६५३॥

बहकि न इहिँ बहिनापुली जब तब बीर बिनासु।
बचै न बड़ी सबील हूं चील-घोंसुवा मांसु ॥६५४॥

लहि रति-सुखु लगियै हियैं लखी लजौंहीं नीठि।
खुलति न मो मन बँधि रही वहै अधखुली डीठि ॥६५५॥

कियौ सयानी सखिनु सौं नहिँ सयानु यह भूल।
दुरै दुराई फूल लौं क्यौं पिय - आगम - फूल ॥६५६॥

आयौ मीतु बिदेस तैं काहू कह्यौ पुकारि।
सुनि हुलसीं बिहँसीं हँसीं दोऊ दुहुनु निहारि ॥६५७॥

जद्यपि सुंदर सुघर पुनि सगुनौ दीपक-देह।
तऊ प्रकासु करै तितौ भरियै जितैं सनेह ॥६५८॥

पलनु प्रगटि बरुनीनु बढ़ि नहिँ कपोल ठहरात।
अँसुवा परि छतिया छिनकु छनछनाइ छिपि जात ॥५६९॥

फिरि सुधि दै सुधि द्याइ प्यौ इहिँ निरदई निरास।
नई नई बहुर्‌यौ दई दई उसासि उसास ॥६६०॥

समै पलट पलटै प्रकृति को न तजै निज चाल।
भौ अकरुन करुनाकरौ इहिँ कपूत कलिकाल ॥६६१॥

पारयौ सोरु सुहाग कौ इनु विनु हीं पिय-नेह।
उनदौहीं अँखियां ककै कै अलसौंहीं देह ॥६६२॥
इन दुखिया अँखियानु कौं सुखु सिरज्यौई नांहि।
देखैं वनै न देखतै अनदेखैं अकुलांहि ॥६६३॥
लगी अनलगी सी जु विधि करी खरी कटि खीन।
किए मनौ वैं हीं कसर कुच नितंव अति पीन ॥६६४॥
छिनकु उघारति छिनु छुवति राखति छिनकु छिपाइ।
सबु दिनु पिय-खंडित अधर दरपन देखत जाइ ॥६६५॥
मुँहु पखारि मुड़हरु भिजै सीस सजल कर छ्वाइ।
मौरु उचै घूंटेनु तैं नारि सरोवर न्हाइ ॥६६६॥
कोरि जतन कोऊ करौ तन की तपनि न जाइ।
जौ लौं भीजे चीर लौं रहै न प्यौ लपटाइ ॥६६७॥
चटक न छांड़तु घटत हूं सज्जन-नेहु गँभीरु।
फीकौ परै न वरु फटै रँग्यौ चोल-रँग चीरु ॥६६८॥
दुसह विरह दारुन दसा रहै न और उपाइ।
जात जात ज्यौं राखियतु प्यौ कौ नाउँ सुनाइ ॥६६९॥
फिरि फिरि दौरत देखियत निचले नैंक रहैं न।
ए कजरारे कौन पर करत कजाकी नैन ॥६७०॥
को छूट्यौ इहिँ जाल परि कत कुरंग अकुलात।
ज्यौं ज्यौं सुरझि भज्यौ चहत त्यौं त्यौं उरझत जात ॥६७१॥
अव तजि नाउँ उपाउ कौ आए पावस मास।
खेलु न रहिवौ खेम सौं केम-कुसुम की वास ॥६७२॥
लसै मुरासा तिय-स्रवन यौं मुकतनु दुति पाइ।
मानहु परस कपोल कैं रहे स्वेद-कन छाइ ॥६७३॥
मिलि परछांहीं जोन्ह सौं रहे दुहुनु के गात।
हरि राधा इक संग हीं चले गली महिँ जात ॥६७४॥

विधि विधि कौन करै टरै नहीं परैं हूं पानु।
चितै कितै तै लै धरयौ इतौ इतैं तन मानु ॥६७५॥

मोर-चंद्रिका स्याम-सिर चढ़ि कत करति गुमानु।
लखिबी पाइनु पर लुठति सुनियतु राधा-मानु ॥६७६॥

चिरजीवौ जोरी जुरै क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ए बृषभानुजा वे हलधर के वीरु ॥६७७॥

औरै गति औरै वचन भयौ वदन-रँगु औरु।
द्योसक तैं पिय-चित चढ़ी कहैं चढ़ैं हूं त्यौरु ॥६७८॥

वेंदी भाल तँबोल मुँह सीस सिलसिले वार।
दृग आंजे राजै खरी एई सहज सिँगार ॥६७९॥

अंग अंग प्रतिबिंब परि दरपन सैं सब गात।
दुहरे तिहरे चौहरे भूषन जाने जात ॥६८०॥

सघन कुंज छाया सुखद सीतल सुरभिसमीर।
मनु ह्वै जातु अजौं वहै वहि जमुना कै तीर ॥६८१॥

मोहि भरोसौ रीझिहै उझकि झांकि इक वार।
रूप रिझावनहारु वह ए नैना रिझवार ॥६८२॥

भौंहनु त्रासति मुँह नटति आंखिनु सौं लपटाति।
ऐंचि छुड़ावति करु इँची आगैं आवति जाति ॥६८३॥

रुक्यौ सांकरैं कुंज-मग करतु झांझि झकुरातु।
मंद मंद मारुत-तुरँगु खूंदतु आवतु जातु ॥६८४॥

जदपि लौंग ललितौ तऊ तूं न पहिरि इक आंक।
सदा सांक बढ़ियै रहै रहै चढ़ी सी नाक ॥६८५॥

वरजैं दूनी हठ चढ़ैं ना सकुचै न सकाइ।
टूटत कटि दुमची-मचक लचकि लचकि वचि जाइ ॥६८६॥

कर समेटि कच भुज उलटि खऐं सीस-पटु टारि।
काकौ मनु बांधै न यह जूरौ-बांधनहारि ॥६८७॥

पूछे क्यौं रूखी परति सगिवगि गई सनेह।
मन मोहन-छवि पर कटी कहै कँट्यानी देह ॥६८८॥
सोहत ओढ़ैं पीतु पटु स्याम सलौनैं गात।
मनौ नीलमनि-सैल पर आतपु पर्‌यौ प्रभात ॥६८९।
भाल लाल वेंदी ललन आखत रहे विराजि।
इंदुकला कुज मैं वसी मनौ राहु-भय भाजि ।६९०॥
अंग अंग छवि की लपट उपटति जाति अछेह।
खरी पातरीऊ तऊ लगै भरी सी देह ॥६९१॥
दृग थिरकौंहैं अधखुलैं देह थकौंहैं ढार।
सुरत सुखित सी देखियति दुखित गरभ कैं भार ॥६९२॥
विहँसति सकुचति सी दिऐं कुच-आंचर विच वांह।
भीजैं पट तट कौं चली न्हाइ सरोवर मांह ॥६९३॥
वरन वास सुकुमारता सव विधि रही समाइ।
पँखुरी लगी गुलाव की गात न जानी जाइ ॥६९४॥
रंच न लखियति पहिरि यौं कंचन सैं तन वाल।
कुँभिलानैं जानी परै उर चंपक की माल ॥६९५॥
गोधन तूं हरष्यौ हियैं घरियक लेहि पुजाइ।
समुझि परैगी सीस पर परत पसुनु के पाइ ॥६९६॥
मुहुँ धोवति एड़ी घसति हसति अनगवति तीर।
घसति न इंदीवर-नयनि कालिंदी कैं नीर ॥६९७॥
वढ़त निकसि कुच-कोर-रुचि कढ़त गौर भुजमूल।
मनु लुटि गौ लोटनु चढ़त चोटत ऊंचे फूल ॥६९८॥
अहे दहेंड़ो जिनि धरै जिनि तूं लेहि उतारि।
नीकैं ही छींकैं छुवै ऐसैंई रहि नारि ॥६९९॥
न्हाइ पहिरि पटु डटि कियौ वेंदी-मिसि परनामु।
दृग चलाइ घर कौं चली विदा किए घनस्यामु ॥७००॥

ज्यौं ह्वै हौं त्यौं होउँगौ हौं हरि अपनी चाल।
हठु न करौ अति कठिनु है मो तारिबौ गोपाल ॥७०१॥
परसत पोंछत लखि रहतु लगि कपोल कैं ध्यान।
कर लै प्यौ पाटल बिमल प्यारी-पठए पान ॥७०२॥
बामा भामा कामिनी कहि बोलौ प्रानेस।
प्यारी कहत खिसात नहिँ पावस चलत बिदेस ॥७०३॥
उठि ठकु ठकु एतौ कहा पावस कैं अभिसार।
जानि परैगी देखियौ दामिनि घन-अँधियार ॥७०४॥
कैवा आवत इहिँ गली रहौं चलाइ चलैं न।
दरसन की साधे रहै सूधे रहैं न नैन ॥७०५॥
बेसरि-मोती धनि तुहीं को बूझै कुल-जाति।
पीबौ करि तिय-ओठ कौ रसु निधरक दिनराति ॥७०६॥
तिय-मुख लखि हीरा-जरी बेंदी बढ़ै बिनोद।
सुत-सनेह मानौ लियौ बिधु पूरन बुधु गोद ॥७०७॥
गोरी गदकारी परैं हँसत कपोलनु गाड़।
कैसी लसति गवाँरि यह सुनकिरवा की आड़ ॥७०८॥
जौ लौं लखौं न कुल-कथा तौ लौं ठिक ठहराइ।
देखैं आवत देखि हीं क्यौं हूं रह्यौ न जाइ ॥७०९॥
सामाँ सेन सयान की सबै साहि कैं साथ।
बाहुबली जयसाहिजू फते तिहारैं हाथ ॥७१०॥
यौं दल काढ़े बलक तैं तैं जयसिंह भुवाल।
उदर अघासुर कैं परैं ज्यौं हरि गाइ, गुवाल ॥७११॥
घर घर तुरकिनि हिंदुनी देतिँ असीस सराहि।
पतिनु राखि चादर चुरी तैं राखी जयसाहि ॥७१२॥
हुकुमु पाइ जयसाहि को हरि-राधिका-प्रसाद।
करी बिहारी सतसई भरी अनेक सवाद ॥७१३॥

(३) मतिराम-सतसई

मो मन-तम-तोमहिँ हरौ राधा कौ मुख-चंद।
बढ़ै जाहि लखि सिंधु लौं नँद-नंदन-आनंद ॥ १ ॥
मंजु गुंज के हार उर मुकुट मोर-पर-पुंज।
कुंज बिहारी बिहरियै मेरैई मन-कुंज ॥ २ ॥
रति-नायक सायक-सुमन सब जग जीतन-वार।
कुवलय - दल - सुकुमार तन मन - कुमार जय मार ॥ ३ ॥
राधा मोहन - लाल कौ जाहि न भावत नेह।
परियौ मुठी हजार दस ताकी आँखिनि खेह ॥ ४ ॥
नागरि-नैन कमान-सर करत न ऐसी पीर।
जैसी करत गँवारि के दृग धनुहीं के तीर ॥ ५ ॥
तन रोचित रोचन लहै रंच न कंचन - गोतु।
पिया पिया बासौ दिया छिया छिया जग होतु ॥ ६ ॥
सुत कौं सुनौ पुरान यौं लोगनि कह्यौ निहोरि।
चाहि चाह-जुत नाह-मुख मुसिक्यानी मुख मोरि ॥ ७ ॥
कंत-चौक सीमंत की बैठी गांठि जुराइ।
पेखि परोसिन कौ पिया घूंघट मैं मुसिक्याइ ॥ ८ ॥
गुरुजन दूजे ब्याह कौं प्रति दिन कहत रिसाइ।
पति की पति राखति बहू आपुनि बांझ कहाइ ॥ ९ ॥
बरसा रितु बीतन लगी प्रति दिन सरद-उदोति।
लह लह जोति जुवार की अरु गँवारि की होति ॥ १० ॥
नए बिरह अँसुवानि कौ छिन छिन होत उदोत।
अँखियन लग्यौ अपार वह तन-पानिप कौ सोत ॥ ११ ॥

नवल नेह मैं दुहुनि की लखी अपूरव बात।
ज्यौं सूखति सब देह है त्यौं पानिप अधिकात॥ १२॥
कत सजनी है अनमनी अँसुवा भरति ससंक।
बड़ैं भाग नँदलाल सौं झूठ हुँ लगत कलंक॥ १३॥
औगुन बरनि उराहनौ ज्यौं ज्यौं ग्वालनि देहि।
त्यौं त्यौं हरि-तनु हेरि हँसि हरषति महरिहि येहि॥ १४॥
लगनि - लगे लोचन लखे जासौं मोहन लाल।
करि सनेह ता बाल सौं सिखैं सकल ब्रजबाल॥ १५॥
तेरी औरै भांति की दीप-सिखा सी देह।
ज्यौं ज्यौं दीपति जगमगै त्यौं त्यौं बाढ़त नेह॥ १६॥
पानिप मैं थरमीन कौ कहत सकल संसार।
दृग-मीननि कौं देखियत पानिप पारावार॥ १७॥
देखैं बानिक आजु की वारौं कोटि अनंग।
भलौ चल्यौ मिलि सांवरे अंग-रंग पट-रंग॥ १८॥
अबहीं सब तुम हेरवौं हँसि हँसि बातनि पागि।
मेर चितवत नैकुँहीं ब्रज मैं लागति आगि॥ १९॥
पगी प्रेम नँदलात कैं भरन आपु जल जाइ।
घरी घरो घर के तरैं घरनि देति ढरकाइ॥ २०॥
लपटानी अति प्रेम सौं दै उर उरज उतंग।
घरी एक लगि छुटैं हूं रही लगी सी अंग॥ २१॥
नींद भूख अरु प्यास तजि करती हौ तन राख।
जलसाई बिन पूजिहैं क्या मन के अभिलाख॥ २२॥
जावक सी रागी पगनि हरित नगन अँगुरीन।
जावक सी रागी पगनि मनु कीनो परबीन॥ २३॥
प्रान पियारौ पग परत्रौ तू न लखति इहि ओर।
ऐसौ उरज कठोर तौ उचितै उर जु कठोर॥ २४॥

लचकौहैा सी लंक उर उचकौहैा सौ ऐन।
बिहँसौहैं से बदन मैं लसत नचौहैं नैन॥ २५॥

ज्यौं ज्यौं परसै लाल तन त्यौं त्यौं राखति गोइ।
नवल वधू लाजनि ललित इंद्रबधू सी होइ॥ २६॥

नवल वधू के संग मैं अहितौ बात हिताति।
ताती सांसनि के लगैं छाती अति सियराति॥ २७॥

सूखति है वह सुंदरी कनक-बेलि अभिराम।
वाकी तपनि मिटै जु रस बरसौ घन घनस्याम॥ २८॥

नंदलाल कहियै कहाँ लह्यौ अपूरव हार।
गुन-बिहीन किंसुकनि कौ तिन मधि मुकुर सुधार॥ २९॥

नैन बिसारे बान सौं चली बटाउहि मारि।
बचन-सुधा रस सींचि कै वाहि जीव दै नारि॥ ३०॥

हन्यौ मोहिँ उहिँ नैन सौं नैनहिँ कियौ सचेत।
काटि बहुरि विष आपनौ ज्यौं विषधर हरि लेत॥ ३१॥

तेरी मुख-समता करी साहस करि निरसंक।
धूरि परी अरबिंद-मुख चंदहिँ लग्यौ कलंक॥ ३२॥

खेलत मार सिकार है जो रे पास समेत।
नैन मृगनि सौं बांधि दै नैन-मृगनि गहि लेत॥ ३३॥

मृगपति जित्यौ सुलंक सौं मृगलच्छन मृदु हास।
मृग-मद जित्यौ सुनैन सौं मृग-मद जित्यौ सुवास॥ ३४॥

छपै छपाऐं अब नहीं मैं पायौ लखि अंक।
नाहिँन जु पै कलंक तौ कैसैं बदन ससंक॥ ३५॥

चौंसठि-कला-बिलास-जुत बदन-कलानिधि पेखि।
दुतिया की देखै कला को दुति या की देखि॥ ३६॥

पावै ऐपन ओप नहिँ कहै कुरंटक कौन।
सोनौ सोनजुही लहै ललित देह-दुति सौ न॥ ३७॥

तौ मैं अनमिष नैनता किए लाल बस ऐन।
अनमिष नैन सुनैन ए निरखत अनमिष नैन ॥ ३८ ॥
नारि नैन के नीर कौ नीरधि बढ़ै अपार।
जारै जौ न वियोग के बड़वानल की झार ॥ ३९ ॥
जात-रूप रूपहिँ लखत बांधत प्रभु-मन ऐन।
निपट निहारे निलज ए लोन-हरामी नैन ॥ ४० ॥
रोस न करि जौ तजि चल्यौ जानि अँगार गँवार।
छिति पालनि की माल मैं तैहीं लाल सिंगार ॥ ४१ ॥
कहा भयौ मतिराम हिय जौ पहिरी नँदलाल।
लाल मोल पावै नहीं लाल गुंज की माल ॥ ४२ ॥
गुन औगुन कौ तनकऊ प्रभु नहिँ करत विचार।
केतकि कुसुम न आदरत हर सिर धरत कपार ॥ ४३ ॥
भाल लाल वेंदी दिए उठे प्रात अलसात।
लोनी लाजनि गड़ि गई लखैं लोग मुसकात ॥ ४४ ॥
जौतैं पहिरै सुंदरी सो दुति अधिक उदोतु।
तेरे सुबरन रूप तैं रूपौ सुबरन होतु ॥ ४५ ॥
भजे अँध्यारी रैन मैं भयो मनोरथ काज।
पूरे पूरब पुन्य तैं परयो परावन आज ॥ ४६ ॥
निज बल कौं परिमान तुम तारे पतित बिसाल।
कहा भयौ जु न हौं तरतु तुम खिस्याहु गोपाल ॥ ४७ ॥
कर धरि कांधैं कंत के चलै लटपटी चाल।
थकित करति पथिकनि सबनि थकित पंथ मैं बाल ॥ ४८ ॥
नैंकु न थाकत पंथ मैं चलैं जु कोस हजार।
चंचल लोयनि-हयनि पर भए जात असवार ॥ ४९ ॥
ललित नाक नथुनी बनी चुनी रह्यौ लचकाइ।
गज-मुकतनि के बिच परयो कहौ कहां मन जाइ ॥ ५० ॥

झूठें हीं ब्रज मैं लग्यौ मोहिँ कलंक गोपाल।
सपनैं हूँ कबहूँ हिऐं लगे न तुम नँदलाल॥ ५१॥
चंद-किरनि लगि बाल-तन उठै आगि अति जागि।
परस करत दिनकर किरनि ज्यौं दरपन मैं आगि॥ ५२॥
दसा सुनैं निज बाग की लाल मानिहौ झूठ।
पावस रितुहूं मैं लखैं डाढ़े ठाढ़े ठूठ॥ ५३॥
तरनि-किरनि झलमलित मुख लाली ललित कपोल।
प्यास लगावति दृगनि मैं प्यासी बाल अमोल॥ ५४॥
लाल तिहारे संग मैं खेलै खेल बलाइ।
मूंदत मेरे नैन हौ करनि कपूर लगाइ॥ ५५॥
खेलत चोरमिहीचिनी परे प्रेम पहिचानि।
जानी प्रगटत परसतैं तिय-लोचन पिय-पानि॥ ५६॥
खेलत खेल सखीनि मैं उतै धूरि अवगाह।
पलक न लागति एक पल इतै नाह-मुख-चाह॥ ५७॥
निडर बटोही बाट मैं ऊखनि लेत उखारि।
अरे गरीब गँवार तैं काहे करत उजार॥ ५८॥
मेरैं सिर कैसी लगै यौं कहि बांधी पाग।
सुंदरि रति विपरीत मैं प्रगट कियौ अनुराग॥ ५९॥
नहिँ सुहाइ परगोत है गोत आपनौ पाइ।
विदा करी कुल-कानि की नैननि नयन बसाइ॥ ६०॥
ग्रीषम हू रितु मैं भरी दुहूं कूल पैराइ।
खारे जल की बहति है नदी तिहारैं गाँइ॥ ६१॥
दियो हिए सौं मिलि चल्यौ नैन चले मिलि नैन।
इतै उतै मारी फिरै लाज कहूं ठहरै न॥ ६२॥
बसिबे कौं निज सरवरनि सुर जाकौं ललचाहिँ।
सो मराल बक-ताल मैं पैठन पावत नाहिँ॥ ६३॥

अद्भुत या धन कौ तिमिर मो पै कह्यौ न जाइ।
ज्यौं ज्यौं मनिगन जगमगत त्यौं त्यौं अति अधिकाइ॥ ६४॥
कहा दवागिनि कैं पियैं कहा धरैं गिरि धीर।
बिरहानल मैं बरत ज़ो वूड़त लोचन-नीर॥ ६५॥
सतरौंहीं भौंहनि नहीं दुरै दुराएं नेह।
होति नाम नँदलाल कौं नीपमाल सी देह॥ ६६॥
सूखो सुता पटेल की सूखी ऊखनि पेखि।
अब फूली फूली फिरै फूली अरहरि देखि॥ ६७॥
चपल चित्त वेध्यौ निरखि याही डरनि दुराति।
नैन वान वै देखि कै लाज नहीं ठहराति॥ ६८॥
भलौ एक मनहीं गह्यौ सज्जनता कौ नेम।
दृगनि मारि घाइल कियौ तासौं वांधत प्रेम॥ ६९॥
कोटि कोटि मतिराम कहि जतन करौ सब कोइ।
फाटे मन अरु दूध मैं नेह न कबहूं होइ॥ ७०॥
पानि पियूख-पयोधि मैं नैंक नहीं ठहराइ।
नैन-मीन इक पलक मैं मन-जहाज गिलि जाइ॥ ७१॥
पानिप-पूर-पयोधि मैं रूप-जाल वगराइ।
नैन-मीन ए नागरिन वरबट बांधत आइ॥ ७२॥
कंटक काढ़त लाल की चंचल चाहनि चाहि।
चरन खैंचि लीनौ तिया हँसि भूठैं करि आहि॥ ७३॥
सुवरन बरन सुबास जुत सरस दलनि सुकुमार।
ऐसे चंपक कौं तजै तैंहीं भौंर गँवार॥ ७४॥
देखैं हूँ बिन देखि हूं लगी रहै अति आस।
कैसैं हूँ न बुझाति है ज्यौं सपने की प्यास॥ ७५॥
सखिनि दियौ उपदेस जो नहिँ कैसेहुँ ठहरात।
नवल-नेह-चित-चीकनैं ढरकि तोय लौं जात॥ ७६॥

सौंहनि करि पाइनि परयौ तेरैं रिसै उदोति।
नाह-नेह तो मैं लह्यौ तू कत रूखी होति॥ ७७॥
भौंहनि संग चढ़ाइयौ कर गहि चाप मनोज।
नाह-नेह साथहिँ बढ़यौ लोचन लाज उरोज॥ ७८॥
लई जु पीर जनाइ कै करि मिलाप की आस।
मन उड़ात अजहूं रहै ऊंची उहाँ उसास॥ ७९॥
नैन मिली मन हू मिली बातनि मिली बनाइ।
क्यौं न मिलावति देह सौं देह रहचटौ लाइ॥ ८०॥
लाज छुटी गेह्यौ छुट्यौ सुख सौं छुट्यौ सनेह।
सखि कहियौ वा निठुर सौं रही छूटिवैं देह॥ ८१॥
दुरजन वे निंदत रहैं गुरुजन गारी देत।
सहियत बोल कुबोल ए लाल तिहारैं हेत॥ ८२॥
लगे लूत के जाल ए लखौ लसत इहिँ भौन।
जानि कुहू-रजनी मनौ कियौ नखत-गन गौन॥ ८३॥
मेरे तन के रोम ए मेरे नहीं निदान।
उठि आदर अगमन करैं करौं कौन विधि मान॥ ८४॥
अनमिख लोचन बाल के यातैं नंद-कुमार।
गई मीच परसत पजरि बिरहानल की झार॥ ८५॥
जलदि निकासी रैनि दिन रहै नैन-झर लागि।
बाढ़ति जाति वियोग की विद्युत की सी आगि॥ ८६॥
मौर नूत नूतन रहैं देखि धरैं क्यों धीर।
मनौ मनोज महीप कै तीरनि भरे तुनीर॥ ८७॥
दियै देह-दीपति गयौ दीप बयारि बुझाइ।
अंचल-ओट किए तऊ चली नवेली जाइ॥ ८८॥
ऐसे बोलौ बोल वलि जैसे याहि सुहात।
वेलि नवेली कनक की झुकति तनकही वात॥ ८९॥

सारी लटकति पाट की बिलसति फुँदी लिलार।
मनौं रूप-मंदिर बँधे सुंदर वंदनवार॥ ९०॥
पति आयौ परदेस तें हिय हुलसी अति वाम।
टूक टूक कंचुक कियौ करि कमनैती काम॥ ९१॥
लाल तिहारे नैन-सर अचिरज करत अचूक।
विन कंचुक छेदे करैं छाती छेदि छटूक॥ ९२॥
पिय के दरपन मैं निरखि प्रतिविंवित निज रूप।
वाल लाल-मुख लखि भई रिस भरि भौंह अनूप॥ ९३॥
और वात कहियैं कहा सुनियै नंद-कुमार।
विरह आंच सांचे भए याके अंग अँगार॥ ९४॥
ललित लाइ की लपट सी चली जाति जहँ नारि।
विरह-अगिनि की झार तहँ जारि जात झौंकारि॥ ९५॥
जहां तहां रितुराज मैं फूले किंसुक-जाल।
मानहु मान मतंग कैं अंकुस लोहू लाल॥ ९६॥
विते सिसिर रितु-रजनि कैं मधुर प्रताप-सुवैन।
जाग्यौ मैन-महीप सुनि पिक वंदिनि कैं वैन॥ ९७॥
होत दसगुनो अंकु है हियैं एक ज्यौं विंदु।
दियैं डिठौना यौं वढ़ी आनन-आभा-इंदु॥ ९८॥
तूं सोने की सटक है रही और गुन पागि।
विनु लागैं पीरहिं करै हरै पीर उर लागि॥ ९९॥
मान जनावति सवनि कौं मन न मान कौ ठाट।
वाल मनावन कौ लखै लाल तिहारी वाट॥१००॥
नखतावलि नख इंदु मुख तनु-द्युति दीप अनूप।
होति निसा नँदलाल मन लखैं तिहारौ रूप॥१०१॥
इतै उतै सचकित चितै चलै डुलावति वांह।
डीठि वचाइ सखीनि की छिन इक निरखति छांह॥१०२॥

साँझ समै वा छैल की छलनि कही नहिँ जाइ।
बिनु डर बन डरपाइ कै लियौ मोहि उर लाइ ॥१०३॥

राति अँध्यारी झझकि झुकि झूँठैं हीं भय भागि।
ललित बाल मन भावती रही लाल-उर लागि ॥१०४॥

हम सौं तुम सौं लाल इत नैननि हीं कौ नेह।
उत प्यारी की दृगनि कैं सलिल सींचियति देह ॥१०५॥

जैतवार इहि मार सौं अकस करौ जिन चेत।
भामिनि-भौंह कमान कैं गोसा हीं गहि लेत ॥१०६॥

सुधा-मधुर तेरौ अधर सुंदरु सुमन-सुगंधु।
पीव-जीव कौ बंधु यह बंधु जीव कौ बंधु ॥१०७॥

पग जराइ की गूजरी नथुनी मुकुट सुढार।
घने घेर कौ घाँघरौ घूँघरवारे बार ॥१०८॥

वंदन तिलक लिलार मैं ऐसी मुख-छवि होति।
रूप भौन मैं जगमगै मनौ दीप की ज्योति ॥१०९॥

मन तें नैननि कौं भली नैननि तैं मन-काज।
ह्वै दीपक की छाँह लौं बीच बिलानी लाज ॥११०॥

पीन पयोधर-भार यह धरे छीन कटि-ऐन।
छोटे मुख मैं लसत हैं बड़े बड़े ए नैन ॥१११॥

तेरे मुख की मधुरई जो चाखी चख चाहि।
लगत जलज जंबीर सौ चंद चूक सौ ताहि ॥११२॥

तेरी मुख-छवि लखि लखैं होत चंदता तूल।
कंद खाइ कै चूसियै ज्यौं रूखे कौ फूल ॥११३॥

निज नीचे कौं निरखि नित ऊंचे होत उरोज।
यातें मुख के होत हैं नीचे नैन-सरोज ॥११४॥

ज्यौं ज्यौं ऊंचे होत हैं उरज बाल कैं ऐन।
सब सौतिनि कैं होत हैं त्यौं त्यौं नीचे नैन ॥११५॥

जब जब चढ़ति अटानि दिन चंद-मुखी यह बाम ।
तब तब घर घर धरत हैं दीप बारि सब गाम ॥११६॥
छुवत परस्पर हेरि कैं राधा नंद-किसोर ।
सब मैं वैई होत हैं चोर-मिहिचिनी चोर ॥११७॥
खंजन कमल चकोर अलि जिते मीन-मृग-ऐन ।
क्यों न बड़ाई कौं लहैं तरुनि तिहारे नैन ॥११८॥
अँसुवा बरुनी ह्वै चलत जल चादर कैं रूप ।
अमल कपोलनि की झलक झलकति दीप अनूप ॥११९॥
कुच तैं श्रम-जलधार चलि मिली रुमावलि-रंग ।
मनौ मेरु की तरहटी भयौ सितासित-संग ॥१२०॥
सरदागम पिय-आगमन जगी जोति मुख-इंदु ।
अंग अमल पानिप भयौ फूले दृग-अरविंद ॥१२१॥
मो मन सुक लौं उड़ि गयौ अब क्यौं हू न पत्याइ ।
बसि मोहन बनमाल मैं रह्यौ बनाउ बनाइ ॥१२२॥
बेंदी ललित मसूर की लसति सलौनैं भाल ।
मनौ इंदु कैं अंक मैं इंदु-कामिनी-लाल ॥१२३॥
फिरि फिरि आवति द्वार तैं झूंठैं झुकि अलसाति ।
लेति आगि तितनी बहू जो बीचहीं बुझाति ॥१२४॥
अमल कपोलनि मैं अरुन झलकति पीक अनूप ।
उठी मनौ रवि-किरन सौं आगि लपट कैं रूप ॥१२५॥
बार बार वा गेह सौं बारि बारि लै जाति ।
काहे तैं बिन बातहीं बाती आजु बुझाति ॥१२६॥
नीठि नीठि आगैं परै पैग परयौ जनु फंद ।
को न होति गति मंद है लखि तेरी गति मंद ॥१२७॥
नैन जोरि मुख मोरि हँसि नैसुक नेह जनाइ ।
आगि लैन आई हियैं मेरे गई लगाइ ॥१२८॥

सुवरन वेलि तमाल सौं घन सौं दामिनि-देह ।
तूं राजति घनस्याम सौं राधे सरसि सनेह ॥१२६॥
है साँचौ कैधौं भई मेरीई मति भंग ।
आजु वदलि काहैं गयौ वदलि वसन तन रंग ॥१३०॥
सुरत-अंत सुख-स्रमित ह्वै भोर भएँ निसि जागि ।
उर सोई लागी अज्यौं जो उर सोई लागि ॥१३१॥
दूनी मुख मैं छवि भई वेसरि धरी उतारि ।
हरि कैं उर सोई लगी करत रसोई नारि ॥१३२॥
जब तें मिलि वरुनीनि सौं अच्छिनि की छवि अच्छ ।
जनु अवनीप अनंग कैं तरल तुरंग सपच्छ ॥१३३॥
लसत बूंद अँसुवानि कैं वरुनिनि छोर उदार ।
दृग-तुरंग-फूलनि मनौ झलकत मुकुत सुढार ॥१३४॥
मान हुँ मैं बिनु भूपननि धरति अधिक छवि अंग ।
नैन तरंगनि तैं भए तरल तुरंग सुरंग ॥१३५॥
ज्यौं ज्यौं छवि अधिकाति है नवल वाल-मुख-इंदु ।
त्यौं त्यौं मुरझत सौति कौ अमल वदन-अरविंदु ॥१३६॥
अंजन-जुत अँसुवानि की धार धसति जुग नैन ।
मनौ डोर मखतूल कीं वांधे खंजन मैन ॥१३७॥
विंदु लसत अँसुवानि कैं लाल भए दृग-कोर ।
देखैं विन पिय चंद-मुख चिनगी चुगत चकोर ॥१३८॥
सपने मैं लालन चलत लखि रोई अकुलाइ ।
जागत हूं पिय हिय लगी हिलकी तऊ न जाइ ॥१३९॥
पिय-आगम सुनि वाल-तन वाढ़े हरख-बिलास ।
प्रथम बूंद वारिद छुटै ज्यौं वसुमती-सुवास ॥१४०॥
याके मन मैं जानियत कोऊ लग्यौ सभाग ।
कहत गान विन अरथ कौ प्रगट अरथ अनुराग ॥१४१॥

छाप तरौना नगनि की सोवत लगी कपोल।
मनौ मदन की मोहिनी मूंगा-माल अमोल ॥१४२॥
मोकौं तुम क्यौं कहति हौ लै गोपाल कौ नाउँ।
रिस-मिस नेह गोविंद कौ कहति फिरै सव गाउँ ॥१४३॥
नर नारी सव जपत हैं घर घर हरि कौ नाउँ।
मेरैं मन धोखैं कढ़त परति गाज व्रज-गाउँ ॥१४४॥
पगनि परे पिय-पीठि पर परे नैन-जल टूटि।
सींची मनौ सनेह-रस गयौ मान-मन छूटि ॥१४५॥
पगनि पर्‌यौ लखि प्रानपति दियौ मुगध तिय रोइ।
कज्जल-छल मन-मलिनता ल्याए अँसुवा धोइ ॥१४६॥
इंदु-उपल उर वाल कौ कठिन मान में होत।
देखैं विनु कैसैं द्रवै तो मुख-इंदु-उदोत ॥१४७॥
भौंह वीच तिल तनक सौ सोहत सुखमा संचि।
दियौ डिठौना रीझि सौं मानहु विरचि विरंचि ॥१४८॥
चलत लाल कैं मैं कियौ सजनी हियौ पखानु।
कहा करौं दरकत नहीं भरैं बियोग-कृसानु ॥१४९॥
चढ़ी रहै प्रति दिन अटा सखि सनेह सुख सोरि।
लोचन पियत पियूष हैं प्रेसि पान पिय पौरि ॥१५०॥
कहा छपावति मुगध तिय बोलि चातुरी बोल।
कहे देति अनुराग की कीरति कलित कपोल ॥१५१॥
वरसाइति वर कौं चहू बहु बिधि पूजि बिसेखि।
पूरत हौं मनकाम कौं काम-तरोवर लेखि ॥१५२॥
सहज वात वूझत कछुक विहँसि नवाई ग्रीव।
तरुन हियैं तरुनी दई नई नेह की नीव ॥१५३॥
करति मनोरथ वहु भहू हगनि अनंद उदोत।
उठत सीतलायत सखी सीतल हीतल होत ॥१५४॥

दसा हीन राधा भई सुनियै नंदकिसोर।
दीपसिखा लौं देखियति बारि-बयारि-झकोर ॥१५५॥
निसि दिन निंदति नंद है छिन-छिन सासु रिसाति।
प्रथम भए सुत कौं बहू अंकहिं लेत लजाति ॥१५६॥
कुसुम-खेत कौ खेद सब कहत तिहारौ रूप।
ऊंचौ लेति उसास तन श्रम-जल-कलित अनूप ॥१५७॥
बांचत कुसुम कुसुंभ के रहे लागि अभिराम।
कंटक छत छतियां छपै क्यों न छपावति बाम ॥१५८॥
जानति हौं वा खेत सौं आई बीनि कुसुंभ।
कलित कंटकनि काय कुल कुसुम-कलित कुच-कुंभ ॥१५९॥
जानति खेत कुसुंभ कैं तेरी प्रीति अमोल।
चुभत करनि कंटकनि तौ कत कंटकित कपोल ॥१६०॥
अब तेरौ बसिबौ इहां नाहिँन उचित मराल।
सकल सूखि पानिप गयौ भयौ पंकमय ताल ॥१६१॥
तिय-पग पिय-अँगुरी परस भो उर आनँद-खानि।
कह्यौ सु परि पिय-पीठि पर सुधा-सीत अँसुवानि ॥१६२॥
बिछुरत रोवत दुहुँनि की सखि यह बात लखै न।
दुख-अँसुवा पिय-नैन मैं सुख-अँसुवा तिय-नैन ॥१६३॥
पग परिबौ मुरि बैठिबौ यहै तिहारे काज।
तुम्हैं मनावन की नई इहै मान की लाज ॥१६४॥
परसत हीं याकौ भई तन कदंब की माल।
रह्यौ कहा परि पगनि मैं क्यौं न अंक भरि लाल ॥१६५॥
नील-- नलिन - दल - सेज मैं परी सुतनु - तनु - देह।
लसै कसौटी मैं मनौ तनक कनक की रेह ॥१६६॥
मुख नीचैं ऊंचैं लसैं तरुनि-उरज उर मांह।
मनौ मुदित मन कोक जुग पाइ कोकनद-छांह ॥१६७॥

पिय अपराध अनेक निज आँखिनिहूँ लखि पाइ।
तिय इकंत हूँ कंत सौं मानौ करत लजाइ ॥१६८॥
तो रसु रात्यौ रैनि दिन सुख-समुद्र कै सोत।
याही तैं सौतीनि के ये अनखहु छत होत ॥१६९॥
निसि नियराति निहारियत इन कौं मुख-अरविंदु।
सखी एक यह देखियत तेरोई मुख-इंदु ॥१७०॥
उजियारी मुख-इंदु की परी उरोजनि आनि।
कहा निहारति मुगध तिय पुनि पुनि चंदन जानि ॥१७१॥
दुवराई गिरि जातु है कंकन कामिनि बाँह।
उपदेसन ठहरात ज्यौं दुरजन के उर माह ॥१७२॥
मन दै सुनियै लाल यह तनक तरुनि की वात।
अँसुवा-उड़गन गिरत हैं होन चहत उतपात ॥१७३॥
कहति आपु हीं वैन है ऊख पियूप रसाल।
कित बोलति कोकिल अली पुनि पुनि बूझति वाल ॥१७४॥
जिन मैं निसि दिन वसतु हौ तुम घन सुंदर नाह।
क्यौं न चलै तिय दृगनि तैं वहुल वाह परवाह ॥१७५॥
जलद स्याम निज नाम यह करत कहा इत आपु।
जा उर नैंकु वसौ करौ ताही कैं तन तापु ॥१७६॥
दिसि दिसि विगसति मालती निसि नियराति निहारि।
ऐसैं अतनु-अराम मैं भ्रमि भ्रमि भौंर निवारि ॥१७७॥
नारि-नैन कौ नीर अरु तरुनी तीर उतंग।
वढ़त सरित परवार कैं गिरत एकही संग ॥१७८॥
वाल सखिनि की सीख तैं मान न जानति ठानि।
पिय विनु अगमन भौन मैं वैठी भौंहनि तानि ॥१७९॥
परिकर पंकज के किए नैननि राज-विलास।
मैन मित्र मंत्री मिरग खंजन किए खवास ॥१८०॥

लाल जनायौ मैं तुम्हैं लागन चहत कलंक।
चंद-मुखी वह चंद सों अब चितवति निरसंक ॥१८१॥
बड़े हमारे दृग कहौ तुम कहि सकौ सु मैं न।
पिय नैननि भीतर सदा बसत तिहारे नैन ॥१८२॥
आभा तरिवन लाल की परी कपोलनि आनि।
कहा छपावति चतुर तिय कंत-दंत-छद जानि ॥१८३॥
गहि कोमलता सरसता सोनौ होइ सुगंधु।
तबहूं कबहुँ न होइ सखि तेरे तन कौ बंधु ॥१८४॥
दुख दीनें हूं सुजन जन छोड़त निज न सुदेस।
अगरु डारियत आगि मैं करत सुबासित केस ॥१८५॥
तू राखो करि लाल है निज उर मैं बनमाल।
तैं राख्यौ करि लाल है कंठमाल कौ लाल ॥१८६॥
जगै जोन्ह की जोति यौं छपै जलद की छांह।
मनौ छीर-निधि की उठै लहरि छहरि छिति मांह ॥१८७॥
अभिनव जोवन-जोति सौं जगमग होत बिलास।
तिन कैं तन पानिप बढ़ैं पिय कैं नैननि प्यास ॥१८८॥
बासन कौ पानिप घट्यौ तन पानिप की आस।
मिटी पथिक की बदन तैं लगी दृगनि मैं प्यास ॥१८९॥
दिनकर-तनया - स्याम - जल है घट भरे बनाइ।
ताकैं भर गरुए भए हरऐं धारति पाइ ॥१९०॥
चलत सुन्यौ परदेस कौं हियरौ रह्यौ न ठौर।
लै मालिनि मीतहिँ दियौ नव रसाल कौ मौर ॥१९१॥
प्यौ राख्यौ परदेस तैं करामात अधिकाइ।
कनक-कलस पानिप भरे सगुन उरोज दिखाइ ॥१९२॥
सुन्यौ माइकै तैं घहू आयौ बाभन कंत।
कुसल पूछिबे के मिसनि लीनौ बोलि इकंत ॥१९३॥

श्रम-जल-कन झलकन लगे अलकनि कलित कपोल।
पलकनि रस छलकन लगे ललकन लोचन लोल ॥१९४॥
गौने की चरचा चलैं दिए तहां चित बाल।
अधमूंदी अँखियानि सौं गूंदी गूंदति माल ॥१९५॥
सखी तिहारे नेह के होत घरहिँ घर घेर।
पीतम - तन - पानिप परैं फैलि रह्यौ चहुँ फेर ॥१९६॥
तूं न करति मन - भावती रति विपरीत विचार।
ह्वैहै सूधे सुरत मे बिछियन कौ झनकार ॥१९७॥
कहति सांच तूं भावती मेरैं चित अति प्रीति।
किए बिना विपरीत रति हियैं न होति प्रतीति ॥१९८॥
दान - वीर - रस के सखी तेरे नैन निकेत।
दान-समै मन दान है हँसि उछाह कहि देत ॥१९९॥
रोस किऐं कैसौ करैं सखी तिहारे नैन।
सहज मधुर मुसिक्यानि में हनत मानुसनि ऐन ॥२००॥
चंचलता तो चखनि की कही न जाइ बनाइ।
जिन्हैं चाहि चंचल महा चितौ अचल ह्वै जाइ ॥२०१॥
तेरैं अंगनि लाल छवि मुख-मयंक सुख माहिँ।
त्यौं चकोर लखि लाल के क्यौं न बाल ललचाहि ॥२०२॥
नंदलाल के रूप पर रीझि परी इक वारि।
अधमूंदी अँखियनि दई मूंदी प्रीति उघारि ॥२०३॥
कोंपनि तैं किसलय जवै होहिँ कलिनि तैं कौल।
तव चलाइयै चलन की चरचा नायक नौल ॥२०४॥
कामिनि दामिनि-दमक सी वरनि कौन पै जाइ।
डीठिन हीं ठहराइयै डीठि नहीं ठहराइ ॥२०५॥
रात्यौ दिन जागति रहै अगनि लगनि की मोहिँ।
मो हिय मैं तूं वसतु है आंच न पहुँचति तोहिँ ॥२०६॥

चलन लगी अँखियां चपल चलन लगी लखि छाहँ।
तन जोवन आवन लग्यौ मन भावन मन माहँ ॥२०७॥
बिनु देखैं दुख के चलैं देखैं सुख के जाहिं।
कहौ लाल इन दृगनि के अँसुवा क्यौं ठहराहिं ॥२०८॥
बरसाइति मैं सखिनि हठि साजे अंग सिँगार।
पहिले कंचन-आभरन लगनि अगनि की झार ॥२०९॥
डारि तिहारे नेह मैं अगनि लगनि की मैन।
तलफत याके मीन से लाल सलोने नैन ॥२१०॥
कौन बसत हैं कौन मैं यौं कछु कही परै न।
पिय - नैननि तिय - नैन हैं तिय - नैननि पिय - नैन ॥२११॥
लाल बाल कौ उर कठिन उरजहिं निपट कठोर।
ताहि छेदि तीछन गई तेरी ईछन - कोर ॥२१२॥
बाल निहाल भई लखैं ललित लाल मुख-इंदु।
मनु पियूष बरषा भई नैननि झलके बिंदु ॥२१३॥
तिय-हिय लौं पहुँचै कहाँ सीख सखिनि की बात।
बिरह-आंच जरि जाति है श्रौन-समीपहिं जात ॥२१४॥
भुज फुलेल लावत सखी कर चलाइ मुसिक्याइ।
गाढ़ै गह्यौ उरोज पिय बिँहसी भौंह चढ़ाइ ॥२१५॥
इंद्र - जाल कंदर्प कौ कहै कहा मतिराम।
आगि - लपट बरषा करै ताप धरै घनस्याम ॥२१६॥
दुहूं अटारिनि मैं सखी लखी अपूरब बात।
उतै इंदु मुरझातु है इतै कंज कुम्हिलात ॥२१७॥
जोवन मैं अँखियां सखी परीं लाज के जेल।
लरिकाई के सौंरियत चोर मिहिचिनी-खेल ॥२१८॥
राधा के दृग खेल मैं मूंदे नंदकुमार।
करनि लगी दृग कोर सो भई छेदि उर-पार ॥२१९॥

मैं मूंदति हौं खेल मैं तेरे लोचन बाल।
मेरे कर अति प्यार सौं चूमत हैं नँदलाल॥२२०॥
सुरभि-लोभ-जुत अलिनि मैं लहत अधर कौ रंग।
मनौ तरनि तनया मिली बानी गंग-तरंग॥२२१॥
सेत वसन मैं यौं लगैं उघरत गोरे गात।
उहैं आगि ऊपर लगी ज्यौं बिभूति अवदात॥२२२॥
रूप-जाल नँदलाल कैं परि करि बहुरि छटैं न।
खंजरीट मृग मीन से ब्रज-बनितनि के नैन॥२२३॥
जिन कैं सील समान है साँचे होत सु-मित्र।
नेही चंचल चखनि कौ चाह्यौ चंचल चित्त॥२२४॥
खिन मैं प्रफुलित होत हैं खिन मैं मुकुलित होत।
इंदीबर अरविंद से चख मुख इंदु-उदोत॥२२५॥
ग्रीषम हूं रवि तपत हूं रहै जलद जनु भूमि।
तपी दृगनि सीतल करै गांउ निकट की भूमि॥२२६॥
नैन निवासी सौं चल्यौ मन परदेस अनेह।
लखति आज अनभावती सपने नैननि गेह॥२२७॥
आजुहिं चल्यौ विदेस कौं तजि सनेह चित-चोर।
लखति भरैं घर भावती जमी घास चहुँ ओर॥२२८॥
खरी दूबरी सेज मैं सखी निहारहि नीठि।
परसति नहीं डराति सी जरिबे कैं डर डीठि॥२२९॥
लखति एकटक सांवरी मूरति कौ मुख-इंदु।
रीझ-भार अँखियां थकीं झलके स्रम-जल-बिंदु॥२३०॥
चलौ लाल उहिं बाग मैं लखौ अपूरब केलि।
आलवाल घन-समय कौ ग्रीषम ऋतु की बेलि॥२३१॥
कहा कहौं वाकी दसा निठुर कही नहिं जाइ।
अंग अँगारिन कौ मिटै रंग आंच अधिकाइ॥२३२॥

बड़वानल से जे लगे अलिनि करत उपचार।
मिलत लगे घनस्याम-उर ते अँग ज्यौं घनसार ॥२३३॥
गई छबीली छूटि वह छल सौं नेह जनाइ।
कहौ कौन के लै छला आए लाल छलाइ ॥२३४॥
पिअराई तन मैं परी पानिप रह्यौ न देह।
राख्यौ नंदकुँवार तैं करि कुँवार कौ मेह ॥२३५॥
बांधी दृग-डोरानि सौं घेरी वरुनि समाज।
गई तऊ नैनानि तैं निकसि नटी सी लाज ॥२३६॥
लोक-लाज कुल-कानि सौं गरब करौ जिन वीर।
ऐन मैन ब्रजराज के नैन मैन के तीर ॥२३७॥
क्यौं न फिरै सब जगत मैं करत दिगविजै मार।
जाके दृग-सावंत-सर कुवलय जीतनवार ॥२३८॥
नेह छुटैं हूं रावरौ यातैं जीवति बाल।
चलत सहज हूं गलिनि मैं तमहिँ विलोकति लाल ॥२३९॥
केलि भौन की देहरी करी वाल छवि नौल।
काम-कलित हिय कौल दै लाजु ललित दृग-कौल ॥२४०॥
नित उठि ऐसे रूप सौं आवत हौ ब्रजराज।
सो तुम सौं पिय रिस करै ताके हियैं न लाज ॥२४१॥
तुम सौं कीजै मान क्यौं ब्रजनायक मन-रंज।
वात कहत यौं वाल के भरि आए दृग-कंज ॥२४२॥
ढीली बाँहनि सौं मिली बोली कछु न बोल।
सुंदरि मान जनाइ यौं लियौ प्रानपति मोल ॥२४३॥
आवत उठि आदर कियौ बोले बोल रसाल।
बांह गहत नँदलाल कैं भए बाल दृग लाल ॥२४४॥
वेनी गूंदत एक की नंदलाल चित-लोल।
चूमत प्यारी वाल के बिहँसत गोल कपोल ॥२४५॥

मन भावन सौं ब्याह की सुनी सलोनी बात।
अँगिया मैं न उरोज अरु आनँद उर न समात ॥२४६॥
लखि जैहैं व्रज गाँउ की सबै चतुर हैं बाल।
छतिया नख-छत देहु जिन छैल छबीले लाल ॥२४७॥
भलौ न केतनि रूख यह सजनी गेह-अरान।
बसन फटैं कंटक लगैं निसि दिन आठौ जाम ॥२४८॥
तु पै द्वार मैं बसत तौ पथिक जाइ जिन सोइ।
मेरौ घर सूनौ इहां चोरनि कौ डर होइ ॥२४९॥
ग्रीषम रितु मैं देखि कै बन मैं लगी दँवारि।
बड़ी अपूरब बात है मन मैं जरति गँवारि ॥२५०॥
जरद भई पिय हरद-रँग बाढ़ैं दरद अतूल।
लागे बोतन संगहीं कुसुम-फूल हिय-फूल ॥२५१॥
हरो सपल्लव लाल-कर लखि तमाल की डाल।
मुरझानो हिय साल धरि फूल-माल सी बाल ॥२५२॥
लसति गूजरी उजरी बिलसत लाल इजार।
हिए हजारनि के हरै बैठी बाल बजार ॥२५३॥
कहत बिहारी रूप सखि यह पैंड़े कौ खेद।
ऊंचो लेति उसास है कांपत सकल तन स्वेद ॥२५४॥
लै आवति हौं सेज इत तेरी प्रीति गोपाल।
बात कहौ अंकहिं भरौ दुख न दीजियै लाल ॥२५५॥
कैसे ल्याऊं हौं इहां है जित नंदकिसोर।
दिन हूं मैं मुख चंद कौं लखि ललचात चकोर ॥२५६॥
औरनि कैं पाइनि दियौ नाइनि जावक लाल।
प्रानपियारी रावरी पेलति तुम्हैं गोपाल ॥२५७॥
पिय-वियोग तिय-दृग-जलधि जल-तरंग अधिकाइ।
बरुनि-मूल-बेला परसि बहुरौं बहुरि बिलाइ ॥२५८॥

धन कैं हेत विलासिनी रहै सवारे वेस।
जो तिय के हिय मैं वसै सो पिय वसै विदेस ॥२५९॥
कोऊ करौ अनेक यह तजौ न टेक गोपाल।
निसि औरनि कैं पग परौ दिन औरनि कैं लाल ॥२६०॥
कंत कहा सौंहनि करौ जानि परयौ अब नेह।
दैन कह्यौ सो विनु दियैं जान न पैहौ गेह ॥२६१॥
आई गौनें कालिह हीं सीख्यौ कहीं सयान।
अवहीं तें रूसन लगी अवहीं तें पछितान ॥२६२॥
जोरत हूं सजनी विपति तोरत विपति-समाज।
नेह कियौ विनु काज पुनि तेह कियौ विनु काज ॥२६३॥
लख्यौ न कंत सहेट मैं लखत नखत की राइ।
अमल कमल सौ वाल कौ बदन गयौ कुम्हिलाइ ॥२६४॥
तिय कौं मिल्यौ न प्रान-पति सजल-जलद-तन मैन।
सजल जलद लखि कै भए सजल जलद से नैन ॥२६५॥
विहँसि केलि-मंदिर गई लख्यौ न जिय कौ नाथ।
नैन करनि तैं जल वलय गिरे एकही साथ ॥२६६॥
साहस करि कुंजनि गई लख्यौ न नंदकिसोर।
दीप-सिखा सी थरहरी लगैं वयारि झकोर ॥२६७॥
कत न कंत आयौ सखी लाजनि बूझि सकै न।
नवल वाल पलिका परी पलक न लागत नैन ॥२६८॥
पीउ न आयौ नींद कौं मूंदे लोचन वाल।
पलक उघारे पलक मैं आयौ होइ न लाल ॥२६९॥
कंत-बाट लखि गेह कौं कुंज देहरी आइ।
ऐहैं पीव विचारि यौं नारि फेरि फिरि जाइ ॥२७०॥
लखत वाट पिय की तिया अँगरानी अँग मोरि।
पौढ़ि रही पलिका मनौ हारी मदन मरोरि ॥२७१॥

डीठि वचाइ सखीनि की केलि-भौंन मैं जाइ।
पौढ़ि परै पलिका पलक पलक अनँग अधिकाइ ॥२७२॥
सव सिँगार सुंदरि सजैं वैठी सेज विछाइ।
भयौ द्रौपदी कौ वसन वासर नहिँन विहाइ ॥२७३॥
मन भावन के मिलन कौ करै मनोरथ नारि।
धरै पौन के सामुहैं दिया भौन को वारि ॥२७४॥
पिय-मिलाप कैं हेत तिय सजे उछाह सिँगार।
दृग कमलनि के द्वार मैं वांधे वंदनवार ॥२७५॥
अली चली नवलाहिँ लै पिय पैं साजि सिँगार।
ज्यौं मतंग अँड़दार कौं लिए जात गँड़दार ॥२७६॥
जोवन-मद गज-मंद-गति चली वाल पति-गेह।
पगनि लाज-आंदू परी चल्यौ महावत नेह ॥२७७॥
सजि सिँगार सेजहिँ चली वाल जहां पति-प्रान।
चढ़त अटारी की सिढ़ी भई कोस परिमान ॥२७८॥
स्याम वसन मैं स्याम निसि दुरै न तिय की देह।
पहुँचाई चहुँ ओर घिरि भौंर-भीर पिय-गेह ॥२७९॥
मलिन करी छवि जोन्ह की तन छवि सौं वलि जांउ।
क्यौं जैहै पिय पैं सखी लखि जैहै सव गांउ ॥२८०॥
जेठ मास की दुपहरी चली वाल पिय-भौन।
आगि-लपट तीखन लुवैं भए मलय के पौन ॥२८१॥
नागरि सकल सिँगार करि चली प्रान-पिय पास।
वाढ़ि चली विहँसनि मनौ वारिधि-वीचि-विलास ॥२८२॥
क्यौं सहिहै सुकुमारि वह पहिलौ विरह गोपाल।
जव वाकैं चित दित भयौ चलन लगे तव लाल ॥२८३॥
अवहीं तौ मिलि मोहिँ सखि चलत आजु व्रजराज।
अँसुवनि राखति रोकि तिय जियहि निकासति लाज ॥२८४॥

फूली नागरि कमलिनी उड़ि गए मित्र मलिंद।
आयौ मित्र बिदेस तैं भयौ सुदिन आनंद ॥२८५॥
भरीं भांवरैं सांवरैं रास - रसिक रस - जान।
तिनहीं मैं मनु भँवतु है ह्वै बौंडर कौ पान ॥२८६॥
चलत पीय परदेस कौं बरजि सकौं नहिं तोहिं।
लै ऐहौ आभरन जौ जीवत पैहौ मोहिं ॥२८७॥
सजनी मेरौ मन परयौ मन - मोहन कै अंग।
छटपटात छूटत न ज्यौं पंजर परयौ पतंग ॥२८८॥
जा दिन तैं गौनौ भयौ आई बाल रसाल।
ता दिन तैं बिरहिनि भई उर मोतिन की माल ॥२८९॥
सपनैं हूं मन - भावतौ करत नहीं अपराध।
मेरे मन ही मैं सखी रही मान की साध ॥२९०॥
दच्छिन नायक एक तुम नंदलाल ब्रजचंद।
फुलए ब्रज - बनितानि के दृग - इंदीवर - बृंद ॥२९१॥
निलज नैन कुलटानि के आइ बसे ब्रजराज।
हिए तिहारे तैं सकल मारि निकारी लाज ॥२९२॥
पियत रहौ अधरानि कौ रसु अति मधुर अमोल।
तातैं मीठे कढ़त हैं बाल बदन तैं बोल ॥२९३॥
लोचन पानिप ढिग सजी लट बंसी परबीन।
मो मन बार - बिलासिनी फासु लियौ मनु मीन ॥२९४॥
या मैं कौन सयान है मोहनलाल सुजान।
आपु करत अपराध हूं आपुहिं पुनि अभिमान ॥२९५॥
पिय-मिलाप कौ सुख सखी कह्यौ न जाइ अनूप।
सौतुक तौ सपनौ भयौ सपनौ सौंतुक रूप ॥२९६॥
चित्रहुँ मैं सखि जाहि लखि होत अनंत अनंद।
नैन कुवलयनि सौं कहूं सो लखिवौ ब्रजचंद ॥२९७॥

वाकौ मन लीने लला बोलो बोल रसाल।
झुकति तनक वह बात मे कनक बेलि वह बाल ॥२९८॥
सखी सलोनी देह मैं सजे सिँगार अनेक।
कजरारी अँखियानि में भूल्यो काजर एक ॥२९९॥
सरद चांदनी में प्रगट होत न तिय के अंग।
सुनत मंजु मंजीर अब सखी न छोड़ति संग ॥३००॥
सखी सरस रस-केलि मे आपुनयौ सुधि जाति।
कंत संग हेमंत की छिन सी राति सिराति ॥३०१॥
लाल तिहारे बिरह तैं माघ मास की राति।
करि कपूर की कीच सो सखी समीपहिँ जाति ॥३०२॥
कहा जनावति चातुरी कहा चढ़ावति भौंह।
अधनिकरे अखरानि सौं सौहैं कीजै सौंह ॥३०३॥
लाल निहारैं नैकुहीं नैन तिहारे वीर।
वाके कंचुक-कलित कुच कांपत जोध अधीर ॥३०४॥
बाल रही इकटक निरखि लाल-बदन अरबिंदु।
सियराई अँखियनि परी पियराई मुख-इंदु ॥३०५॥
पिय समीप कौ सुख सखी कहै देत ये बैन।
अवल अंग निरबल बचन नवल सुनींदे नैन ॥३०६॥
खाटे फल आगैं धरे सखी आनि मुसिक्याइ।
पिय समीप प्यारी प्रिया रही सकुचि सिर नाइ ॥३०७॥
पिय आयौ परदेस तैं बहुतै द्यौस बिताइ।
सखी उठाई पास तैं झूठें हीं जमुहाइ ॥३०८॥
पासे गर्भवती तिया सिथिल हाथ ढरकाइ।
हँसत लाल-लोचन लखैं लोचन रही नवाइ ॥३०९॥
ध्यान करत नँदलाल कौ नए नेह मैं बाम।
तनु बूड़त रँग पीत मैं मन बूड़त रँग स्याम ॥३१०॥

पिय आयौ परदेस तैं हिय मैं आयो प्रान।
मिलत बिरहिनी कैं भयौ छिन जनु जुग परिमान ॥३११॥
कहा भयौ मेरी हितू ह्वै तुम सखी अनेक।
सपनैं मिलवत नाथ कौं नींद आपनी एक ॥३१२॥
कंप प्रसेद बढ़ै चढ़ै भौंह मनोभव चाप।
अपने पिय सौं जानियत सपनैं करति मिलाप ॥३१३॥
प्यारी की मुसुक्यानि सी सरद-जोन्ह तूं है न।
वह नैननि सीतल करै तू कत जारति नैन ॥३१४॥
अली चली कहु कौन पैं बड़े कौन के भाग।
उलट्यौ कंचुक कुचनि पर कहे देत अनुराग ॥३१५॥
सकुचि न रहियै साँवरे सुनि गरबीले बोल।
चढ़ति भौंह बिकसत नयन बिहँसत गोल कपोल ॥३१६॥
मनभावन कौं भावती भेंटति रति - उतकंठ।
बांही छुटै न कंठ तैं नाहीं छुटै न कंठ ॥३१७॥
बिरी अधर अंजन नयन मिहँदी पग अरु पानि।
तन कंचन के आभरन नीठि परत पहिचानि ॥३१८॥
कहा लाज कुल-कानि सौं लोक-लाज किन जाइ।
कुंजविहारी कुंज मैं कहूं मिलैं मुसिकाइ ॥३१९॥
लखी अपूरब लाल मैं वाकी दसा बनाइ।
हियरैं है सुधि रावरी हियरौ गयौ हिराइ ॥३२०॥
सरद-चंद की चांदनी जारि डारि किन मोहि।
वा मुख की मुसिक्यानि सी क्यौं हूं कहौं न तोहिं ॥३२१॥
मोहिं रसाल की मंजरी क्यों न करी करतार।
सुंदर श्रौन समीप जौ राखै नंद - कुमार ॥३२२॥
बिकल लाल कौं हाल तूं क्यों न विलोकति आनि।
बोलि कोकिलनि सौं कहैं बोल तिहारे जानि ॥३२३॥

सुजस - ओज सौं साह - सुव सिवा सूर - सिरदार ।
सरद चंद आतप कियौ सुचि आतप इक वार ॥३२४॥
पिसुन - वचन सज्जन चितैं सकै न फोरि न फारि ।
कहा करै लगि तोय मैं तुपक तीर तरवारि ॥३२५॥
निहचैं नखत निहारियत नथुनी - मुकत - प्रकास ।
कैसैं करि पावैं कहौ नीच न नाक - निवास ॥३२६॥
खेत तिहारौ धान कौ यौं बूझत मुसिक्याइ ।
यहौ हमारौ है कह्यौ सघन ज्वारि दरसाइ ॥३२७॥
राखै भरि दुपहरि सखी सघन छांह मैं गोइ ।
सहै घाम का कार की जार खेत जुन होइ ॥३२८॥
भौंह - कमान कटाछ सर समर भूमि विचलै न ।
लाज तजैं हूं दुहुँनि के सलज सुभट से नैन ॥३२९॥
अरुन बसन निकरी पहरि पावस मैं छविखानि ।
इंद्र - गोप सी गोपिका गोप - इंद्र लखि आनि ॥३३०॥
अति सुढार अति हीं वड़े पानिप भरे अनूप ।
नाक - मुकत नैनानि सौं होड़ परी इहिं रूप ॥३३१॥
कियौ और कौ सब कछू मान आपनौ लेइ ।
क्यौं न लहै संताप जौ भार आप सिर देइ ॥३३२॥
लीनी तो अँखियानि उन औ मुसिक्यानि रसाल ।
तुहूं लाल - लोचननि की लेहि लालसा वाल ॥३३३॥
सखी विहारे दृगनि की मधुर मंद मुसिक्यानि ।
वसति रहै निसि द्यौस हूं अब उनकी अँखियानि ॥३३४॥
रूप-सदन मिलि तन-वदन रदन रुचिर-रुचि होति ।
दामिनि मैं विधु-विंव जनु विधु मैं दामिनि-जोति ॥३३५॥
मो जीवन तू कहतु है व्रज-जीवन तूं पीउ ।
जु पै जीव विन जियत तौ धिग जीवन यह जीउ ॥३३६॥

प्रान निवासी तोहिँ तजि कब कौ कियौ उजार।
तूं अजहूं लौं बसतु है प्रान कहा सु बिचार ॥३३७॥
तुरत दीठि लगि जाइगी ह्वाँ बिलखी अति आनि।
अनखन दै कै कीजियै अनख भरी अँखियानि ॥३३८॥
बिषमय किधौं पियूषमय तेरी मृदु मुसिक्यानि।
यहै मूरछित करति है यहै जियावति आनि ॥३३९॥
निज पग-सेवक समुझि करि करि उर तैं रिस दूरि।
तेरी मृदु मुसिक्यानि है मेरी जीवन-मूरि ॥३४०॥
लाल अमोलक लालची करत कोटि मनुहारि।
मंदिर आवत इंदिरा दै न किवार गँवारि ॥३४१॥
तरु ह्वै रह्यौ करार कौ अब करि कहा करार।
उर धरि नंद-कुमार कौ चरन-कमल सुकुमार ॥३४२॥
असन बरन बरनि न परै अमल अधर-दल माँझ।
कैधौं फूली दुपहरी कैधौं फूली साँझ ॥३४३॥
बाल वदन-प्रतिबिंब-बिधु बिंब रह्यौ तिहिँ संग।
ज्यौ रहत अब रैनि दिन तपन तपावत अंग ॥३४४॥
प्रगट दरप कंदरप कौ तेरौ अंग अनूप।
सुतौ लियौ नँदनंद जित सुंदर स्याम सरूप ॥३४५॥
रोमावली कृपान सौं मार्‍यौ सिवहि मनोज।
ताके भए स्वरूप द्वै सोहत बाल-उरोज ॥३४६॥
कुंद न पावत रदन रुचि कुंदन अंग-प्रकास।
चंद न पावत वदन-छबि चंदन अंग-सुवास ॥३४७॥
रूप-रासि वह लच्छ की तुला चढ़ी वह बाल।
तऊ न पावति रावरौ मिलन अमोलिक लाल ॥३४८॥
लखित मंद कल हंस गति मधुर मंद मुसिक्याति।
चली सारदा बिसद-रुचि सरद-चांदनी राति ॥३४९॥

मैं जानी ही मिलन तैं मिटिहै तन-संताप।
अब सजनी दूनौ चढ़्यौ हतक मनोजहिँ दाप ॥३५०॥
सांच मदनजित आजु तुम रंजन रसिक रसाल।
अनल-ज्वाल दृग देखियत लाल लाल रुचि माल ॥३५१॥
पाइन प्रेम जनाइ जिन परियै नंद-कुमार।
अनल-ज्वाल पग लगति है जावक-लील लिलार ॥३५२॥
रोस-भरी अँखियानि लखि लोगनि मैं अनखाइ।
हँसि इकंत लपटाइ कै एक रूप ह्वै जाइ ॥३५३॥
प्रीति ह्वैज द्विजराज की कला कलप करि चित्र।
जगत लोक वंदित उदित वढ़त मित्र जो मित्र ॥३५४॥
अँखियनि उमँग अनंग की छुवत अंग अनखाइ।
प्रीतम-तन तावति तरुनि लाइ लगनि की लाइ ॥३५५॥
दिन दिन दुगुन वढ़ै न क्यौं लगनि-अगिनि की झार।
उनै उनै दृग दुहुँनि कै वरसत नेह अपार ॥३५६॥
लिखति वाल नख भूमि-तन लखत लाल-मुसिक्यानि।
लाज छुटी निसि जानियति लाज-भरी अँखियानि ॥३५७॥
चंचल निसि उदवसि रही करन प्रात वसि राज।
अरविंदनि पै इंदिरा सुंदरि-नैननि लाज ॥३५८॥
वढ़त वढ़त वढ़ि जाइ पुनि घटत घटत घटि जाइ।
नाह रावरे नेह विधु-मंडल जितौ वनाइ ॥३५९॥
तलफत घाइनि जीव कौं कौन जियावत आनि।
जो न होति उन दृगनि मैं सुधा मधुर मुसिक्यानि ॥३६०॥
सोइ संग सुख जागि दुख लहि समुझौ निरधार।
छीन-पुन्य सुरलोक तैं लेत अवनि अवतार ॥३६१॥
तनु आगैं कौं चलतु है मन वाही मग लीन।
सलिल सोत मैं ज्यौं चपल चलत चढ़ाऊ मीन ॥३६२॥

प्रतिबिंबित तो बिंब मैं भूतल भयौ कलंक।
निज निरमलता दोष यह मन मैं मानि मयंक ॥३६३॥

तिहिं पुरान नव-द्वै पढ़े जिहिं जानी यह बात।
जो पुरान सो नव सदा नव पुरान ह्वै जात ॥३६४॥

सपने मैं सपनौ समुझि होति दूरि ज्यौं संक।
संक छोड़ि संसार की रही जानि निरसंक ॥३६५॥

तिय हिय आनँद बढ़त हूं पर न प्रान-पिय पेखि।
बिन देखत कौ दुख परै दीन दृगनि मैं देखि ॥३६६॥

लिखति अवनि-तल चरन सौं बिहँसत बिमल कपोल।
अधनिकरे मुख - इंदु तैं अमृत - बिंदु से बोल ॥३६७॥

उमगी उर आनंद की लहरि छहरि दृग राह।
बूड़ी लाज जहाज लौं नेह - नीर - निधि माह ॥३६८॥

हौं मन मोहन कै लखति हो न आपुनी बाउ।
करत नैन नँद-लाल के हँसत हेरि उर गाउ ॥३६९॥

बसत रहत मतिराम निसि द्यौस काम-अभिराम।
इंदीवर छवि दृगनि मैं इंदीवर छवि स्याम ॥३७०॥

ज्वलित ज्वाल सी जोन्ह यह डारति अंग उलीचि।
भई पियूष-मरीचि की मो कौं मरिच मरीचि ॥३७१॥

लोक प्रसून - पराग तें लखत पिंजरिन भृंग।
भए चँवेली कैं बिरह पीत रंग सब अंग ॥३७२॥

मानत लाज-लगाम नहिं नैंकु न गहत मरोर।
होत तोहिँ लखि बाल के दृग - तुरंग मुँह-जोर ॥३७३॥

सघन स्याम कादंबिनी राख्यौ रोकि अकास।
अति संकट पावत नहीं जिय हिय मैं अवकास ॥३७४॥

हियें बसत सुख हसत हौ हम कौं करत निहाल।
घट - घट - व्यापी ब्रह्म तुम प्रगट भए नँदलाल ॥३७५॥

वरनत सांच प्रसंग कै तुमकौं वेद गोपाल।
हियैं हमारे वसत हौ पीर न पावत लाल ॥३७६॥
चढ़े उरोज पहार ए उर उनके अठिलाहिँ।
तो वन नित लाली चढ़ै ललित लाल पियराहिँ ॥३७७॥
कुच कठोर पापान तैं क्यौं न करैं उर पीर।
वड़े नरम जग नैन क्त होत विपम विप-तीर ॥३७८॥
सखी तिहारी सांच यह दीप - सिखा सी देह।
दिन दीपति पियराति है अधिक राति रति-नेह ॥३७९॥
दरपन मैं निज रूप लखि नैननि मोद उमंग।
तिय - मुख पिय-बसकरन कौं वढ़यौ गरव कौ रंग ॥३८०॥
निज पाइनि वलि आइ कै तो घर वाइनि देइ।
जाति वाल निज गेह कौं उर उछाह दृग सेइ ॥३८१॥
तो तन सुवरन वरन है कुटिल स्याम मन मांह।
सखि सनेह कैसैं रहै छुवन न पैयति छांह ॥३८२॥
तिय-हिय मैं पिय-इंदु-मुख निसि दिन करत प्रकास।
सीख सखिनि की छांह लौं नैंकु न पावति वास ॥३८३॥
नैंकु ओट करि गिरि धरयौ लसत सकंप गोविंदु।
ब्रज वोरत अव इंद्र लौं यह तेरौ मुख-इंदु ॥३८४॥
करवर पर गिरिवर धरे ललित लाल ललचाइ।
जाके चितवन चखनि कुच सो सकुचति मुसिक्याइ ॥३८५॥
हारे वरसत वारि अरु तन दीपति अभिराम।
निदरे सव घनस्याम तूं भांति भांति घनस्याम ॥३८६॥
छाती कुच - कुंकुमनि की छाप करी जिहिँ वाल।
ताकौं उर मन मैं नहीं मिलत मोहि नँदलाल ॥३८७॥
नैन मीन उहिँ वाल के लाज जाल परि आनि।
पियत रहत वो वदन की सुधा मधुर मुसिक्यानि ॥३८८॥

मेरे दृग - वारिद वृथा वरषत वारि-प्रवाह।
उठत न अंकुर नेह कौ तो उर ऊसर मांह ॥३८९॥
राधा चरन सरोज नख इंद्र किए व्रजचंद।
मोर मुकुट चंद्रकनि तूं चख चकोर आनंद ॥३९०॥
सुखद साधुजन कौं सदा गजमुख दानि उदार।
सेवनीय सब जगत कौ जग-माया-सुकुमार ॥३९१॥
मद-रस - मत्त मिलिंद-गन गान मुदित गन - नाथ।
सुमिरत कवि मतिराम कै सिद्धि रिद्धि निधि हाथ ॥३९२॥
अंग ललित सित - रंग पट अंग राग अवतंस।
हंस - वाहिनी कीजियै वाहन मेरौ हंस ॥३९३॥
नृपति-नैन-कमलनि वृथा चितवत वासर जाहिँ।
हृदय-कमल मैं हेरि लै कमलमुखी कमलाहिँ ॥३९४॥
व्रज ठकुराइनि राधिका ठाकुर किए प्रकास।
ते मन-मोहन हरि भए अब दासी के दास ॥३९५॥
पियत अधर यौं देति है कर-कमलनि की मारु।
लगति स्वादु के सिंधु मैं मिरचि - किरच लौं चारु ॥३९६॥
पियत अधर तूं देति है कर-कमलनि की मारु।
होत पंच अँगुरी लगैं सबल पंचसर मारु ॥३९७॥
करति केलि अति प्रेम सौं पगे प्रेम - मद नैन।
अंबर मैं चंचल लसैं खंजरीट से नैन ॥३९८॥
प्राननाथ परदेस कौं चलिए समौ विचारि।
स्याम नैन-घन बाल के बरसन लागे वारि ॥३९९॥
सरद - चांदनी मैं विकल विमल मालती - कुंज।
जगत जोतिमय मैन के मनौ सुजस के पुंज ॥४००॥
कोमल कमलनि से कहैं तिन्हैं न नैंकु सयान।
होत पार लागत हियैं नैन मैन के बान ॥४०१॥

ओठ खंडिबे कौं अरगौ मुख - सुवास - रस - रत्त ।
स्याम-रूप नँदलाल अलि नहिँ अलि अलि उनमत्त ॥४०२॥
मूढ़ इंदु अरविंद मैं कहत सुधा मधु बास ।
तो मुख मंजुल अधर मैं तिनकौ प्रगट प्रकास ॥४०३॥
औरै कछु चितवनि चलनि औरै मृदु मुसकानि ।
औरै कछु सुख देति हैं सकै न बैन बखानि ॥४०४॥
जो निसि दिन सेवन करै अरु जो करै विरोध ।
तिन्हैं परम पद देत प्रभु कहौ कौन यह बोध ॥४०५॥
लखो लाल तुमकौं लखैं ए बिलास सरसात ।
बिहँसत ललित कपोल हैं मधुर नैन मुसिक्यात ॥४०६॥
पगी प्रेम नँदलाल कैं हमैं न भावत जोग ।
मधुप राजपद पाइ कै भीख न माँगत लोग ॥४०७॥
मधुप त्रिभंगी हम तजौं प्रगट परम करि प्रीति ।
प्रगट करी सब जगत मैं कटु कुटिलनि की रीति ॥४०८॥
हरि-मुख लखि लोचन सखी सुख मैं करत विनोद ।
प्रगट करत कुवलयनि कौ चंद्रोदय तैं मोद ॥४०९॥
विषयनि तैं निरवेद उर ज्ञान जोग व्रत नेम ।
विफल जानियौ ए बिना प्रभु - पद - पंकज-प्रेम ॥४१०॥
देखत दीपति दीप की देत प्रान अरु देह ।
राजत एक पतंग मैं बिना कपट कौ नेह ॥४११॥
ललित राग रंजित हियौ नायक जोति बिसाल ।
बाल तिहारैं कुचनि बिच लसत अमोलिक लाल ॥४१२॥
कहा भयौ जग मैं बिहित भऐं उदित छवि लाल ।
तो ओठनि की रुचिर रुचि पावत नहीं प्रवाल ॥४१३॥
प्रगट कुटिलता जौ करी हम पर स्याम सरोस ।
मधुप जोग बिष उगिलियै कछु न तिहारौ दोस ॥४१४॥

हँसत बाल के बदन मैं यौं छवि कछू अतूल।
फूली चंपक बेलि तैं झरत चमेली फूल ॥४१५॥
भयौ सिंधु तैं बिधु सुकबि बरनत सुमति-बिचार।
उपज्यौ तो मुख-इंदु तैं प्रेम-पयोधि अपार ॥४१६॥
पियत रहत पिय-नैन यह तेरी मृदु मुसिक्यानि।
तऊ न होति मयंक-मुखि तनक प्यास की हानि ॥४१७॥
पिय-नैननि के राग कौं भूषन सजे बनाइ।
निरखि तिहारी छवि सुतौ सौति-दृगनि सरसाइ ॥४१८॥
उदै भयौ है जलद तू जग कौ जीवन-दानि।
मेरौ जीवन हरतु है कौन बैर मन मानि ॥४१९॥
बिरह-आंच मन उड़ि सखी घन-सुंदर-तन जाइ।
दुगुनि दाह बाढ़ै तहाँ आपुहिँ जात बिलाइ ॥४२०॥
जिनकौं अतुल बिलोकियै पानिप - पारावार।
उमड़ि चलत तिन दृगनि भरि तो मुख रूप अपार ॥४२१॥
मन जद्यपि अनुरूप है तऊ न छूटति संक।
टूटि परै जिन भार तैं निपट पातरी लंक ॥४२२॥
जुपै सखी ब्रजगांउ मैं घर घर सहज चवाउ।
तौ हरि मुख लख देति किन नैनि-चकोरनि चाउ ॥४२३॥
कनक-बेलि मैं कोकनद ता मैं स्याम सरोज।
तिन मैं मृदु मुसिक्यानि है ता मैं मुदित मनोज ॥४२४॥
मो मन मेरी बुद्धि लै करि हर कौं अनुकूल।
लै त्रिलोक की साहिबी दै धतूर कौ फूल ॥४२५॥
फिरि फिरि आवति जाति चलि अँगरानी मुसिक्याति।
बाल लाल कौ ललित मुख लखि लजाति ललचाति ॥४२६॥
तो मुख-छवि सौं हारि जग भयौ कलंक समेत।
सरद इंदु अरबिंद मुखि अरबिंदनि दुख देत ॥४२७॥

मधुप-मोह मोहन तज्यौ यह स्यामनि की रीति।
करौ आपने काज कौं तुम्हैं जाति सी प्रीति ॥४२८॥
गंग-नीर बिधु-रुचि-झलक मृदु मुसिक्यानि उदोति।
कनक-भौन के दीप लौं जगमगाति तन-जोति ॥४२९॥
खल बचननि की मधुरई चाखि सांप निज श्रौन।
रोम रोम पुलकित भए कहत मोद गहि मौन ॥४३०॥
मेरी सिख सीखै न सखि मोसौं उठै रिसाइ।
सोयौ चाहति नींद भरि अंग अँगार बिछाइ ॥४३१॥
हरि की सुधि कौं राधिका चली अकेली भौन।
हँसत बीच हीं मिलि गए बरनि सकै सुख कौन ॥४३२॥
मंत्रिनि के बस जो नृपति सो न लहत सुख-साज।
मनहिँ बांधि दृग देत दृग मन-कुमार कौं राज ॥४३३॥
दधि छिनार मोहन लियौ सखी सघन बन ठौर।
बड़ौ लाभ मन मैं गनौं जौ न कियौ कछु और ॥४३४॥
कहा भयौ तजि जात है मलिन मधुप दुख मानि।
सुबरन बरन सुवास-जुत चंपक लहै न हानि ॥४३५॥
देह-दीप - दीपति दिपै बदन-चंद की ज्योति।
दामिनि- दुति मुसक्यानि मृदु, सुख की खानि उदोति ॥४३६॥
मुकत-हार हरि कै हियैं मरकत मनिमय होत।
पुनि पावत रुचि राधिका-मुख-मुसक्यानि-उदोत ॥४३७॥
बदन-चंद की चाँदिनी देह-दीप की जोति।
राति बितैहूं लाल उहिँ भौन राति सी होति ॥४३८॥
लाल बाल अनुराग सौं रँगति नित्त सब अंग।
तऊ न छाड़त रावरौ रूप सांवरौ रंग ॥४३९॥
आई फूलनि लैन कौं चलौ बाग मैं लाल।
मृदु बोलनि सौं जानिहौ मृदु बोलनि मैं बाल ॥४४०॥

ग्वालिनि देउँ वताइ हौं मोहिँ कछू तुम देहु।
बंसीबट की छांह मैं लाल जाइ लखि लेहु ॥४४१॥

सरद चंद की चांदिनी को कहियै प्रतिकूल।
सरद चंद की चांदनी कोक हियै प्रतिकूल ॥४४२॥

को हरि-वाहन जलधि-सुत को को ज्ञान-जहाज।
तहां चतुर उत्तर दियौ एक वचन द्विजराज ॥४४३॥

भोर भएँ आए भवन स्याम-वसन-जुत स्याम।
हँसि अंवर केसरि-रँग्यौ आगैँ राख्यौ बाम ॥४४४॥

यौं न प्यार बिसराइयै लियो मोहिँ तू मोलि।
मुख बिलोकि नँदलाल कौ कहै सखी सौं वोलि ॥४४५॥

लखत लाल मुख पाइहौ वरनि सकै नहिँ बैन।
लसत वदन सतपत्र सौ सहसपत्र से नैन ॥४४६॥

उड़ि गुलाल पिय-करनि तैं लगत प्रिया-मुख-चंद।
मनौ कोकनद रजनि करि करत रजनिकर मंद ॥४४७॥

सेत वसन की चांदिनी परत गुलाल सुरंग।
मानौ सुर-सरिता मिलति सरसुति-तरल-तरंग ॥४४८॥

सित अंवर-जुत तियनि मैं उड़ि उड़ि परत गुलाल।
पुंडरीक पटलनि मनौ विलसत आतप-वाल ॥४४९॥

स्याम-रूप अभिराम अति सकल विमल गुन-धाम।
तुम निसि दिन मतिराम की मति विसरौ मवि राम ॥४५०॥

प्रेम लग्यौ अंगार है सीता मन विन ज्ञान।
देत अँगूठो राम को मानिक भो हनुमान ॥४५१॥

रहे और ही रूप ह्वै विषम विरह दुख सानि।
डीठि परैं हूं परसपर नीठि परैं पहिचानि ॥४५२॥

मोहीं कौं किन मारि तूं विरह-विपति मैं गाड़ि।
जलज-मुखी कौं जलद जिन तड़ित-चावुकनि ताड़ि ॥४५३॥

अजहूं प्रगटित होत है पुलक पटल ता मांह ।
जौन अंग ढिढ़ ह्वै कढ़त छुए छैल की छांह ॥४५४॥
सिरिस कुसुम सम वाल के कुम्हिलाने सब गात ।
करत प्रात अलसात अति सौति-हियनि उतपात ॥४५५॥
प्रतिपालक सेवक्र सकल खलनि दलमलत डांटि ।
शंकर तुम सम सांकरैं सवल सांकरैं काटि ॥४५६॥
सेवक सेवा के सुनें सेवा देव अनेक ।
दीनवंधु हरि जगत है दीनवंधु हर एक ॥४५७॥
सघन तिमिर मैं तरुनि की जगमगाति तन-जोति ।
प्रेम हेम पावस-कुहू-निसा कसौटी होति ॥४५८॥
रूप वसै मदिरा मदन मदन मदरि से नैन ।
प्रेम छके पिय-छवि छके हटके नैंकु रहैं न ॥४५९॥
पिय मुख रुचि चारो चुगैं करत परस्पर चैन ।
मदन मदर से बाल के वदन मदरि से नैन ॥४६०॥
वदन इंदु अरबिंदु सौं सुधा-मधुर मधु वैन ।
मेरे होत चकोर से चंचरीक से नैन ॥४६१॥
बरनत भौंह कमान जुत बरनत वैन बनै न ।
सरल सरल सत मदन के तरल तरलतर वैन ॥४६२॥
तेरी मूरति-जुत लिखी निज सूरति लखि बाल ।
धनि मानति मनभांवती निज तनु हैं नँदलाल ॥४६३॥
तचो न तै औगुननि सौं रचो न तो अनुराग ।
ब्रज मैं देहु वताइ कै ऐसी तिया सभाग ॥४६४॥
बिहँसि बढ़ायौ लाल तुम तिय-हिय मैं अनुराग ।
बिफल क्यौं न दुख देत जौं आप लगायौ वाग ॥४६५॥
निसा समैं अरविंद रुचि द्यौस इंदु की ज्योति ।
वाल-बदन-छबि तो बिरह लाल कहा धौं होति ॥४६६॥

चली सहेट निकुंज कौं धरि सित भूषन चीर।
जोन्ह वीच अंबुज-मुखी भई कंबु कौं छीर ॥४६७॥
मेरे मन तो बसति है नैन कियो अपराध।
तुम्हैं दोस को देतु है है यह काम असाध ॥४६८॥
जमुना-तट वा कुंज मैं तुम जु दई ही माल।
निकसत जीवहिं बांधि कै तासौं राखति वाल ॥४६९॥
जिन चलाइयै चलन की चरचा स्याम सुजान।
हौं देखति हौं वाहि इहिं बात सुनत बिन प्रान ॥४७०॥
नैननि कौं आनंद है जिय कौं जीवन जानि।
प्रगट दरप कंदरप कौं तेरी मृदु मुसक्यानि ॥४७१॥
कहा करौं परवस भई लखि मुख रूप रसाल।
वेची मैं न दलाल ह्वै लीनी मैं नंदलाल ॥४७२॥
निठुर गई नहिं निठुर पैं कहति सांच किन बात।
लगे कंट कित कुचनि मैं भए कंटकित गात ॥४७३॥
कहा भयौ जौ तूं भट्ट गुन-गन-मय सब देह।
जोबनवारी तौ सफल जौ बनवारी-नेह ॥४७४॥
मुकत-माल मंडित लसैं वाल उरोज उतंग।
नखत-पांति सोभित मनौ विवि सुमेरु के शृंग ॥४७५॥
दीप-ज्योति के जाल से जगमगात अति अंग।
मानस-मानस के चपल उड़ि उड़ि परैं पतंग ॥४७६॥
निदत अति अभिराम तौ इंदीवरनि अनूप।
झलकत तो अँखियानि मैं अति घनस्याम-सरूप ॥४७७॥
लसत सुरत-श्रम-सलिल-कन ललित वाल नँदलाल।
फलौ मनौ मुकता-फलनि कंचन वेलि तमाल ॥४७८॥
विहँसतु नील दुकूल मैं लसतु वदन अरविंदु।
झलकत जमुना-रूप मैं मानौ पूरनु इंदु ॥४७९॥

जरतारी सारी ढके नैन लसत मतिराम।
मनौ कनक पंजर परे खंजरीट अभिराम ॥४८०॥
कान्ह करज छत देत यौं सोहत बाल-उरोज।
सर-सरोज सौं संभु कौं मारत मनौ मनोज ॥४८१॥
स्याम-नैन-प्रतिबिंब-जुत तिय के उरज उतंग।
मनौ मनोज-सरोज-सर लगे ईस कैं अंग ॥४८२॥
रचे बिरंचि बनाइ कै तेरे ईस उरोज।
तिनके पूजन कौं किए हरि के हाथ सरोज ॥४८३॥
बदन इंदु तेरौ अली दृग अरविंद अनूप।
तिनमें निसि बासर सदा बसत इंदिरा-रूप ॥४८४॥
तो मुख-मंजुल-हास-मृदु मदन-मोद कौ मूर।
पिय नैननि सीतल करत है कपूर कौं चूर ॥४८५॥
तेरे आनन-चंद कौ मधुर मंद मृदु हास।
मेरैं जान मनोज कौ कीरति-पुंज-प्रकास ॥४८६॥
रचो बिरंचि बनाइ तूं सुवरनमय बर बाल।
बढ़ै जोति तौ जौ मिलै इंद्र-नील-रुचि लाल ॥४८७॥
बिमल बाम के बदन मैं राजत ओठ रसाल।
मनौ सरद-बिधु-बिंब मैं लसत बिंबफल लाल ॥४८८॥
लसति मुकुट-रुचि लाल की मेरैं ओठनि सेइ।
अति अद्भुत यह बात पुनि लाल मुकुत रुचि लेइ ॥४८९॥
अली तिहारे अधर मैं सुधा-भोग कौ साज।
द्विजराजिनि-जुत न्यौतियै लाल-बदन-दुजराज ॥४९०॥
दुहूँ दिसि सघन नितंब कुच खैंचत हैं निधि-सार।
छीजै क्यौं न मयंक-मुखि ललित लंक सुकुमार ॥४९१॥
क्यौं न लहै सुख-भोग कौं ललित बाल कैं साथ।
नीबी नीबो मदन की परी नाह कैं हाथ ॥४९२॥

कर-सरोज सौं गहि रही पिय-कर गहत उरोज।
लाज प्रबल मन मैं भई मन मैं सबल मनोज ॥४९३॥
बैठि रहै रोवै हँसै आतुर उतरि उताल।
प्रथम सुरति विपरीति की रीति न जानति बाल ॥४९४॥
थकी सुरत विपरीत मैं लियै बिजन कर बाल।
लोचन रही छपाइ कै लख्यौ हँसत मुख लाल ॥४९५॥
भोर होत पिय कौं लख्यौ छोड़्यौ चहत समीप।
बिधु-मुख लोचन कमल से तनु-दोपति तनु-दीप ॥४९६॥
परै न धुनि सुनि सखिनि कौं लाजनि होति अधीर।
कर-कमलनि सौं गहि रहै सुरत-मुखर मंजीर ॥४९७॥
बाल सुरत-रस-रीति मैं गही लाज अस मैन।
करनि बिरल अँगुरीनि करि मूंदति नायक नैन ॥४९८॥
लाज मैन दुहुँ बिच परी सुरत-समै मुसक्याइ।
कमल चलावै करनि गहि दीप-समीप बचाइ ॥४९९॥
रति विपरीत प्रस्वेद-कन पिय कौं सींचति बाम।
मनौ प्रौढ़ पुन्नाग कैं मुकुलनि पूजति काम ॥५००॥
राजत अरुन सरोज हैं मानहु रँगे कुसुंभ।
जोवन-मद गज-कुंभ कै सात कुंभ के कुंभ ॥५०१॥
ऊंची स्वासनि सौं प्रिया सुरत-अंत मुसिक्याइ।
पुनि प्रीतम कैं मैन की दीनी आगि जगाइ ॥५०२॥
मनौ मैन के निधि-कलस तेरे तरुनि उरोज।
चाहत जे तिय पै इन्हैं बाननि हनत मनोज ॥५०३॥
पल्लव पग कर अधर है फल उरोज नख फूल।
भौंर-भीर घर बार हैं बाल बेलि कैं तूल ॥५०४॥
नख गांसी सर आंगुरी कर पग चारु तुनीर।
दसौं दिसनि जिनि वर जिते प्रवर पंचसर वीर ॥५०५॥

ज्वाल - जाल बिज्जुलि - छटा घटा धूम अनुहारि।
बिरहिनि - जारन कौं मनौ लाई मदन दँवारि ॥५०६॥
वलम पीठि तरिवन भुजनि उर कुच-कुंकुम - छाप।
तितै जाहु मनभांवते जितै बिकाने आप ॥५०७॥
इन झूठी सौंहनि कियैं नहिं ह्वैहौ अकलंक।
कियौ अधर - अंजन - प्रभा बदन - चंद सकलंक ॥५०८॥
बैठ्यौ आनन कमल के अरुन अधर - दल आइ।
काटन चाहत भांवते दीजै भौंर उड़ाइ ॥५०९॥
चित्रन इत उत चटपटे कहत लटपटे बात।
× × × × × × ॥५१०॥
जावक दीयौ पगनि मैं जुवती जाति सिँगार।
पुरुष प्रानप्रिय जानियत मंडन करयौं लिलार ॥५११॥
भली लगी मनभांवते करी आभरन आप।
काम निसेनी सी बनी यह वेनी की छाप ॥५१२॥
अजौं उड़ावत हौ नहीं पीर न होति सभाग।
ठौर ठौर या भौंर के डसैं अधर - दल दाग ॥५१३॥
झीनैं झगा बिलोकियत नख - छत छवि - धर नाह।
भलैं विराजत ए नए चंद्रहार हिय मांह ॥५१४॥
ललित तिहारे गुननि सौं अति सनेह सरसाइ।
काम - ओज वाकौं हियैं दीनौ दीप जगाइ ॥५१५॥
अतनु - तेज तलफै सुतनु तनु जीवन ज्यौं मीन।
नंदलाल वह ह्वै रही चंद - कला - सम छीन ॥५१६॥
कहा कहौं वाकी दसा सुनौ सांवरे बात।
देखैं बिनु कैसैं जियै देखत दृग न अघात ॥५१७॥
धरै कौन विधि धीर वह सुनौ धीर बलबीर।
काम - तीर की भीर भरि हियरौ भयौ तुनीर ॥५१८॥

वाके हिय के हनन कौं भयौ पंचसर चोर।
लाल तुम्हैं वस करन कौं रहे न तरकस तीर ॥५१९॥
वचन कहत आवत न बनि चलौ लखौ वलि आपु।
प्रबल अनंग-प्रताप सौं अंग अंग संतापु ॥५२०॥
सखिनि करत उपचार अति परति विपति इत रोज।
भुरसत ओज मनोज कैं परसि उरोज-सरोज ॥५२१॥
जागत ओज मनोज के परसि प्रिया के गात।
पापर होत पुरैनि के चंदन पंकिल पात ॥५२२॥
घन-सुंदर तो छवि-घटा उनै रही मन छाइ।
लाज चंचला लौं चमकि चंचल जाति विलाइ ॥५२३॥
सुंदरि नगर अनंग कौ तेरौ अंग अनूप।
सोभित सुवरन वरन मैं उरज गुरज कैं रूप ॥५२४॥
तुम लाइक हम हैं कहा तुम हम तैं कमनीय।
मो मन तो तन मैं बस्यौ वसति पाइ रमनीय ॥५२५॥
रंध्र-जाल मग ह्वै कढ़त तिय-तन-दीपति पुंज।
झझिया कौ सौ घट भयौ दिनहीं मैं वन कुंज ॥५२६॥
सुनि सुनि गुनि सब गोपिकनि समुझ्यौ सरस सवाद।
कढ़ो अधर की माधुरी मुरली ह्वै करि नाद ॥५२७॥
अब फिरि आवत है नहीं मो तन जीवन-हीन।
तो तन पानिप-रूप मैं भौ मन-मीन विलीन ॥५२८॥
भई देवता भाव सब हौं तुम कौं वलि जाउँ।
वाही कौ मुख रूप मन वाही कौ मुख नाउँ ॥५२९॥
कहै चीर के चोर सौं वातैं भौंह चढ़ाइ।
लखैं परस्पर गोपिका आपस मैं मुसक्याइ ॥५३०॥
विसरि जात सब दुख सखी मन मैं आनत जाहि।
अवलोकन पैयत नहीं अवलोकनि सौं ताहि ॥५३१॥

करियै संग सखीनि कैं कहौ कौन विधि सैल।
अलि रोकत मग वा सबै छैल गांउ मैं गैल ॥५३२॥
सिला सघन घनस्याम उर तिय कुच सैल कठोर।
'मुकत - हार दरि जात हैं परिरंभन कैं जोर ॥५३३॥
लगी रहै हरि - हिय यहै करि ईरखा विसाल।
परिरंभन मैं वल्लवी भली दली वनमाल ॥५३४॥
अधम अजामिल आदि जे हैं। तिनकौ हैं। राउ।
मोहूं पर कीजै मया कान्ह दया - दरियाउ ॥५३५॥
लसति दांत की ज्योति यों वाल - वदन मुसक्यात।
अमल किजलक - झलक ज्यौं कमल प्रफुल्लित प्रात ॥५३६॥
मिलि विसरैहौ आपुकौं सुमिरत सुधि न सँभार।
किंकिन कौ उर हार करि करिहौ कहा विहार ॥५३७॥
अधर-रंग वेसरि-मुकत मानिक-बानिक लेत।
हँसत वदन-दीपति बहुरि होत हरी-छवि सेत ॥५३८॥
अनमिष नैन कहै न कछु समुझै सुनै न कान।
निरखैं मोर-पखानि कैं भई पखान समान ॥५३९॥
उठे जगत दुख दैन कौं ते। कठोर कुच-कुंभ।
निसिचर कुंभ-निकुंभ ज्यौं दानव सुंभ निसुंभ ॥५४०॥
प्रतिबिंबित निज रूप लखि पिय के नैननि मांह।
मुख चुंबन कौं प्रेम सौं गह्यौ कंठ दुहुँ बांह ॥५४१॥
सकल कला-कमनीय पिय मिलन-मोद अधिकात।
बिलसति मालति मुकुल निसि निसि-मुख मृदु मुसिक्यात ॥५४२॥
दरकत नहीं बियोग मैं लगैं घनक घन घोर।
तेरे उरजनि मिलि भयौ मेरौ हियौ कठोर ॥५४३॥
हरि रानिनि मैं राधिका जुवतिनि बानी एक।
बर सुहाग अनुराग कौ कीनौ विमल बिवेक ॥५४४॥

राधा की बेनी लखी जो हरि गूंदी आपु।
चित-सुख-सागर कौ भयौ बड़वानल संतापु ॥५४५॥
लसति लाल-रुचि तरुनि कैं अमल कपोलनि पीक।
रुचि रुचि परसत मुकुर मैं मनौ अनल की लीक ॥५४६॥
बाल लाल-मुख सौति कौ सुन्यौ नाम परकास।
बरषे बादर सैन पर उड़्यौ हंस सम हास ॥५४७॥
कहा रहे निहचिंत ह्वै लखो लाल चलि आपु।
प्रलय-अनिल-सम स्वास हैं प्रलय-अनल-सम तापु ॥५४८॥
चाहति फल तेरौ मिलन निसि बासर वह बाल।
कुच-सिव पूजति नैन-जल-बुंद मुकतमय माल ॥५४९॥
तरुनि अरुन एड़ीनि के किरन-समूह-उदोत।
बेनी मंडि न मुकत के पुंज गुंज-दुति होत ॥५५०॥
लाल-बदन लखि बाल कैं कुचनि कंप-रुचि होति।
चपल होत चकवा मनौ चाहि चंद की जोति ॥५५१॥
गयौ महाउर छूटि यह रह्यौ सहज इक अंग।
फिरि फिरि झांवति है कहा रुचिर चरन के रंग ॥५५२॥
लसत कोकनद करनि मैं यौं मिहँदी के दाग।
ओस-बिंदु परि कै मिट्यौ मनौ पल्लवनि राग ॥५५३॥
सुनि इत दै मन मानिनी बिनु अपराध रिसानि।
नेह जरावन कौं महा दीप जोति उर आनि ॥५५४॥
सुनि मानिनि अपराध बिनु कहा तजति दृग-चारि।
निसि बासर यह भानियै डारै राग पखारि ॥५५५॥
बैठ्यौ ओज जगाइ कै मन सिंहासन मारु।
मनौ छपाकर छत्र छवि किरनै चांवरु चारु ॥५५६॥
हँसनि जोन्ह तेरी लखैं सुनियै नंदकिसोर।
वाके नैना होत हैं कुवलय किधौं चकोर ॥५५७॥

मंडित मृदु मुसिक्यानि-दुति देखत हरत कलेस।
ललित लाल तेरौ वदन तिय - लोचन - तारेस ॥५५८॥

रह्यौ हारि बिपरीति मैं पिय-नैननि मैं आइ।
चंदमुखी सींचति मनौ सुधा - कलस - कुच नाइ ॥५५९॥

सखी सबै सिंगार सुभ सजि सुंदरि कैं अंग।
केलि - भौन पहुँचाइ कै फिरीं लाज कैं रंग ॥५६०॥

नीवो खोलनि कौं गही पिय अनुराग निखाट।
हरष नयन जलमय बसन दियौ लाज निज ओट ॥५६१॥

आंसु छपाए हरष के सजनी भौंह चढ़ाइ।
कुच कंचुक रोमांच कौ क्यौं न दुरायौ जाइ ॥५६२॥

ह्वै छपाइ भूपननि सौं आए गात छपाइ।
भए चीन्ह रत छपारत ए नहिं जात छपाइ ॥५६३॥

रहत नहीं मो जीव यह चलत तिहारें संग।
याकौं नीकैं राखियौ पिय बसाइ निज अंग ॥५६४॥

डीठि रूप श्रुति वचन तनु परस सुखद दिन राति।
जीभ अधर - रस नासिका मुख - सुवास न अघाति ॥५६५॥

परसत तिय के करनि तें चल्यो पिघिलि नवनीत।
चलनहार परदेस कौं कियौ न पुनि मन मीत ॥५६६॥

कहा भयौ जौ सुऋतु मैं फूले रूख बिसाल।
कलकंठी सुख लहति हैं प्रफुलित पाइ रसाल ॥५६७॥

कलकंठी तो नाम हौ रही मौन सब काल।
पाइ प्रसाद रसाल कौ बोलन लगी रसाल ॥५६८॥

भौंर भांवरैं भरत हैं कोकिल-कुल मँडरात।
या रसाल की मंजरी सौरभ सुख सरसात ॥५६९॥

कासौं जात बखानि है आंब-कली-रस मित्त।
बिसरायौ जिहिं जाति तैं चंचरीक कौ चित्त ॥५७०॥

लीनौ रस कोकिल-कुलनि आंब - कली कौ झारि।
तासौं मन मान्यौ मधुप सुमना सुमन विसारि ॥५७१॥
बहु नाइक सौं बावरी मधुर बचन मुख बोलि।
उतरि जाइगौ रूप-मद कटुक-बचन मुख बोलि ॥५७२॥
कियौ कंत चित चलन कौ तिय-हिय भयौ बिषाद।
बोल्यौ चरनायुध सु तौ भयौ नखायुध-नाद ॥५७३॥
फूल कपोल मधूक के अधर बिंब-फल रत्त।
रस चाखत पिय बुद्धि बन क्यौं न होइ उनमत्त ॥५७४॥
निरखि तरनि-कर-निकर कौ अरु बरनत आलोक।
होत प्रफुल्लित सोक तजि सकल कोकनद कोक ॥५७५॥
प्रिय आलोकनि मैं निरखि पीक-अरुन-बर जोति।
तन-दीपति दिन-दीप सम सब सौतिनि हौं होति ॥५७६॥
बसन हरयो पिय सुरत मैं तिय-तन-जोति समीप।
केलि-भौन मैं राति हूं भए द्यौस के दीप ॥५७७॥
अटा ओर नँदलाल उत निरखौ नैकुँ निसंक।
चपला चपलाई तजी चंदा तज्यौ कलंक ॥५७८॥
पिय-मुख - पंकज मैं परे तिय-दृग-मधुप उड़ाइ।
अरुन भए रस - पान - बस राग - पराग लगाइ ॥५७९॥
आनँद - आंसुनि सौं रहे लोचन पूरि रसाल।
दीनी मानहु लाज कौं जल-अंजुलि घर बाल ॥५८०॥
बिरह अनल कुमुदिनि हियैं डारयौ जोन्ह बुझाइ।
तिन तैं मानो धूम-रुचि अलि कुल चले उड़ाइ ॥५८१॥
पति-बिलास सुक सारिकनि कहे गुरुनि मैं प्रात।
लाज ललित गुन-गौरि के दुरे गात मैं गात ॥५८२॥
परी बाल - मुख - चंद मैं बिरह राहु की छांह।
कै दृग - दान छुड़ाइयै सुकृत - हेतु करि नाह ॥५८३॥

अति अवदात महा मिही कसी उरोज उतंग।
केसरि रंग रँगो लगै अँगिया अंगनि संग ॥५८४॥
फूले नहीं पलास ए वन मैं लगी दँवारि।
सांच कहति सजनी न तौ सकै न नैननि जारि ॥५८५॥
उड़त भौंर ऊपर लसैं पल्लव लाल रसाल।
मनौ सधूम मनोज की ओज-अनल की ज्वाल।५८६॥
विकच अरुन मेचक वरन गुंजा-बीज-समान।
किंसुक मनौ मनोज के कालकूट-जुत बान ॥५८७॥
प्रथम कामि-जन-मननि कौं रँगत सुरभि-रितु राग।
करत अलंकृत पल्लवनि पुनि पीछैं बन-बाग ॥५८८॥
देखि परै नहिं दूबरी सुनियै स्याम सुजान।
जानि परै परजंक मैं अंग-आंच-अनुमान ॥५८९॥
सपनैं हूं चितवत नहीं और-ओर बर बाल।
तूं अपने अनुराग के रँग्यो रंग मैं लाल।५९०॥
कहा होति अति हीं निठुर तूं न बिलोकति बाम।
तो सिंगार-रस-रंग मैं अंग रँगे निज स्याम ॥५९१॥
दिसि दिसि तुम्हैं बिलोकि वह बाल तजति अति सोक।
तो प्रतिबिंबनि सहित सब भयौ मुकुर नर लोक ॥५९२॥
कीनौ अति अनुराग सौं पीतम आधे रूप।
मनौ लिए गुन गौरि तैं गुन गौरि तैं अनूप ॥५९३॥
जे अंगनि पिय संग मैं बरखत हुते पियूष।
ते बाछू के डंक से भए मयंक-मयूष ॥५९४॥
जाहि चाहि उद्दिम कियौ गने न निसि मग-डाभ।
कंत बिकान्यौ अनत सो रह्यो अजस कौ लाभ ॥५९५॥
मनमोहन तौ सकत क्यौं यौं अपराधनि ठानि।
जौ न मनावन हेतु यह होति मधुर मुसक्यानि ॥५९६॥

पियहि उठावति पगनि तैं क्यौं न कौन यह ज्ञान।
दुख-सागर मैं बूड़िहै बाँधि गरैं गुरु मान ॥५९७॥
जो सजनी गुन गननि-बस अति सनेह-रस मानि।
भयौ दास तब सो लखै अब उदास अँखियानि ॥५९८॥
सुनि सजनी वह साँवरौ धरि गुंजनि के हार।
राखतु है हिय आपुनैं तो सनेह-घनसार ॥५९९॥
अलि यह अनल अनंग कौ अंग-अंग अधिकात।
क्यौं धौं चंचल प्रान ए पारद लौं न उड़ात ॥६००॥
कहा लियौ गुरु मान कौ अति ताती है नेम।
पारद सौ उड़ि जाइगौ अलि चंचल यह प्रेम ॥६०१॥
जानति सौति अनीति है जानति सखी सुनीति।
गुरुजन जानत लाज है प्रीतम जानत प्रीति ॥६०२॥
लसत चारु तीरनि सहित तिय लोचन कमनीय।
चढ़े खंजरीटनि मनौ चंचरीक रमनीय ॥६०३॥
नींद - भार दाबे दृगनि लसत पीक बड़ भाग।
कुवलय मुकलित होत ज्यौं परसि प्रात रवि - राग ॥६०४॥
दरपन अमल कपोल मैं परत पानि - प्रतिबिंब।
पुनि पुनि पोंछति पीक भ्रम देखि आदरस बिंब ॥६०५॥
कल कल कलिका कुल ललक कोकिल-कुल की केलि।
लोलै कला कलोल कै लाल लाल कंकेलि ॥६०६॥
जल - पूरित - घनस्याम - रुचि उनई अँखियनि आइ।
रही कदंब कलीनि की अंग बाल छवि छाइ ॥६०७॥
तन दुरबल मनमथ प्रबल ढिग बसंत पिय दूरि।
अचल बिरह चल जीव सखि तनक न सुख दुख भूरि ॥६०८॥
हरयौ बसन मन - भावते फिरि किंकिनि गुन तोट।
करैं मनौ मन-भावती पुलक - पटल - पट ओट ॥६०९॥

औरनि हूं के लसत हैं अति अनियारे नैन।
मन मानत हैहैं न वे सो मन लागत पैन ॥६१०॥
है इहि गांव गुलाव वर पुर - ठाकुर कैं गेह।
चलौ न आवति वास है जो देवर की देह ॥६११॥
पूरत मन की लालसा जगनि जगति गुन-गाथ।
सुर - नर - पल्लव अरुन रुचि भोग नाथ के हाथ ॥६१२॥
कलपद्रुम - पल्लव भयौ तूं अति दानि निदान।
भोग नाथ नर - नाथ के हाथ - साथ पढ़ि दान ॥६१३॥
लाल भाल जावक लगे उठे रसिक सिरताज।
सैाति लखी सुंदरि दृगनि रोस हास अरु लाज।६१४॥
लगे निसा - अभिसार मैं कंटक तिय कैं पाइ।
अजैां न सरुहे निठुर तुम भए और हीं भाइ ॥६१५॥
मो नैननि नीकी लगै रही लपटि यह भाल।
तनक रँगी यह पाग अब लाल करै सब लाल ॥६१६॥
लाल तिहारे चलन की सुनी वाल यह वात।
सरद नदी के सोत लैां प्रतिदिन सूखत गात ॥६१७॥
कियौ प्यार मोपर प्रकट सैं लीनैा धरि सीस।
पिय प्यारी कैं नाम यह दियौ मोहिँ बकसीस ॥६१८॥
तुरतहिँ गयौ विलाइ कै हुत्यौ परम अभिराम।
नाह रावरैा नेह यह भयैा गंधरव - गाम ॥६१९॥
हिय - अनुराग रँगे लला वे कछु और अमोल।
ओठनि हीं के रँग भए रँगि रँगि वोलत वोल ॥६२०॥
पगीं प्रेम नँदलाल कैं हमैं न भावत जोग।
मधुप राजपद पाइ कै भीख न मांगत लोग ॥६२१॥
छोड़ि नेह नँदलाल कौ हम नहिँ चाहतिँ जोग।
रंग वाति क्यों लेत हैं रतन - पारखी लोग ॥६२२॥

भोगनाथ नर-नाथ के गुन-गन विमल विसाल।
भिच्छुक सेवत पानि हैं पग सेवत महिपाल ॥६२३॥
अद्भुत गावत जगत सब भोगनाथ-गुन-गाथ।
भूमिपाल सेवत चरन भिच्छुक सेवत हाथ ॥६२४॥
एक द्यौस की औधि पिय अति साहस प्रारंभ।
मन सों कहु वरि जात क्यों भुजनि जलधि कौ अंभ ॥६२५॥
हरद वरन तैं अधिक वढ़ि जरद होत वह मित्त।
सरद जोन्ह मैं मानिनी दरद न आवत चित्त ॥६२६॥
जा वियोग-वड़वागि की ज्वालनि नैंकु जरयौ न।
सो सागर अनुराग कौ सूखत जानि परयौ न ॥६२७॥
ज्यौं ज्यौं विपम वियोग की अनल-ज्वाल अधिकाइ।
त्यौं त्यौं तिय की देह मैं नेह उठत उफिनाइ ॥६२८॥
वड़वानल पर वढ़त है विरह - ताप तिय - अंग।
अति अद्भुत अधिकाति है प्रेम - पयोधि - तरंग ॥६२९॥
वहै सवै अनुनय - सहित मधुर वचन चित-चाउ।
क्यौं राखै अव रोकि सखि फूट्यौ प्रेम - तलाउ ॥६३०॥
अति उतंग उरजनि लसत चपल मुकत - वर हार।
मनौ मेरु - विवि-शृंग तैं गिरति गंग - जुग-धार ॥६३१॥
सरस वाल कौ मन लला पारावार अनूप।
नीरस मानसरोवरौ मारवार कैं रूप ॥६३२॥
चढ़त सुन्यौ नहिँ स्याम मैं और रंग गरू वाल।
अधर राग सौं हैं रँगे अद्भुत तैं नँदलाल ॥६३३॥
एक भए मन दुहुनि के छूटैं न किये उपाइ।
कहौं सिंधु संभेद कौं कोउ न सकत छुड़ाइ ॥६३४॥
हरिन - रूप विरहीनि कौं जलद - जाल वगराइ।
वांधि वूंद वाननि वधत मार वधिक सम आइ ॥६३५॥

प्रफुली सुमन रसाल के कंध विटप भुज मेलि।
बात निवारी विरह की फूल निवारी बेलि ॥६३६॥
निज स्वरूप प्रभु देत हैं सांच कहत मुनि-गोत।
भोगनाथ की रीझ मैं भोगनाथ कवि होत ॥६३७॥
सरल बान जानै कहा प्रान-हरन की घात।
बंक भयंकर धनुष कौ गुन सिखवत उतपात ॥६३८॥
किधौ भोग सपनैं रमन परम मुगध-मन बाल।
कौतुक देति उराहनौ लई अंक भरि लाल ॥६३९॥
दियौ कान्ह निज कान तैं तुम गुलाब को गुच्छ।
गुरुजन मैं अवतंस करि फिरति लाज करि तुच्छ ॥६४०॥
सखी सिखापन रावरैं कहौ कहा अब होइ।
मोहन-तन-पानिप गई लाज दृगनि की धोइ ॥६४१॥
लाज गहै नींदहिं लहै निसि दिन दहै न देह।
सुनौ सांवरं रावरे तहां न कीजै नेह ॥६४२॥
चढ़ी अटारी बाम वह कियौ प्रनाम निलाट
तरनि किरनि तैं दृगनि कौं कर-सरोज करि ओट ॥६४३॥
कढ़त पियूषहुँ तें मधुर सुख सरसुति के सोत।
भोगनाथ नर-नाथ कैं साथ बसैं कवि होत ॥६४४॥
दिनहूं मैं अति जगमगै बाल-बदन-विधु-काँति।
लखौ लाल या संधि मैं उदै सैल की भाँति।६४५।
भोगनाथ-मुख चंद की ओर लखत वर जोर।
करौं कौन विधि मान ए लोचन होत चकोर ॥६४६॥
अंग करत परि रंग मैं सुधा-समुद्र-विनोद।
सुरत अंतहूं पाइयै सुरत आदि कौ मोद ॥६४७॥
अँसुवनि के परवाह मैं अति बूड़िवैं डराति।
कहा करै नैनानि कौं नींद नहीं नियराति ॥६४८॥

अनल-ज्वाल सी लगति है बालपने मैं बाल।
जग जारन कौं जानियत जोवन मैं जंजाल ॥६४९॥
पलक पलक लागैं बिना क्यौं करि दृगनि बिनोद।
सोवन देत न सरद मैं बिकच कुमुद आमोद ॥६५०॥
तेरौ सखी सुहाग वर जानत हैं सब लोक।
होत चरन कैं परस पिय प्रफुलित सुमन असोक ॥६५१॥
प्रीतम प्रिया पियाइ कै मुख-सुख-सुधा अनूप।
पुलक-मुकुल केसर-पटल करि केसरि अनुरूप ॥६५२॥
पिय कैं मन मन-भावती और बात नहिँ फूल।
कुच-परिरंभन सौं तरुनि करि कुरवक तरु-तूल ॥६५३॥
करि चख-चारु-चितौनि सौं सुमन कलित-अनुकूल।
तरुन तिलोकी-तिलक कौं तरुनि तिलक-तरु-तूल ॥६५४॥
चितवनि कुच परिरंभ मुख सिद्ध चरन हति-केलि।
कियो तिलक कर बक निलित लाल बकुल कंकेलि ॥६५५॥
होत जगत मैं सुजन कौं दुरजन रोकनहार।
केतकि कमल गुलाब के कंटक मय परिहार ॥६५६॥
कछु न गनति दुरजननि लखि तोहिँ दृगनि सुख देति।
निदरि कंटकनि मधुकरी रस गुलाब कौं लेति ॥६५७॥
फूलति कली गुलाब की सखि यहिँ रूप लखै न।
मनौ बुलावति मधुप कौं दै चुटकी की सैन ॥६५८॥
भ्रमत रहत निस द्यौस हूं करी मधुकरी तूल।
कित वह डारी सो हितू कित बकिनव को फूल ॥६५९॥
मिले मोहिँ अति प्रेम सौं लटपटात उठि प्रात।
छोड़ि आपुनो भौन तुम भौन कौन कैं जात ॥६६०॥
हियौ जरायौ बाल कौं अनल ओज निज मैन।
ता पर तेरे देत दुख लाल सलोने नैन ॥६६१॥

हरि-हिय तैं रवि रंग मैं गिरे गुंज गुन टूटि।
मनौ स्याम घन तैं परे इंद्र गोप गन छूटि ॥६६२॥

करति रसोई बाल वह मगन बिहारैं ध्यान।
जरति आगि बिनु आंगुरी होत नहीं मन ज्ञान ॥६६३॥

प्रथम अरध छोटी लगी पुनि अति लगी बिसाल।
बामनि कैसी देह निसि भई बाल कौं लाल ॥६६४॥

करौ कोटि अपराध तुम वाके हियैं न रोष।
नाह-सनेह-समुद्र मैं बूड़ि जात सब दोष ॥६६५॥

बिरह-तचे तिय-कुचनि लौं अँसुवा सकत न आइ।
गिरि उडुगन ज्यौं गगन तैं बीचहिँ जात बिलाइ ॥६६६॥

स्याम बिहारैं बिरह दृग करत सकज्जल रोज।
मनौ बहावत प्रेम सौं सूर सुताहिँ सरोज ॥६६७॥

छांह बिना ज्यौं जेठ-रवि ज्यौं बिनु औषधि रोग।
ज्यौं बिनु पानी प्यास यौं तेरौ दुसह बियोग ॥६६८॥

सो दृग-कंजनि कौं दियौ दरसनु मोद निदानु।
भोगनाथ मन-भावते भए भोर के भानु ॥६६९॥

भोगनाथ नरनाथ कौ बदन इंदु अरबिंदु
करत कबित्तनि करत वर मधुर सुधा-मधु-बिंदु ॥६७०॥

कमल मुखनि कुवलय दृगनि कुमुद मधुर मुसक्यानि।
लखौ लाल ऊपर सकल कमलाकर सुख दानि ॥६७१॥

तब लौं नहिँ जानति दृगनि जब लौं नहीं उदोति।
बिहँसन छोर मिठास मय मठा चंद की जोति ॥६७२॥

जब जब देखै बाल कैं चित्त चढ़ै मुसकानि।
अधर-कपोल-बिलोचननि तब तब झलकति आनि ॥६७३॥

बासर मैं रवि हो तहाँ जामैं निरखत भौंह।
सुनौ लाल वा प्रेम के परी आइ बिच सौंह ॥६७४॥

कपट वचन अपराध तैं निपट अधिक दुखदानि।
ज़रे अंग मैं संकु ज्यौं होत विथा की खानि ॥६७५॥

लाल तिहारैं विरह नित छीन वाल के अंग।
जानति हौं चाहत दियौ निज सायुज्य अनंग ॥६७६॥

वाल अलप-जीवन भई ग्रीषम - सरित - सरूप।
अव रस परिपूरन करौ तुम घनस्याम अनूप ॥६७७॥

मुख-विधु छिनु छिनु यौं रहै एक द्यौस हीं माँझ।
पून्यौ हुती प्रभात अव होति अमावस साँझ ॥६७८॥

कहा कहै रूखे वचन सातिक भाव अपार।
तरुनि छपायौ चहति तूं तिन की ओट पहार ॥६७९॥

तेरी मृदु मुसक्यानि लखि सरद - जोन्ह - सम रंग।
वाढ़ति मोद - पयोधि कैं दृगनि तरंग उतंग ॥६८०॥

अँसुवनि सौं छाए रहैं लाल वाल के नैन।
जव तैं तो दरसन छुट्यौ तव तैं कछू लखै न ॥६८१॥

वाल गहत दसननि लसत लाल-अधर-वर-विंव।
मनौ दसत अरविंद है सरद इंदु कौ विंव ॥६८२॥

सखि छपाउ यह भाउ अव चाहत भयौ जनाउ।
अँगिया मैं उर की उमगि रह्यौ तनीनि तनाउ ॥६८३॥

अंजन - जुत अँसुवा ढरत लोचन मीन समान।
लसत नीलमनि दंड जुत मनौ मनोज - निसान ॥६८४॥

सेद - विंदु चंदन सहित गिरत भाल तैं टूटि।
विधु - उर तैं जनु विधु - वधू परति भान करि छूटि ॥६८५॥

जाकैं वर वरजोर यह करत सकल तन ऐनि।
वरछी मनो मनोज की तिरछी चारु चितौनि ॥६८६॥

होठि परस्पर दुहुनि की दई वदलि जनु मैन।
तिय - मुख मैं पिय - नैन हैं पिय - मुख मैं तिय-नैन ॥६८७॥

दुहूँ ओर मुख दुहुनि के बिधु लौं करत प्रकास ।
लाज-अँध्यारी दुहुनि की कहूँ न पावति बास ॥६८८॥
कौन भाँति कै बरनियै सुंदरता नँदनंद ।
वाके मुख की भीख लै भयौ ज्योतिमय चंद ॥६८९॥
दिन मैं सुभग सरोज हूँ निसि मैं सुंदर इंदु ।
द्यौस राति हूँ चारु अति वाकौ बदन गोविंदु ॥६९०॥
हियौ हरत कीनी सखी मोहन नंद-कुमार ।
सज्यौ बन्यौ मुकतानि कौ अंग अंग सिंगार ॥६९१॥
लसत सजल-दरपन बिमल तो कपोल बलि नारि ।
सनमुख रहि जो भाल मैं कीजै तिलक सँवारि ॥६९२॥
सुनत सदा गुरु-बचन हित रहत बिबुध-गन साथ ।
भोगनाथ यह जानियत सदा भूमि-सुरनाथ ॥६९३॥
सरनागत-पालक सदा दान जुद्ध अति धीर ।
भोगनाथ नरनाथ यह पर्यौ रहत रन-भीर ॥६९४॥
भोगनाथ नरनाथ के लोचन लसत बिसाल ।
रहत गरीबी गहि दुवन नीवी गहि बर बाल ॥६९५॥
जगति जगति दोऊ भुजा जग्य रूप के रूप ।
भोगनाथ नरनाथ की भौंह निहारत भूप ॥६९६॥
तब लौं सजनी बोलियै ये गरबीले बैन ।
जब लगि तुम निरखे नहीं भोगनाथ के नैन ॥६९७॥
तुरग अरब गयंद के मनि-आभरन अनूप ।
भोगनाथ सौं सीख लै भए भिखारी भूप ॥६९८॥
भोगनाथ नरनाथ की रीझ्यौ सौक अनूप ।
होत भिखारी भूप हैं भूप भिखारी-रूप ॥६९९॥
मुरलीधर गिरिधरन प्रभु पीतांबर घनस्याम ।
बकी-बिदारन कंस-अरि चीर-हरन अभिराम ॥७००॥

पीत अँगुलिया पहिरि कै लाल लकुटिया हाथ।
धूरि भरे खेलत रहैं ब्रजबासनि ब्रजनाथ ॥७०१॥
तिरछी चितवनि स्याम की लसति राधिका ओर।
भोगनाथ कौं दीजियै यह मन-सुख बरजोर ॥७०२॥
मेरी मति मैं राम हैं कवि मेरे 'मतिराम'।
चित मेरौ आराम मैं चित मेरैं आराम ॥७०३॥

---

(४) रसनिधि-सतसई

लसत सरस सिंधुर-वदन भालथली नखतेस।
विघन - हरन मंगल - करन गौरी - तनय गनेस ॥ १ ॥
नमो प्रेम - परमारथी इह जाचत हौं तोहि।
नंदलाल के चरन कौं दे मिलाइ किन मोहि ॥ २ ॥
नमो प्रेम जिहि नै कियौ हिय लग आइ प्रकास।
रँगरत वासी नाक कौं कान्ह गोपकन पास ॥ ३ ॥
निसि दिन गुंजत रहत जे विरद गरीब-नेवाज।
है निज मधुकर-सुतन की कमल-नैन तुहि लाज ॥ ४ ॥
अब तौ प्रभु तारैं वनै नातर होत कुतार।
तुमहीं तारन-तरन हौ सो मोरैं आधार ॥ ५ ॥
सुवस वसत ते चित नगर जहाँ वसत हरि आइ।
ऐसै तौ ऊजर परी तन की किती सराइ ॥ ६ ॥
विरह घाम इन पै जवै तनिकौ सह्यौ न जाइ।
चरन-कमल नँदलाल के तव दृग लागत जाइ ॥ ७ ॥
अदभुत गति यह रसिकनिधि सरस प्रीत की वात।
आवत ही मन साँवरो उर कौ तिमिर नसात ॥ ८ ॥
विवछि गयौ मन लागि ज्यौं ललित त्रिभंगी संग।
सूधौ होत न और तनि नउत रहै वह अंग ॥ ९ ॥
कैइक स्वांग वनाइ कै नाचौ वहु विधि नाच।
रीझत नहिं रिझवार वह विना हिए के साँच ॥ १० ॥
जाकौ गति चाहत दियौ लेत अगति तैं राखि।
रसनिधि हैं या वात के भक्त भागवत साखि ॥ ११ ॥

चित है दियौ विसार जनु विरद गरीव-निवाज।
व्रजवासिन के दरद कौं पहुँचत नहिँ व्रजराज॥ १२॥
अंवुज चरन पराग हर रही धरन व्रज पूरि।
अजौं परस तन करत वह विरह-विथा कौ दूरि॥ १३॥
धनि गोपी धन ग्वाल वे धनि जसुदा धनि नंद।
जिनके मन आगे चलै धायौ परमानंद॥ १४॥
आदि अंत अस मध्य मैं जो है स्वयं-प्रकास।
ताके चरनन की धरै रसनिधि मन मैं आस॥ १५॥
काल-पखेरू तैं सही यौं तन खेत उवेर।
यह विरियाँ ऐसे समय हरिया हरिया टेर॥ १६॥
यह प्रसिद्ध है रसिकनिधि मनमोहन की वात।
पनिवारं घट मैं वसै पनिघटि ओर न जात॥ १७॥
भूले तैं करतार के रागु न आवै रास।
यही समुझ कै राख तू मन करतारैं पास॥ १८॥
हरि कौ सुमिरौ हर घरी हरि हरि ठौर जुचान।
हर विधि हरि के ह्वै रहौ रसनिधि संत सुजान॥ १९॥
मजनू लख लै ह्वै गए लैं लैं लैलै नाम।
अचरज कह जौ कृष्ण कहि मिलैं चरन अभिराम॥ २०॥
मनि समान जाके मनी नैकुँ न आवत पास।
रसनिधि भावुक करत है ताही मन मैं वास॥ २१॥
जिन काढ़ौ व्रजनाथ जू मो करनी कौ छोर।
मो कर नीके कर गहौ रसनिधि नंदकिसोर॥ २२॥
रसनिधि वाकौ कहत हैं याही तैं करतार।
रहत निरंतर जगत कौ वाही के कर तार॥ २३॥
तेरी गति नँदलाड़ले कछू न जानी जाइ।
रजहू तैं छोटौ जु मन तामैं वसियत आइ॥ २४॥

सब सुख औरें ढंगिया गुर सुख लेत उठाइ।
सब सुख पाहन सनि रहैं गुर सुख नहीं मिठाइ ॥ २५ ॥
सोहै नैकु न नैन जो मनमोहन को रूप।
नीरस निपट निकाम ज्यौं बिन पानी के कूप ॥ २६ ॥
बेदब्यास सब खोजहीं नैकु न पावहिं नाहिं।
मोहन मन दृग करनि-फार गज-गाननि बिन जाहि ॥ २७ ॥
मन तुं मोहन सों हमैं काहे पारत बीच।
परौ रहत है नैन छिन रे बिषयारस नीच ॥ २८ ॥
दंपति चरन सरोज पै जो अलि मन मड़राइ।
निसि के बासन लाग सों रसनिधि संग सुहाइ ॥ २९ ॥
जो चाहै बिधि पाहियै ज्यौं उर ऊँचौ हार।
स्याम मनोहन कैं कछू रसनिधि बात अपार ॥ ३० ॥
घरी बजी घरयार सुन बगिरे कहत अगाइ।
बहुरि न पैहै यह घरी हरि-चरनन चित लाइ ॥ २१ ॥
हरि बिनु मन तुव कामना नैकु न आवै काम।
सपने के धन सौं भरे किहि तैं अपनौ धाम ॥ २२ ॥
जिन धारे नँदलाल पै अपने मन धन ल्याइ।
उनके गारे को कछू मोपै कही न जाइ ॥ ३३ ॥
हरि-पूजा हरि-भजन मैं सो ही ततपर होव।
हरि उर जाही आइ कै हरबर करै उद्दोत ॥ ३४ ॥
रसनिधि मन मधुकर रमहिँ जो चरनांबुज माहिँ।
सरस अनखुली खुलत है खुली खुलीहैं नाहिँ ॥ ३५ ॥
रूप दृगन श्रवनन सुजस रसना मैं हरिनाम।
रसनिधि मन मैं नित बसैं चरन कमल अभिराम ॥ ३६ ॥
कपटी जब लौं कपट नहिं सांच बिगुरदा धार।
तब लौं कैसे मिलैगो प्रभु साँचौ रिझवार ॥ ३७ ।

नेत नेत कहि निगम पुनि जाहि सकै नहिँ जान।
भयौ मनोहर आइ ब्रज वही सो हरि हर आन॥ ३८॥
परम दया करि दास पै गुरू करी जब गौर।
रसनिधि मोहन भावतौ दरसायौ सब ठौर॥ ३९॥
पाप पुन्य अरु जोति तैं रवि ससि न्यारे जान।
जद्यपि सो सब घटन मैं प्रतिबिंबित है आन॥ ४०॥
आपु भँवर आपुहि कमल आपुहि रंग सुवास।
लेत आपुही वासना आपु लसत सब पास॥ ४१॥
पवन तुही पानी तुहीं तुहीं धरनि आकास।
तेज तुहीं पुनि जीव है तुहीं लियौ तन वास॥ ४२॥
वे खाए ते वेवफा वफा रहै ठहराइ।
मीनै कीनै दूर ज्यौं तेही तैं रह जाइ॥ ४३॥
कहूं हाकमी करत है कहूं वंदगी आइ।
हाकिम वंदा आपही दूजा नहीं दिखाइ॥ ४४॥
सांची सी यह वात है सुनियौ सज्जन संत।
स्वांगी तौ वह एक है वहि के स्वांग अनंत॥ ४५॥
कोटि घटन मैं विदित ज्यौं रवि प्रतिविंव दिखाइ।
घट घट मैं त्यौंही छिप्यौ स्वयं-प्रकासी आइ॥ ४६॥
आसिक अरु महबूब विच आप तमासा कीन।
ह्यां है अलगरजी करै ह्यां है होइ अधीन॥ ४७॥
लेत देत आपन रहै सिर अपने नहिँ लेत।
ह्यां है चित को लेत है ह्यां है चित कौ देत॥ ४८॥
आपु फूल आपुहि भँवर आपु सुवास बसाइ।
आपुहि रस आपुहि रसिक लेत आपु रस आइ॥ ४९॥
ब्रह्म फटिक मन सम लसै घट घट मांझ सुजान।
निकट आय वरतै जो रँग सो रँग लगै दिखान॥ ५०॥

वही रंग वह आपुही भयौ तिली मैं तेल।
आपुन वास्यौ सुगन ह्वै आपुहि भयौ फुलेल॥ ५१॥
यौं सब जीवन की लखौ ब्रह्म सनातन आद।
ज्यौं माटी के घटन की माटी पै बुनियाद॥ ५२॥
जलहूं मैं पुनि आपही थलहूं मैं पुनि आपु।
सब जीवन मैं आपु है लसत निरालौ आपु॥ ५३॥
अनल दिवैया आपु ही अनल लिवैया आपु।
अनल मांझ जो अनिल वह रसनिधि सोई आपु॥ ५४॥
मोहनवारौ आपु ही मन मानिक पुनि आपु।
पोहनवारौ आपु ही जोहनिहारौ आपु॥ ५५॥
वंसी हूं मैं आपु ही सप्त सुरन मैं आपु।
बजवैया पुनि आपु ही रिझवैया पुनि आपु॥ ५६॥
बीज आपु जर आपु ही डार पात पुनि आपु।
फूलहि मैं पुनि आपु फल रस मैं पुनि निधि आपु॥५७॥
पंचन पंच मिलाइ कै जीव ब्रह्म मैं लीन।
जीवन-मुक्त कहावही रसनिधि वह परवीन॥ ५८॥
आसिक हू पुनि आपु त्यौं महबूबा पुनि आपु।
चाहनहारौ आपु त्यौं वेपरवाही आपु॥ ५९॥
कुदरत वाकी भर रही रसनिधि सब ही जाग।
ईंधन बिन बनियौ रहै ज्यौं पाहन मैं आग॥ ६०॥
अलख सबैई लखत वह लख्यौ न काहू जाय।
दृग तारिन के तिलक की झांकि न झांकी जाइ॥ ६१॥
तिलन मांझ पुनि आपु त्यौं सुमन मांझ पुनि आपु।
बासनवारौ आपु त्यौं पेरनवारौ आपु॥ ६२॥
गरजन मैं पुनि आपु ही बरसन मैं पुनि आपु।
सुरझन मैं पुनि आपु त्यौं उरझन मैं पुनि आपु॥ ६३॥

कहुँ गावै नाचै कहूं कहूं देत है तार।
कहूं तमासा देखही आपु वैठ रिझवार ॥ ६४ ॥
नर पसु कीट पतंग में थावर जंगम मेल।
ओट लियै खेलत रहै नयौ खिलारी खेल ॥ ६५ ॥
आपुहि वा महवूव में वेदरदी सरसाइ।
आपुहि आसिक में इहां दरद अँगेजत आइ ॥ ६६ ॥
हिंदू में क्या और है मुसलमान में और।
साहिव सवका एक है व्याप रहा सव ठौर ॥ ६७ ॥
कहुँ नाचत गावत कहूं कहूं वजावत वीन।
सव में राजत आपु ही सव ही कला प्रवीन ॥ ६८ ॥
जल समान माया लहर रवि समान प्रभु एक।
लहि वाके प्रतिविव कों नाचत भांति अनेक ॥ ६९ ॥
राई कौ वीसौ हिसा ताहू में पुनि आइ।
प्रभु विन खाली ठौर कहुँ इतनौहूं न दिखाइ ॥ ७० ॥
अलख जात इन दृगनि सौं विदित न देखी जाइ।
प्रेम कांति वाकी प्रगट सव ही ठौर दिखाइ ॥ ७१ ॥
जदपि रहौ है भावतौ सकल जगत भरपूर।
वल जैयै वा ठौर की जहँ ह्वै करै जहूर ॥ ७२ ॥
कौन रीझवायै सकै को वस करै रिझाइ।
आपु रिझावन ह्वै रह्यौ आपुहि रीझत आइ ॥ ७३ ॥
पंच तत्त्व की देह में ज्यौं सुर व्यापक होइ।
विस्वरूप में व्रह्म ज्यौं व्यापक जानौ सोइ ॥ ७४ ॥
रस ही में औ रसिक में आपुहि कियौ उदोत।
स्वाति-वूंद में आप ही आपहि चात्रिक होत ॥ ७५ ॥
घट भीतर जो वसत है दृगनस वाकी जोत।
देखत सव पै सवन में विरल न जाहिर होत ॥ ७६ ॥

अलख सबै जापै कहै लखैा कौन विधि जाइ।
पाक जात की रसिकनिधि जगत सिफात दिखाइ ॥ ७७ ॥
करत फिरत मन बावरे आप नहीं पहिचान।
तो ही मैं परमातमा लेत नहीं पहिचान ॥ ७८ ॥
तूं सज्जन या बात कौं समुझ देख मन माहिँ।
अरे दया मैं जो मजा सो जुलमन मैं नाहिँ ॥ ७६ ॥
सज्जन हो या बात को करि देखो जिय गौर।
बोलन चितवन चलन वह दरदवंत कौ और ॥ ८० ॥
मीता तूं या बात कौं हिए गौर करि हेर।
दरदवंत बेदरद कौं निसि बासर कौं फेर ॥ ८१ ॥
कठिन दुहूं बिधि दीप कौ सुन हो मीत सुजान।
सब निसि विन देखै जरै मरै लखै मुख भान ॥ ८२ ॥
सीख सुधाई तीर तैं तज गति कुटिल कमान।
भावै चिल्ला बैठ तूं भावै बिच मैदान ॥ ८३ ॥
बिन आदर जौं रूप नृप छबि मुकताहल देत।
दृग जाचक ये दीठ कर विन सनमान न लेत ॥ ८४ ॥
सज्जन पास न कहु अरे ये अनसमझी बात।
मोम-रदन कहूँ लोह के चना चबाए जात ॥ ८५ ॥
जब देखौ तब भलन तैं सजन भलाई होहि।
जारै जारै अगर ज्यौं तजत नहीं खसबोहि ॥ ८६ ॥
बेदाना सै होत है दाना एक किनार।
बेदाना नहिँ आदरै दाना एक अनार ॥ ८७ ॥
प्रीतम इतनी बात कौ हिय कर देखु विचार।
बिनु गुन होत सु नैकहूं सुमन हिए कौ हार ॥ ८८ ॥
हित करियत यह भांति सौं मिलियत है वह भात।
छीर नीर तैं पूछ लै हित करिबे की बात ॥ ८६ ॥

वढ़त आपनै। गोत कौ और सवै अनखाइ।
सुहृद नैन नैना वढ़े देखत हियैा सिहाइ॥ ९० ॥
पसु पच्छी हू जानहीं अपनी अपनी पीर।
तव सुजान जानौं तुमैं जव जानौ पर-पीर॥ ९१ ॥
इतनौई कहनो हतैा प्रीतम तोसौं मोहि।
मान राखवी वात तैा मान राखनैा तोहि॥ ९२ ॥
मदन गवन जय करत है जाही तन मैं आइ।
छवि वाकी सव तैं सरस नैनन वही दिखाइ॥ ९३ ॥
नेह सौन छवि मधुरता मैदा रूप मिलाय।
वेचत हलुवाई मदन हलुआ सरस वनाय॥ ९४ ॥
मदन भूप राजै जहां सहसा सकौ न जाइ।
रूप चांदनी मैं धरौ पैाछ पलन दृग पाइ॥ ९५ ॥
अरे जरे की पीर कैां तू तैा जानत है न।
नेहनि जारत फिरत तूं जान बूझ कै मैन॥ ९६ ॥
विन हूं वाग लगाम वह चावुक लेत न हाथ।
फेरत वाहक मैन लख नैन हरिन एक साथ॥ ९७ ॥
अवलख नैन तुरंग ये पलकैं पाषर डार।
आयैा मदन सवार है अव को सकै सम्हार॥ ९८ ॥
सारी हाली हरित अति लोचन मुंडा डार।
अलिकावलि वागुर रचो खेलत मदन सिकार॥ ९९ ॥
कहन सुनन चितवन चलन विहँसन सहज सुभाइ।
सव अंगन कैा देत है आइ अनंग सिखाइ॥ १००॥
कीन्हे विदित सु मार नै नेही जिते सुमार।
आवत नहीं सुमार मैं ते वे किए सुमार॥१०१॥
वाल - वदन को मदन - नृप रूप - इजाफा दीन।
नैन-गजन पर भौंह जनु मीनकेत धर लीन॥ १०२॥

विधए मैन खिलार नै रूप-जाल दृग-मीन।
रहत सदाई जे भए चपल गतिन रसलीन ॥१०३॥

लखौ मैन तै मैन मैं यह अदभुत गत आइ।
वह पिघलत लगि भापि कै यह लगि मन पिघलाइ ॥१०४॥

वदन-सरोवर तैं भरे सरस रूप-रस मैन।
डोठ-डोर सौं बांधि कै डोलत सुंदर नैन ॥१०५॥

करत न जब तक मदन-नृप रूप-सनद पर छाप।
तब तक दृग-दीवान ढिग होत न वाकी थाप ॥१०६॥

छवि तावन यह तिल सिला रूप सजल लख नैन।
कलपै दै हित कलप पै मन पट धोबी मैन ॥१०७॥

जब तैं दीन्हीं है इन्हैं मैन महीपति मान।
चित चुगली लागे करन नैना लगि लगि कान ॥१०८॥

सिद्ध कला जब तैं इन्हैं लला पढ़ाई मैन।
सुरजन मन बस करत हैं तब तैं तेरे नैन ॥१०९॥

नेही-दृग-दीवान नै जब तैं कीनी थाप।
रूप-सनद पै कर दई मदन भूप तिल-छाप ॥११०॥

नेह नगर मैं कहि फिरै मैन लाग मनु कान।
रुजू होव नँदलाल सैं चित वित ल्याइ सुजान ॥१११॥

कोमल किसलय दलनि सैं जे तिय हैं अभिराम।
दहत सतन कौ आइ कै देख अतन के काम ॥११२॥

रूप-नगर वस मदन नृप दृग-जासूस लगाइ।
नेहिनि-मन कौ भेद उन लीनौ तुरत मँगाइ ॥११३॥

रूप-तख्त पै आइ कै वैठौ मदन सु भूप।
नेही-दृग मन-नजर लै राजत द्वार अनूप ॥११४॥

वदन-वहल्म कुंडल-चका भौंह-जुवा हय-नैन।
फेरत चित-मैदान मैं वहलवान वर मैन ॥११५॥

नागर सागर रूप कौ जोवन तरल तरंग।
सकत न तर छवि भँवर पर मन बूड़त सब अंग ॥११६॥
अजब सांवलौ रूप लखि दृगन डरांई जाइ।
जिहि डर तन मो उर तिमिर तुरत दुरौई जाइ ॥११७॥
रूप-समुद छवि-रस भरौ अति ही सरस सुजान।
ता मैं तैं भर लेत दृग अपनैं घट उनमान ॥११८॥
अरे मीत या बात कौ देख हिए कर गौर।
रूप दुपहरी छांह कब ठहरानी इक ठौर ॥११९॥
रूप-बाग मैं रहत हैं बागवान तुव नैन।
मन-धन लै छवि-अमृत-फल दैन कहत पै दैं न ॥१२०॥
आंखिन के जब पल अधर हेरत चिबुकै जात।
मधुर रूप सोई भरौ हिय तक जाकौ गात ॥१२१॥
लाल भाल पै लसत है सुंदर विंदी लाल।
कियौ तिलक अनुराग ज्यौं लख कै रूप रसाल ॥१२२॥
उर दियला राख्यौ जु मैं सरस सनेह भराइ।
वेग भावते कीजियै रूप रोसनी आइ ॥१२३॥
रूप-सिंधु मैं जाइ कै जब तैं परस्यौ नेह।
तब तैं कैयौ रंग सौं रूप दिखाई देह ॥१२४॥
प्रीतम-रूप-कजाक के समसर कोई नाहिँ।
छवि-फांसी दै दृग गरै मन-धन कौं लै जाहिँ ॥१२५॥
विधि ने जग मैं तैं रच्यौ ऐसी भांति अनूप।
आभूषन कौ है लला आभूषन तुव रूप ॥१२६॥
मन-कन पलटै मिलत है जिन्हैं रूप-धन-माल।
तिनहीं के विधि ने रचे जग मैं भाल विसाल ॥१२७॥
रूप-चांदनी की गढ़ी स्वच्छ राखिबे हेत।
दृग-फरास हाजिर खड़े बरुनि बहारू देत ॥१२८॥

तौ कैसै तन पालते नेही - नैन - मराल ।
जौ न पावते रूप-सर छवि - मुक्ताहल लाल ॥१२९॥

रूप - दीप जेतौ धरौ मन - फानूस दुराइ ।
तऊ जोत वाकी दृगन होत प्रकासित आइ ॥१३०॥

सुंदर जोवन रूप जो बसुधा मैं न समाइ ।
दृग - तारन - तिल विच तिन्हैं नेही धरत लुकाइ ॥१३१॥

छके रूप - मद - पान कै ठहरत नहिँ पल पाइ ।
लटपटाइ दृग - दीठ कर गहति प्रीति - पट धाइ ॥१३२॥

वेपरवाही बांध बँध राख्यौ मन अटकाइ ।
नतर कुरूप - प्रवाह उहि देतौ कितै वहाइ ॥१३३॥

वहुत निकाइन तै लख्यौ तेरौ रूप निकाइ ।
नव अनुरागी दृग रहे तेरे हात विकाइ ॥१३४॥

मलयागिरि-चंदन सरस घिसि घिसि ल्यावत कूर ।
जात तपन कहुँ दृगन की विन वा रूप-कपूर ॥१३५॥

ज्यौं उत रूप अपार है त्यौं इत चाह अपार ।
नैन विचौंही दुहुन कौ पाइ सकैं नहिँ पार ॥१३६॥

रूप - निकाई मीत की ह्यां तक लौं अधिकात ।
जात न हेरौ निमिख कै रीझहि रीझी जात ॥१३७॥

और सवादन पै लखौ भूलहु चित्त न देइ ।
अँखियां मोहन रूप कौ विन रसना रस लेइ ॥१३८॥

छवि कन दै दृग जाचकन जे नहिँ पालत प्रान ।
रूप - रासि उनकौ दई दई कहा धौं जान ॥१३९॥

पलक पुरौ नहिँ होइ दृग निसि नारी के साथ ।
रूप-कूप तैं कौन विधि रस लागत है हाथ ॥१४०॥

निज करनी लखि आपनी रहियत है अरगाइ ।
काचे घट चहियत भरौ नव सरूप-रस ल्याइ ॥१४१॥

दृग रचना जानत सही मधुर रूप रस हीन।
सक्कर मय पावत सुनी कहूं हाट की गौन ॥१४२॥
रूप - कहर - दरियाव में तरिबौ है न सलाह।
नैनन समुझावत रहैं निसि दिन ज्ञान मलाह ॥१४३॥
जो भावै सो कर लला इन्हें बांध वा छोर।
हैं तुव सुबरन रूप के ये मेरे दृग चोर ॥१४४॥
तुव बन में खोयौ गयौ मन - मानिक ब्रजराज।
लगे संग ही फिरत हैं नैना पावन काज ॥१४५॥
मदन जुवा के खेल में रूप सर्ड़ कौ देत।
दुवा ओर कौ मैट कै लाल तियाड़ी लेत ॥१४६॥
रूप - नगर में वसत हैं नगर - सेठ तुव नैन।
मन - जामिन लै नेहियन लगे पुँजी छबि दैन ॥१४७॥
ओर - वार दृग जे परै तेरे रूप अहोर।
मन - मलाह अब सकत नहिँ यातैं इन्हैं वहोर ॥१४८॥
वरुनी जोती पल पला डांडी भौंह अनूप।
मन पसंग तौलै सुदृग हरुवौ गरुवौ रूप ॥१४९॥
मुकत स्वेदकन चिबुक लख लखी न अलि कै जाल।
वक्षन रूप-रस में फँस्यौ रसनिधि सुमन मराल ॥१५०॥
जौ नहिँ करतौ भावतौ रूप - भूप - प्रतिपाल।
तौ इन लोभी दृगन कौ होतौ कौन हवाल ॥१५१॥
भले छकाए नैन ये रूप सवो के कैफ।
देत न मृदु मुसक्यान की गजकि आइ वेहैफ ॥१५२॥
सरस रूप कौ भार पल सहि न सकैं सुकुमार।
याही तैं ये पलक जनु झुकि आवैं हर बार ॥१५३॥
पल - पिँजरन में दृग-सुवा जदपि मरत है प्यास।
तदपि तलफ जिय राखही रूप-दरस-रस-आस ॥१५४॥

रूप भूप कौ हुकुम यह इतनी किन कहि देव।
बिना सनेहा दृग हियौ आवन इहाँ न देव ॥१५५॥
यारि फेर कै आप पै जरति न मोरे अंग।
रूप-रोसनी पै झपै नेही-नैन-पतंग ॥१५६॥
खोर खोर सब देत हैं मेरे नैनन खोर।
लाल मनोहर रूप की देत न कोऊ खोर ॥१५७॥
बिरह-पीर कौ नैन ये सकैं नहीं पल कांध।
मीत आइ कै तूं इन्हैं रूप पीठ दै बांध ॥१५८॥
रूप-ठगौरी डार मन-मोहन लैगौ साथ।
तब तैं सांसैं भरत है नारी नारी हाथ ॥१५६॥
रूप किरकिरी पर गई जब तैं दृगन मँझार।
लाल भए तब तैं रहत बरषत अँसुवन धार ॥१६०॥
लाल-रूप के अमृत-फल दृग-द्रुम लागत आइ।
याही तैं बिधि नै दई बरुनी-बारि बनाइ ॥१६१॥
जा दुकान कौ रूप मद अमली दृगन रेहाइ।
जिय गहनै धर पियत है बार बार ह्वां जाइ ॥१६२॥
उर-तम मैं आवत डरौ जौ तुम नंदकुमार।
चित-सुरोसनी रूप तुव लियै खड़े दृग द्वार ॥१६३॥
कबहु ँ न ये आवत इहां कुहू-निसा लखि लेत।
झप झांकति चहुँ ओर तैं कहु चकोर केहि हेत ॥१६४॥
रूप-स्वाद कौ दृगनि सम जौ पल लेते जान।
मीत लखत होते नहीं यें बिच आगे आन ॥१६५॥
ज़ुलुफ-निसैनी पै चढ़े दृग धर पलकैं पाइ।
रूप-महल छबि-रोसनी तब देखै है आइ ॥१६६॥
माफी की तौ कर दई सनद दृगन कर देत।
रूप जिनस पल गौन मैं काहे भरन न देत ॥१६७॥

अरे वैद चहिए दवा सो नहिं तेरे पास।
नैन जखम तिनि रूप रस आवत ह्वैगी रास ॥१६८॥
नित हित सौं पालत रहै रूप-भूप नँदलाल।
छवि-पनिवारन मैं मनौ दृग पर वारन ढाल ॥१६९॥
मीत सुमुख की जोत तौ नेहै राखत पोपि।
दीप-जोत तौ लेत है सिर सौं नेहै सोपि ॥१७०॥
सकै सताइ न पल इन्है विरहा-अनिल सुछंद।
न जरै जे नजरै रहै प्रीतम तुव मुखचंद ॥१७१॥
जब जब वह ससि देत है अपनी कला गँवाइ।
तब तब तुव मुख-चंद पै कला माँगि लै जाइ ॥१७२॥
कुहू-निसा तिथि-पत्र मैं बाचन की रह जाइ।
तुव मुख-ससि की चांदनी रदै करत है आइ ॥१७३॥
वह ससि निसि मैं देखिए तारन मांह सुछंद।
निसि दिन दृग-तारनि लसै तुव मुख तारन चंद ॥१७४॥
दृग-मृग नेहनि के कहूं फांद न पावहि जान।
जुलफ-फँदा मुख-भूमि पै रोपे बधिक-सुजान ॥१७५॥
सुमन सहित आंसू-उदक पल-अँजुरिन भरि लेत।
नैन-व्रती तुव चंद-मुख देखि अरघ कौं देत ॥१७६॥
छवि-धन पैयत अमित जहँ लख मुख-चंद उदोत।
मन-नग मोहन-मीत पै वारै वारी होत ॥१७७॥
भावंता मुख स्वच्छ है जो यह तिल दरसाइ।
मो दृग-तारन मैं जु तिल ताकी आभा आइ ॥१७८॥
मदन कहन जब सौं लगे तब तैं चतुर विचार।
हरी गयौ याको सुमद मोहन-बदन निहार ॥१७९॥
हीरा भुज तावीज मैं सोहत है यह बान।
चंद लखन मुख मीत जनु लग्यौ भुजा सन आन ॥१८०॥

जब लग हिय-दरपन रहै कपट-मोरचा छाइ।
तब लग सुंदर मीत-मुख कैसे द्दगन दिखाइ ॥१८१॥
जातैं ससि तुव मुख लखै मेरो चित्त सिहाइ।
भावंता उनिहार कछु तो मैं पैयत आइ ॥१८२॥
नंदमहर के बगर-तन अब मेरै को जाइ।
नाहक कहुँ गड़ि जाइगौ हित-कांटौ मन पाइ ॥१८३॥
नेही तिल रसनिधि लखौ सुमन संग पिरि जाइ।
निरमोही मुख के जु तिल सुमन पेरि बच जाइ ॥१८४॥
तिल न होइ मुख-मीत पर जानौ वाकौ हेत।
रूप खजानै की मनौ हबसी चौकी देत ॥१८५॥
मोहन बँसुरी लेत है बजि कै बसुरी जीत।
बसुरी यासौं चलत नहिँ बस कर करत अनीत ॥१८६॥
कानन लग कै तैं हमैं कानन दियौ बसाइ।
सुचिती ह्वै तैं बाँसुरी बस अब बृज मैं आइ ॥१८७॥
ऐसे जौ नित बाँसुरी वह बजाइहै आन।
तौ कैसे रंहि सकैगी या बृज मैं कुलकान ॥१८८॥
मत बजाय इत आइ कै मोहन मुरली-तान।
हरि लैहै काहू मनै नाहक लगिहै कान ॥१८९॥
मोहन बसुरी सौं कछू मेरौ बस न बसाइ।
सुर-रसरी सौं स्रवन-मगु बांधि मनै लै जाइ ॥१९०॥
सुनियत मीननि-मुख लगै बंसी अवै सुजान।
तेरी ये बंसी लगै मीनकेत कौ बान ॥१९१॥
अब लग वेधत मन हते द्दग अनियारे बान।
अब बंसी वेधन लगी सप्त सुरन सौं प्रान ॥१९२॥
बिछुरत सुंदर अधर तैं रहत न जिहि घट सांस।
मुरली सम पाई न हम प्रेम प्रीत को आंस ॥१९३॥

तोहि वजै विप जाइ चढ़ि आइ जात मन मैर।
बंसी तेरं वैर कौ घर घर सुनियत घैर ॥१९४॥
करत त्रिभंगी मोहनहिँ मुरली लग अधरान।
क्यों न तजैं ताके सुनै आर सवै कुलकान ॥१९५॥
मैन चँपु हित सांट की डीठ लगाइ उगौं न।
धरत अहेरी मन हियँ तेरं खंजन नैन ॥१९६॥
रूप-नगर दग-जोगिया फिरत सु फेरी देत।
छवि-मन पावत है जहां पल-झोरी भरि लेत ॥१९७॥
तुव अनियारे दगन कौ सुनिगत जग मैं सोर।
अजमावत का फिरत हौ कमजोरन सौं जोर ॥१९८॥
नजरैई सव रहत हैं एक नजरिया वोर।
उतने ही मैं चोरही चित चित तुव दग-चोर ॥१९९॥
रसनिधि सुंदर मीत के रंग चुचौंहैं नैन।
मन-पट कौं कर देत हैं तुरत सुरँग ये नैन ॥२००॥
कजरारे दग की घटा जव उनवै जिहि ओर।
वरसि सिरावै पुहुम-उर रूप-झलान-झकोर ॥२०१॥
कैसे मन धन लूटते भावंता के नैन।
मनमथ जौ देते नहीं इनकर वरछी सैन ॥२०२॥
मतवारे दग-गज कहूं ऐसे दीजत छोड़।
नेही-दग-तन क्यों सकै इनकी झोकैं ओड़ ॥२०३॥
मैन-महावत दग-गजन हुलसत वाही ओर।
लाखन मैं लखि लेत है हिय ही कौ चित-चोर ॥२०४॥
मन धन तौ राख्यौ हतौ मैं दीवे कौ तोहि।
नैन-कजाकन पै अरं क्यौं लुटवायो मोहि ॥२०५॥
प्रेम-नगर दग-जोगिया निस दिन फेरी देत।
दरस-भीख नँदलाल पै पल-झोरिन भरि लेत ॥२०६॥

दरस - दान तो पै चहै दृग पल - अँजुरी बोड़ ।
पूरन कर मन कामना इनै विमुख मत छोड़ ॥२०७॥
तव जानैं ससि ओर पै तोए लेव चलाय ।
दृग - चकोर तौ रावरी खासी रैयत आय ॥२०८॥
जौ नहिं देतौ अतन कहुँ दृगन हरवली आय ।
मन - मवास जे सुतिन के क्यों सर करतौ जाय ॥२०९॥
देतौ जौ नहिं भेद कहुँ नैनन सौं मिलि नैन ।
मीत उजागर आवतौ कैसे मन धन लैन ॥२१०॥
छूटे दृग गज - मीत के विच यह प्रेम - वजार ।
दीजौ नैन - दुकान के महुकम पलक - किवार ॥२११॥
जिहिं लालच मन-धन दियौ दृगन मीत तुहिं ल्याइ ।
काहे ते वह रूप - रस देत न इनकों प्याइ ॥२१२॥
मोहन - छवि - दरियाव मैं जाइ सकै नहिं पार ।
झझकि रहत है देखि कै पैरवार दृग - वार ॥२१३॥
प्रथम सुमिर तुव दृगन कौ जे प्रनाम करि लेत ।
मीता उनकौं जगत मैं जादा आदर देत ॥२१४॥
नातवान तन पै सुनो एती ताकत है न ।
मत झुकाव मों सामुहै गज - मतवारे नैन ॥२१५॥
मीत नीत की चाल ये चल जानत हू है न ।
छवि - सैना सजि धावहीं अवलन पै तुव नैन ॥२१६॥
ऐसो तौ कीन्हो हतो कछु गुनाह भी मैं न ।
मो तन पै झुम्झकावही गज - मतवारे नैन ॥२१७॥
जव तैं नागर मन वसौ आइ सु सैना-मैन ।
पहिराए करकै नसा चित - चोरी को नैन ॥२१८॥
सिसुताई के अमल मैं दवे रहत हैं नैन ।
मैन अमल के होत कछु लगे पयानौ दैन ॥२१९॥

मीत विदित ये बात ही नैन तुम्हारे आइ।
बरुनी कर जित देत हैं नेहन सीस चलाइ ॥२२०॥
डीठ-बरत पर नैन चढ़ि कैथक पलटा लेत।
देख तमासौ रीझि कै नेही मन-धन देत ॥२२१॥
जिहि मग दौरत निरदई तेरे नैन कजाक।
तेहि मग फिरत सनेहिया किये गरेवां चाक ॥२२२॥
आप बसावै बहुत सौं मन कौ कियै। बचाय।
है न लची दृग लालचिन दीन्हो मनहि लचाय ॥२२३॥
रसनिधि नैनन परि गई कछुक अनोखी वान।
पीवत ही छवि पल मधुर लगै लखेटी आन ॥२२४॥
रूप-ठगौरी डारि कै मोहन गौ चित चोरि।
अंजन मिस जनु नैन ये पियत हलाहल घोरि ॥२२५॥
गुरुजन-नैन-विजातियन परी कौन यह बान।
प्रीतम-मुख अवलोकतन होत जु आड़े आन ॥२२६॥
दृग-द्विज ये उठि प्रातही करि अँसुवनि असनान।
रूप-भूप पै जाचहीं छवि-मुकताहल-दान ॥२२७॥
अरुन तगा कै नैन जनु गरै जनेऊ डार।
रूप-दान मांगत रहैं ये पल करन पसार ॥२२८॥
त्रपत न मानत नैन ये लेत रूप-रस-दान।
रहत पसारै लोभिया निस बासर पल-पान ॥२२९॥
जब तैं वह सिर पढ़ि दियौ हेरन मैं हित बील।
पल घर मैं बैठत नहीं तब तैं दृग हुइ सील ॥२३०॥
दृग मृग-नैननि के कहूं फांद न पावै जान।
जुलफ-फँदा मुख-भूमि पर रोपै बधिक सुजान ॥२३१॥
मत चलाव मो सामुहै इनकौ तैं अरु मार।
नजर-कटारी बांकुरी पल-म्यानै धर यार ॥२३२॥

रीझत आपु नजार कै लखि छबि नंदकुमार।
मन कौ डारत वार जे नोखे दृग रिझवार ॥२३३॥
नेह-नगर मैं कहु तुहीं कौन बसे सुख चैन।
मन-धन लूटत सहज मैं लाल-बटपरा-नैन ॥२३४।
देखत नैन न देखती यह डर मोहन ओर।
आप लागि करिहैं करन मेरे मन पर जोर ॥२३५॥
सुरत-सहेली बाल-छबि नित सँवार कै ल्याइ।
दृग प्रीतम कौं देत है आछी भाँति मिलाइ ॥२३६॥
साधत इक छूटत सहस लगत अमित दृग गात।
अरजुन सम बानावली तेरे दृग करि जात ॥२३७॥
तेरे नैन मसालची रूप-मसाल दिखाइ।
नेही-तन तैं बिरह-तम दीनौ दूर भजाइ ॥२३८॥
मेरे जान सुजान तुव नैन-किलकिला आइ।
हृदय-सिंधु नैं मीन-मन तुरत सुधरि लै जाइ ॥२३९॥
सज्जन सांची बात यह यामैं नहीं विवाद।
बिना जीभ के लेत दृग मोहन-रूप-सवाद ॥२४०॥
जे अँखियां बैरा रहीं लगै बिरह की वाइ।
प्रीतम-पग-रज कौ तिन्हैं अंजन देहु लगाइ ॥२४१॥
हेरत मोहन-रूप कौं बृज-बाला न अघाइ।
चहूं ओर तैं दौर कै दृग-कोरन मिल जाइ ॥२४२॥
अंजन होइ न लसत तौ ढिग इन नैन बिसाल।
पहिराई जनु मदन गुर स्याम बंदनी माल ॥२४३॥
विदित न सनमुख ह्वै सकैं अँखियां बड़ी लजोर।
बरुनी सिरकिन-ओट ह्वै हेरत मोहन ओर ॥२४४॥
अवगाहे इन रूप-निधि जब तैं नैन-मलाह।
तब तैं मन-नृप चलत है इनही बूझि सलाह ॥२४५।

जामै ये छवि पावतीं छवि पावंता भात।
रसनिधि अँखियां ता हियैं नित अवलोकि सिहात ॥२४६॥

दृग - दुस्सासन लाल के ज्यौं ज्यौं खैंचत जात।
त्यौं त्यौं द्रौपदि - चीर लौं मन - पट वाढ़त जात ॥२४७॥

बाहक दृग नँदलाल के ऐंड़न ऐंठी घाल।
आड़ि छुटावति मन - हयन तुरत चलावत चाल ॥२४८॥

दृग दरजी वरुनी सुई रेसम डोरे लाल।
सगजी ज्यौं मो मन सियौ तुव दामन सौं लाल ॥२४९॥

भावंता लखि लगत पल जानत कौ केहि हेत।
पल - ओटन सौं नैन ये रूप - स्वाद कौं लेत ॥२५०॥

जब जब निकसत भावतौ रसनिधि इहि मग आइ।
नेह अतर लै डीठ कर लोचन देत लगाइ ॥२५१॥

बँहकाए तैं और के ये ही तैं जनि वैकु।
देखन दै मुखचंद कौ नैन - चकोरन नैकु ॥२५२॥

थिरकत सहज सुभाव सौं चलत चपल गत सैन।
मनरंजन रिझवार के खंजन तेरे नैन ॥२५३॥

नींद निरादर देत है नेही - दृग इहि आस।
कबहुँक देखौं उदित है भावंता दृग पास ॥२५४॥

सिसक्यौ जल किन लेत दृग भर पलकन मैं आल।
बिचलत खैंचत लाज कौं मचलत लखि नँदलाल ॥२५५॥

दृगनि दृगन सौं मिल कियौ भेद प्रथम ही जाइ।
मैं न दियौ मन उन लियौ मुहिसल मैन लगाइ ॥२५६॥

बिधिवत छबि के फंद सौं नेही मन अभिराम।
खंजन - दृग लखि मीत कौ करत वधिक के काम ॥२५७॥

तुव दृग सतरँज - बाज सौं मेरौ बस न बसात।
पादशाह मन कौं करै छबि सह दैकर मात ॥२५८॥

दैन लगत है पास जब बिरह-अहेरी आइ।
प्रीतम-रूप-मवास बिच बचत नैन-मृग जाइ ॥२५९॥
अंजन आंदू सौं भरे जद्यपि तुव गज नैन।
तदपि चलावत रहत हैं झुकि झुकि चोटैं सैन ॥२६०॥
खैंचे अंकुस-लाज के रूप-पलक कर है न।
धीरज-द्रुम तोरत फिरैं गज कोमल तुव नैन ॥२६१॥
रस रेसम मैं जो दई गांठ अनख झकझोर।
ते तुव दृग नख माहिं सौं सहजहिं डारत छोर ॥२६२॥
डीठ लगत उर ईठ तन इकटक सकत न हेर।
तऊ लेत दृग लालची चोरी चोरा हेर ॥२६३॥
बास्यौ सुमन-सुबास तैं जब तैं पीतम आइ।
तब तैं इन अलि दृगन पर पास न छोड़ौ जाइ ॥२६४॥
ठगिया तेरे नैन- ये छल बल भरे कितेब।
कतरत पल मकराज सौं नेही मन की जेब ॥२६५॥
जुरत दृगन सौं दृगन की पल वागैं मुर जाइँ।
पैने नेजा नजर के सौंहै उर उर जाइ ॥२६६॥
इनमैं है दरसात है हर मूरत की लोइ।
यातैं लोइन कहत हैं इन सौं मिल सब कोइ ॥२६७॥
नैन-बान जिहि उरछि दै ससकत लेत उसास।
मीत सु उनकी है दवा मिलै न वैदन पास ॥२६८॥
उत अलगरजी चाहि इत लगी हियै सर सान।
दृग अनुरागिन कौ परी कठिन दुहूँ विधि आन ॥२६९॥
बिरह वांह कह सकत नहिं होय गए अति छीन।
नैन झिलमिली जानि कै पल वल वारे दीन ॥२७०॥
वदन-कूप तैं रूप-रस दृग बिन गुन भर लेत।
और कूप बिन गुन पथिक प्यासे फेरी देत ॥२७१॥

लघु मिलनो बिछुरन घनो ता विच वैरिन लाज।
दृग अनुरागी भावते कहु कह करैं इलाज ॥२७२॥
भूले लोभी नैन सौं छवि-रस आए चाख।
दृग-तारे दै कै इन्हैं नजरबंद कर राख ॥२७३॥
ताजी ताजी गतनि ये तव तैं सीखैं लैन।
गाहक मन राजी करैं वाजी तेरे नैन ॥२७४॥
दृग-नकीब ठाढ़े रहत पल-पैरन यह हेत।
मन-मजलिस मैं मीत जहँ और झकन ना देत ॥२७५॥
रूप-इमारत मैं इन्हैं जौ तू दए लगाइ।
दरस-मजूरी दै लला नैन-मजूरन आइ ॥२७६॥
प्रथमहि नैन-मलाह जे लेत सुनेह लगाइ।
तव मझयावत जाय कै गहिर रूप दरियाइ ॥२७७॥
मन मैं आन न आनही अलवेले तुव नैन।
ता मैं भयौ हिमायती आइ सो इनकौ मैन ॥२७८॥
मीत विरह की पीर कौ सकै न पल दृग कांध।
रूप-कपूर लगाइ कै प्रीत-पटी सौं वांध ॥२७९॥
गैना नैना लाल के हित मैं जानत नाह।
नहे नेह की वहल मैं घुरला जानत नाह ॥२८०॥
वनै जहां के तहँ रहै लगै होइ उर पार।
विधि तो हीं कौं रचि दियौ ऐसे दृग हथयार ॥२८१॥
प्रथमहि दारू खाइ कै पीछै गोली खाहि।
तेरे नैन वँदूक ये चोटहिँ चूकत नाहिँ ॥२८२॥
गुरुजन-डर सौं चतुरई वरुनी झिलमैं डार।
निधरक प्रीतम-वदन तन अँखियां रहीं निहार ॥२८३॥
रसनिधि मोहन रूप तौ जिहि मैं तिहिँ सरसाइ।
तिनकौ राखौ नेहियन नैन मांझ ठहराइ ॥२८४॥

टौना अँखि वस-करन कौ करे हते इन जाइ।
अब उलटे रैना परयौ गरे दृगन के आइ ॥२८५॥
मन सुबरन घरिया हियौ लाल सुहाग मिलाइ।
दृग सुनार हित आंच दै कुंदन कियौ तपाइ ॥२८६॥
रूप लोभ वस मिल गए नैन पहरुवा जाइ।
तब लौं तौ चित चोर नै मन धन लियो चुराइ ॥२८७॥
नैन सनेहन के मनौं हलवी सीसा आइ।
गुपत प्रगट तिन मैं सदा मीत-सुमुख दरसाइ ॥२८८॥
जालिम नैनन के जुलम कहियै काके पास।
पल पल खैंचत रहत हैं पल सँड़सिन सौं मास ॥२८९॥
मोहन-मुख लखि आपुही ये सरसावत हेत।
चाह बावरी मांझ दृग मन कौं गोता देत ॥२९०॥
एक नजरिया कै लखै जो कोइ होइ निहाल।
तौ यामैं तुव गांठ कौ कहा जात है लाल ॥२९१॥
तनिक किरकिरी कैं परै पल पल मैं अहटाइ।
क्यौं सोवै सुख नींद दृग मीत बसै जब आइ ॥२९२॥
नैना मोहन रूप सौं मन कौं देत मिलाइ।
प्रीत लगै मन की विथा सकैं न ये फिर पाइ ॥२९३॥
धरे हते मुहरा घनै मैले हियौ विसात।
मो मन साहिय कौ करौ तैं दै दृग सह मात ॥२९४॥
वरुनी-वंधनवार रचि पल-मंडप द्विज मैन।
छवि-धन सौं चित चाय सौं भरत भावरे नैन ॥२९५॥
मेरेई दृग मीत कर जौ मन भावै वैंच।
तौ याके इनसाफ कौ काहि बुलाऊं खैंच ॥२९६॥
दृग माली ये डीठ कर निरखि रूप की वेल।
लेत सु चुन छवि की कली पल झोरिन सौं झेल ॥२९७॥

तीन पैंड़ जाके लखौ त्रिभुवन मैं न समाइ।
धन राधे राखत तिन्हैं तूं दृग आधिन माइ॥२९८॥
मेरे नैननि ह्वै लखौ लाल आपनौ रूप।
भावत ह्वैगौ भावतौ कैसी भांति अनूप॥२९९॥
मन गरुवौ कुच गिरिन पै सहजै पहुँच सकै न।
याही तै लै डीठ के पैरे बांधत नैन।३००॥
मन-धन तो पै भावते जे वारैई देत।
दृग चोरन वन कै हियौ क्यौं वारैई देत॥३०१॥
नेहिन उर आवत लखौ जबहीं धीरज सैन।
सैफी-हेरन मैं पटे कैफी तेरे नैन॥३०२॥
पीवत नहीं अघात छिन नाहीं कहत वनै न।
पलवो कै बांधै रहैं छवि-रस-प्यासे नैन॥३०३॥
सुहृद-जगत मैं दृगन से रसनिधि दूजे नाहिँ।
वड़े दृगन लखि आप तौ तन मन हियौ सिहाहिँ॥३०४॥
नैन-अनी जव जव जुरै रूप वनी मैं आइ।
तव तव आड़ी बीच मैं लाज परत है आइ॥३०५॥
पल जौरन कै दृग पला जव तैं सिखए मैन।
तव तैं नेही चित छला लगे लला कौ दैन॥३०६॥
भरत सांस लै हर घरी रूप दरस की आस।
तृषित दृगन की मिटत कहुँ आंसू-घूटन प्यास॥३०७॥
तृषित दृगन की तृपति जौ ध्यान धरैं तैं होइ।
ओसन वुझती प्यास जौ नीर न पीतौ कोइ॥३०८॥
नैन कमल ह्यां लगत हैं कमल लगत हैं वाइ।
कमल-नाल सज्जन हियौ दोनौं येक सुभाइ॥३०९॥
जादूगर तुव दृगन यह यौं कर लियौ सुतंत्र।
तव तैं वाहि न फुरत है तंत्र न जंत्र न मंत्र॥३१०॥

बिना तमाखू सूरती छबि बीरा न मिठाइ।
परौ अनौखौ अमल यह गरै दृगन के आइ ॥३११॥
अपनै से दृग लागनै जो तूं लखतौ और।
तौ तेरोऊ चित लला नैक न रहतो ठौर ॥३१२॥
मैं दीनौ उननै लियौ मन-धन देखत ऐन।
बूझे मुकरे जात हैं अब काहे तुव नैन ॥३१३॥
बैपारी दृग मीत के तिनही बाले देत।
बधी बांध कै बाट की बिन जोखे मन लेत ॥३१४॥
कछू सुलोच न नखन मैं लाल सुलोचन आइ।
चित-चेरौ जातै सुचित बहुर न सकियतु पाइ ॥३१५॥
तिल चुन लालच लाग कै दृग खंजन चल जाइ।
जुलफ फँदा तैं जौं बचै दृग फंदन परिजाइ ॥३१६॥
रिस रस दधि सक्कर जहां मधु मधुरी मुसक्यान।
घृत सनेह छबि पय करै दृग पंचामृत पान ॥३१७॥
गढ़ि गढ़ि जो छबि के छला पल मैं करै तयार।
ये नैने पहिराइहै तुव दृग मीत सुनार ॥३१८॥
नैन लगर घूंघट खुलहि पवन खोल जब लेत।
नेही मन किरवान कन झपट सतूना देत ॥३१९॥
दीन्हौ नेहन कौ असी मद असनेहन प्याइ।
हियौ समुद्र मनमथ मथौ तामैं तैं दृग ल्याइ ॥३२०॥
फोरत बानै ढाल कै तनिक लगायै मैन।
अचरज कहि भेदै जु मन मैन भरे सर नैन ॥३२१॥
झरी करेजै नैन तुव सरसि करेजे वार।
अजहूं सुरझत नाहिँ ते सुर-हित करत पुकार ॥३२२॥
सोहत हैं यह भांति जे भावंता के नैन।
तारे मधुकर कमल दल बैठे जनु रस लैन ॥३२३॥

प्रगटत अंजन लीक छवि अहि - सावक्क मति जान।
अलक भुअंगम देख जनु सकुच रहे जस मान ॥३२४॥
क्यौ न रसीले होहिँ दृग जे पोषे हित लाल।
खाटे आम मिठात हैं भुस मैं दीनै पाल ॥३२५॥
पल अंजुल जोरै कहै दो 'हा' सौं विच सैन।
मन-मोहन सौं रुचिर छवि रुचि सौं मांगत नैन ॥३२६॥
दरसति जब बाढ़ो हती सो तुम दृगन न दीन।
अरुनिन फिरयादी जहै बसन भगौहैं कीन ॥३२७॥
तेरी यह अदभुत कथा कही जाइ नहिं वैन।
चित - चीतन कौ तैं कियै अरी सेर मृग - नैन ॥३२८॥
तुव दृग नागर सुघर जे वाहि न लेते मोल।
को लै सकतो लाल मन रसनिधि अधिक अमोल ॥३२९॥
जान जान कीनै जु तैं नेहन ऊपर वार।
भरे जु नैन कटाछ के खंजर पंजर फार ॥३३०॥
यातैं पल - पलना लगत हेरत आनँदकंद।
पियत मधुर छवि दृगन के जात ओठ हैं बंद ॥३३१॥
यह छोटे वित नैन ये करत बड़े से काम।
तिल तारन बिच लै धरे मोहन मूरति स्याम ॥३३२॥
बरजि राख बटपार ये अरी आपनै नैन।
मन मथिवे को मनमथहिं देत चवाई सैन ॥३३३॥
पीवत पीवत रूप - रस बढ़त रहै हित प्यास।
दई दई नेही दृगन कछू अनौखी प्यास ॥३३४॥
बात चलत जाकी करै अधुराई नेहीन।
है कछु अदभुत मद भरी तेरे दृगन प्रवीन ॥३३५॥
पुरजा पुरजा करत है प्रथम करेजा थान।
फिर बरनी सूजन सियै दरजी नैन सुजान ॥३३६॥

हेरत जित ये सहज ही तुव दृग सुभट अमोर।
मुर मुर जाती नैन की सैना जुरी करोर ॥३३७॥
हरे सुछबि तृन चरत ये मन मृग रूप कछार।
सिंह रूप तुव दृग लखै गिरत सु खाइ पछार ॥३३८॥
छबि बन मैं दौरन लगे जब तैं तुव दृग मेव।
तब तैं कढ़ै सनेहिया मन छन लैकै छेव ॥३३९॥
मनहूं की गति करत हैं ये पल पल मैं पंग।
करत खुरी पल मैं अमित तेरे नैन तुरंग ॥३४०॥
रुकत न खंजन नैन ये जतन कीजियत कोर।
प्रीतम मन तन चलत है पल पिंजरन कौं तोर ॥३४१॥
भौंह कुटिल बरुनी कुटिल नैना कुटिल दिखात।
वेधन कौं नेही हियौ क्यौं सूधे ह्वै जात ॥३४२॥
नैन-बान जिहि उर छिदै कसकत लेत न सांस।
भीतहि उनकी है दवा मिलै न वैदन पास ॥३४३॥
जौ कछु उपजत आइ उर सो वे आंखैं देत।
रसनिधि आंखैं नाम इन पायौ अरथ समेत। ३४४॥
नैन किलकिला मीत के ऐसे कछू प्रवीन।
हिय समुद्र तैं लेत हैं बीन तुरत मन-मीन ॥३४५॥
उपजत जीवन-मूर जहँ मीत-दृगन मैं आइ।
तिनके हेरै तुरत ही अतन सतन ह्वै जाइ ॥३४६॥
प्रेम-नगर मैं दृग-बया नोखे प्रगटे आइ।
दो मन कौं कर एक मन भाव दियौ ठहराइ ॥३४७॥
अदभुत रचना विधि रची यामैं नहीं विवाद।
विना जीभ के लेत दृग रूप सलौनो स्वाद ॥३४८॥
रूप-सरोवर माहिँ तुव फूले नैन-सरोज।
ता हित अलि नेही तहां आवत दौरे रोज ॥३४९।

या ब्रज मैं हौं बसतही हेली आइ सुतंत्र।
हेरन मैं कछु पढ़ि दियौ मोहन मोहन-मंत्र ॥३५०॥
चतुर चितेरे तुव सबी लिखत न हिय ठहराइ।
कलम छुवत कर आंगुरी कटी कटाछन जाइ ॥३५१॥
नैक नजरिया के लखै जौ कोउ होइ निहाल।
तौ यामैं तुव गाँठ कौं कहा जात है लाल ॥३५२॥
यह उर दृग नहिं लख सकै सूधे मोहन ओर।
बदन कमल मैं गड़हिगी बरुनी अनी कठोर ॥३५३॥
करि उपाय बहुतौ थके काढ़े कढ़ते नाहिं।
रूप-बदन के जे पला हेरत ही चुभि जाहिं ॥३५४॥
उपमा भौंहन जो दई लहै न एते साज।
टेढ़ी पैनी स्याम अति जैसे नाखन बाज ॥३५५॥
मेरे मन के वध दये जब तैं इन्हैं लगाइ।
फिरै न भौंह कमान तूं अर बरछी ठहराइ ॥३५६॥
श्रवत रहत मन कौं सदा मोहन-गुन अभिराम।
तातैं पायौ रसिकनिधि श्रवन सुहायौ नाम ॥३५७॥
नेही मन कटि जात लखि प्रीतम कटि अभिराम।
करि करि ऐसो काट यह पायौ है कटि नाम ॥३५८॥
मन गयंद छबि मद छके तोर जँजीरन जात।
हित के झीनै तार सौं सहजैहीं बँधि जात ॥३५९॥
जोरति है मन जतनि कै बहुतक धीरज घेर।
बिथुर जात है तुरत ही मीत सैन कौं हेर ॥३६०॥
जो कहियै तौ सांच कर को मानै यह बात।
मन के पग छाले परे पिय पै आवत जात ॥३६१॥
मन मैला मन निरमला मन दाता मन सूम।
मन ज्ञानी अज्ञान मन मनहि मचाई धूम ॥३६२॥

मन-गज मद-मौकल भयौ रहत न अपनै हाथ।
लग्यौ रहत पर मोह कौ पीलवान चित साथ ॥३६३॥

उड़ौ फिरत जो तूल सम जहां तहां वेकाम।
ऐसे हरुये कौ धरयौ कहा जान मन नाम ॥३६४॥

को अवराधे जोग तुव रहु रे मधुकर मौन।
पीतांवर के छोर तैं छोर सकै मन कौन ॥३६५॥

तुव छवि सौंहनि सौं अरे जो मन लागत आइ।
हित अनहित दुहु बीच ही पल पल छीजत जाइ ॥३६६॥

छबि-धन दै नँदलाल ये किये अयाची आइ।
पल-कर तब तैं और पै दृग न पसारत जाइ ॥३६७॥

निरख छबीले लाल कौ मन न रहौ मो हाथ।
बँधौ गयौ ता बसि भयौ छवी-दान के साथ ॥३६८॥

मट की मटकी सीस धर चल कछु वकि मुसक्याइ।
लखि वह घट की सुध गई छवि अटकी दृग आइ ॥३६९॥

वनवारी वारी गई वनवारी पै आज।
मन-वारी हर लै गयौ वा मोहन व्रजराज ॥३७०॥

वैर मथन सुनियत रहै जहां तहां व्रज-भौन।
मोहन-छवि-छकि ना गरी सोच नागरी कौन ॥३७१॥

वाढ़ो सुंदरता अधिक हरिहर अंग अनेक।
कितै कितै हेरै अरी दीठ विचारी एक ॥३७२॥

करत जतन वल वहुत सौं नैकहु निकस सकै न।
छवि-चहले मैं जा फँसे विरह-दूवरे नैन ॥३७३॥

रूप-नगर मैं वसत हैं नगर-सेठ तुव नैन।
मन-जामिन लै नेहियन लगे पुँजी-छवि दैन ॥३७४॥

रसनिधि प्रेम तबीव यह दियौ इलाज वताइ।
छवि अजवाइन लख दृगन विरह गिरानी जाइ ॥३७५॥

प्रीतम मरजी कै भए जदि जु मरजिया आइ।
छबि-मुकता इनहीं लहे रूप-समुद मैं जाइ ॥३७६॥
दृग रिझवारन हिय रहै यहै परेखा एक।
वारन कौ मन एक इत उत है अदा अनेक ॥३७७॥
कोटि भानु दुति दिपत है मोहन छिगुरी छोर।
यातै वरनी ओट ह्वै दृग हेरत वह ओर ॥३७८॥
नैनन की अरु करन की तारी तारी दोइ।
मीत पूछ यह बात तूं जिहि निरधारी होइ ॥३७९॥
यह विचार छवि रस इन्हैं बार बार तूं प्याइ।
प्यास औरु तैं सौगुनी लगत वाइलन आइ ॥३८०॥
इही मनौ ठहराइये अली हमारे जान।
जान न दीजै कान्ह कौं जान दीजिये जान ॥३८१॥
रसनिधि जब कबहूं बहै वह पुरवइया बाइ।
लगी पुरातन चोट जो तब उभरति है आइ ॥३८२॥
नैन चकोरन ह्वै लखौ जब ससि मुख कौं आइ।
तब याकी चित-चाह कछु तुमकौं जानी जाइ ॥३८३॥
भेजौ सुमन सनेह मैं कछुक पथिक कै साथ।
वाह लगायौ कै नहीं गात आपनै हाथ ॥३८४॥
दिवस वितावत ब्रज वधू सुरत ध्यान मैं पूर।
वदन-चंद लखि विरह-तम निस कौ करती दूर ॥३८५॥
सब दरदन कौ ज्यौं दवा जग मैं विधि कर दीन।
वेदरदी महबूब की काहे खोइ न दीन ॥३८६॥
उडी गुडी लौं मन फिरै डोर लाल के हाथ।
नैन तमासे कौ रहै लगे निरंतर साथ ॥३८७॥
निस वासर घनस्याम पै चहै स्वाति छवि बूँद।
दृग-चातिक लखि आन रस रहै चौंच पल मूँद ॥३८८॥

नगर बसै न गरै लगै सुनियैं नागर नार।
पगरै रगरै सुमन लै डारै बगर बहार ॥३८९॥

भोर होत पीरी लगी यातै ससि मुख जोत।
सरसन दरद चकोर की आइ हियै सुधि होत ॥३९०॥

लगन लाग दुहु एक सम इन मैं अंतर एह।
वह आसा लीनै रहै यह आसा तज देह ॥३९१॥

जसुमति या ब्रज मैं कहौ अब निबाह क्यों होइ।
तब दधि चोरी होत ही अब चित चोरी होइ ॥३९२॥

किसलै-दल के बान जे घाले अंबुज ईठ।
अजौं फिरत है अलि लखौ दरद लगायै पीठ ॥३९३॥

ससि चकोर दृग आरसी लखि अपनो मुख आइ।
अनदेखै देखै यहै लगियौ दृगनि सुहाइ ॥३९४॥

प्रीतम कहि यह बात कौं जानो जात न हेत।
मो दृग तारन कौन विधि बदन चंद भर देत ॥३९५॥

दृग सेवक नृप रूप मैं ऐसौ सुनियत हेत।
ये मन हीरा देत हैं वे छवि हीरा देत ॥३९६॥

लागै सकत सनेह जहँ जानत वहै सरीर।
सुन्यौ न लोहे लहत कहुँ घायल दिल की पीर ॥३९७॥

सुध न रही देखतु रहै कल न लखै बिन तोहि।
देखैं अनदेखै तुहै कठिन दुहूं बिधि मोहि ॥३९८॥

नींद दुहुन के दृगन मैं सकै न पल ठहराइ।
जो चोरी कौ फिरत है जिहि चित चोरो जाइ ॥३९९॥

हित मन कौ पहिचानि जौं ससि लखतौ वह ओर।
चुनते चोंच अँगार लै काहै काज चकोर ॥४००॥

उदौ करत जब प्रेम-रवि पूरब दिसि तैं आइ।
कहूं नेम तम जात है देखौ जात बिलाइ ॥४०१॥

बाँधे जे मन चित्त तैं सरस प्रेम की डोर।
अनख नखन सौं भावते उन्हैं सकै को छोर ॥४०२॥
चसमन चसमा प्रेम कौ पहिले लेहु लगाइ।
सुंदर मुख वह मीत कौं तव अवलोकौ आइ ॥४०३॥
रिझवारे नँदलाल पै मन मेरो न अघाइ।
घर लौं आवत बार कै फिर चल वारन जाइ ॥४०४॥
राखे हैं हिय-सेज मैं चुन कै सुमन विछाइ।
अरे गुमानी पलक तौ इहाँ पाँव धर आइ ॥४०५॥
अद्भुत गत यह प्रेम की वैनन कही न जाइ।
दरस भूख लागै दृगन भूखहि देत भगाइ ॥४०६॥
अकथ कथा यह प्रेम की कहीं जाइ नहिं वैन।
रूप-सिंधु भर लेत है पल-प्यालिन मैं नैन ॥४०७॥
प्रेम-पियाला पी छके तेई हैं हुसियार।
जे माया मद सौं भरे ते बूड़े मँझधार ॥४०८॥
हरि विछुरत वीती जु हिय सो कछु कहत वनै न।
अकथ कथा यह प्रेम की जिय जानै कै नैन ॥४०९॥
उरझत दृग बँधि जात मन कहौ कौन यह रीति।
प्रेम-नगर मैं आइ कै देखी वड़ो अनीति ॥४१०॥
भरि आए हौं सुमन ए फूल हियै सरसान।
हरिआए हैं बन सघन हरि आए बन जान ॥४११॥
प्रेम नगर की रीत कछु वैनन कहत वनै न।
रुजू रहत चितचोर सौं नेहिन के मन नैन ॥४१२॥
प्रेम नगर के कान दै सुनौ चरित ये चार।
जोई चित वित कौ हरै करै वहै हिय हार ॥४१३॥
न्यारौ पैड़ौ प्रेम कौ सहसा धरौ न पाव।
सिर के पैड़ै भावते चलौ जाय तौ जाव ॥४१४॥

नैम न ढूंढ़े पाइयै जेहि थल बाढ़ै प्रेम।
रहत आइ हरि दरस के प्रेम आसरै नेम ॥४१५॥
या रस कौ रसना श्रवन कहन सुनन के नाहिँ।
सैना सैनी बैन कौ नैना समझ सिहाहिँ ॥४१६॥
मन मैं बस कर भावते कहौ कवन यह हेत।
प्रगट दृगन कौं आइ कै क्यौं न दिखाई देत ॥४१७॥
केसी कंस सको नहीं जासौं जोर चलाइ।
तापर अबला सहज ही मुरली लेत छिनाइ ॥४१८॥
हिय दरपन कौं देख जब पारो प्रीत लगाइ।
तब वा महँ नँदलाल कौ सुंदर मुख दरसाइ ॥४१९।
उर अकास जहँ आइकै हित ससि कियौ उदोत।
प्रीत जुन्हैया कौं तहाँ कहु दुराव कहँ होत ॥४२०॥
डोठ डोर नैना दही छिरक रूप रस तोइ।
मथ मो घट प्रीतम लियौ मन नवनीत बिलोइ ॥४२१॥
रसनिधि यह नैनन लखौ नवल प्रीत के रंग।
रूप रोसनी दीप मुख नेह लग्यो मो अंग ॥४२२॥
तौ तुम मेरे पलन तैं पलक न होते ओट।
व्यापी होती जो तुमैं ओट भए की चोट ॥४२३॥
जा काहू कौ देत प्रभु तैं लगाइ कै हेत।
फिर तिहि पलकन ओट पल कहु काहे कर देत ॥४२४॥
वह पीतांबर की पवन जब तक लगै न आइ।
सुमन कली अनुराग की तब तक क्यों बिगसाइ ॥४२५॥
सांचो है यह भावते भय बिन प्रीत न होइ।
विदित प्रीत भय ते लखौ तन दुति पीरी होइ ॥४२६॥
अदभुत गत यह प्रेम की लखौ सनेही आइ।
जुरै कहूं टूटै कहूं कहूं गांठ परि जाय ॥४२७।

प्रीत तार अरु तार मैं राग जोत ठहराइ।
तै छूटैं करतार तौ फिर कुतार ह्वै जाइ ॥४२८॥
हिय-सीसा मध हित-अतर जिनौं राखिए बंद।
खसबोइ बाढ़ौ तितौ रसनिधि रहै सुछंद ॥४२९॥
और चोट बच जात है कछुक पाइकै ओट।
पलक ओट प्रीतम भए लागत दूनी चोट ॥४३०॥
सेरई अनुराग मैं कछू उक खोट दिखाइ।
जाँह मन पट लाल कौं हो न रँगौ जाइ ॥४३१॥
नेहिन के मन कांच से अधिक झलकनै आइ।
दृग - ठोकर के लगत ही टूक टूक ह्वै जाइ ॥४३२॥
सपनैं हू आए न जे छिन गलियन झकियाइ।
तिन सौं छिन को दरद कहि मत दै मरम गमाइ ॥४३३॥
नेह लगे से ये बदन चिकनैं सरस दिखाइ।
नेह लगाये भावतौ क्यों रूखो होइ जाइ ॥४३४॥
सरस सुमन सौं बास कै तिल समान सौं पेर।
कीन्हौ नेह तयार जहँ मीत रुखाई हेर ॥४३५॥
असनेही जानै कहा नेही मन अनुराग।
कहूँ हंसन की चाल कौं चल जानत है काग ॥४३६॥
तिल नावें है भावतें नेह त्याग फिर जात।
पेरें हू छोड़ें नहीं नेही नेही गात ॥४३७॥
तेर लट पट नैन ये कछू न जानैं जात।
जाही तन मैं तूं बसत तेही पेरे जात ॥४३८॥
जारन दीप पतंग कौं या आसा सौं आइ।
संत सनेही जान कै यानैं जोत मिलाइ ॥४३९॥
जैसे दुवि अच्छर मिलैं नाम कहावत नेह।
जुगल किसोरी परसपर यह विधि सुनौ सनेह ॥४४०॥

हेरत नैक न सामुहै मुख मोरै री जात।
चित चोरैई जात हित जोरैई चित जात ॥४४१॥
और लतन सों हित-लता अद्भुत गति सरसाइ।
सुमन लगै पहिलै इहै पाछे कै हरियाइ ॥४४२॥
हित बतियन की रसिकनिधि लखि अदभुत गति एह।
प्रीतम मुख पर जोत है मेरे हिय मैं नेह ॥४४३॥
स्वच्छ सुतिय तन भूमि लहि जहँ पानिय सरसाइ।
मन माली दीन्हो तहां हित की लता लगाइ ॥४४४॥
या झीनै हित तार मैं बल एतो अधिकाइ।
अखिल लोक को ईश जो जासौ बाँधौ जाइ ॥४४५॥
नेही लोहा नूर लखि कटत कटाछन माह।
असनेही हित खेत तजि भागत लोहे जाइ ॥४४६॥
नेहिन के मन भावते विरह आँच सौं ताइ।
कुंदन सों कर लेत है रूप-कसौटी लाइ ॥४४७॥
नेह अतर की चिकनई जेहि द्दग परसी जाइ।
झलकत जलकन की रहै बिच नहि पलकन आइ ॥४४८॥
या घट के सौ टूक कर दीजै नदो बहाइ।
नेह भरे हूँ पै जिन्हैं दौर रुखाई जाइ ॥४४९॥
रूखे रूखे जे रहत नेह बास नहिँ लेइँ।
उन तैं वै मखियां भली नेह परसि जिय देइँ ॥४५०।
हित राजी मैं राखवी चित राजी की बात।
इतराजी कर कहुँ सुनै प्रीतम नेह निभात ॥४५१॥
यामैं कछु धोखौ नहीं नेही सूर समान।
दोऊ सनमुख सहत हैं द्दग अनियारे बान ॥४५२॥
प्रीतम ही तैं नेह कौ हीन न दीजै छीन।
नेह घटै ही लगत है दीपक-जोति मलीन ॥४५३॥

मृदु विहँसन मुसक्यान मैं कर नेही दृग बंद।
काहे कौ खोलत अरे तैं ये जुलफन फंद ॥४५४॥
विधि हूं ते जे अधिक हैं नेह सु मेरे जान।
मीत दरस कौं देत कर नैनमई तन प्रान ॥४५५॥
मन माली हिय भूमि मैं बोवै हित कौ बाग।
मोहन आन निहारियै लागै फल अनुराग ॥४५६॥
बिन दामन सौं दाम लै सुनी न अब तक बात।
बिन दामन हित हाट मैं नेही सहज बिकात ॥४५७॥
उतै रुखाई है घनी थोरो मुझ पै नेह।
जाही अंग लगाइयै सोई सोखै लेह ॥४५८॥
बार बार ब्रज बाल कौं यह बिध हियौ डराइ।
नेह लगै मोहन दसा मत हम सी होइ जाइ ॥४५९॥
रूप चिराक चिराक की गत एकैई जान।
दुऔ नेह सौं करत हैं प्रगट रोसनी आन ॥४६०॥
सुंदर पलकन पै लसैं ए निस तारे आइ।
रसनिधि नेही दिलन के ए दृग तारे आइ ॥४६१॥
व्यंग बचन तैं कढ़त है जौ कोई धुन आइ।
ताहि समझ नेही हियौ बार बार अकुलाइ ॥४६२॥
माँगत बिधि सौं ब्रज-बधू प्रनपत कर बड़ एह।
हम सौं मोहन नेह कै हम सौं करै न नेह ॥४६३॥
धनि दृग तारन के जु तिल जिन मैं स्याम सनेह।
बिना नेह के तिल किते परे रहत हैं देह ॥४६४॥
चित इक हित बहु सजन यह कर देखो हिय गौर।
धरी जात कछु कौन विध एक वस्तु छै ठौर ॥४६५॥
हित लालहिं लै हिय डबा जे तै धरौ दुराइ।
होत जोत वाकी प्रगट तऊ दृगन मैं जाइ ॥४६६॥

स्रवन सुनौ है यह नयौ नेह नगर मैं भाव।
देत न तहँ मन भावतौ मन के साटैं पाव ॥४६७॥
नेह-नगर मैं रीत यह लखौ अनोखी वाहु।
रसनिधि चित के चोर हू विदित कहावत साहु ॥४६८॥
मन विकिगौ हित हाट मैं नंदनँदन के पान।
ऐसौ समयौ जुरत है परम भाग तैं आन ॥४६९॥
चित वित नेहिन के जहां निवहन पावत नाहिँ।
असनेही निरभै फिरै मन नग लादे जाहिँ ॥४७०॥
हरुवै हरुवै धरन पै धरियै प्रीतम पाइ।
सुमन सनेहिन के विछे मत कहुँ विछलै जाइ ॥४७१॥
दरद दवा दोनौं रहै प्रीतम पास तयार।
नेहिन कौ निरवाहवौ वाही के अखत्यार ॥४७२॥
दरदहि दै जानत लला सुध लै जानत नाहिँ।
कहो विचारे नेहिया तुव घाले कित जाहिँ ॥४७३॥
अद्भुत वात सनेह की सुनौ सनेही आइ।
जाकी सुध आवै हियै सवई सुध वुध जाइ ॥४७४॥
कहनावत यह मैं सुनी पोपत तन कौं नेह।
नेह लगायैं अव लगी सूखन सिगरी देह ॥४७५॥
और जवाहिर की प्रभा जहां धरौं तहँ होत।
हित मानिक की जगत मैं सरस प्रकासित जोत ॥४७६॥
रूखी राखहि कहत सव मोह अचंभौ एह।
पटहू के वर लाग वहु खैंच नेह कौं लेह ॥४७७॥
वोलन चितवन चलन मैं सहज जनाई देत।
छिपत चतुरई कर कहूं अरे हिए कौं हेत ॥४७८॥
वांध अरे हित यार कौं पहिलै मुहकम आउ।
तव गहिरौ ह्वैकै इहां नेह नीर ठहराइ ॥४७९॥

सीता तूं चाहत कियौ रुखी वतियन जोत।
नेह बिना ही रागनी हर्यो गुनी न होत॥४८०॥
नेहिन पै मन भावने मति तैं रूखो होइ।
राख रुखाई देयगी नेह चिकनई खोइ॥४८१॥
तूं इन सौं निज ब्याज की कथा चलावत आइ।
नेहिन तैं मन-धन दियौ तुहि निरब्याजौ ल्याइ॥४८२॥
नेह सलक बन सौं भयै हित सौं भीनौ तार।
मन गयंद तासौं बँधौ झूमत प्रीतम द्वार॥४८३॥
आप बसातें सलना नेह न दीजे जान।
नेही तिल नेहैं तजे खरि ह्वै जात निदान॥४८४॥
रूप सिंधु मथि स्याम हग मोहन बनक बनाइ।
दीनौ नेहिन बिरह बिष छवि मद असुरन प्याइ॥४८५॥
तुम गिरि लै नख पै धर्यौ इन तुमकौं हग कोर।
हा मैं तै तुमही कहौ अधिक कियौ केहि जोर॥४८६॥
तनि सुख तैं चहियत हतौ हर बिध बिधहि मनाइ।
भली भई जो सखि भयौ मोहन मथुरैं जाइ॥४८७॥
वारक तुम गिर कर धरौ गिरधर पायौ नाम।
सदा रहैं तुम्ह उर धरै इनकौं अबला नाम॥४८८॥
पोर-पोर-तन आपनौं अनत बिधायौ जाइ।
तब मुरली नँदलाल पै भई सुहागिन आइ॥४८९॥
नेरे घर बिधि कौ दयौ दयौ न काऊ खात।
गोरस हित घर घर लला काहे फिरत ललात॥४९०॥
घट बढ़ इनमें कौन है तुहीं साम रे ऐन।
तुम गिरि लै नख पै धर्यौ इन गिरिधर लै नैन॥४९१॥
जान अजान न होत है जगत बिदित यह बात।
वेर हमारी जान कै क्यौं अजान होइ जात॥४९२॥

नँदलाल सँग लग गए बुध विचार वर ज्ञान।
अब उपदेसनि जोग ब्रज आयौ कौन सयान ॥४९३॥
यह अब कौन कला निधी कहौ कलानिधि आप।
होइ सुधाकर करत हौ बिरहिनि तन संताप ॥४९४॥
इनसौं घट भर लीजिए या मैं नहीं बिवाद।
जान सकै रस कूप कौ रसना कहा सवाद ॥४९५॥
कै राखौ कर मैं छला कै मन कौ ब्रजनाथ।
एक हाथ मैं ए दोऊ कैसे रहिहैं साथ ॥४९६॥
जो चकोर सम आवतौ लखि तुहि सरसिज माल।
होतौ विदित चकोर तिय ससि तेरौई हाल ॥४९७॥
बचो रहौ चित-चोट तैं मेरे मोहनलाल।
चोट लगै हुइ जाइगौ मेरौई सौ हाल ॥४९८॥
अँधियारी निस कौ जनम कारे कान्ह गुवाल।
चित-चोरी जो करत हौ कहा अचंभौ लाल ॥४९९॥
सुध लै जानत हौ कछू कै भौंहैंई तान।
यही बूझ पै आप तुम वड़े कहावत जान ॥५००॥
जिन मोहन ने सहज मैं नख पर धरौ पहार।
भारी कैसे कै लगै तिनहि बिरह कौ भार ॥५०१॥
गिरधर लियौ छिपाइ कै तन तिनका की ओट।
और कहा कछु फलन की अली वांधियत मोट ॥५०२॥
होत सनेही कौ तहाँ कहु कैसे निरवाह।
चित वित हर दृग रावरे जहाँ कहावत साह ॥५०३॥
तीन पैर जाके लखौ त्रिभुवन मैं न समाहिँ।
धन राखे राखत तिन्हैं लोइन कोइन माहिँ ॥५०४॥
इंद्र गरब हर सहज मैं गिर नख पर धर लीन।
इह उतना वितना भरा कहु कितना वल कीन ॥५०५॥

गोपी जो तुहिँ प्रेम करि करती नहीं सनाथ।
को कहतौ तुहिँ नंद-सुत जग मैं गोपीनाथ॥५०६॥
जदपि भयौ है ससि अरे मन ही तै उतपन्न।
तऊ चकोरन मन विथर नीकौ जानत धन्न॥५०७॥
यह विधनै तोही दई अजव करामत हाथ।
रवि तरवन राखै रहै तैं निज मुख ससि साथ॥५०८॥
रसनिधि कारे कान्ह ए रहे मधुपुरी छाय।
विष उगलत ऊधौ फिरै अचरज लखि यह आय॥५०९॥
रसनिधि मोहन नाम कौ अरथ न लिय निरधार।
प्रथम समझ तब कीज तौ वासौं प्रीत विचार॥५१०॥
हियै नगर वा लगत है लगत न गरुवै आइ।
येते पर सबही कहैं तोह नगरुवा आइ॥५११॥
जब ही जड़ हुइ जात है मिलत बात लग सीत।
तब हिय पावन लगत है विरह आंच सो मीत॥५१२॥
बड़ी विरह की रैन यह क्यौं हूं कै न विहाइ।
मीत सुमुख दरसाइ कै इहां सुदिन कर आइ॥५१३॥
कहो नैक समुझाइ मुहिँ सुरजन प्रीतम आप।
बस मन मैं मन कौ हरौ क्यौं न विरह संताप॥५१४॥
गोवरधन नख धर लियौ गोपी ग्वाल बलाइ।
अब गिरधर यह विरह सिर क्यौं न उठावत आइ॥५१५॥
मोहिँ जिवायौ चहत जौ तौ यह फेर कहाइ।
सखी कहानी कान्ह की कानन सुनी सिहाइ॥५१६॥
जौ न मिलेंगे स्याम-घन वाहि तुरतही आइ।
विरह-अगिन सौं राधिका दैहै व्रजहि जराइ॥५१७॥
छिन भर बिन प्रीतम लखै नैना भर भहरात।
धीरज-पारद कहुँ सुनौ विरह-आंच ठहरात॥५१८॥

विरह - अग्नि सुन सुन लगै जब जब उर मैं आन।
तब तब नैन बुझावहीं बरस सरस अँसुवान ॥५१९॥

आपुन तौ ह्वै भावते सोहत हौ सुख - सेज।
मो तन त्रासत रहत हौ विरह - पियादौ भेज ॥५२०॥

प्रीतम अपनी बाह ज्यों निपट निकट दरसाइ।
पै टिहुनी पर्वत भई मुहि तक सकै न आइ ॥५२१॥

यह बूझन को नैन ये लग लग कानन जात।
काहू के मुख तुम सुनी पिय आवन की बात ॥५२२॥

आसिक्र बिछुरन दरद कौ सकतौ नहीं अँगेज।
जोऽव दिलासा की दवा मीत न देतौ भेज ॥५२३॥

सुध आवै जब मीत की घन जिमि बरसत नैन।
थकित रहै वांही पथिक खोइ सबै सुख चैन ॥५२४॥

ग्रीपम बासर विरह के लगे जनावन जोर।
आइ इतै बरसाइये रस घन स्याम किसोर ॥५२५॥

राखत अँसुवन जल भरे पलकन आठौ जाम।
तलफत जदपि सुमीन दृग बिना लखै घनस्याम ॥५२६॥

मन धन हतौ बिसात जो सो तोहि दियौ बताइ।
बाकी वाके विरह की प्रीतम भरी न जाइ ॥५२७॥

गुन खोवत द्यौं आपनौ रे तबीब बेकाज।
नैन जहमतिन कौं लगै मोहन रूप इलाज ॥५२८॥

बिन दरसन सरसन लगौ विरह तरनि तन जोर।
आइ स्याम घन बरसिए मेह - नेह यह ओर ॥५२९॥

विरह - सिंधु अवगाहि मन लग्यौ करार करार।
प्रीतम अजौ उबार लै कर गहि बांह पसार ॥५३०॥

ग्रासत चित्त - गयंद कौं विरह - ग्राह जब आइ।
हरि प्यारे मन कमल लै नेही देत छुड़ाइ ॥५३१॥

जब लग कांचे घट पक्के विरह अग्नि मैं नाहिँ।
नेह नीर उनमैं अरे भरे कौन विधि जाहिँ ॥५३२॥
घट जाती संजोग मैं तब न कियौ मैं वैर।
भावंता बिन निस अरी क्यौं वढ़ि करती वैर ॥५३३॥
दरस-मूर देतौ नहीं जौ लौं मोल चुकाइ।
विरह-ब्याज वाकौ अरे निवहू बाढ़त जाइ ॥५३४॥
यहि डर सौ हौं डरपि कै सकौं न नेह लगाइ।
मत वह परसै तन बढ़ै विरह-अनल भहराइ ॥५३५॥
रही न तन की सुध वहै कहव बुलाए आइ।
यह औसर है वाहि अब मोल आइवौ धाइ ॥५३६॥
वेग आइकै मीत अब कर हिसाब यह साफ।
मेहर नजर कै विरह की बाकी कर दै माफ ॥५३७॥
जौ कहुँ प्रीति बिसाहनी करतौ मन नहिँ जाइ।
काहे कौ कर मांगतौ विरह जगाती आइ ॥५३८॥
कंचन से तन मैं इहां भरौ सुहाग बनाइ।
विरह आंच वापै कहौ सही कौन विधि जाइ ॥५३९।
कियौ समुद मुनि पान जो सो भरतौ क्यौं ऐन।
करते जो न सहाइ जा पानी कर तुव नैन ॥५४०॥
अरे कलानिधि निरदई कहा नयो यह आइ।
पोखत अमृत कनन जग विरहिन देत जराइ ॥५४१॥
पोर पोर पेरत तनहिँ विरहा दै दै ताइ।
दृग प्यासन कौं रूप रस प्यारे प्या रे आइ ॥५४२॥
का गद कागद मैं अरे सहै विरह की बात।
मस मिस लिखत निअंक ते हियै पार होइ जात ॥५४३॥
तीछन बान जो विरह कौ तान दियौ तन माहँ।
सज्जन-चुंबक उर बसै तातैं निकसत नाहँ ॥५४४॥

रहे जु कान्ह सुहाग सँग जे सुवरन से गात।
विरह-घाम की आंच सौं ते कैसे ठहरात ॥५४५॥
मिलिकर तब सुख देत है मोहन प्यारे ईस।
बिछुर चलावन अब लगे विरह-आरकस सीस ॥५४६॥
हित आचारज दृग सुवन नेह सुघट भर लेत।
विरह-अगिन मैं मैन-द्विज मन की आहुति देत ॥५४७॥
रसनिधि पल भर होत ही भावंता पल-ओट।
नहीं सम्हारी जात है यह अनचाही चोट ॥५४८॥
बात बात मो दरद की पहुँचावैं तुव कान।
यहि आसा घट मैं रहै ये अनुरागी प्रान ॥५४९॥
जे अँखियां बैराइहीं लगै विरह की बाइ।
प्रीतम-पग-रज कौ तिन्हैं आंजन देहु लगाइ ॥५५०॥
निकसत नाहीं जतन कर रही करेजे साल।
चुंवक मीत मिले विना बिरह साल की भाल ॥५५१॥
रे निरमोही मनहरन आरे आरे आइ।
भारे आरे विरह के मत मो सीस चलाइ ॥५५२॥
कहियौ पथिक सँदेस यह मन मोहन सौं टेर।
विरह-विथा जो तुम हरी हरी भई व्रज फेर ॥५५३॥
पल अँजुरिन सौं पियत दृग जल अँसुवा भर सास।
गनत रहत हैं अवधि के दिन पखवारे मास ॥५५४॥
पलक पानि कुस वसनिका जल अँसुवा दुज मैन।
पियहि चलत सुख नीद कौं करत संकलप नैन ॥५५५॥
जिहि माम्हन पिय गमन कौ सगुन दियौ ठहराइ।
सजनी ताहि बुलाइ दै प्रान-दान लै जाइ ॥५५६॥
अरी नींद आवै चहै जिहि दृग वसत सुजान।
देखी सुनी धरी कहूं द्वै असि एक मयान ॥५५७॥

मन के संग जु नैन चलि देख आवते तोहिँ।
तौ काहे कौ विरह यह नित दुख देतौ मोहिँ ॥५५८॥
छटै इसक के दरद कौ मरम न सकिहै पाइ।
जा तवीत्र घर आपनै मत तू भरम गमाइ ॥५५९।
एक दिना मैं एक पल सकै न पल भर देख।
विरह पीर कौ भावतौ कैसे होइ विसेख ॥५६०॥
विरह झार तन भसम भौ अवधि पात भए जोग।
इहै जान पठयौ इहां हमै जोग लिख जोग ॥५६१॥
अब लौं यह तन राखियै अवध आस कौं जोर।
अब जीवौ दुरलभ भयौ गरजत घन चहुँ ओर ॥५६२॥
सुन पयान घनस्याम कौ जोग अराध्यौ वाल।
नैन मेखला मैं मनौ गूंथत डोरे लाल ॥५६३॥
सासन चाहत सांस अब अवधि आस गइ वीत।
कै आइस कै आइवौ जौ राखत पत प्रीत ॥५६४॥
जा दिन तै पिय गमन किय विरह पौर प्रतिहार।
नींद भूख रोक्यौ हरष कियौ आप अधिकार ॥५६५॥
जीवै लैवा जोत कौ दोऊ देहु मिलाइ।
ऊधौ जोग वियोग मैं अंतर कह ठहराइ ॥५६६॥
आपहि यह इनसाफ कौ कीजे प्रान अधार।
विरह भार सहि सकत कहुँ हित के झीने तार ॥५६७॥
अग्नि होत री नैन ये मीत दरस कै हेत।
विरह अग्नि हिय कुंड मैं निस दिन आहुति देत ॥५६८॥
विरह तपन तन अति वढ़ी वरसु स्यामघन आइ।
सीतलता सरसै हियै दरद गरद दवि जाइ ॥५६९॥
दैन लगे मन मृगहिँ जब विरहि अहेरी पास।
जाइ लेत है दौर जब प्रीतम सुवन मवास ॥५७०॥

विरह समुद बाढ़ौ अरे यह गरुआ तक आइ।
इह बिरियां ऐसे समै तूं गरुआ लग जाइ ॥५७१॥
रसनिधि बिन प्रीतम लखै क्यों ए लहते चैन।
ध्यान जखीरा जो जमा कर नहिँ धरते नैन ॥५७२॥
विरह बैर आसा गढ़ी छिके प्रान रन सूर।
भर राखै दृग ध्यान जल रूप जखीरा पूर ॥५७३॥
हरि बिछुरत रहते नहीं बिरहिन के तन प्रान।
अमृत रूप लहते नहीं जौ मनमोहन ध्यान ॥५७४॥
कर गहि ध्यान मलाह तूं करतौ जौ न सहाइ।
नेहिन बिरह समुद्र तैं कौन काढ़तौ आइ ॥५७५॥
जदपि सुगहिरी लाज तैं ठहर सकै नहिँ पाइ।
ध्यान निवारै बैठ कै भावंता इत आइ ॥५७६॥
मन हरिबे की ज्यौं पढ़े पाटी स्याम सुजान।
तौ यहऊ पढ़ते कहूं दीवौ दरसन-दान ॥५७७॥
दरसन कौ चलतौ कहूं जो सुमरन सौं काज।
दृग चकोर होते नहीं ससि मुख के मुहताज ॥५७८॥
कसर न मुझमें कुछ रही असर न अब तक तोहि।
आइ भावते दीजिए वेग सुदरसन मोहि ॥५७९॥
कियौ मीत ने है उदौ सवही जागै आइ।
विरह अँधेरी रैन जहँ उदौ उदौ होइ जाइ ॥५८०॥
नेही यामैं पलत है अरे मीत अभिराम।
दरस देत तुव गिरह के खर्च होत कछु दाम ॥५८१॥
मीता मोतैं लेत क्यौं निज मुखचंद छिपाइ।
ऊंच नीच घर चंद तौ उवत एक सौ आइ ॥५८२॥
जिते नखत विधि दृग तिते जो रच देतौ मोहि।
तृपित न होते वे तऊ निरख भावते तोहि ॥५८३॥

रसनिधि पल भर होत ही भावंता पल ओट।
नहीं सम्हारी जात है यह अनचाही चोट ॥५८४॥
हिय घरिया तामैं सुमन विरह आंच सौं ताइ।
सुवरन कीनौ मीत नै वूटी दरस मिलाइ ॥५८५॥
होती वैदन के करै विरह विथा जौ दूर।
काहे कौ दृग ढूंढ़ते दरस सजीवन-मूरि ॥५८६॥
विन देखे तुम भावते कछु वै भावत नाहिं।
जन्म अलेखै आइकै लेखै आवत नाहिं ॥५८७॥
नेही दृग जोगी भए वरुनी जटा वनाइ।
अरे मीत तैं दै इन्हैं दरसन भिच्छा आइ ॥५८८॥
दरसन भिच्छा के लियै फेरी दै दै जाइ।
जोगी तैं का घट भयौ नैन वियोगी आइ ॥५८९॥
दै अनुरागी दृगन कौं दरस सजीवन-मूर।
उलफत कीजै विरह की कुलफत कीजै दूर ॥५९०॥
भीजे तन अँसुवन लखौ रवि-द्युति मुख अभिराम।
रसनिधि भीजे वसन कौ दियौ चाहियत घाम ॥५९१॥
पायै विहित अहार कौं सवकौ मन भरि जाइ।
मन भर देखौ मीत कौ पल भर मन न अघाइ ॥५९२॥
यामैं अपनी गांठ कौ कह कछु छोरै देत।
दरसन लव मांगत दृगन क्यों मुख मोरै लेत ॥५९३॥
जो पल तकिया छोड़ दृग सकै न तुव तक आइ।
दरस भीख उनकौं कहा दीजत नहिँ पहुँचाइ ॥५९४॥
विरहा ग्रीषम दुपहरी प्यास दुहुन अधिकाति।
मन वन मैं लखि लखि जियै नैन लवा इह भांति ॥५९५॥
मोहन लखि जो वढ़त सुख सो कछु कहत वनै न।
नैनन कै रसना नहीं रसना कै नहिं नैन ॥५९६॥

गजगत मैं घर प्रथम ही फिर तन कतरी जाइ।
तब यह पहुँचत मीत लौं खोजन वदन छिदाइ ॥५९७॥

कमला लै कै कमल कर लखि गुरुजन की भीर।
धर-हरि धर-जिय ए भ्रमर मिलहि तरुनजा-तीर ॥५९८॥

जुदे रहन मन मिलन की सीख दृगन के अंग।
सोवत जागत संग ही जित चाहौ तित संग ॥५९९॥

प्रगट मिले बिन भांवते कैसे नैन अघात।
भूखे अफरत कहुँ सुनै सुरत मिठाई खात ॥६००॥

रही कहां चक आइ चित चल पिय सादर देख।
लोहा कंचन होत तहँ पारस परस विसेख ॥६०१॥

मान मनायो माननी मति तैं धरै गुमान।
जाते पाइन परन कौ उनै परे सुख जान ॥६०२॥

व्यापी होती जो तुमैं मिल विछुरे की पीर।
मिलि कै पलक न विछुरते जैसे पय अरु नीर ॥६०३॥

सिखे आपनै दृगन सैं इकताई की बात।
जुरी डीठ इक सग रहै जदपि जुदे दिखात ॥६०४॥

मैं जानी रसनिधि सही मिली दुहुनि की बात।
जित दृग तित चित जात है जित चित तित दृग जात ॥६०५॥

बड़ी मीत तुव मिलन कौ चित राजी कौ चाव।
इतराजी मत कर अरे इत राजी ह्वै आव ॥६०६॥

जल-कन तिल-कन पलक मैं कहु आली केहि हेत।
भावंता लखि विरह कौ नैन तिलांजुलि देत ॥६०७॥

नहिं राती है प्रीति सैं है अरात पै रात।
प्रीतम के संयोग मैं क्यों ऽब नहीं वड़ जात ॥६०८॥

लगत कमल-दल नैन-जल झपट लपट हिय आइ।
विरह-लपट अकुलाइ जब भाज हिए तैं जाइ ॥६०९॥

अमरैया कूकत फिरै कोइल सबै जताइ।
अमल भयौ ऋतुराज कौ रुजू होहु सब आइ ॥६१०॥
मैं घन ये बनए लखै नए नए चित चाइ।
तऊ न ये मानत नए लाल न ए पगि आइ ॥६११॥
अरी मधुर अधरान तैं कटुक बचन मत बोल।
तनक खुटाई तैं घटै लखि सुबरन को मोल ॥६१२॥
अरी जात है ब्रजहि जौ मोहन मुख मत जोइ।
फिर न छिपायै छिपहिगी इसक मुसक की बोइ ॥६१३॥
मान कही मेरौ अरी भूल उतै मत जाइ।
ऐहैं लखि ब्रजचंद कौं मन नग नैन गँवाइ ॥६१४॥
हित मित बिन मन धन दिए क्योंकर सकियै पाइ।
बिन गथ सौदा हाट तैं ल्यायौ कौन बिसाइ ॥६१५॥
भूलै हूं मत दरद कहु बेदरदिन के पास।
पीनसवारौ कब लहै सरस अतर की बास ॥६१६॥
याही तैं यह आदरैं जगत माहि सब कोइ।
बोलै जबै बुलाइयै अनबोले चुप होइ ॥६१७॥
मोहन तूं या बात कौ अपनै हियै बिचार।
बजत तमूरा कहुँ सुनै गांठ गठीले तार ॥६१८॥
छबि मुकता लूटन लगे आइ जरा बटपार।
बैठ बिसूरै सहर के बासी कर कट तार ॥६१९॥
जग तरवर तैं फल लगै जौ लग कांचौ गात।
पाके तै फल आप ही डारनि तैं छुटि जात ॥६२०॥
बिन औसर न सुहाइ तन चंदन ल्यावै गार।
औसर की नीकी लगै मीता सौ सौ गार ॥६२१॥
हुक्का सौं कहु कौन पै जात निबाहौ साथ।
जाकी स्वासा रहत है लगी स्वास के साथ ॥६२२॥

चल आयौ जैहै चलौ जगत विदित व्यौहार।
गाहि लियै जोवन-कनहि रहित ठहर इक प्यार ॥६२३॥
वार वार नहिँ होत है औसर मौसर वार।
सो सिर दीवे कौ अरे जौ फिर हूजे त्यार ॥६२४॥
वित चोरन चितचोर मैं व्योरौ इतनौ आइ।
इन्हैं पाइकै मारियै उनके लगियै पाय ॥६२५॥
समै पाइकै लगत है नीचहु करन गुमान।
पाय अमर-पख दुजनि लौं काग चहै सनमान ॥६२६॥
झूठे ही जर जात है याके साखी पांच।
देखी कै काहू सुनी लगत साँच कौ आँच ॥६२७॥
जिन नैनन मैं वसत है रसनिधि मोहनलाल।
तिन मैं क्यौं घालत अरी तैं भर मूठ गुलाल ॥६२८॥
नेह अतर छवि अरगजा भर गुलाल अनुराग।
खेलत भरी उछाह सौं पिय सँग होरी फाग ॥६२९॥
मुख मीड़त आंजत दृगन प्रेम मुदित व्रजवाल।
कहत सबै नँदलाल सौं हो हो होरी लाल ॥६३०॥
रे कुचोल तन तेलिया अपनौ मुख तो हेर।
सुमननि वासे तिलन कौ काहे डारत पेर ॥६३१॥
अरे वजावत कौन ढिग हित रवाव के तार।
जुरौ जात है आइकै बिरहिन कौ दरवार ॥६३२॥
जिहिँ कनैल के फूल की लेत न वास सुहाइ।
माली सुमन गुलाब के उन पै मत लै जाइ ॥६३३॥
करवी मैं जौ ऊख सम रस सरसातौ आइ।
साजन देते याह क्यौं सहसा पसुन खवाइ ॥६३४॥
जदपि सु कोल्हू मैं उनैं विदित सु पेरौ भाइ।
वासे तिलवा सुमनि सँग वास न ताकी जाइ ॥६३५॥

तन मन तोपै वारिवै यह पतंग कौ नाम।
एते हूं पै जारिवौ दीप तिहारोहि काम ॥६३६॥

चेतन होइ न एक सुर कैसे वनै वनाइ।
जड़ मृदंग वेसुर भए मुँहै थपेरै खाइ ॥६३७॥

कूकत अवध लवा लियै अरे वधिक वेकाज।
फिर आवत काहू सुनै चाक चढ़े चित वाज ॥६३८॥

अलगरजी घन सौं नहीं सुनियै संत सुजान।
अरजी चात्रिक दीन की गरजी सुनै न कान ॥६३९॥

और कहा देखत नहीं तुव ससि मुख की ओर।
चोर लियै तैं सवन मैं काहे चित्त चकोर ॥६४०॥

कहा भयौ जौ सिर धर्यौ कान्ह तुम्हैं करि भाव।
मोरपँखा विन और तुम उहां न पैहौ नाव ॥६४१॥

रवि ससि अवनि सघन पवन और अगिन की ज्वाल।
ऊंच नीच घर सम लखै दुविधा तज कै लाल ॥६४२॥

होत दूवरौ कूवरौ ससि तैं हर पखवार।
तोही सौं हित राखहीं दृग चकोर रिझवार ॥६४३॥

हरी करत है पुहुमि सब घन तूं रस वरसाइ।
आक जवासे कौं अरै काहे देत जराइ ॥६४४॥

तोय मोल मैं देत हौ छीरहि सरस वढ़ाइ।
आंच न लागन देत वह आप पहिल जर जाइ ॥६४५॥

लखि वड़वार सुजातिया अनख धरै मन नाहिँ।
वड़े नैन लखि अपुन पै नैना सही सिहाहिँ ॥६४६॥

अरे निरदई मालिया फूले सुमननि तोर।
नैक कसक कर हेरतौ प्रीत डार की ओर ॥६४७॥

दुइ मन तौल मिलाइ कै पुन इकठे कर ढेर।
यै गौहूं अरु वाजरै वड़े भाव मैं फेर ॥६४८॥

प्यास सहत पी सकत नहिं औघट घाटनि पान।
गज की गरुवाई परी गज ही के गर आन ॥६४९॥
औघट घाट पखेरुवा पीवत निरमल नीर।
गज गरुवाई तैं फिरै प्यासे सागर तीर ॥६५०॥
अँधियारी निस बिच नदी तामैं भँवर अपार।
पार जवैया दरद कब लहै रहै या वार ॥६५१॥
हरी हरी रँग देखि कै भूलत है मन हैफ।
नीम-पतौवन मैं मिलै कहूं भाग कौ कैफ ॥६५२।
धरि सोनै कै पींजरा राखौ अमृत पिवाइ।
विष कौ कीरा रहत है विष ही मैं सुख पाइ ॥६५३॥
कोलत काठ कठोर क्यौं होत कमल मैं बंद।
आई मो मन-भँवर कौं इतनी बात पसंद ॥६५४॥
धरे जदपि बहु मोल के घरन जवाहिर खूब।
आनँद के औसर तऊ सीस बांधियत दूब ॥६५५॥
चित चाहन जिहि मुख लहौ स्वाद नागरी पान।
ढाक पात भावत सुनौ तिनकौं कहा सजान ॥६५६॥
सबही कौ पोषत रहै अमृत-कला सरसाइ।
ससि चकोर के दरद कौं अजौ सकत नहिं पाइ ॥६५७॥
चार जाम दिन के जिन्हैं कलप समान बिहात।
चंद चकोरन दरस अब दैन लगौ अधरात ॥६५८॥
समय पाइ कै रूप धन मिलत सबैई आइ।
बिलस न जानै याह जो समय गए पछताइ ॥६५९॥
बैठत इक पग ध्यान धरि मीनन कौं दुख देत।
बक मुख कारे हो गए रसनिधि याही हेत ॥६६०॥
जब देखौ चहियै तुहैं तब तू नहीं दिखात।
लीलकंठ यातैं दसैं फिर है कीरा म्यात ॥६६१॥

याके बल वह लेत है पावक चिनगी खाइ।
चंदहि जौ जारन लगौ तौ चकोर कित जाइ ॥६६२॥
अमित अथाहै हौ भरे जदपि समुद अभिराम।
कौन काम के जौ न तुम आए प्यासन काम ॥६६३॥
सरस मधुप गुंजत रहै लेत सुमन की वास।
कुम्हल्यानै फिरता नहीं अली रली ता पास ॥६६४॥
रती रती के बढ़त हीं मन वढ़ि जात अतौल।
घटै भाव के मन यहै लहै न कौड़ो मोल ॥६६५॥
ससि चकोर के दरद कौ जब तुहिँ असर न होइ।
कुहू निसा षोड़स कला तब तैं बैठत खोइ ॥६६६॥
अरे निरदई मालिया कहुँ जताय यह बात।
केहि हित सुमनन तोरि तैं छेदत सौजन गात ॥६६७॥
गुल गुलाब अरु कमल कौ रस लीन्हौं इक ताक।
अब जीवन चाहत मधुप देख अकेलौ आक ॥६६८॥
काग आपनी चतुरई तब तक लेहु चलाइ।
जब लग सिर पर दैइ नहिँ लगर सतूना आइ ॥६६९॥
जा गुलाब के फूल कौं सदा न रँग ठहराइ।
मधुकर मत पच तूं अरे वासौं नेह लगाइ ॥६७०॥
सब रंगन मैं नीर तुम मिलकै रँग सरसात।
मीत प्रेम रँग सै कहौ क्यौं न्यारे ह्वै जात ॥६७१॥
उयै सोख जल लेत है बिना उयै दुख देत।
कठिन दुहूं बिधि कमल कौ करै मीत सौं हेत ॥६७२॥
जानत सही चकोर कर ससि सौ प्रेम सलूक।
अमृत सराबी के रसहि समुझहि कहा उलूक ॥६७३॥
मोलै मोला कहत हैं फलै अंबिया नाव।
और तरुन मैं नूत यह तेरौ धन्य सुभाव ॥६७४॥

ससि निरमोही ह्वै भले भोर भयै घर जाव।
दिनकर विरह चकोर कौं मेट न सकिहै दाव ॥६७५॥

तिन सौं चाहत दाद तैं मन पस कौन हिसाव।
छुरी चलावत हैं गरै जे बेकसक कसाव ॥६७६॥

मीत वधिक जे निरदई भूंजि करेजा खाइ।
जबह करत जे जियन की कव मन मैं कसकाइ ॥६७७॥

मीता कसक कसाव कौ कहि हिसाव कह कौन।
कसकै हियै कसाव जौ छुरी चलावै कौन ॥६७८॥

होते जो पै चलत कहुँ सदा चाम के दाम।
रहन न देते वेदरद काहू तन मैं चाम ॥६७९॥

वूझत आजजि हाल नहिँ यही हियै है सूल।
भई आज जिय आवते प्रभु दरगाह कवूल ॥६८०॥

चल न सकै निज ठौर तैं जे तन द्रुम अभिराम।
तहाँ आइ रस बरसिवौ लाजिम तुहि घनस्याम ॥६८१॥

तेरी है या साहिवी वार पार सव ठौर।
रसनिधि कौ निसतार लै तुही प्रभू कर गौर ॥६८२॥

रोम रोम जो अघ भर्‌यौ पतितन मैं सिरनाम।
रसनिधि वाहि निबाहिवौ प्रभु तेरोई काम ॥६८३॥

गंग प्रगट जिहि चरन तैं पावन जग कौ कीन।
तिहि चरनन कौ आसरौ आइ रसिकनिधि लीन ॥६८४॥

मधुसूदन यह विरह अरु अरि नित मांड़त रार।
करुनानिधि अव यह मसैं अपनौ विरद विचार ॥६८५॥

लखि औगुन तन आपनै भूल सवै सुधि जाइ।
अघम-उधारन-विरद तुव रसनिधि सुमिर सुहाइ ॥६८६॥

भगतन तौ तुम तारिहौ अधम कौन पै जाइ।
अधम-उधारन तुम विना उन्हैं ठौर कहुँ नांइ ॥६८७॥

गिनति न मेरे अघन की गिनती नहीं वढ़ाइ।
असरन-सरन कहाइ प्रभु मत मोहिँ सरन छुड़ाइ ॥६८८॥

हौं अति अघ-भारन भरौ अधमन कौ सिरदार।
अधम-उधारन नाम तुव सो मेरै आधार ॥६८९॥

मैं गीधौ लखि गीध गति गीधे गीधहि जान।
गीधे पतितहिँ तारिहौ तब बदिहौं प्रभु वान ॥६९०॥

जौ करुनामय हेरिहौ मो करनी की ओर।
मोसौं पतित न पाइहौ ढूंढ़िहूं छिति छोर ॥६९१॥

गह्यौ ग्राह गज जिहि समै पहुँचत लगी न वार।
और कौन ऐसे समै संकट काटनहार ॥६९२॥

तुम जगदीस दयाल प्रभु हौ सबही सुनु चेत।
दीनन भूलत हौ हिए दीनबंधु केहि हेत ॥६९३॥

अधम-उधारन विरद कौ तुम बांधौ सिर नेत।
रसनिधि अब या अधम की सुधि काहे नहिँ लेत ॥६९४॥

अधम-उधारन विरद तुव अधम-उधारन काज।
जो पै रसनिधि औगुनी तुमैं सौगुनी लाज ॥६९५॥

हौं दुरवल - तन प्रभु सुनौ उत भवसिंधु अपार।
तुमही राखत वार जो कौन लगावै पार ॥६९६॥

स्याही वारन तैं गई मन तैं भई न दूर।
समझ चतुर चित बात यह रहत विसूर विसूर ॥६९७॥

अधम - उधारन प्रभु कहौ करिहौ जौ न सम्हार।
ह्वैहै मोसौं पतित क्यौं या भवसागर पार ॥६९८॥

हेरत कहुँ जौ दीन तन वाहि आवती लाज।
प्रीतम तौ न कहावतौ दीन-बंधु ब्रजराज ॥६९९॥
जदपि अकरनी है करी मैं हर भांति मुरारि।
प्रभु करनी कर आपनी सब विध लेहु सुधारि ॥७००॥
कहै अलप मति कौन विध तेरे गुन विस्तार।
दीन-बंधु प्रभु दीन कौं लै हर विधि निस्तार ॥७०१॥

---

(५) राम-सतसई

श्रीस्यामा कों करत हैं रामसहाय प्रनाम।
जिन अहिपतिधर कों कियौ सरस निरंतर धाम॥ १॥
अरुन अयन संगीत तन वृंदावन हित जासु।
नगधर कमला सकत वर विपुंगवालन आसु॥ २॥
अवलि अली लै वृजगली रली करीजै आय।
ते राधा माधव हरैं वाधा रामसहाय॥ ३॥
झूमहिँ झुमके स्याम के अली भली छवि जोइ।
मनहु झकोरे खात हैं काम - हिँडोरे दोइ॥ ४॥
मृदु धुनि करि मुरली पगी लगी रहै हरिगात।
या मुरली की है अली बनी भली विधि बात॥ ५॥
धन जोवन चय चातुरी सुंदरता मृदु बोल।
मनमोहन-नेहै विना सब खेहै कै मोल॥ ६॥
कत मुकुरा लाज न धरो यह छवीहि पी पाय।
उर लखि अलिक अधर लखो प्रतिबिंबीहि मँगाय॥ ७॥
मन - मलिनाई परिहरैं सुनि मेरी सिख बानि।
पिय की जीवन - मूरि है तिय तेरी मुसक्यानि॥ ८॥
धीर धरो सोच न करो मोद भरो जदुराय।
सुहति सँदेसे सुनि रही अधरनि मैं मुसुक्याय॥ ९॥
छाय रही सखि विरह सों वे-आवो तन छाम।
पी आए लखि बरि उठी महतावो सी वाम॥ १०॥
त्रिवलि-निसेनी चढ़ि चल्यौ लेन सुधा मुसुक्यानि।
उचके कुच उचके अरी उचके चितहि विचानि॥ ११॥

लावति बीर पटीर घसि ज्यौं ज्यौं सीरे नीर।
त्यौं त्यौं ज्वाल जगै दई या मृदु बाल सरीर ॥ १२ ॥
तब अली न तोसों कही प्रीति की रीति भली न।
अब मलीन चित कित किए चितवति चकित मलीन ॥ १३ ॥
विषधर-स्वास सरिस लगै तन सीतल वन-वात।
अनलहु सों सरसै दगैं हिमकर-कर घन-गात ॥ १४ ॥
फूल बिसूलैं देहि री हौ हूलैं अलि अंध।
तन मन रंध फरैं पवन सीतल मंद सुगंध ॥ १५ ॥
विहसिन आई नीर कों बीर तरनिजा-तीर।
चीर गिरी तिहि हेरि री पहिराई बलबीर ॥ १६ ॥
प्रथमहि पारद मैं रही फिरि सौदामिनि माह।
तरलाई भामिनि-दगनि अब आई बृजनाह ॥ १७ ॥
बकुल निकुंज मिले हरि न हरिन भयौ सुख ऐन।
चकित चितौति खरी किए हरे हरिन से नैन ॥ १८ ॥
पहिरा री वे-चूनरी सुरँग चूनरी ल्याय।
पहिरे सारी झीसनी झारी देह दिखाय ॥ १९ ॥
अजब बनक औरै बनी मनमोहन की नारि।
बलि तिहि छनक निहारि लै घूंघट तनक उघारि ॥ २० ॥
जमुनातट नटनागरै निरखि रही ललचाइ।
बार बार भरि गागरै वारि ढारि मुसुक्याइ ॥ २१ ॥
घन घहराय घरी घरी जब झरिहैं झर नीर।
चहुँ दिसि चमकै चंचला कस बचिहै बलबीर ॥ २२ ॥
को कब लौं सिख देय जू सैन नारँगी बाल।
नवल कुचहि दलि जात है यह अनारपन लाल ॥ २३ ॥
रुचिराई चितवनि निकनि चलनि चातुरी चारु।
हिय चित की रुचि चुनि दई सुनि तोही करतारु ॥ २४ ॥

ललन कुसन की अरुनई जुरि अधरन मैं आइ।
कामिनि के तन की दमक दामिनि मैं दरसाइ॥ २५॥
बढ़ि बढ़ि मुख समता लिए चढ़ि आयौ निरसंक।
तातें रंक मयंक री पायौ अंक कलंक॥ २६॥
इंदुमुखी तो गुन लिखत अधर लग्यौ मसि बिंदु।
जौं गुनहीं छमिही लगै जौं गुनहीन न निंदु॥ २७॥
भादों गरू मरू गयौ आयौ सरद हरी न।
अब डर मार सुमार री जनम भयौ कानीन॥ २८॥
कोरि जतन करि करि थकी सुधिहि सकी न सँभारि।
छाक छयल छवि की छकी जकी रही यह नारि॥ २९॥
कत सौहें करि हेठ तकि तकि न जेठ की धूप।
यह सौहें चारी करै देह कँटारी रूप॥ ३०॥
बस की इन अँखियांनि कों नवनारी मग जात।
सिकै दस गारी दई सुनि रस की इक बात॥ ३१॥
ललन चलन सुनि महि गिरी मुख कफ री लखि वीर।
तरफराति है राति तें मनु सफरी बिन नीर॥ ३२॥
ऐसे बड़े बिहार सों भागनि बचि बचि जाय।
सोभा ही के भार सों बलि कटि लचि लचि जाय॥ ३३॥
तुमहिँ सुधामानी कहो बानी रस सरसात।
करि यारी हरि सों न करि करियारी सी बात॥ ३४॥
लखि रमनी कों अनमनी सोसघनी कों दीन।
गौनो रह्यौ बिदेस जौ तौ गौनो क्यों कीन॥ ३५॥
कमलावर करकमल लखि कमल गयौ कुँभिलाय।
कमलनि कमल भरे रही कमली लौं चकचाय॥ ३६॥
हो हरि गोरी खेलते होरी राखौ न धीर।
संगहिँ अँगियनि मैं धमे अलि बनबीर अबीर॥ ३७॥

त्रिन तनयाहि छुवन न दै निति अति दारुन सास।
पठवति मोहि अकेलिए दुपहर चुनन कपास ॥ ३८ ॥
लोललोचनी कंठ लखि संख समुद के सोत।
अरु उड़ि कानन कों गए केकी गोल कपोत ॥ ३९ ॥
निपट कसनि कटि-काछनी अंसनि लसनि सुवास।
मृदु विहँसनि हेरनि हरी अरी करी दृग वास ॥ ४० ॥
सजनी विसद जलद गरल नभ निरमल दुखफंद।
पावक सी रजनी लगै नावक सर कर चंद ॥ ४१ ॥
सिर धारी सारी हरी हरि गिरधारी होइ।
खरे धरे गिरिए कहीं परे धरे गिरि होइ ॥ ४२ ॥
चली कामिनी जामिनी भेटन नंदकिसोर।
झुके चकोर सुचांदनी जानि दामिनी मोर ॥ ४३ ॥
सदन निकट के ताल मैं बंसी बाजी लाल।
सुनत नवेली ह्वै परी तलबेली नटसाल ॥ ४४ ॥
मन उलहै दुलहै लखन चयन सकुच रहि जाय।
झाकि झरोखे कामिनी दामिनीव दुरि जाय ॥ ४५ ॥
सुवर वदन के अधर लद रदन सुछद छविछाज।
मदन कदन कर सदन ते मनु आयौ द्विजराज ॥ ४६ ॥
इक दरसावै आरसी इक सुरझावै बार।
वीचे चप नीचे किए चितवत नंदकुमार ॥ ४७ ॥
उँजियारी मैं जौ कढ़ै उँजियारी मिलि जाय।
अरु अँधियारी राति मैं जाय उँज्यारी छाय ॥ ४८ ॥
सटपटाति हारी भई कारी राति निहारि।
वन तन कों चलि वलि गई सिति पट घूंघट टारि ॥ ४९ ॥
तन मन वेधक हैं गनी रहहिँ तनी अति पैन।
नहिँ वरुनी वरुनी धनी बनी अनी सर मैन ॥ ५० ॥

मेरे दृग को दोस री लाइ लगावैं धाइ।
बिन जितए चितचोर के भरि आवैं अकुलाइ ॥ ५१ ॥
हिय तकि कन्त बिहँसन लगी अब धन तन दिन माहँ।
भई लरिकई तरुनई पूरब पर दल छाहँ ॥ ५२ ॥
जान कहौ तौ जाइए कुसल रहौ हे कंत।
हौं बाचिहौं हिमंत सों सुख साचिहौ बसंत ॥ ५३ ॥
पी उठिगे सुठि हठ-पगी किए अयान छमा न।
अब पछतान कहा लगी की यह मान अमान ॥ ५४ ॥
नासी दामिनि की प्रभा सहजहि हांसी माह।
वा नवला सी हेम की लवलासीहु न नाह ॥ ५५ ॥
घट ल्याई उटि पीत पट कसऽब दियौ ढरकाइ।
बिहँसि चली चढ़ि सास-रुप चंचल चपनि चलाइ ॥ ५६ ॥
बिधु बंधुर मुख भा बडो बारिज नैन प्रभाति।
भौंह तिरीछी छवि गड़ो रहति हिए दिन राति ॥ ५७ ॥
हौं दृग कर जोरे रहौं याते जानत घाल।
उहि नागरि जो भाल कों लाल कियौ हे लाल ॥ ५८ ॥
जऊ सौंह नख-खत भरे खरी ढिठाई खात।
तऊ सलोनी की रही भरी मिठाई बात ॥ ५९ ॥
भूलि रहे बलबीर घर बीर धरौं किमि धीर।
जमुना तीर करीर तर दुनत कुसुम सर तीर ॥ ६० ॥
चित चंचल जग कहत है मो मति सो ठहरै न।
या ठोढ़ी की गाड़ गढ़ि थिर ह्वै फिरि निकरै न ॥ ६१ ॥
ए जीगन न उड़ाहिँ री बिरह जरीहिँ जरायँ।
इत भारी मदनागि की चिनगारी रहिँ छायँ ॥ ६२ ॥
लखि लरजतहिँ मन हरि गयौ जग्यौ सुमन सर जोर।
मूरति सी निरखति खरी सूरति नंदकिसोर ॥ ६३ ॥

सजनी निपट अचेत है दगादगी समुझै न।
चित वित परकर देत है लगालगी करि नैन ॥ ६४ ॥
तू सतुराई में दुरे दूरो जाय न त्यागि।
पूस तुहिन की त्रास सों सूरो सेवत आगि ॥ ६५ ॥
निधरक छवि छाकैं छकैं चलहिं न अरु विचलैं न।
ए लोचन अति लालची वरजेहू मानैं न। ६६ ॥
छन विछुरन चित चैन नहिं चलन चहत नँदलाल।
अब लखवी री होति है याको कौन हवाल ॥ ६७ ॥
धवल अटारी लखि खरी नवल वधू हरि ढंग।
सादी सारी सवनमी लसत गुलाबो रंग ॥ ६८ ॥
या ठोढ़ी सरि कों जवै सफल भए बौराय।
तबहिं रसालनि कों गई कोइल दाग लगाय ॥ ६९ ॥
प्रीतम पौरि खरे रहे भरे सनेह निहारि।
हरषी दौरि परोसिनी विलखी नागरि नारि ॥ ७० ॥
लाल अचंचल चख खरे चितवत हैं चित लाइ।
वाल दृगंचल जल भरे अंचल दै मुसुक्याइ ॥ ७१ ॥
वीर वधू ही पापिनी वीर वधू हरि लेहिं।
और पीर कहां जापिनी पीर पपीहा देहिं ॥ ७२ ॥
अँखियनि की गति लखि अरी विषम जो लाइ लगाइ।
ज्यौं ज्यौं ताहि बुझावती त्यौं त्यौं अति सरसाइ। ७३ ॥
काके पा गहि भा भली पागहि दीनी लाल।
को निगुनी गुन लै दई यह निगुनी नव माल ॥ ७४ ॥
दई वाम-तन छाम मैं काम कियौ यह काम।
भई माघ की चांदनी यह निदाघ को घाम ॥ ७५ ॥
जे हरि मोहन रूप सो कीन्ह्यौ मार सुमार।
ते हरि तूं मोहे अरी जेहरि की झनकार ॥ ७६ ॥

झीनी सादी कंचुकी कुच रुचि दीसी आज।
जनु विधि सीसी सेत मैं केसरि पीसी राज ॥ ७७ ॥
मोसों क्यौं न कहै हहा मैन हनै सर पैन।
राजिवनैन बसे कहा नहिं आए रँग ऐन ॥ ७८ ॥
जमुनातट घट भरि चली अधरनि मैं मुसुकाय।
चितवनि सों यक सुधि लई दई कई ही घाय ॥ ७९ ॥
सखि कपोल उर लाल कै लखि हँसि बाल-लिलार।
दीनी वेंदी लाल लै बाल ससी आकार ॥ ८० ॥
अधर मधुरता लेन कों जात रह्यौ ललचाइ।
हा लोटन मैं मन गिरयो उरजन चोट न खाइ ॥ ८१ ॥
नैननि मढ़ि चित चढ़ि रही वह स्यामा वह साँझ।
झलकी दै ओझल भई झाँकि झरोखे मांझ ॥ ८२ ॥
अरी होन दै अब हँसी लहरि भरी हीं जोइ।
हीं वा कारे की डसी तीतो मीठो होइ ॥ ८३ ॥
पी आवन की को कहै सावन मास अँदेस।
पाती हू आती न ती अरु पाती न सँदेस ॥ ८४ ॥
चित चिहुँटै मग पाय गो डहडहाय तन वार।
मन खुसिहाली लहलहे लखि साली घनहार ॥ ८५ ॥
भोरहि उठि आए ललन कल न परी निसि सैन।
मेरे अनुरागनि रँगे तरुन अरुन ये नैन ॥ ८६ ॥
सेज चमेली की रचै वासे वास सुवास।
धन तन गन भूषन भरै मन मैं भरी हुलास ॥ ८७ ॥
लखि नवला की वर प्रभा नहिं चपला ठहराय।
फाटत ही करहाट कों हाटक हाट बिकाय ॥ ८८ ॥
मोती झालर झलझलैं झीने घूंघट माह।
मनु तारागन झलमलैं नरवर अमल अथाह ॥ ८९ ॥

कित चित गोरी जौ भयौ ऊख रहरि को नास।
अजहूं अरी हरी हरी जहँ तहँ खरी कपास ॥ ९० ॥
निज घट उठवाती अरी मो देती न उठाय।
आन कका के माथ की साथ न जाउँ लवाय ॥ ९१ ॥
तेरी चेरी चंचला केसरि हेसरि नाहिं।
कंचन रुचि रंचन लहैं चंपक चपि छपि जाहिँ ॥ ९२ ॥
हँसि आवै हँसि जाय है कसि अँगियै अँगिराय।
भौंहनि कों सतराय कै अँखियनि सों बतराय ॥ ९३ ॥
स्यामरूप स्यामा किए बिहरि रही सखि संग।
हरि आए पट कपट गो उघरि लपटि रहि अंग ॥ ९४ ॥
यौं तमोल की सुरँग दुति राजति दसननि माह।
जनु जागति मुकुतानि मैं अरुन मनिन की छांह ॥ ९५ ॥
मन नितंब पर गामरू तरफरात परि लंक।
बर बेनी नागिनि हन्यौ खर बीछी को डंक ॥ ९६ ॥
आए हैं मनुहारि हित धारि अपूर बहार।
लखि जीके नीके सुखद ये पीके त्यौनार ॥ ९७ ॥
गहति हाथ लखि लहति नहिँ लंक सलोनी नीठि।
सुछबि उदधि अवगाह मैं लसति लहरि सी ईठि ॥ ९८ ॥
बसन हरत बस नहिँ चल्यौ पिय बतरस बस आय।
अँगन चिलक तिय नगन की लीनी लाज बचाय ॥ ९९ ॥
सब घन नीचे दामिनी नचत लखैं खन बाम।
हों घन ऊपर दामिनी नचत लखी इक जाम ॥१००॥
अहे दीनता सों रहे बिनय बैन कों भाखि।
मानि कहो मो मान तजि कान मान को राखि ॥१०१॥
आधे नख कर आंगुरी मेंहदी ललित बिराजि।
मनु गुलाब की पांखुरी बीरबधू रहि छाजि ॥१०२॥

ठठकि चलनि कटि की लचनि चखनि नचनि सकुचानि।
मो चित वा रुचि की रचनि रुचिर रची नित जानि ॥१०३॥
चलि गो कुंकुम गात तें दलिगो नयौ निचोल।
दुरै दुराए क्यौं सुरत मुरत जुरत चख चोल ॥१०४॥
क्यों न एक मन होत तन दोय प्रान इक वार।
ये नीकी रिझवारि हैं वे नीके रिझवार ॥१०५॥
हारी जतन हजार कै नैना मानहिँ नाहिँ।
माधव-रूप विलोकि री माधव लौं मँड़राहिँ ॥१०६॥
दिन विहाय गृहकाज मैं सजनी सदन न सास।
नाह खाय छन लहति हौं रजनी मांह सुपास ॥१०७॥
निरखि कलाधर की कला कनक कलस पर वीर।
नाथ नाथ के माथ पै भूलि कहै कवि धीर ॥१०८॥
नँदनंदन मन लै गए निज संगै यह पेखि।
चंदन चंद न ही हरै धन तन ताप विसेखि ॥१०९॥
सरद-जामिनी कुंज कों लिए चले यदुराय।
मिली कामिनि चांदनी केसनि दई वताय ॥११०॥
वजनी पँजनी पायलौ मनभजनी पुर वाम।
रजनी नींद न परति है सजनी विन घनस्याम ॥१११॥
छिए सुधादीधिति-कला सुमधु पिए हित नैन।
भाल भौम वालहि लला धरि कीन्हौं कित सैन ॥११२॥
ता दिन ते जकि सी रही थकि सी आठौ जाम।
जा दिन ते चित मैं चुभी चोखी चितवनि स्याम ॥११३॥
समुझैवे हौ कहत हौ सहज समुझि जिय माह।
रीति रँगै किति प्रीति की लाल रँगे तिय आन ॥११४॥
होनहारु काया धरी यह गति आनि निहारु।
वाल-बदन वारिज भरी मारयौ विरह निदारु ॥११५॥

चंद-मरीची सी अरी कौन खरी लखि आय।
करै कंचुकी ताम की हास भरी अँगिराय ॥११६॥

जो तब छनहूँ न सहि सक्यौ बिछुरन नंदकिसोर।
सो हिय दरकत कत न अब सहै बिरह सब जोर ॥११७॥

डार अँगारनि परत हैं मनु तजि बैर समूल।
माह मीत की सीत सों दहत्यौ ओढ़ें तूल ॥११८॥

आज अचानक मिलि गली चली गई वह हाय।
अधरनि मैं मुसुक्याय कै अँखियनि आग लगाय ॥११९॥

कालि ससुरपुर कों गई सजनी नंद पियारि।
जमुना जाउँ अकेलियैं रजनी आनन बारि ॥१२०॥

एड़िन चढ़ि गुलुफन चढ़ो सुरवन बचो दबाइ।
सो चित चिकनैं जघन चढ़ि तितहिँ परो बिछिलाइ ॥१२१॥

लगन लई सो सखि गई सुधि करि लखन तमाल।
मग लखि ललन मगन भई प्रमुद समुद मैं बाल ॥१२२॥

दुरी दुराएहू हिए कोनें पट खोलें न।
सखि तिय दिसि लखि हँसि कही है यह बीन नवीन ॥१२३॥

कितिक मदन को रूप री को न सिंगार कहाइ।
यह आछी छबि छैल की छलकि रही तकि आइ ॥१२४॥

सूखे पतझारी चली कुंजर लीन बनाय।
करलघाव बिनती अली नव संकेत बताय ॥१२५॥

परदे बाला बर लसै येक दाव नहिँ पाय।
गिरवानहू असि ती न तकि रीझहुगे सुकवाय ॥१२६॥

इहाँ दुरावत कत लला कपट-कला के जोर।
यह नहिँ जानत हौ भला चीन्हत चोरहि चोर ॥१२७॥

तकि तकि जिनहि लता रही थकि थकि सीस नवाय।
ते सुभ भाईं रावरी पी-मन देहि सँवाय ॥१२८॥

तन मन रीझे मार सें सुंदर नंदकुमार।
यातें है उचितै चितै हँसि बोलै इक बार ॥१२९॥

पुहुपित पेखि पलास-बन तव पलास तन होइ।
अब मधु मास पलास भो सुचि जवास सम सोइ ॥१३०॥

मुह माहीं नाहीं रही ही मैं हाहीं धारि।
गरबाहीं कीन्हें तिया रही पियाहिं निहारि ॥१३१॥

मदनातुर चातुर पियै पेखि भयौ चित लोल।
पुनि पट सरकौहैं भए फरकौहैं सुकपोल ॥१३२॥

सजल जलद से नैन ए बैन रुके किहि भेव।
अंग थरहरैं क्यौं भरे खरे तनोज पसेव ॥१३३॥

प्रीति प्रतीति लिए मुधा मान ठानि बोलै न।
सौहैं सौहैं खात कित होत हँसौहैं नैन ॥१३४॥

लखि सुछबीले रीझिहौ सुछबीली छन माहिँ।
छिगुनी छोरहु के छले कटि छीने ह्वै जाहिँ ॥१३५॥

पी पेखे ती-बदन निसि दिवस ससी अनुहारि।
तनु मनु हारि चरन लगे करन लगे मनुहारि ॥१३६॥

नहिँ आए निसि आधिहू कहुँ छाए बस नेह।
उर उरझौ गुरु लाज के तिय यह जिय संदेह ॥१३७॥

हरि छबि सुधि बुधि हरि लई बौर भयो यह हाल।
परिरंभन लागी करन जमुना-तीर तमाल ॥१३८॥

घन इत तकि कित चित गयौ कैसौ चंदन लाइ।
अहं कहं तो बन रहं सघन अहन फन छाइ ॥१३९॥

रिसु करि कछु बोली न ती इत उत डोली गैन।
ललचौहैं पी तकि भए तनु अनखौहैं नैन ॥१४०॥

कोऊ कोरिक खारि हो नासा भौंह सिकोरि।
दूजौ हरितन हरि नकैं इत तें छिन दृग जोरि ॥१४१॥

सब विधि अति रति-कोविदा कोक-कला की नाइ।
कनक-वेलि सी केलि में तिय पिय हिय लपटाइ ॥१४२॥
रमन गमन सुनि सखिन तन तकि न कहति कछु वार।
नैननि इंदीवरनि तें वहति कलिंदी धार ॥१४३॥
सुखदायक दूती चतुर करि परपंच वनाय।
छरि जु निसातम सुवसु करि नवलहि दई मिलाय ॥१४४॥
कामुक अँधियारी गली हरष्यौ कामिनि हेरि।
आलिंगन करतहिँ अली आए वारिद घेरि ॥१४५॥
तिय तव ये नैना दिए हिए उछाह अछेह।
पिय विछुरे दुखप्रद भए नेह किए अव मेह ॥१४६॥
धीर अभय भट भेदि कै भूरि भरी हू भीर।
झमकि जुरहिँ दृग दुहुँनि के नेकु मुरहिँ नहिँ वीर ॥१४७॥
सुनि गौने की वात कल भए पनसफल गात।
मसकि गई आंगी नई उकसे उरु उरजात ॥१४८॥
अहनिसि नहिँ ढिग तें टरै भरै अनंद अनेक।
विन देखै मनभावनै कल न परै पल एक ॥१४९॥
अँगिरानी आंगी चितै दृगनि दृगनि तें जोरि।
रँगराती रँग राति कै विहँसि गई मुख मोरि ॥१५०॥
चारु भए भरि भार कुच सकुच भई रसलीन।
लगे नयन लौं करन क्यौं ललन न होय अधीन ॥१५१॥
वाल गुलाव प्रसून कों अव न चलावै फेरि।
परों लाल के गात मैं खरो खरोटैं हेरि ॥१५२॥
झांकि झरोखे जनि जुरैं रिझवारिन की सेन।
वलि कहि मोहै रावरै ये न नैन लखि के न ॥१५३॥
धनि धनि है घन के चरन सिंजित मनि मंजीर।
कल हंसन के चेटुवन मन ललचावन वीर ॥१५४॥

जब तन दीप्यौ दीप लौं अतन जग्यौ मन माहँ।
ललचि चगे चख तब चले को निज तन की छाहँ ॥१५५॥

नख-रेखैं देखैं नए श्रमकन झलकैं छाय।
पलकैं झलकैं पीक की अलकैं रहैं दुराय ॥१५६॥

हौं न लखी ऐसी लखी जैसी है यह चाल।
लाल नयन सद मद छके झूमि रही यह बाल ॥१५७॥

सहित भला कहि चित अली लिए कजाकी माहिं।
कला लला की ना लगी चली चलाकी नाहिं ॥१५८॥

गहि बरुनी बरछी बनी अरु कटाछ तरवारि।
नैन वीर लैं भीर धसि धीर अमी रहि मारि ॥१५९॥

बानि तजैं नहिं बावरे कानि कि हानि लजैं न।
सौंहैं दरसत सांवरे होत हसौंहैं नैन ॥१६०॥

आज अचानक गैल मैं लखत गयौ हरि धीर।
काढ़े कढ़त न गड़ि रहे अँखियनि मैं बलवीर ॥१६१॥

बैरी मोहि विचारि कै कत कहियत छल बैन।
इतनोई कहि चुप रही भरि आए जल नैन ॥१६२॥

ससि लखि जगत विदित कहो जाय कमल कुँभिलाय।
यह ससि कुँभिलानो अहो कमलहि लखि किहि भाय ॥१६३॥

सारी सारी लै भजे चढ़े कदम की डाल।
अबला जन गड़ि जाति हैं अब लाजन गोपाल ॥१६४॥

बरहाइन की बेनहू लाज सकी न बचाय।
अरी हरी चित लै गयो लोचन चारु नचाय ॥१६५॥

आयो डुमह बसंत री कंत न आए बीर।
तन मन बेधत तंत री मदन सुमन के तीर ॥१६६॥

जातरूप परिजंक की पाटी रहि लपटाइ।
सोच सोच हौं चढ़ि चकी तनु न पिछानी जाइ ॥१६७॥

दामिनि निज दुति दरपकै दमकि न अब इहि कोति।
कामिनिहूं तो सी लसै बिमल भरी तन जोति ॥१६८॥
जौ वाके सिर पै परै छाहँ सुमन की आय।
तौ बलि ताके भार सों लंक बंक ह्वै जाय ॥१६९॥
सब गनना चितचोर सो बनी सुनत यह बोल।
भरके तनसिज तरुनि के फरके गोल कपोल ॥१७०॥
सोच बिमोचन हैं अली भरे सकोचन माहिँ।
लोचन मैं लाली भली रोचन सी दरसाहिँ ॥१७१॥
लागे नैना नैन मैं कियो कहा धौं मैन।
नहिँ लागे नैना रहैं लागे नैना नै न ॥१७२॥
चपति चंचला की चमक हीरा दमक हिराय।
हांसी हिमकर जोति की होति हास तिय पाय ॥१७३॥
लाजनि बोलि सकी न ती लागे तीर अनंग।
नीर नयन तें अयन ते पो निकसे इक संग ॥१७४॥
यह न लगी है कामिनी गरे सांवरे आइ।
मनु दमकति है दामिनी घनस्यामै लपटाइ ॥१७५॥
अरुन मांग पटिया चितै सौति परैं चकि घूमि।
सोहै सींव सोहाग की रससिँगार की भूमि ॥१७६॥
सुमन-छरी सी बन गई इत तें जमुनातीर।
तकि उत तें आवति दई छरा छरी सी बीर ॥१७७॥
जदपि जतन करि मन धरों तदपि न कन ठहराय।
मिलत निसानन भान को घन समान उड़ि जाय ॥१७८॥
नारी बूड़ि गई सुनत कुंजविहारी नाम।
करि उपाय हारी अजौं सुधि न सँभारी बाम ॥१७९॥
यह श्रमकन नख-खतन की सैन जुदी अँग मैन।
नील निचोल चितै भए तरुनि चोल रँग नैन ॥१८०॥

विधि वह दिन ऐहै कबौं हाय मिलैगी धाय।
चंदकला सी वाल वह सियरै है यह काय ॥१८१॥
हाइ गई हौं आज जब भाइ कही बहु बार।
बसत कुसुम के दार मैं छद छाए केदार ॥१८२॥
सुमन सुमन अरपन लिए उपवन ते बन ल्याइ।
धरनी धरि हरि तकि कही हाइ भयौ श्रम जाइ ॥१८३॥
यौं विभाति दसनावली ललना बदन मझार।
पति को नाते मानि कै मनु आई उड़ भार ॥१८४॥
हौं न दुनी मैं यह सुनी रीझत हो गुन पाय।
मो निगुनी हूं पर कृपा करत रहो यदुराय ॥१८५॥
पीछे तें गहि लांक री भरी आंकरी हेरि।
चढ़ै नांक री नां करी हरे हां करी फेरि ॥१८६॥
ठकुराइन-पाइन चितै नाइन चित चकवाइ।
फिरि फिरि जावक देति है फिरि फिरि जाइ समाइ ॥१८७॥
स्वेद भरे वर गात री थरथरात वेहाल।
को गोरी पर डारिगो रोरी मारि गुलाल ॥१८८॥
रुकति चलति चलि चलि रुकति झुकति ललित गति पाय।
आवति सौरभ सों मनौं सियरावति लगि काय ॥१८९॥
सीत असह विष चित चढ़ै सुख न मढ़ै परिजंक।
विन मोहन अगहन हनै बीछू कैसो डंक ॥१९०॥
मो चित लियौ सुचित दियौ उचित कियौ लगि काय।
सो मित सोभिन होइ छिव पियौ सुधाधर हाय ॥१९१॥
जो तव सुखसौंवा दई दई भई फल देंति।
पिय विन कोकिल-काकली भली भली दुख देंनि ॥१९२॥
चलि सुकेलि घर घन गभकर कारी निसि सुखदानि।
कामिनि सोभावानि तूं दामिनि दीपतिवानि ॥१९३॥

छीनी तार मुरार सी तिहिँ दीनी समुझाय।
चोखी चितवनि यार की कटि न कहूं कटि जाइ ॥१९४॥
अंगकंप स्वरभंग भो बिबरन अति मनरंज।
नंदनंद मुखचंद सों मूंदि गए दृगकंज ॥१९५॥
डरत न हिम हिमभानु ते करत मधुर वर बैन।
वा ललना आनन नलिन दिवस मलिन निसि मैन ॥१९६॥
नहिँ है बेनु बजावनो लेनु दही को दान।
यह है लाल मिटावनो राधाजी को मान ॥१९७॥
करि उपचार थकी चहो चलि उताल नँदनंद।
चंद्रक चंदन चंद तें ज्वाल जगी चौचंद ॥१९८॥
एरी सुख खनहुँ न लखो दुखदो दुखद दिखाइ।
भीखन भीखन लगत है तीखन तैख बनाइ ॥१९९॥
जेवर बने लतान के ताप गने सविता न।
ते बितान छबितान तनु निसि दिन रहत बितान ॥२००॥
नेहु - भूलि सपनेहु मैं तकत न दूजी ओर।
निसि दिन बदन सुचंद के लोचन चारु चकोर ॥२०१॥
मनरंजन तव नाम को कहत निरंजन लोग।
जदपि अधर अंजन लगे तदपि न नींदन जोग ॥२०२॥
रंगभवन सखि संग मैं आए स्याम सुजान।
दृग बिहँसै छबि लखि गयौ बिनहि मनाए मान ॥२०३॥
धीर लियौ हरि बीर री स्याम सरीर दिखाय।
चित चलाय ही पीर री गयौ अहीर जगाय ॥२०४॥
सुकनक वन कदली भली कमर खरीही खीन।
निरखि अमोल सिरी लली परिहो कदम यकीन ॥२०५॥
ललित विसदता नखन यौं चरन अरुनता रंग।
ज्यौं विमला सखि की कला लसति सुसंध्या संग ॥२०६॥

हार हेरानो हेरि दे टेरि कहाँ बहु बार।
ससीकार नहिँ सुनत है चकित लुनत है हार ॥२०७॥
मोही मोहि दिखाय के मन मोही छबि अंग।
सखि दुख दै सुख लै गयौ निरमोही निज संग ॥२०८॥
सेस छबीहि न कहि सकै अगम कबीहि सुधीर।
स्याम सबीहि बिलोकि कै बाम भई तसबीर ॥२०९॥
तनक निहारी जबहिँ तें बनक तिहारी आय।
छनक सँभारी सुधि नहीं कुंजबिहारी हाय ॥२१०॥
आज रही गृहकाज तजि अजब तमासे माहिँ।
हारि तुला तोली तियै तुली छमासे नाहिँ ॥२११॥
स्यामरंग के परस तें उपज्यौ पुलक सरीर।
आली बनमाली मिले नहिँ जमुना को नीर ॥२१२॥
काम कमान तनीकि दृग दीपक काजर रेख।
कै एतो भौंहैं बनी सौंहैं पाय सुबेख ॥२१३॥
हे हरि छोभित करि दई मयन पयन सर मारि।
हरिहि हरिन-नैनी लगी हेरनहार निहारि ॥२१४॥
सरसि जात तव बदन को दरसि जात निति लाल।
बरसि जात सुखसात तब परसि जात जब बाल ॥२१५॥
कजरारी छबि पेखतहिँ मुरछि परे गुजराज।
कहि कैाने लैाने नयन टैाने कीने आज ॥२१६॥
गहत अरुन कत होत है पहिरत कनक अकार।
लखत असित सित हँसत यह अहो कहो हरिहार ॥२१७॥
एतेहू ठिकठान पैँ देखति हौं इन लाल।
यह न सयानी देति हो पानी मागत पान ॥२१८॥
कहूँ निसि मैं बसि मयन बस आए अयन उताल।
लाल नयन भे बाल के लाल नयन लखि लाल ॥२१९॥

परि पा करि बिनती घनी नामरजा हौं कौन।
अब न नारि अर करि सकै जदुवर परम प्रवीन ॥२२०॥
आप भलो तौ जग भलो यह मसलो जुम्र गाई।
जौ हरि-हित करि चित गहो कहो कहा दुख होइ ॥२२१॥
प्यारो घेरु निहारि कै चूम्यौ पाटल पान।
प्यारी कर मुकुलित कियो द्रौमिथ जानन आन ॥२२२॥
सो तिनके दृगदीपनहि जा समीप ठहराहिँ।
नागललीही है अली रोमवली यह नाहिँ ॥२२३॥
कनक वरनि मोहन लसैं तरनि-तनूजा-तीर।
लखे लखायै छवि कछू छति न छोभ मन धीर ॥२२४॥
इक तौ मार मरोर ते मरति भरति है सांस।
दूजे जारत मांस री यह सुचि लौं सुचि मांस ॥२२५॥
दमकि दमकि दामिनि कहा दिपति दिखावति मोहि।
वा कामिनि की कांति लौं भूलि कहौं नहिँ तोहि ॥२२६॥
ऐसे ही वेधक वने ये अनियारे नैन।
फिरि अरुनारे करि कहा ही बेधै हरि चैन ॥२२७॥
बलि तेरी छवि भावरी चलि बिभावरी जाइ।
जानति स्याम सुभावरी अब न भावरी ल्याइ ॥२२८॥
वेलि कमान प्रसून सर गहि कमनैत वसंत।
मारि मारि बिरहीन के प्रान करै री अंत ॥२२९॥
राति अनत बसि भोर पो झूमत आए ऐन।
निरखि न सौहैं नैन ती करति न सौहैं नैन ॥२३०॥
चंपक केसरि आदि दै तुलहिँ न कौनो रंग।
सोनो लोनो होत है लगि दुलहिन के अंग ॥२३१॥
वेत सवन_ मनिगन सजे बिलसित सुंदर बेलि।
चहुँ दिसि मैं राकेस सी रही उँज्यारी फेलि ॥२३२॥

भसम करत तन असम सर विषम सिसिर के तीर।
यह निदाघ है भूलि कै माघ कहैं सब धीर ॥२३३॥
ईंठिन में वैठी हुती नारि सु नार नवाय।
दीठिन दीठि बचाय कै इत चितई ललचाय ॥२३४॥
धन तन पानिप कों जऊ छकत रहैं दिन राति।
तऊ ललन लोयननि की नेसुक प्यास न जाति ॥२३५॥
पसोपेस तजि आइए पहिने कुन ससपंज।
कर मुकुताइ न जाइए मुकुता बरसत कंज ॥२३६॥
लंक गहै अंकन लगै परि परिजंक सकाय।
जगत अतन तन ललन के ज्यौं ज्यौं चित ललचाय ॥२३७॥
कारी सारी सिर धरं गिरिधारी न लजात।
सौहैं सौहैं खात सखि लखि सनखौहं गात ॥२३८॥
राजिव नैन बिना लहे लहे छनो नहिँ चैन।
प्रेमपरनि मन खग अहे उरझि रह्यो सुरझै न ॥२३९॥
अली कहैं न इन्हैं भली लखि इनकं कुसुभाय।
सिख हित लगत न नैकु चित चहहिँ सुधा विष खाय ॥२४०॥
अहे अहो कच सुमुखि के विधि विरचे रुचि जोरि।
छूटे बांधत हैं बँधे लेत ललन मन छोरि ॥२४१॥
विधि इन अनियारं नयन कत बिरचे सुनि बाल।
जिनतें हरि किए अरी हरि ही वेधि विहाल ॥२४२॥
आय सकारं हिय सकुचि पाय पधारे ऐन।
तिय नागरि तिय नैन तकि लगी बकारं दैन ॥२४३॥
घिरि आए चहुँ ओर घन तिहि तकि भोर ससोर।
मोर सोर सुनि होत री तन मन मदन मरोर ॥२४४॥
वे नीके नीकी इहो क्यौं फीकी परै चाह।
दुहुँ दिसि नेह निबाह पैं वाह वाह है वाह ॥२४५॥

कहा परेखै करि रही इत देखै चित हाल।
गई ललाई दृगनि तें छुवत कलाई लाल ॥२४६॥
छैल छबीली की छटा लहि महावरी संग।
जानि परै नाइन लगै जबहिँ निचोरन रंग ॥२४७॥
जा सँग जागे हो निसा जासों लागै नैन।
जा पग गहि मति मैंन भे मैंन विवस सो मैं न ॥२४८॥
लगिगो नैन लगे सुमन जगिगो मैन सरीर।
अली गयौ छलि गैल मैं छैल छली वलवीर ॥२४९॥
दृगनि खुभी खूठी खुभी निसराए निसरै न।
चल चख चितवनि चित चुभी बिसराए बिसरै न ॥२५०॥
तिगुनी तें द्विगुनी भई एक गुनी घटि लाज।
तव मधुवन किहि ज्ञान सों जान कहो बृजराज ॥२५१॥
सरकी सारी सीस तें सुनतहिँ आगम नाह।
तरकी वलया कंचुकी दरकी फरकी बाह ॥२५२॥
रूखे रुख मुख प्रिय वयन नयन चुराई दीठि।
दीठि तियहि पिय पीठि दी ईठि भई सुवसीठि ॥२५३॥
जहां दुपहरी मैं रही खरी अँधेरी छाइ।
अहे नवेली ता गली चली अकेली न्हाइ ॥२५४॥
ना करु ना करु कहि थकी ना करु ना करु मान।
कान लगैगो कान जब कान करैगी कान ॥२५५॥
धनि धनि है हे हार तो धनिधनि भाग अपार।
या नवला के ही लगो निधरक करत विहार ॥२५६॥
कत सकुचे नीचे चहो कहा कहो बस मैन।
पोंछे लाली ना मिटै लाल तिलोछे नैन ॥२५७॥
रनित किंकिनी हैं न री नजर सु आवै हाल।
मनसिज घरियारी अरी गजर बजावै बाल ॥२५८॥

तरकति सरकति ही रहैं रहैं न एको बार।
चुरियां ये कर तार की जग न रची करतार॥२५९॥
चंपक मैं नहिँ चंद मैं नहिँ चपला मैं लाल।
नहिँ कंचन मैं चारुता रही यही तन बाल॥२६०॥
चहुँ दिसि सों सहवासिनी बीजन करहिँ प्रभात।
चले पसीने जात हैं गात नहीं सियरात॥२६१॥
यह स्यामा है कौन की छविधामा मुसुक्याय।
सौंध चढ़ी चहि कौंध सी चौंध गई चख छाय॥२६२॥
भटक न झटपट चटक कै अटक सुनट के संग।
लटक पीतपट की निपट छुटकति कटक अनंग॥२६३॥
सगुन सरूप तुमैं कहैं बुध कत नंदकुमार।
ह्यां लों गुन न गहो रहो बिन गुन पहिरे हार॥२६४॥
ललित मेंहदी बूंद यौं लसत हथेरिन साथ।
पी अनुरागी मन मनो बसत तिहारे हाथ॥२६५॥
यक तौ सरपंजर कियौ अतन तनै सर सूल।
दूजे यह सिसिरौ भयौ खंजर संजर तूल॥२६६॥
दैया पनिःारिया कहैं तरनि - तनैया - तीर।
अधर बिदारैं कीर री कपि डारैं चिरि चीर॥२६७॥
जानि परैंगी जात हो रात कहूं करि सैन।
लाल ललोहें नैन लखि सुनि अनखोहें वैन॥२६८॥
खोंचि किनारा कल नदी दई बढ़ी हे लाल।
वाह रावरी चाह मैं भई बावरी बाल॥२६९॥
बलिहारी अब क्यौं कियौ सैन सांवरे संग।
नहि कहुँ गोरे अंग ये भए झांवरे रंग॥२७०॥
गड़े नोकीले लाल के नैन रहैं दिन रैनि।
तव नाजुक ठोढ़ीन क्यौं गाड़ परे मृदु वैन॥२७१॥

वनक मढ़े कोठे चढ़े छैल छवीले स्याम ।
खरी चौहटे मैं अरी चढ़ो रहचटे वाम ॥२७२॥
तिय पिय की वेनी गुही लखि उसास कसि लीन ।
लहरि न आई महि गिरी मनु नागिनि डसि लीन ॥२७३॥
त्रिविधि प्रभंजन चलि सुरभि करत प्रभंजन धीर ।
तन मन गंजन अलि प्रभृत विन मनरंजन वीर ॥२७४॥
सकुचौंहीं मुसुक्यानि सों ललचौंहीं अँखियानि ।
मो तन तनक चितै गई दुखद भई सुखदानि ॥२७५॥
कीजे कह रस वस वसे प्रविसे आय प्रभात ।
आप कहीजे वलि कहा कहत पसीजे गात ॥२७६॥
चितवै चित आनंद भरि चारु चद की ओर ।
प्रीति करन की रीति कों सिखवैं चतुर चकोर ॥२७७॥
सतरौंहैं मुख रुख किए- कहे रुषौंहैं वैन ।
सैन जगे के नैन ये सने सनेह दुरैं न ॥२७८॥
सी सी कै उझकै झुकै चलत रुकै जदुराय ।
नव मखमल के पावड़े हाय गड़े ये पाय ॥२७९॥
हा हा कर जोरे खरे वलि चितवो पिय ओर ।
कहँ यह मृदु तन रावरो कहँ हौं परम कठोर ॥२८०॥
वनमाली दिसि सैन कै ग्वाली चाली वात ।
आली जमुना जाउँगी काली पूजन प्रात ॥२८१॥
मलयज घसि घनसार मैं खौरि किए गयगैनि ।
सेत वसन सजि तजि गलो चली चांदनी रैनि ॥२८२॥
चतुर चितेरे पानि कों चूमन जोग विचारि ।
रही निहारि सुमित्र को चित्र चित्र सी नारि ॥२८३॥
गई ललाई अधर तें कजराई अँखियान ।
चंदन पंकन कुचन मैं आवति वात तियान ॥२८४॥

कनित बेनु मारुत परम ध्वनित बिहँग अलिगुंज ।
बलि चलि जहँ तम दरस सम पुंज तमाल निकुंज ॥२८५॥
बिरह बरहि झर सीतकर लखि लखि मरति कराहि ।
ये वैरी किहि धन मलै मलयज लावति काहि ॥२८६॥
क्यौं जितिए कहिए भला तुम छल बल सुप्रबोन ।
करिए कौन कला लला हम अबला बलहीन ।२८७॥
तब सीरी तकि तकि सिरी भई रही छल नीर ।
अब गरमी मन मैन की आय गई बलबीर ॥२८८॥
ऊधव माधव जू विना सुखदाहू दुख देत ।
होत चेत हरि लेति चित चेत चांदनी चेत ॥२८९॥
जब तें पीछे छिपि लखी दरपन विधुमुख छांह ।
तब तें तेरे दरस की भरी हरी चित चाह ॥२९०॥
जब तें न्हान गई तई ताप भई बेहाल ।
भली करी या नारि की नारी देखी लाल ॥२९१॥
खंजन कंज न सरि लहैं बलि अलि को न बखानि ।
एनी की अँखियानि ते ए नीकी अँखियानि ॥२९२॥
छैल छबीली छांह सी चैत चांदनी होति ।
दीपसिखा सी को कहै लखि खासी तन जोति ॥२९३॥
मन-खेलार तन-चंग नव उड़त रंगरस डोर ।
दूरिहि दोर बटोर जब जब पारै तब ठोर ॥२९४॥
बड़े बड़े कच छुटि पड़े उमड़े नैन बिसाल ।
कड़े झमकड़ेही गड़े अड़े खड़े नँदलाल ॥२९५॥
इक दृग पिचकारी दई इकहि लई ही लाय ।
सखी बिहारी दिसि लखी रसनहिं दसन दबाय ॥२९६॥
हाहा करि हारी अहे जामिनि सरद न जान ।
लखत कलाधर देखवी कामिनि मान सयान ॥२९७॥

तन सुरंग सारी नयन अंजन वेंदी भाल ।
सजे रही जगि जालिमा भामिनि देखहु लाल ॥२९८॥
सव जुरिकै दरसन करो परसन है सुख मोइ ।
या कामिनि के उर लसैं गुर ससिसेखर दोइ ॥२९९॥
गुर उतंग सुर सहित हैं वरनत मो मन थाक ।
वेसरि मुकुतनि पाय कै सरसति सोभा नाक ॥३००॥
चलनि भली वोलनि भली सुछवि कपोलनि आज ।
तकि सौंहैं चितवनि भलीं भले वने वृजराज ॥३०१॥
कहति ललन आए न क्यौं ज्यौं ज्यौं राति सिराति ।
त्यौं त्यौं वदन सरोज पैं परी पियरई जाति ॥३०२॥
जुवतिन सँग वर पूजि कै लगी भांवरी देन ।
परतिय मुख पिय रुख निरखि हरप भरी अनखेन ॥३०३॥
तबहुँ मजाकी आज लखि सकल सजाकी नारि ।
चखनि चलाकी सों अरी करी कजाकी सारि ॥३०४॥
अब निधरक सौहैं चलो तरक भलो नहिँ कोइ ।
रहे रिसौंहैं नैन जो भए हसौंहैं सोइ ॥३०५॥
का केकी की काकली का काली निसि चैन ।
वन माली आए अली वनमाली आए न ॥३०६॥
जगमगात है होन कों या आनन लों चंद ।
ताही तें पूरन भए मंद परै तम फंद ॥३०७॥
सुनि सुनि केकी कूक री हूक परी ही वीर ।
ता पर जी घातक अरी चातक करत अधीर ॥३०८॥
गगन लता तें वलित हैं जहँ तमाल तरु जाल ।
धेनु धावरी रावरी लखि आई गोपाल ॥३०९॥
दुरति दुराए तें न रति वलि कुंकुम उर मैन ।
प्रगट कहैं पति रति जगे जगी जगीले नैन ॥३१०॥

सपन न दरप न सदनहूं लखों ललन अपराध।
कहि अब कैसे पूजिहै मान करन की साध ॥३११॥
दुपहर भए कहर किए जहर लगाए नैन।
मनरंजन न जगे अजों अब तकि अंजन दैन ॥३१२॥
यह अहनिसि बिकसित रहै वह निसि मैं कुँभिलाय।
यातें तो मुख कमल लों कहो कहो किमि जाय ॥३१३॥
संग अनंग-अनी लिए किए सिँगार सुअंग।
रही पिया-छतिया लगी तिया पगी रतिरंग ॥३१४॥
काहि छला पहिराव री हों बरजी बहु बार।
जाय सही नहिँ बावरी मिहदी रंग को भार ॥३१५॥
नियरे बैरिनि ननद लखि मो जियरे की घाय।
पियरे पट की लटक सखि हियरे खटकति आय ॥३१६॥
चटक भई दुति दूनरी देखि तूनरी चाल।
पहिरि करैगी खून री गहिरि चूनरी लाल ॥३१७॥
हेरि बिहारी की दसा बरनत नेकु बनै न।
चिलक तिहारो चाहि कै सूधी तिलक लगै न ॥३१८॥
नैन उनीदे कच छुटे सुखहि लुटे अँगिराय।
भोर खरी सारसमुखी आरस भरी जँभाय ॥३१९॥
कौतुक जोहै रास को अरु मोहै बृजराज।
चलो भलो मसलो हलो एक पंथ द्वै काज ॥३२०॥
कनक बिंदु सुरकी रुकुम चंदन मिलत जमाल।
बंदन तिलक दिए भई चिलक चौगुनी भाल ॥३२१॥
बानी बोलि कठेठिए रहति रुपानी जीय।
इत आरो बर मानिनी बसु लालन के हीय ॥३२२॥
सखि सँग जाति हुती सु ती भटभेरो भो जानि।
सतरौहीं भौंहनि करी बतरौहीं अँखियानि ॥३२३॥

तेरी सरल चितौनि तें मोहे नंदकिसोर।
कैसी गति ह्वैहै तऊ कुटिल तरल चख छोर ॥३२४॥
पी-पाती पाते उठो ती छाती सियराइ।
सुनि सँदेस रसभेद सों गई स्वेद सो न्हाइ ॥३२५॥
अरी विलंब वरी भई कालिंदी के न्हान।
इंदीवरनैनी निलै चलि चित थित करि ध्यान ॥३२६॥
थहरि उठै हरि-तन चितै नैनन वन भरि लेय।
करन भारि बोलै हँसै गहन उरोज न देय ॥३२७॥
रचो सची सी तोहि री निज कर करि करतार।
तातें निसि बासर रहै तार भयौ भरतार ॥३२८॥
उसरि वैठि कुकि काग रे जौ वलवीर मिलाय।
तौ कंचन के कागरे पालूं छीर पिलाय ॥३२९॥
तव पद पदवी नहिँ मिली पद्मुम हारि वर मानि।
लजित होइ निसि मधुकरै भषत हराहर जानि ॥३३०॥
लाल उतारि दई अली मैं मेली उर वाल।
गई पसीने न्हाइ सो भली चमेली माल ॥३३१॥
भूषन वसन सजे तिया सैन करै नहिँ सैन।
छन निकसै दरसन पिया छन प्रविसै रँग ऐन ॥३३२॥
आए स्याम बिदेस तें वाम मिली जव जोइ।
रहे अलोने गात जो भए सलोने सोइ ॥३३३॥
झलकनि अधरनि अरुन मैं दसननि की यौं होति।
हरि सुरंग घन बीच ज्यौं दमकति दामिनि जोति ॥३३४॥
समुझि एकु मो नेह कों नेकु लगे नहिँ नैन।
याते अरुन भए किए सैनन ही पर सैन ॥३३५॥
यौं सुखमा सरसाय री ये तेरे नख पाय।
मनहुँ कमलदल विधुकला अमल बिरोध बिहाय ॥३३६॥

हेरति हैं सो तैं चकित हेरति पावति नाहिं।
चोरि लिए चितचोर चित एकहि चितवनि माहिं ॥३३७॥
निसि दिन पूरन जगमगै आवै धोय कलंक।
जौ तौ वा मुख की प्रभा पावै सरद मयंक ॥३३८॥
धीर मढ़त मन छन नहीं कढ़त बदन तें बैन।
तुरत सुरत की सुरत कै जुरत मुरत हँसि नैन ॥३३९॥
घनस्यामहि लहि काम बस दीनी बेंदी लाल।
ताहि डारि दै पदिक की कचनि चोराई बाल ॥३४०॥
इकहि आंक सों मोहि कै मोहि रहे हैं मोहि।
हरिहर लों पी कों कहै यहै निहोरी तोहि ॥३४१॥
स्याम बिंदु नहिं चिबुक मैं मो मन यौं ठहराइ।
अधमुख ठोढ़ी गाड़ की अँधियारी दरसाइ ॥३४२॥
ललन चलन सुनि चित चहै लखन चखन समुहात।
कहन लगै फिरि जाय है आय दहन लौं बात ॥३४३॥
हरि विधि बनई औरई काहू को न उबीठि।
जाकों जा अँग मैं लगी दीठि परी नहिं नीठि ॥३४४॥
आली तो कुच सैल तें नाभि कुंड कों जाय।
रोमाली न सिंगार की परनाली दरसाय ॥३४५॥
गुलुफनि लों ज्यौं त्यौं गयौ करि करि साहस जोर।
फिरि न फिरयौ मुरवान चपि चित अति खात मरोर ॥३४६॥
मोहन बान चलाय कै मोही मोहि अनंग।
रही न कुल की कानि री अब परि परनि भुजंग ॥३४७॥
धर हरि धरि घर जाइए अब अर हरि किहि हेत।
कालि प्रभात मिलायहों यहि अरहरि के खेत ॥३४८॥
गमन सुनत धन तन दई मदन जो लाइ लगाइ।
ललन बदन लखि रहि गई सखि दिसि चखन चलाइ ॥३४९॥

दीठि निसेनी चढ़ि चल्यौ ललचि सुचित मुख गोर।
चिवुक गड़ारे खेत मैं निशुक गिरयौ चितचोर ॥३५०॥
आए लाल प्रभात लखि माल वदन की हाल।
अति उताल सखि बाल उर मेलो मुकुतामाल ॥३५१॥
जुग जुग ये जोरी जियैं यों दिल काहु दिया न।
ऐसी और तिया न हैं ऐसे और पिया न ॥३५२॥
जहँ जहँ डोल हरे हरे धरे छवीली पाय।
तहँ तहँ चोल तें चांदनी चटकीलो ह्वै जाय ॥३५३॥
मुख तें नजर अनत गई ती त्यौरहि रहि तानि।
पीक हवह सरसिज निसा ससि यह सुनि मुसुक्यान ॥३५४॥
पावस मास अटे पटे अटल पटल घनघोर।
भोर सांझ आहट मिलै चटकाहट वकसोर ॥३५५॥
इक तो मदन विसिख लगे मुरछि परी सुधि नाहिँ।
दूजे वद वदरा अरी घिरि घिरि विष वरषाहिँ ॥३५६॥
कहे कहा न कहा कहे अहे अरंभहि माघ।
मेरे हित तेरे भरे तन कन ओघ निदाघ ॥३५७॥
वलि हां की वा दिन विहँसि जव हरि हांकी गाइ।
अव ना की मोसों कहा वांकी भौंह चढ़ाइ ॥३५८॥
पहिले कहि ले कहन जो तव गहि ले पी अंक।
नत गहिली पछतायगी लखि खन माहिँ मयंक ॥३५९॥
कवि समता औरन लहैं लखि छबि वलय अलेष।
इनहीं की परिवेष भो रविहि ससिहि परिवेष ॥३६०॥
है ही तू दरकत न कत अजहुँ भयनु पाषान।
विरह दहन की दाह दहि लहि प्रवाह अँसुआन ॥३६१॥
नहिँ यह नाभी रावरी सुनि प्यारी वृजनाह।
विधि रचि विमल खरी करी परी चिवुक की छांह ॥३६२॥

हौं बरजी बहु बार जी पी पर-दार बिहाय।
अब से मरजादहिं गहो रहो कृपा करि आय ॥३६३॥
जब तें तेरे कुच रुचिर हरि हेरे भरि नैन।
कनककलस कंबुक कुकुद नीके लगै न ॥३६४॥
चंदन कीच चढ़ायहूं बीच परै नहिँ रांच।
मीच नगीच न आ सकै लहि बिरहानल आंच ॥३६५॥
आज रहे बलबीर री बीर अबीर उड़ाय।
सोभा भाषि न जाय जो आंखिन देखि न जाय ॥३६६॥
जब तें हँसि वह सांवरो गयौ कनखियनि चाहि।
मृग कैसे दृग मैं भई अनमिष निरखनि याहि ॥३६७॥
मो मति थकित चकित भई नेसुक भेद न पाय।
अलख तिहारी गति दई कहो कही किमि जाय ॥३६८॥
और गयौ जरि लेप तें तन चंदन स कपूर।
अरु चितए चित ह्वै गयौ चंद्रप्रभा चकचूर ॥३६९॥
गुरु जन मैं मूंदे बदन रही चले घनस्याम।
बात न आई नाक मैं बाती नाई बाम ॥३७०॥
बरु बरछी कै बर लगैं खरग लगैं सर पैन।
कारी लगैं कटारिहूं सखि पर नैन लगै न ॥३७१॥
रस बरसत है रावरो तन पुलकित घनस्याम।
कहो अधर मैं कौन को रहो अधकहो नाम ॥३७२॥
आई सिर नीचे किए खीचे नैन निहारि।
कहत रुखावट सों गई चित चिकनाहट नारि ॥३७३॥
ज्यौं ज्यौं चंदन को ललन लेपत हौं निज गात।
त्यौं त्यौं ललना के नयन तकि तकि अति खिसियात ॥३७४॥
नहिँ अन-लगिबे दीठि कों ईठि दिठौना दीन।
टोनो मन बसकरन कों ये कपोल मैं कीन ॥३७५॥

हिय लोचन मैं भरि रहे सुंदर नंदकिसोर।
चलत सयान न बावरी मान धरें किहि ठौर ॥३७६॥
कहत थकी ये चरन की नई अरुनई बाल।
जाके रँग रँगि स्याम सूं विदित कहावत लाल ॥३७७॥
पहिर नवेली नीलपट मृगमद तिलक लगाय।
केलि-अयन आली लिए चली अकेली जाय ॥३७८॥
सीस झरोखे डारि कै झांकी घूंघट टारि।
कैबर सी कसकै हिये वाकी चितवनि नारि ॥३७९॥
बिचरि चहूं दिसि लखत हैं वर पूजै वृजराज।
चंदमुखी कों लखि सखी सुरजमुखी सी आज ॥३८०॥
चूक समै न विचारि तू वादि करै अपसोस।
अपने करम फलद चितै हरि को देइ न दोस ॥३८१॥
लाल ललाई ललितई कलित नई दरसाय।
दरसो सारसरसभरे दृग आदरस मँगाय ॥३८२॥
ए जवननि पीने कि सौं हौं कीने अपराध।
तेरे त्यौर तरेर की नित मेरे चित साध ॥३८३॥
सास ननद नाहिन सदन पिय मन करत बरात।
लखि परोस नँदनंद को हिय न अनंद समात ॥३८४॥
अहे अरे आंगन खरे हास-भरे वृजराज।
लखिवे कों ललकत हियो खरी भरी दृग-लाज ॥३८५॥
अरुन स्याम वेंदी दिए मुकुर दरसि मुसुक्याय।
मनहु विमल सर ससि गयौ कुज सनि संग लवाय ॥३८६॥
लाल चलत लखि वाल के भरि आए दृग लोल।
आनन तें बात न कढ़ी पीरी चढ़ी कपोल ॥३८७॥
टरति न चौवारे खड़ी अरी भरी रस वाम।
अरो खरो तू सांवरो प्रेमभरो वस-काम ॥३८८॥

नाभि भौंर परि किमि कढ़ै मन करि साहस जोर।
त्रिबली तरल तरंग दै डारि डारि ता ठौर॥३८९॥
उत तें नेकु इतै चितै राति बितै तजि कोह।
तेरो बदन सुहास सों ससिप्रकास सों सोह॥३९०॥
कत इत ताकति ताकि उत करत तमासो मैन।
दौरि रहे घरि दोइ तें दुहु के नैन थकैं न॥३९१॥
लसत पीत पट हरि कटी ऊंचे करि दृग नीच।
मनु चपला छबि सों पटी है लपटी घन बीच॥३९२॥
भट्टू लट्टू सी है रही सनी सनेह बिसाल।
बैठे पेखि रसाल कों रोम उठे ततकाल॥३९३॥
भरन गई जमुना जलै जोहि ललै ललचाइ।
ईछन भरि छबि छैल की आई चेत गँवाइ॥३९४॥
सुबरन पाय लगे लगै दुरित उदित जग माहिँ।
परत रजत पायल अरी सुबरन की है जाहिँ॥३९५॥
बिथुरे कच कुच पैं परे सिथिल भए सब गात।
उनदोहें दृग में भई दुगुनी प्रभा प्रभात॥३९६॥
मैं मोही मोहे नयन खेह भई यह देह।
होत दुखै परिनाम करि निरमोही सों नेह॥३९७॥
थाके खंजन भृंग मृग झष लखि बांके पैन।
वा ललना के लसत हैं चपल चलाके नैन॥३९८॥
उत तकि तकि ताकैं ससी लखि सखि रोष न आइ।
नँदनंदन दूहत गगन छुवत न हैं थन गाइ॥३९९॥
चित्रभानु जे करत हैं दीपनि बीच प्रकास।
तेती तेरे तेह तकि चकि थकि भरत उसास॥४००॥
जिहि पहिरे छगुनी अरी छिगुनी छबि छहराहिँ।
सोने के लोने भले छले छले किहि नाहिँ॥४०१॥

आगे चलि पाछे चलै फिरि आगे समुहाइ।
तरुनी तरल तुरंगिनी चली अली सँग जाइ ॥४०२॥
हौं हारी समुझाय कै चरचारीहि डरैं न।
लगैं लगोहैं नैन ये नित चित करत अचैन ॥४०३॥
सूरज कर परचंड सों दिन अंगद है वीर।
रीछराज हनुमान से निसि धारै किमि धीर ॥४०४॥
पहिरन की हौसै रही मो जियरे जदुराय।
पहिरे कंचनहार ह्वै हियरे जाय हिराय ॥४०५॥
जाय उतै वलि पेखिए छाय रही छवि स्याम।
सोभति वेलि बिकास सों लसति हास सों वाम ॥४०६॥
सुप्रसंसा या वात की करि जातीगन पास।
धनि जगती मैं चातकी इक स्वाती-घन आस ॥४०७॥
झीनी सारी सजि लगी न्हाय निरखि जदुराय।
खरी सकोचन सों भरी लोचन रही नवाय ॥४०८॥
ल्याई लाल निहारिए यह सुकुमारि विभाति।
उचके कुच कच-भार तें लचकि लचकि कटि जाति ॥४०९॥
मैं न लखी ऐसी दसा जैसी कीनी मैन।
तब तें लागे नैन नहिँ जब तें लागे नैन ॥४१०॥
जाहि जोहि भारद भई मरी परो दुख-फंद।
ताहि सुधाधर क्यो कहैं दारद सारद चंद ॥४११॥
या खिन लों चित पै चढ़ी आंखिन लागि लगाय।
भुवन भरन आई गई मो ही आगि लगाय ॥४१२॥
तकि बिकासता तरलई नई नारि द्दग नाह।
कमल धँसे बन माह लजि कमल बसे बनमाह ॥४१३॥
घरहाइन चरचैं चलैं चातुर चाइन सैन।
तदपि सनेह सने लगैं ललकि दूहूं के नैन ॥४१४॥

सजि सुबरन अभरन तिया तजि रसना मंजीर।
सेज परी रति दूसरी चितवति मग बलबीर ॥४१५॥
हरिहि हेरि ही हरि गयौ बिसिख लगे झषकेत।
थहरि सयन तें हेत करि उहरि रहरि के खेत ॥४१६॥
अति सूछम लखि लंक को जिय कलंक ठहराइ।
नीबी कसत न ओढ़ की प्रौढ़ सखी डरि जाइ ॥४१७॥
लंक तलक छलकत चितै इक पल पलक परै न।
अलक तिहारी खलक के करि करि खून डरै न ॥४१८॥
झूमि झूमि मुख चूमि लै झुलनी मुकुतनि साथ।
मनहुँ सुरासुर गुर ससिहि फिरि फिरि नावत माथ ॥४१९॥
डोलै नहिँ खोलै नयन मौन भई मन मारि।
गोरी गोरी पैं अरी कौन ठगोरी डारि ॥४२०॥
तकति तिरीछे ईछननि पीछे भौंह चढ़ाय।
सरन धँसति बिहँसति कसति अँगिया-बँद अँगिराय ॥४२१॥
काहि पुकारो को सुनो को न उघारो नैन।
हरि कारो सुधि लै गयौ दै गारो इक सैन ॥४२२॥
चलत सदन तें सखि दई मदन ठगोरी डारि।
पिय-सूरति लखि कै भई तिय मूरति अनुहारि ॥४२३॥
रोम उठे तन कंप स्रम अनमिष चखवन छाय।
कर न चलै वैन न कढ़ै बदन गयौ मुरझाय ॥४२४॥
गली सांकरी हरि री दई कांकरी मारि।
नहिँ बिसरै बिसरायहूं हरे हां करी नारि ॥४२५॥
इष्टदेव कै बा कह्यो पिय आवैं निसि माहिँ।
वोई आए होहिँगे आप लखैं मैं नाहिँ ॥४२६॥
जात सखी काहु न लखी रहे अथाइन गोप।
लोप भई ती जोन्ह मैं निज अंगनि की ओप ॥४२७॥

पाती आई पीत पट छाती लई लगाय।
दई लपट बिरहागि को दुगुन गई लपटाय ॥४२८॥
नई चाह में डुबि रही दही बिरह बर नारि।
छला लला को लै लई मुदरी दई उतारि ॥४२९॥
ए कुच सुबित कठोर कल लखि यह श्रीफलहाल।
चढ़े लगी झोरे बिना तोरं बाल अबाल ॥४३०॥
बिन चाहे नहिँ चैन चित चाहं तेहु न चैन।
कौनि कला के बिधि रचे चाहि लला के नैन ॥४३१॥
कहि यह कौनि दसा भई हरि हरि उठति बराय।
मदन दई बैराग कै मद न गई यह खाय ॥४३२॥
जे तीषम ग्रीषम रहे सुखप्रद सीरे कुंज।
ते अगहन हिय गहन बिन भए दहन के पुंज ॥४३३॥
हरितन हरितन कत तकै हरि-तन हरिव निहारि।
चरित न तो तन लखि परै कित चित हित न बिसारि ॥४३४॥
ललित नील कन चिबुक में लसत प्रभा लहि दून।
मनु अरसी की पांखुरी लगी गुलाब प्रसून ॥४३५॥
गुरजन दुरजन में अली उरजन बनज छुवाय।
सिरमनि चिकुर चुराय कै गली चली ललचाय ॥४३६॥
हौंहूं कहूं सिधारिए चित बिचारिए काहि।
बलि बरषा ऋतु आइहै जियत पायहैं याहि ॥४३७॥
लखि सखि री इत आय खन स्वेद खेद भो दूर।
बारिज अरु बनितावदन बिकसे निकसे सूर ॥४३८॥
चहुँ कित चितवै चित चकित सजल किए चल नैन।
लखि सनवा मनवा परै मन वाके नहिँ चैन ॥४३९॥
हाहा री हारी हगै कै वा लाख सिखाय।
आप भरैं आपै ढरैं बरबस परबस जाय ॥४४०॥

नार नवाए तकि हरी करी कांकरी चोट ।
चौंकि कँपी झझकी चकी चपी हँसी गहि लोट ॥४४१॥
लगे हमारे गात मैं नख रद तिनकी छांह ।
लसहिँ बिमल ही रावरे लखहु छबीले नांह ॥४४२॥
काननचारी चपल हैं कजरारी छबि ऐन ।
तातें अमल कमलमुखी कमल सही ये नैन ॥४४३॥
बिन सेवे तस कुंज तकि तिय हिय लागी लाइ ।
नलिन बिना नलिनी बिपिन दरस गयौ सियराइ ॥४४४॥
तिय-हिय मान-मरोर सुनि पाय परे पिय आनि ।
मलिनाई मुख तें गई आई मृदु मुसुक्यानि ॥४४५॥
नांक उचै चख झष नचै नेह रचे कहि नाहिँ ।
चढ़ी छनछटा सी अटा अजहुँ चढ़ी चित माहिँ ॥४४६॥
स्वेदभरे तनसिज खरे जागे मनसिज गात ।
सजल भए दृग नहिँ कढ़ै मुख सरसिज तें बात ॥४४७॥
दीप दीप के दीप की दिपति दुहिन दुहि लीन ।
समसरि दामिनि भा मिलै वा भामिनि कों कीन ॥४४८॥
जिनकी सरि दीप न लहैं तूलैं सीप न कोइ ।
स्यामकरन तकि बाम के काम उदीपन होइ ॥४४९॥
लखि सु उदर रोमावली अली चली यह बात ।
नागलली मुरली करै मनु त्रिबली के पात ॥४५०॥
तीछन ईछन बान तें भौंह कमानहि तानि ।
हरिही हरिन हनै खरी तरुनि बधिक तजि कानि ॥४५१॥
वा दिन भाजे मुखनि की तुम नासौं मुसुक्याइ ।
ते राजे यह सुनि उठी सुमना सी बिकसाय ॥४५२॥
बार बार बरजी अरी बार बगारनवार ।
उर उरझो वा यार को को सुरझावनहार ॥४५३॥

कुंज गई न विथा गई कुसुमित ताकि अतान ।
बहुरि दई दूनी भई लगे अतन के बान ॥४५४॥
मारि छलंक रहे अहे पारि रहे द्वै चैन ।
ये न नैन हैं रावरे लसत मैन के ऐन ॥४५५॥
मेरो ही तो धाम है तो ही मेरो धाम ।
ये भेदन तें मोहि ह्वै नख-खत वेदन स्याम ॥४५६॥
ऐसे चंचल जगत गत देखे सोधि न कोइ ।
मनु विधि काढ़े दृग-तुरग सुछवि-पयोधि बिलोइ ॥४५७॥
सुरत निसानी गात तकि सकुचत नहिँ समुहात ।
चरवाही जानो करो वेपरवाही बात ॥४५८॥
मुरछि परी हाहा खरी यह जागी नहिँ नीठि ।
कहि आली काली दस्यौ नहिँ लागी हरि-दीठि ॥४५९॥
इतै चितै तूं कत खरी नहदी मिहदी नाहिँ ।
वे लोयन कोयन अरी प्रतिबिंबित दरसाहिँ ॥४६०॥
यह सुनि जगपति पाय को अचरजवारी बात ।
मो मन भूलो मांग मैं सूधेहू मग तात ॥४६१॥
सौरभ सुमन बरन लगे जरन उसीर पटीर ।
जेठ मास जलजंत्र तें झरन दहन-कन बीर ॥४६२॥
घरहाइन की घेरु मैं रही गए घनस्याम ।
नैनन सैनन बैन कै बार बगारयौ बाम ॥४६३॥
गई दावरी बावरी आई आतुर न्हाइ ।
तपनि तरलनैनी सही मोहित हफनि मिटाइ ॥४६४॥
हरि-हिय भृगु-पगु-रेख री बादि विदित सब ओक ।
यह सुगरत परिगो अरी गड़त गड़त कुच-नोक ॥४६५॥
मान विना सनमान नहिँ है यह लोक-प्रमान ।
तेरे जान सयान है मेरे जान अयान ॥४६६॥

काहू विधि हिमकर लहै या मुख समता नाहिँ ।
उहि लखि कमल सुकाहि री अरु यहि लखि विकसाहिँ ॥४६७॥

अधरनि की लखि मधुरई पीय पियूष पराय ।
सरदे कों सरदी चढ़ै दाख दुरै दुख पाय ॥४६८॥

जग जोहन ही के लिये दृगनि दिए करतार ।
मनमोहन - छवि मोहनी सुनी सखिन सों बार ॥४६९॥

और गए कछु दिवस के ह्वैहै लायक केलि ।
बनमाली विकसन लगी रस मैं सुवरन बेलि ॥४७०॥

सासौ बात सुनी न ती सकल सखीन लखी न ।
नहि सपनेहुँ मलीनहीं तन मन प्रीत मलीन ॥४७१॥

आप करहिँ मनुहारि नहिँ वे न तजहिँ वलि रोस ।
इत उत दोसन नेकु दो एकु हमारो दोस ॥४७२॥

हौं तो हौं गोरी खरी तुम कारे जदुराय ।
नहिँ हिरके आवो कहूं या अँग रँग लगि जाय ॥४७३॥

मान किए अपमान पी हीन धरों री माप ।
लाख भरे अपराधहू लखि पूजै अभिलाप ॥४७४॥

सद रद छद रद छद लगे नटि न लजीले वैन ।
वसी रसीले सँग सही कहत नसीले नैन ॥४७५॥

एरी या ती के मुखै पूनो ससि सम जोइ ।
पर यामैं लखि मित्र कों सखि दूनी दुति होइ ॥४७६॥

वाल दरीचे विच लसै नीचे लाल विभाहिँ ।
अनमिष से दुहुँ के नयन लखि अनमिष दरसाहिँ ॥४७७॥

सगरब गरब खिचैं सदा चतुर चितेरे आय ।
पर वाकी बांकी अदा नेकु न खींची जाय ॥४७८॥

कौन कहै वलि अमल से छकित अमल से है न ।
ए न रावरे कमल से चकित कमल से नैन ॥४७९॥

सोक - पुंज सों भरि रही नारि निकुंज निहारि ।
बिलखि गगन लखि सखि कही तोहि दया न त मारि ॥४८०॥
चामीकर चौकी रुचिर जड़ित जवाहिर जाल ।
जगर मगर दुति जगि रही तड़ित छबीली बाल ॥४८१॥
लै चुभकी निकसै धसै बिहँसै अँगनि दिखाय ।
तकि तकि चित चिहुँटै खरी ऐंड़ भरी अँगिराय ॥४८२॥
कलरव करि झुकि सुति लगै रसगाहक चितचोर ।
स्याम बरन सुंदर सुखद कुंजविहारी भौंर ॥४८३॥
लोल नैनि थारे लसैं अमल अमोल कपोल ।
जिनमैं तिल के छल बसैं गोलक स्याम अडोल ॥४८४॥
यौं सोभति सिति कंचुकी सुछवि कुचनि की दून ।
ज्यौं हलवी सीमानि के संपुट गेंद प्रसून ॥४८५॥
चंदहार चंपाकली काहि अली पहिराय ।
फूलनिहूं के हार को भार सहो नहिँ जाय ॥४८६॥
अँखिया अनमिष लेहु लखि चलन चहत घनस्याम ।
निति रहिहो घनस्यामहीं रसबस आठो जाम ॥४८७॥
बिरहदहन लागी दहन धर न धरीक थिराति ।
रहति घरी सी ती भई बूड़ति और तिराति ॥४८८॥
बसन फटे उपटे सुचुक चिबुक ददोरं हाय ।
चिहुँटन सुमन गुलाब कों अब मम जाय बलाय ॥४८९॥
लाल जगहि बाउर करो देहु कहा उर साल ।
रावर सरल सुभाव है लखहु महाउर भाल ॥४९०॥
चलहु सिँगार कहा करो सहज हरो मन मैन ।
ऐसेही नीके लगैं बिन काजर के नैन ॥४९१॥
समुझि भली विधि लखि लली बेलि बली रसछाक ।
भूलि अली न रली करै कनक कली अरु आक ॥४९२॥

जब तें हरी लख्यौ अरी तव तें छरी दिखाय।
घरी घरी घर तें निकरि खरी खरी अकुलाय ॥४९३॥
रुख रूखे भौंहें सतर नहिँ सोहें ठहरात।
मान हितू हरि बात तें धूमजात लौं जात ॥४९४॥
वलि चलि कै अब चाहिए चाह चढ़ो चित वाल।
चिकनाई आई चखनि गई रुखाई लाल ॥४९५॥
अवस अरस उपचार करि करि अब सरस उपाय।
विन मनमोहन के दरस जी की लाइ न जाय ॥४९६॥
सखि लखि नंदकिसोर सिर मोर मोर पर है न।
मनु सुमनसपति अकस सों सहस किए हैं नैन ॥४९७॥
चैत धसी जलधार मैं राध लसी ससि संग।
सीत वसी वलि जेठ मैं नवनारिन के अंग ॥४९८॥
भरे नेह सौंहैं खरे निपट रहे मलिनाय।
ल्याय पीत पट कों अहे अरुनारे लै जाय ॥४९९॥
निकसि परसि कल कूकि कै तनहिँ दिए करि खाक।
गिले पिए न दरे मरे तम काकोदर काक ॥५००॥
पी पोछे यह सुनि लगे ही सर तीछे मैन।
हार डारि हेरन लगी तरुनि तिरीछे नैन ॥५०१॥
कुंद मघा की सखि सुभा दसन निवारी जाय।
सांझ कि वेला रस पगी लगी मोगरे आय ॥५०२॥
को कहि गारे लेय री को पारे यह लिंव।
अधर निकारे विंदु नहिँ ये तारे प्रतिविंव ॥५०३॥
हौं चलि देउँ दिखाय कत चकित चितै चहु ठोर।
तेरे सँग वारी गई वा वारी की ओर ॥५०४॥
सुनि सखियनि तें आंगने खरे पीत पट आय।
धाइ अनल की लपट सी रही हिए लपटाय ॥५०५॥

उठि मिलि अति आदर कियौ नेह नह्यौ कहि बैन।
मान तिरोहित नहिँ रह्यौ नकि गति राहित नैन ॥५०६॥
जोय न लीजै आरसी गोयन हाली हाल।
लोयन कोयन रावरे लोयन लाली लाल ॥५०७॥
मेरे चख चय सुख लहे ती तेरे तकि भाग।
छल गुंजनि की माल के झलकत पी अनुराग ॥५०८॥
निरखि विमल पानिप परयौ नाभी नद ललचाइ।
अब किमि निकसि सकै अरी मीन भयौ मन जाइ।५०९॥
लखि हरि रुचि गुरु जन सकुचि भई पिछौंड़ी नीठि।
दई निरदई नहिँ दई ईठि पीठि मैं दीठि ॥५१०॥
स्याम तिहारे सीस की सौंह कहौं सति बानि।
चित्रसदन मैं ती परे पलक परे पहिचानि ॥५११॥
पेखि चंदचूड़हि अली रही भली विधि सेइ।
खन खन खोटति नखन छद न खनहुँ सूखन देइ ॥५१२॥
जो अतुलित गति कान्ह की सो भुलि तजत न नारि।
कत दृग मुकुलित करति हो प्रफुलित गात निहारि ॥५१३॥
भए कठिन ये ठग नए नय न नयन के राज।
रूप-उदधि मैं लागि कै मारत लाज-जहाज ॥५१४॥
निसि अँधियारी मैं कहो क्यौं प्यारीहि मिलाइ।
मुखमयंक की दिनहुँ मैं जाइ उँज्यारी छाइ ॥५१५॥
लंगर कों जीते जु करि रति-संगर जुग जाम।
तातें अंग रहे भरे सुनि मुसुकानी वाम ॥५१६॥
त्राहि चाहि चित रीझिहो सुनिए नंदकिसोर।
निसि दिन भीर लगी रहै आनन तीर चकोर ॥५१७॥
झँकि उझकै झांकै उझकि लगी झरोखे ऐन।
वाम भई छन जोति सी नहिँ छन ईछन चैन ॥५१८॥

जब लगि जाय बराय कै ल्यावों केतक फूल।
तब लगि न्हाय दुकूल कों सखि सुखाय या कूल ॥५१९॥
सीतल मंद सुगंध चलि अनिल अखिल दुख देहिँ।
चैत चैत को चंद अलि चित चेतहि हरि लेहिँ ॥५२०॥
नैन बाल मानैँ न री हारी कोरि सिखाइ।
वा मुसुक्यानि सिता निमित दौरि जाहिँ ललचाइ ॥५२१॥
बरसाइत को बार है बर पूजन मिसु लाल।
सुख बर बरसाने चहैं बरसाने की बाल ॥५२२॥
चंचलता वे चखन सी झषनहुँ माहिँ हरी न।
ऐसे कोन हरीन हैं जासु छलंक हरी न ॥५२३॥
सपने मैं अपने निकट आए राति रसाल।
लपटत हीं पट जगि उठी समुझि उठै नटसाल ॥५२४॥
केलि-भवन कों गवन लखि चतुर सखी मुसुक्याय।
पियहि उढ़ायौ पीत पट सित पट तियहि उढ़ाय ॥५२५॥
पाय लगों छोरो न अब हायल नंदकुमार।
छूटतहीं घायल करैं छरकायल ये बार ॥५२६॥
छमा छमा सी छवि छनी वनी छमासी बाल।
छपे छपाकर ल्यायहों छपा छबीले लाल ॥५२७॥
अली गली मैं कर धरे कही हरे हँसि नाहिँ।
सो ही ते नहिँ ऊतरी चढ़ी पूतरी माहिँ ॥५२८॥
तपन-ताप तें चौगुनी बिरह-ताप सरसाइ।
वन उसीर चंदन छुहे छनहुँ न तन सियराइ ॥५२९॥
यौं बाजूबँद मैं भली झवियनि झुमका झोंरि।
कनकलता मानहुँ फली मरकत मनि की घोंरि ॥५३०॥
चाह तिहारी आह सों कुंजविहारीलाल।
हेम-माल सी होति है हेम-माल सी बाल ॥५३१॥

नैन तिहारे नैन मैं मैं न कहों कहै मैन।
उतरत ह्वै राते भए इत आते समुहैं न ॥५३२॥
बनी सुबरनी उर बसी पहुँची है चलि लेहु।
जब मोहन माला बनै मोहि सुबनिता देहु ॥५३३॥
अरुन नयन हैं रावरे अरुन कालि सी पाग।
आज कहो कासों लरे खरे भरे नख-दाग ॥५३४॥
वाह वाह नीकी बनी परतहिं नेकु निगाह।
डारि दियौ चित चाह मैं तो ठोढ़ो की चाह ॥५३५॥
पीरी पाती पावते पीरी चढ़ी कपोल।
कारे बदन बिलोकि रे मुदिता भई अबोल ॥५३६॥
अँधियारी जामिनि खरी दुति लहि जगि जगि जाय।
लखि दामिनि घनस्याम के उर मे लगि लगि जाय ॥५३७॥
निरखि कनखियनि चित कहति नित के आज पिया न।
सीलभरी अँखियनि नमित मौहैं चहति तियान ॥५३८॥
लाज भरी अँखियानि मैं चाह भरी चित मांह।
बिबस परी है सुंदरी खरी सखीजन जांह ॥५३९॥
सुखद सरद की कौमुदी भूषन भूषि जराइ।
सुबरनबेली सी अली चली नबेली जाइ ॥५४०॥
ढिग हिरकी घर की बड़ी पी आए ससुरारि।
नार नवाए लाज मैं जाति गड़ी नव नारि ॥५४१॥
जीते चारु चकोर रुचि सुचि मनसिज सर पैन।
थारे अनियारे लसैं रतनारे ये नैन ॥५४२॥
हों पुकारि कहि देति हों मान न मानैं लोइ।
हुकुम भवानी को भयौ ज्वारि न भानै कोइ ॥५४३॥
बंधुजीव लागैं मलिन भागैं बिब प्रवाल।
बाल अधर कों लाल लखि नलिन कुसित कुस लाल ॥५४४॥

छकी अछेह उछाह मद तनक तकी यहि घांह।
दै छतिया छद छोभ हद गई छुवावति छांह ॥५४५॥
कोक-कला सी केलि कै सुरस-मई सरसाय।
गई निसा न निसा भई बेलि रही लपटाय ॥५४६॥
जब तें सुनी अनंग सी सूरति नंदकुमार।
तब तें रूप तरंग मैं पैरि न पावति पार ॥५४७॥
भलो कियौ तौ जौ पियौ चलो इहां ते नाह।
हा सब सखियां पेखिहैं आसव अँखिया माह ॥५४८॥
सजनी सज नीले बसन भूषन भूप न अंग।
रजनी रज नीकी चली अली अली लै संग ॥५४९॥
पवन परस तें झूलते बर अँचरो फहराय।
चाहिं सकुच हिय तिय खरी सकुच भरी मुसुक्याय ॥५५०॥
न्हाय बसन पहिरन लगी बस न चल्यौ चित दोर।
खाय मरोर खड़े गिरयौ गड़े कड़े कुच कोर ॥५५१॥
जऊ किए रुख रूखो कहति कपट के वैन।
तऊ नेह घट नहिँ दुरै प्रगट कहैं मुख सैन ॥५५२॥
यौं स्रुतिभूषन भास मुख कलित मयूखन जोइ।
मनहु पियूषन कों घिरे ससि कों पूपन दोइ ॥५५३॥
कहत जो सोति सोहाग है तो जावक रुचि चाहि।
बजहिँ न ये विछिया कहैं छिया छिया सुनि ताहि ॥५५४॥
कत मुकुरै मो तें दुरै नेह न नेसुक थोर।
कहत तो मतन रोम ये खरे भरे दृग नीर ॥५५५॥
उचके कुच उघरे चितै ढँपि आंचर सकुचाइ।
मृगसावकनैनी निरखि जावक मृदु मुसुक्याइ ॥५५६॥
सो न कहो बूझति जु हों बात वदो वलि आन।
कहो सैन की जो कहैं सो न नैन लगि कान ॥५५७॥

चंद्रकला कै चंचला कै चंपे की माल।
कै चामीकर की छरी सुछवि भरी कै बाल ॥५५८॥
छनपरभा के छल रही चमकि मार-करवार।
वीरवधू के ब्याज री दहकत आज अँगार ॥५५९॥
वे नैनन से आसवी मैं न लखे घनस्याम।
छकि छकि मतवारे रहैं तव छवि मद बसु जाम ॥५६०॥
रोम तने तन मैं घने स्वेदकने घन माथ।
नीके नारी देखिए थरथरात हैं हाथ ॥५६१॥
क्यों न अँगारे देत रे मो मन जानि ससोक।
आंच तोहि नहिं पांच की तूं है साच असोक ॥५६२॥
मोहि मनावन को कहो क्यौं बलाय ल्यौं लाल।
दहिगो ती जी हेरि ही बीती मोतीमाल ॥५६३॥
घनगनवेली वनवदन सुमन सुरति मकरंद।
सुंदर नायक ओरवन दच्छिन पवन सुछंद ॥५६४॥
रहति चढी चित चाय सो लोचन बंक नचाय।
अँगनि बँचाय भली गली चलै जो लंक चलाय ॥५६५॥
कारी सारी जनि पहिरि हेरि पयोधर वोर।
मग ही मे ससि ऊगिहै चलत प्रभंजन जोर ॥५६६॥
पूस सकारहिं कहि कोऊ सांच मानिहै नाहिं।
कहा कहों मुख इंदु पै ये स्रमबिदु सोहाहिं ।५६७॥
सुवदनि निचलाई निसा विकलाई लखि लेइ।
तजि मचलाई लाल कों गहन कलाई देइ ॥५६८॥
आनि इतै छन वारि दे सखि घनसार मसाल।
कौन काज तहँ राज जहँ सुवन्न वदन दुति जाल ॥५६९॥
वैन करत हैं सैन सों चैन ऐन घनस्याम।
बने पैन सर मैन के नैन जैन जग बाम ॥५७०॥

लगे सोम कर तोम सर भई हिए वर घाइ।
कूक काकपाली दई आली लाइ लगाइ ॥५७१॥
बिसद बसन मेहीन मैं ती - तन - नूर जहूर।
मनु बिलूर फानूस मैं दीपै दीप कपूर ॥५७२॥
किहि विधि जाउँ बसंत मैं बिकसित बेलि निकुंज।
मो मुख लखि चहुँ ओर तें झुकत झपत अलिपुंज ॥५७३॥
गंधवाह सीरे करैं हीरे ताप अछेह।
दई ताहु पर निरदई दाहत देह अदेह ॥५७४॥
बलि तिय हिय तें राग बढ़ि अधरनि रँग सरसाइ।
विद्रुम बिंब बँधूक की आभहि रहेउ बढ़ाइ ॥५७५॥
बाल न चमकै चंचला है करबाल अनंग।
जलद-जाल घाते नए माते काल मतंग ॥५७६॥
बनी बदन तें झरत हैं ये सुमना के फूल।
धनि सुसीलता मूल धन लगन धनी अनुकूल ॥५७७॥
दलन लगे हरि नारँगी गुरजन बीच निहारि।
चख चलाय लै गागरी चली नागरा नारि ॥५७८॥
ससि सो गौने जात कत यह आनन - मलिनाइ।
इत उत हेरति हो कहाँ हीरो गयौ हिराइ ॥५७९॥
स्वेद भरे तनसिज खरे करज लगे गन ठाम।
सुथरे कच बिथुरे अरी लरी ललन तें वाम ॥५८०॥
अरुन चुनीन जड़ित ललित छिगुनी छोर सभाग।
लसत छला के छल लला यह ललना अनुराग ॥५८१॥
पट ना देरी लख न ऊ का समीर सुख देत।
करनाटक नैपाल की चढ़ि चलि कंत - निकेत ॥५८२॥
भोर चले सुनि सोर मन बाल भई बेताब।
मालिनि बनमाली गले मेली माल गुलाब ॥५८३॥

चुगि चितवनि चारा परचि गहे ढिठाई आय।
हांसी फांसी परि सकै मन कुलंग न उड़ाय॥५८४॥
पी चूमे परबाल लखि बालहि गुरजन साथ।
कचनि परसि बाहूँ धरे कुचनि खरे पर हाथ॥५८५॥
जब वाके रद की चिलक चमचमाति जिहि कोति।
मंद होति दुति चंद की चपति चंचला-जोति॥५८६॥
आज बनी औरै प्रभा उर कपोल पल भाल।
औरै नयन पयन वयन मयन कियौ नँदलाल॥५८७॥
गजराजनि के सीस चढ़ि निपट झुमाए वार।
ते अब तेरे गर परे झूमत मुकुताहार॥५८८॥
ईठिहु नीठि न लखि सकैं ढीठि ढिठाई ल्याइ।
गुरजन दीठिहिँ पीठि दै रही सु दीठि नचाइ॥५८९॥
विरह आंच नहिँ सहि सकी सखी भई बेताब।
चनकि गई सीसी गयौ छिरकत छनकि गुलाब॥५९०॥
त्रिभुवन सुखमा सार लै सोम सलिल सों सानि।
रवि ससि सांचे ढारि विधि रचे कपोल सुजानि॥५९१॥
लखि कपास को नास री विलखि न धर हरि धार।
विसनी अजहुँ पलास हैं सखि सूखे कासार॥५९२॥
सीसी करि मुरि मुरि गई जिन पहिरत तूं बाल।
चूर चूर चित ह्वै गयौ तिन चुरियनि मैं लाल॥५९३॥
इक तो हायल रहत हों मायल ह्वै वा चाय।
ता पर घायल कै गई पायल बाल बजाय॥५९४॥
कच चिकने मेचक चटक चारु चिलक चितचोर।
छहरि रहे छवि छाय छुटि छुए छवा के छोर॥५९५॥
करत करी कर करभ कों अरु कदली सम तूल।
जो कवि तेरे जानु सों सो अजानु मति भूल॥५९६॥

पी पिक से निकसे बयन उर उकसे कुच दोइ।
बलि बिकसे लोने नयन अब चिक से लगि जोइ ॥५९७॥
हरषित भई गई भयौ अधिक वधिक तें मार।
नहिं पायौ बनजा रतन लगे सिँगार अँगार ॥५९८॥
कहति सखी सों मुद भरी हेरि हरी की आस।
या निसि बन मैं सदन तें दुगुन दिखात प्रकास ॥५९९॥
गरज भरे बिलसत सरस सुछन छटा छहराइ।
आए हैं घनश्याम री चाहि अटा चढ़ि जाइ ॥६००॥
बलि सुनिए गुनिए कहा कहत कहत मृदु बैन।
नेह रचौहैं अब भए तेह नचौहैं नैन ॥६०१॥
आधी निसि नव पाहरू जिन आवै या गैल।
किमि बाचै दिन चारि तें नाचै एक चुरैल ॥६०२॥
अलि वेचन चलिहैं चलो सफल करहिँ रसनाहिँ।
जो रस गोरस मों भलो सो रस गोरस नाहिँ ॥६०३॥
बलि कुंजत हैं कोकिले गुंजत हैं अलि-पुंज।
तने बितान लतान के घने बने बन-कुंज ॥६०४॥
मंजुल वंजुल मंजरी दरसाई जदुराय।
पीर भई ही सुधि गई तई मरोरे खाय ॥६०५॥
केती हों बरजति रहों निचले नेकु रहैं न।
हरि तन पानिप पी अरी भले पियासे नैन ॥६०६॥
दरसि निसा यह दरस की दरसहि लागि उताल।
चलो जाति सुवरन वली लोने चंद मसाल ॥६०७॥
कामिनि कानन कान है मार कला रस हास।
दृग मतवारे हित कनक कुंभनि ढारे पास ॥६०८॥
दरपभरी दरपन लिए ईठि खरी मुसुक्याय।
दृग-कोरन उरजन लखै गुरुजन दीठि बचाय ॥६०९॥

बलिहारी उत ही रहो हाथ गहो जनि नाथ।
हाथ हमारे केत हैं देत तिहारे हाथ ॥६१०॥
अब झकि झाँकि झमकि झुकी उझकि झरोखे ऐन।
कसे कंचुकी जरकसी लसी बसी ही नैन ॥६११॥
गोए गोयन जाहिँ सो धोए ते न धोवाहिँ।
भरी लाल लाली जु हैं लोयन कोयन माहि ॥६१२॥
तो अब लों मुरलीन को को कब लों सिख देइ।
लखि मुरली मृदु बोल सों अधरनि के रस लेइ ॥६१३॥
पहुँचत द्वार गली अली पहुँचि कही बृजनाथ।
कढ़त अँगनवाँ तें खसे कसे कँगनवाँ हाथ ॥६१४॥
विधि बाजीगर निरमई तासों कुच ठहराहिँ।
तो कटि हेरनहार री परसहु पावत नाहिँ ॥६१५॥
रंग-भवन प्रमुदित गई कौनि भई गति हाय।
सेजहि जोहि तई दई कई असम सर घाय ॥६१६॥
रिजु वृषभानुसुता लता तेजमान वृष भान।
तुमहि कहो कैसे सहो सुंदर स्याम सुजान ॥६१७॥
वलि सब भाँति अलीक हो लीक कपोलन पीक।
अरु अलीक पैं रावरे जावक लीक अलीक ॥६१८॥
लै लोयन लोयन लगी चितवनि लोयन लाय।
तरुनि सिकारी लै गई मन लोयनहिँ लगाय ॥६१९॥
ज्यौं ज्यौं रुखी कढ़ति है बालवदन तें बात।
त्यौं त्यौं प्रीति प्रतीति तें प्रीतम-चित्त चिकनात ॥६२०॥
करि सिँगार सजि आभरन तजि रसना अरु हार।
रजनी-मुख सजनी चली अली लगे सर मार ॥६२१॥
मो दिसि हेरि न हेरि री तजि सतरौहैं बैन।
रंच उचौहैं करि इतै चितै निचौहैं नैन ॥६२२॥

भाभी बरसाने गई गई मायके माइ।
सजनी सूने सदन मैं रजनी नींद न आइ ॥६२३॥
स्याम इहाँ नीठि न रुकै ढीठि तिहारी दीठि।
बाम मनावो सुचित ह्वै कहि मुसुक्यानी ईठि ॥६२४॥
कुटिलाई तजि जानती तूं न सुधाई काम।
सुनि याही सों गुनि धरे नाम बिधातैं बाम ॥६२५॥
करन करत दिल कल न तिल सुमन समीरन चाल।
सिथिल भई नारी चले कुंजविहारीलाल ॥६२६॥
परी परी कै बीजुरी अरी खरी जु निहारि।
नरी हरी छबि की छरी मरी डरी यह नारि ॥६२७॥
मुखहि अलक को छूटिबो अवसि करै दुतिमान।
बिन बिभावरी के नहीं जगमगात सित भान ॥६२८॥
चारु चांदनी चैत की चमचमाति तन भाति।
कौनि अली उघरति दुरति चली गली मैं जाति ॥६२९॥
छनक दईमारी अरी कोइल ले इतराय।
मृदुबैनी बोलन चहै अब मुसुक्यानि दिखाय ॥६३०॥
बिकल परी बरि रहि खरी अरी जगावति काहि।
न जर नजर यह स्याम की नजर करी अब याहि ॥६३१॥
बिबरन आनन अरि गनी निरखि भँवारे भोर।
दरकि गई आंगी नई फरकि उठे कुच-कोर ॥६३२॥
घेरु सखी जन लखि ललै रोम उठे थहराय।
तुरित लगी बीजन झलैं नागरि नीर भिजाय ॥६३३॥
बिरह-बरी सकुचनि भरी रहति खरी या गैल।
पल न लहति कल है अरी छरी छबीले छैल ॥६३४॥
मान मुधा तजि बाल बलि बोलि खोलि मुख ऐन।
अधर-सुधा लालच भरे लाल लालची नैन ॥६३५॥

आधी निसि लौं सीतकर रह्यौ वगारे लाइ।
अहह दई आधी गई तारे गनत सिराइ ॥६३६॥
सखि नख-रेख असेष लखि विलखि कियौ तिय तेह।
परत पाय पिय लाय हिय विहँसि उठी स-सनेह ॥६३७॥
निसि जागे रागे नयन झूमत आए भोर।
छिगुनी छोर छला लला लखि रहि खाय मरोर ॥६३८॥
पहिरे नगगन आभरन नेहनही नँदलाल।
रंगमहल मैं वरि रही दीपमाल सी वाल ॥६३९॥
भौंह उचै अँखिया नचै चाहि कुचै सकुचाय।
दरपन मैं मुख लखि खरी दरप भरी मुसुक्याय ॥६४०॥
ये चोखे कोयन लगैं कोय न मनसिज वान।
ये लोयन लखि नहिँ लगैं लोयन लोयन आन ॥६४१॥
मनसिज दीरघ ताप री देत तपा लहि वीर।
ता पर हार हरे हरे हरहिँ हरी विन धीर ॥६४२॥
पूस वरुन दिसि कों अरुन ज्यों ज्यों अथवन जात।
नवल वधू को मुख कमल त्यों त्यों वलि कुँभिलात ॥६४३॥
छवा छुए छहरत भली वलि वेनी छवि देइ।
सुर गिरि ते चलि अलि अली कमल कली रस लेइ ॥६४४॥
मावव मैं माधव नहीं माते माधव पुंज।
मनसिज निज डेरो कियौ मंजुल वंजुल-कुंज ॥६४५॥
हरिहि उपर सासी कसी मान मरोरन मारि।
अधर-सुधा सी है वसी खासी हांसी नारि ॥६४६॥
सुमन सिलीमुख धनुष लै कोपि हन्यौ झखकेत।
धन अतुल छोभित भई तकि अतूल वन खेत ॥६४७॥
ढीले भरसीले किए अँगनि छवीले मैन।
प्रगट भली रस-रँग रली कहत रँगीले नैन ॥६४८॥

कौनि अँधेरी राति मैं जाति चली चहि आइ।
पग पग पर जाके चले जगमग मग ह्वै जाइ ॥६४९॥
कहन हुतो सो कहि चुकी अब न दुरति रति बीर।
रस की मसकी कंचुकी कहत मरगजे चीर ॥६५०॥
सहसा परि पछताय जनि हिय धरि ना बिपरीत।
ए री लालहि ल्याय दैं करि मेरी परतीति ॥६५१॥
हिय लगाय सिसु पिय रह्यौ मुदित खेलाय दुलारि।
निरखि परोसी दिसि पुलकि मृदु मुसुक्यानी नारि ॥६५२॥
धकधकात ही गात मैं बन कन बाढ़ी स्वास।
बापा धाय गई गई नहिँ पापी पी पास ॥६५३॥
खरी निदाघी दुपहरी तपनि भरी बन गेह।
हहा अरी यह कहि कहा परी थरहरी देह ॥६५४॥
नई लगन बन सों नहीं कुंज-भवन कों जाति।
सखि लखि दुति दूनी भई यह पूनो की राति ॥६५५॥
भोरहि चखनि चकोर कों धनि धनि दियौ अनंद।
चाहि कियौ नँदनंद मुख चंद अहो सुखकंद ॥६५६॥
कटी कटीली कांति पै लटी लटी अति जाय।
जटी जटी अरि हरि घटी घटो सुदीपति जाय ॥६५७॥
केलि कलानि बिना भरी वेलि बिथानि सकेलि।
बीर बली अबली करी दृगनि अँधेरी फेलि ॥६५८॥
दिनहिँ देखि इत हौं उतै अलप ननद को सैन।
मेरी तलप रतौंधिहे राखी भूलि परै न ॥६५९॥
कबरी तर झमकन भरी कामिनि ग्रीवां भाय।
मनु कादंबिनि मेह-झर दामिनि दमक दिखाय ॥६६०॥
चतुराई लिक चपलई धिक धिक कारे काग।
तोहि अछत निधरक रहैं कूकत पिक कुल बाग ॥६६१॥

मुकुतादिक गथ सों गथी मनमथ रथ सुविसेखि।
मति न थकी कहि कौन की गति नथ की यह देखि ॥६६२॥
गोप-लली कों लखि अली चली दली सी आय।
छली रली करि लाल री भली गली मैं पाय ॥६६३॥
नीम कपास विकास पै विरमि करै कल गान।
कत मधुकर मधु माधवी मधुर करत नहिँ पान ॥६६४॥
तकि तकि तन मुसुक्याति है सुनि बानी रति-केलि।
कोने में चलि जाति है चलि सोने की वेलि ॥६६५॥
सुनि सजनी सुरभान है अति मलान मतिमंद।
पूनो रजनी मैं जु गिलि देत उगिलि यह चंद ॥६६६॥
टीको कच ठग मांग मग मो मन राही पाय।
इक दिन मैं इक रैनि मैं लूटत धीर मताय ॥६६७॥
ललचाने लखि भीर मैं लालहि नागरि बाल।
बोरि सखी सारी दई दोरि सु घोरि गुलाल ॥६६८॥
मनिमय भूषन छोरहूं दीप बुझायहुँ स्याम।
वा नव धनि के वदन सों रहत उँजेरो धाम ॥६६९॥
मुरझानी नव वेलि सी ती जमुना के तीर।
निदति वीर प्रवाह कों खरी भरी दृग नीर ॥६७०॥
विन पर उड़त रहैं अहे कौन कहे पतियाय।
इन नैनन खंजनि लिए मो मन उड़त वझाय ॥६७१॥
नखन मलिन रुचि होति री नखन नलिन दुति वाल।
अनख होत लखि सौति जी सनख होत ही लाल ॥६७२॥
जो जसुदा को लाड़िलो नै सो री जानै न।
वन मैं वरजोरी करै वरजो री मानै न ॥६७३॥
मसकी नीली कंचुकी कुचनि भली छवि जोइ।
विकसति कली गुलाब की अली मनो ये दोइ ॥६७४॥

आज अहेरी नैन ये भए अहैं री वीर।
हरि मन करसायल किए घायल चितवनि तीर ॥६७५॥

ऐसी है सुकुमारता वा ती मैं जदुराय।
मिहँदी-रँग के भार सों पाय सकै न उठाय ॥६७६॥

मृगमद तिलक सुभाल की झाईं झांकि कपोल।
वाल कियौ नँदलाल पै लाल लाल दृग लोल ॥६७७॥

छपे छपाकर चलि चहो वैसी खानि तिया न।
कान कुहू हू मैं वुहू वारन देय दिया न ॥६७८॥

अब तौ दिन रज के रही विरह बरहि की गाथ।
सुनि सजनी सुख तौ गयौ मनभावन के साथ ॥६७९॥

काहि खोलिए यह हरी कैसे खोली जाइ।
नहिँ नीली चोली परी झलक अलक की आइ ॥६८०॥

तव लगि ललहि तचाय ले विधु मचाय ले दूंदि।
जब लगि यह ललना रही घूंघट मैं मुँह मूंदि ॥६८१॥

विरह-विकलता तें रह्यौ वालवदन पियराइ।
सुनत अवाई लाल की गई ललाई धाइ ॥६८२॥

एक वली मैं वहु दली विदित विधातैं कीन।
चकित अली इक पात मैं त्रिवली चाहि नवीन ॥६८३॥

कलित अली नभचर लली लखहु भली हरसोग।
वलित वली वर तें तली ललित रली के जोग ॥६८४॥

जौ रंग न मैलो करो अंगन नेह लगाय।
तौ वलि जाय उताल दौं लाल वसन कौं ल्याय ॥६८५॥

झलके पग वनजात खे झलके मग वन जात।
अहह हुईं जलजात से नैननि तें जल जात ॥६८६॥

भौंहनि के वीचे न है यह मेचक तिल नारि।
मनु दृग मृग पै मंद है खींचे द्वै तरवारि ॥६८७॥

कुंज रूख दल सुख री खरी खरीहु न पाइ।
निरखि ऊखरी ऊखरी खरी खरी बिललाइ ॥६८८॥
इहां सुपास कहां अरे स्वेद भरे हैं वास।
बात बगारे बास है वा नारे के पास ॥६८९॥
सुनि तो दीपति दीप लखि सिर धुनि धुनि जरि जाय।
सुदुति निहारे चांदनी भूलि पछारे खाय ॥६९०॥
नीवी बँधनि लसनि भली तकनि निचोही राज।
सब दिन सों नीकी बनी कसनि तनी की आज ॥६९१॥
यह अटपट कैसे पटै लटपटाति रस नारि।
इत आए मनु हारि उत करिबे हित मनुहारि ॥६९२॥
चख खींचे नीचे चढ़ो भली भला कहि रीति।
रंचक ऊंचे चाहि लो चंद चलाकहि जीति ॥६९३॥
दरसन सों परसन न हैं किमि पूजै मन काम।
अब अरविंद चढ़ाइए सुरधुनि धर पर स्याम ॥६९४॥
रंच न देरि करहु सुरुख अब हरि हेरि परै न।
विनय बयन मो सुनि भए सुरुख तरुनि के नैन ॥६९५॥
तनक चितै सजनी इतै बनक बनी बृजराज।
इन कमलनि मो मुख किए दिन रजनी ससि आज ॥६९६॥
निरखि अटारी पर खरी तकत हरी टक लाइ।
सखि लखि प्यारी कों दई सिति सारी पहिराइ ॥६९७॥
कालि सकारे ही चलै सजनी तिनके पास।
इक दिन इक रजनी करैं जिनके नैन प्रकास ॥६९८॥
चहुँकित चकित चितै रही ताप-तई अकुलाइ।
बर तरु मैं सजनी गई रजनी छाप लगाइ ॥६९९॥
ताको वा तरु के तरे सुचित नचत है मोर।
उतरि अपर द्विजगन मुदित ललित मचावत सोर ॥७००॥

हौं बूझ्यो कबरीन सों क्यौं कारी दरसाइ।
कही जु रबि सनमुख रहै सो कारो ह्वै जाइ ॥७०१॥

दरस निसा दरसै नयौ ऊग्यौ राका चंद।
ता सुचंद मैं जगि रहो चंद अहो जगबंद ॥७०२॥

लगन नई बनि ठनि दई हाय गई धन धाय।
छरी अपछरी सी भई सुमन-छरी बन पाय ॥७०३॥

बदन गयौ कुँभिलाय तन मदन कियौ सर-घात।
सदन चलो लिखिकै अलो कूरम केतक पात ॥७०४॥

मोरी सौं जनि मान करि खोरी खोरी खोइ।
सो हिय धरि जो पिय कहै तौ तेरे बस होइ ॥७०५॥

मेरे और कपोल नहिँ अरु मैं हूं नहिँ और।
ईठि आज पो दीठि कों दीठि और यहि ठौर ॥७०६॥

मुख देखन कों पुर-बधू जुरि आईं नँदनंद।
सबकी अँखियां ह्वै गईं घूंघट खोलत बंद ॥७०७॥

बसन लगी चित चातुरो हसन लगी सहसान।
लोचन लागे कान लों लोचन लागे कान ॥७०८॥

मैं प्यारी हों रावरी सो प्यारी नहिँ लाल।
जो चित छोभित करि करै नट मरकट की हाल ॥७०९॥

यह अचरज की बात सुनि को न अली पतियाइ।
दिनहिँ दरसि तम संग लै चली चांदनी जाइ ॥७१०॥

हेरि हरी अचरज भरी कहति खरी करि सोर।
दिनहिँ तरनिजा तीर रो कूजित मुदित चकोर ॥७११॥

इन भृकुटिन की वार कों को न सकै सहि याम।
सहन खरग की धार को है हमरो ही काम ॥७१२॥

जात दिवस जलजात लौं आवत कुमुद समान।
वा आनन भो फिरि नयौ कहियौ कान न जान ॥७१३॥

जोवन लहि विकसित सुमन साजे सुखद सुवास।
केसरि सोभति पदुमिनी लिए अली गन पास ॥७१४॥

आज हियैं चंदन कियौ अभिनंदन नँदनंद।
सखि बंदै इत आनि कै यह जगवंदन चंद ॥७१५॥

सखि हरि राधा संग दिन चले विपिन की ओर।
लखि अनंद सों सोर करि दौरे मोर चकोर ॥७१६॥

जमुना - तीर वलीन पैं वस अलीन मँडराइ।
सुनि चातुर आतुर चली छल वल ईठि उठाइ ॥७१७॥

आगे पाछे मचि रही खिचाखिची की ठान।
बाल जान पी पैं भयौ भान जान मो जान ॥७१८॥

चढ़े पयोधर कों चितै जात कितै मति खोइ।
छन मैं घन रस वरसिहै रहौ वरोठे सोइ ॥७१९॥

चाखन की वा छनि कहा अधर-अँगूर सुवाल।
धरी रहैगी ताक पैं ताक तिहारी लाल ॥७२०॥

चले पिया न अटक सुनी रही जऊ लमुहाइ।
तऊ तिया मुख पैं गई चटक चौगुनी छाइ ॥७२१॥

पिय रुख लखि नागरि सखी कनक कसोटी आनि।
तियहि दिखाई लीक लिकि आई मृदु मुसुक्यानि ॥७२२॥

अली गई अब गरवई इकवाई मुकुताइ।
भली भई ही अमलई जौं पी दई दिखाइ ॥७२३॥

ज्यौं ज्यौं फूकै नव वधू पगी रसोई लागि।
त्यौं त्यौं धूसै दै अहो लगी तमासे आगि ॥७२४॥

तारे तरनि दुरे भए मुकुलित सरसिज होइ।
सखि प्रभात तम-तोम मैं सोम सुहावन जोइ ॥७२५॥

श्री राधा माधव हमैं निति राखो निज छांह।
मेरो मन तुम मैं बसो तुम मेरे मन मांह ॥७२६॥

कलित ललितई सतसई रामसहाय बनाय।
हरि राधाहि नजर दई अजर लई रति पाय ॥७२७॥

(६) वृंद-सतसई

श्रीगुरुनाथ प्रभाव तैं होत मनोरथ सिद्ध।
वन तैं ज्यौं तरु वेलि दल फूल फलन की वृद्धि॥ १ ॥
किए वृंद प्रस्ताव के दोहा सुगम बनाय।
उक्ति अर्थ दृष्टांत करि दृढ़ कै दिए वताय॥ २ ॥
भाव सरस समझत सवै भले लगैं यह भाय।
जैसैं अवसर की कही वानी सुनत सुहाय॥ ३ ॥
नीकी पै फीकी लगै विनु अवसर की वात।
जैसै वरनत युद्ध मैं रस सिँगार न सुहात॥ ४ ॥
फीकी पै नीकी लगै कहिए समय विचारि।
सव को मन हरपित करै ज्यौं विवाह मैं गारि॥ ५ ॥
रागी अवगुन ना गनै यहै जगत की चाल।
देखौ सव ही श्याम कौं कहत वाल सव लाल॥ ६ ॥
जो जाकौं प्यारौ लगै सो तिहिँ करत वखान।
जैसैं विप कौ विप-भखी मानत अमृत समान॥ ७ ॥
जो जाकौ गुन जानहीं सो तिहिँ आदर देत।
कोकिल अंवहि लेत है काग निवौरी लेत॥ ८ ॥
अन-उद्यमही एक कौ यौं हरि करत निवाह।
ज्यौं अजगर भख आनि कै निकसत वाही राह॥ ९ ॥
हलन चलन की सकति है तौ लौं उद्यम ठानि।
अजगर ज्यौं मृगपति वदन मृगन परतु है आनि॥ १० ॥
कहा होय उद्यम किए जौ प्रभु ही प्रतिकूल।
जैसैं निपजै खेत कौं करै सलभ निरमूल॥ ११ ॥

जाही तैं कछु पाइयै करियै ताकी आस।
रीते सरवर पै गएं कैसैं बुझत पियास ॥ १२ ॥
जो जाही को ह्वै रहै सो विहिँ पूरै आस।
स्वाति बूंद बिनु सघन मैं चातक मरत पियास ॥ १३ ॥
गुन ही तऊ मनाइयै जो जीवन सुख भौन।
आग जरावत नगर तउ आग न आनत कौन ॥ १४ ॥
रस अनरस समझै न कछु पढ़ै प्रेम की गाथ।
वीछू मंत्र न जानई सांप - पिटारे हाथ ॥ १५ ॥
कैसैं निवहै निवल जन कर सवलन सों गैर।
जैसैं वसि सागर विषै करत मगर सों वैर ॥ १६ ॥
कीजै समझ न कीजियै विन विचारि विवहार।
आय रहत जानत नहीं सिर कौ पायन भार ॥ १७ ॥
दीवौ अवसर कौ भलौ जासौं सुधरै काम।
खेती सूखे वरसिवो घन को कौनें काम ॥ १८ ॥
अपनी पहुँच विचारि कैं करतव करियै दौर।
तेते पांव पसारियै जैती लांवी सौर ॥ १९ ॥
पिसुन छल्यौ नर सुजन सों करत विसास न चूकि।
जैसे दाध्यौ दूध कौ पीवत छाछहि फूंकि ॥ २० ॥
प्रान तृषातुर के रहैं थोरे हूं जलदान।
पीछैं जल भर सहस घट डारे मिलत न प्रान ॥ २१ ॥
विद्या धन उद्यम विना कहौ जु पावै कौन।
विना डुलाए ना मिले ज्यों पंखा की पौन ॥ २२ ॥
वनती देख वनाइयै परन न दीजै खोट।
जैसी चलै वयार तव तैसी दीजै ओट ॥ २३ ॥
ओछे नर की प्रीति की दीनी रीति वताय।
जैसे छीलर ताल जल घटत घटत घट जाय ॥ २४ ॥

अन - मिलती जोई करत ताही कौ उपहास।
जैसैं जोगी जोग मैं करत भोग की आस ॥ २५ ॥
बुरे लगत सिख के बचन हिए विचारौ आप।
करुवे भेखज बिन पियै मिटै न तन कौ ताप ॥ २६ ॥
बड़े बड़न को दुख हरत पै न नीच यह थाप।
घन मेटत पै ना सरित गिरवर ग्रीषम ताप ॥ २७ ॥
गुरुता लघुता पुरुष की आस्रय बसतें होय।
करी बूंद मैं विध्य सौं दर्पन में लघु सोय ॥ २८ ॥
रहे समीप बड़ेन के होत बड़ो हित मेल।
सब ही जानत बढ़त है वृच्छ बराबर बेल ॥ २९ ॥
उपकारी उपकार जग सबसों करत प्रकास।
ज्यों कटु मधुरे तरु मलय मलयज करत सुबास ॥ ३० ॥
होय बड़ेरु न हूजिए कठिन मलिन मुख रंग।
मरदन बंधन छति सहत कुच इन गुननि प्रसंग ॥ ३१ ॥
कहूं जाहु नाहिन मिटत जो विधि लिख्यौ लिलार।
अंकुस भय करि कुंभ कुच भए तहां नख मार ॥ ३२ ॥
विधि रूठै तूठै कवन को करि सकै सहाय।
बन दव भय जल गत नलिन तहँ हिम देत जराय ॥ ३३ ॥
प्रेम पगत बरजी न क्यौं अब वरजत बेकाज।
रोम रोम विष रमि रह्यौ नाहिन बनत इलाज ॥ ३४ ॥
फेर न ह्वैहै कपट सों जो कीजै ब्योपार।
जैसैं हांड़ो काठ की चढ़ै न दूजी वार ॥ ३५ ॥
करियै सुख कौं होत दुख यह कहु कौन सयान।
वा सौनै कौं जारियै जासों टूटै कान ॥ ३६ ॥
नैना देत बताय सब हिय कौ हेत अहेत।
जैसैं निरमल आरसी भली बुरी कह देत ॥ ३७ ॥

अति परचै तैं होत है अरुचि अनादर भाय।
मलयागिरि की भीलनी चंदन देत जराय ॥ ३८ ॥
सो ताके अवगुन कहै जो जिहिं चाहै नाहिं।
तपत कलंकी विष भरयो विरहिन ससिहि कहाहि ॥ ३९ ॥
सुखदाई ए देत दुख सो सव दिन कौ फेर।
ससि सीतल संयोग में तपत विरह की वेर ॥ ४० ॥
विधि के विरचे सुजन हूं दुर्जन सम ह्वै जात।
दीपहि राखै पवन ते अंचल वहै वुझात ॥ ४१ ॥
जासों जैसौ भाव सो तैसौ ठानत ताहि।
ससिहि सुधाकर कहत कोउ कहत कलंकी आहि ॥ ४२ ॥
आप वुरे जग है वुरौ भलौ भले जग जानि।
तजत वहेरा छांह सव गहत आंव की आनि ॥ ४३ ॥
सौ जु सयाने एक मति यहै कहावत सांच।
कांचहि पांच कहै न कोउ पांचहि कहै न कांच ॥ ४४ ॥
भले वुरे सव एक से जौ लौं वोलत नाहिं।
जान परतु हैं काक पिक ऋतु वसंत के माहिं ॥ ४५ ॥
भाव भाव की सिद्धि है भाव भाव में भेव।
जो मानौं तो देव है नहीं भीत कौ लेव ॥ ४६ ॥
निरफल स्रोता मूढ़ पै कविता वचन विलास।
हाव भाव ज्यौं तीय कै पति आंधे के पास ॥ ४७ ॥
भले वुरे जहँ एक से तहां न वसिए जाय।
ज्यौं अन्यायीपुर विकै खर गुर एकै भाय ॥ ४८ ॥
न करि नाम रँग देखि सम गुन विन समझे वात।
गात घात गो दूध तें सेंहुड़ केते घात ॥ ४९ ॥
विन गुन कुल जाने विना मान न करि मनुहारि।
ठगत फिरत सव जगत कौं भेष भक्त कौ धारि ॥ ५० ॥

हित हूं की कहियै न तिहिँ जो नर होय अबोध।
ज्यौं नकटे कौं आरसी होत दिखाए क्रोध॥ ५१॥
अति अनीति लहियै न धन जो प्यारौ मन होय।
पाए सोने की छुरी पेट न मारै कोय॥ ५२॥
मूरख कौं पोथी दई बांचन कौं गुन गाथ।
जैसैं निर्मल आरसी दई अंध के हाथ॥ ५३॥
मधुर बचन तैं जात मिट उत्तम जन अभिमान।
तनकि सीत जल सों मिटै जैसैं दूध उफान॥ ५४॥
जासों रच्छा होत है ह्वै ताही सों घात।
कहा करै कोऊ जवै वारि ककरिया खात॥ ५५॥
सबै सहायक सबल के कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग कौं दीपहि देत बुझाय॥ ५६॥
कछु बसाय नहिँ सबल सों करै निबल पर जोर।
चलै न अचल उखारि तरु डारति पवन झकोर॥ ५७॥
सबै समझ कै कीजियै काम वहै अभिराम।
सैंधव मांग्यौ जेंवते घोरा कौ कहा काम॥ ५८॥
जो जाही सों रमि रह्यौ तिहिँ ताही सों काम।
जैसे किरवा आक कौ कहा करै वस आम॥ ५९॥
जिय चाहै सोई मिलै जियत भलौ हिय लागि।
प्यासौ चाहत नीर कौं कहा करै लै आगि॥ ६०॥
जिय पिय चाहै तुम करौ घन चंदन उपचार।
रोग कछू औषध कछू कैसैं होत करार॥ ६१॥
विरह तपन पिय वात तैं उठत चौगनी जागि।
जल के सींचे बढ़त है ज्यों सनेह की आगि॥ ६२॥
रोस मिटै कैसै सहत रिस उपजावन वात।
ईंधन डारे आग मैं कैसैं आग बुझात॥ ६३॥

अति हठ मत कर हठ बढ़ै बात न करिहै कोय।
ज्यौं ज्यौं भीजे कामरी त्यौं त्यौं भारी होय॥६४॥

लालच हू ऐसो भलो जासौं पूरं आस।
चाटेहू कहुँ ओस के मिटै काहु की प्यास॥६५॥

विष हू ते सरसी लगै रिस मे रस की भाख।
जैसे पित्तज्वरीन कों करवी लागति दाख॥६६॥

जो जेहिँ भावे सो भलो गुन को कछु न विचार।
तज गजमुक्ता भीलनी, पहरति गुंजा-हार॥६७॥

हरि-रस परिहरि विषय-रस संग्रह करत अयान।
जैसैं कोऊ करत है छांड़ि सुधा विषपान॥६८॥

कुल मारग छोड़ै न कोउ होहि वृद्धि कै हानि।
गज इक मारत दूसरो चढ़त महावत आनि॥६९॥

जासों निवहै जीविका करिए सो अभ्यास।
वेस्या पालै शील तो कैसैं पूरं आस॥७०॥

दुष्ट न छांड़ै दुष्टता कैसैं हू सुख देत।
धोएहू सौ वेर के काजर होय न सेत॥७१॥

कहुँ अवगुन सोइ होत गुन कहुँ गुन अवगुन होत।
कुच कठोर त्यौं हैं भले कोमल बुरे उदोत॥७२॥

असुभ करत सोइ होत सुभ सज्जन वचन अनूप।
स्रवन पिता दिय दसरथहि स्राप भयो वर रूप॥७३॥

एक भले सब को भलो देखो सबद विवेक।
जैसैं सत हरिचंद के उधरे जीव अनेक॥७४॥

एक बुरे सब कौ बुरो होत सबल के कोप।
अवगुन अर्जुन के भयो सब छत्रिन कौ लोप॥७५॥

बड़ेन पै जांचे भलो जदपि होत अपमान।
गिरत दंत गिर डाह तें गज के तऊ बखान॥७६॥

अवगुन करता और ही देत और कौं मार।
जौ पहुँचै नहिँ रुद्र कौं जारत बिरहनि मार॥ ७७॥
मान होत है गुननि तें गुन बिन मान न होइ।
सुक सारी राखैं सबै काग न राखै कोइ॥ ७८॥
आडंबर तजि कीजियै गुन संग्रह चित चाय।
छीर रहित न बिकै गऊ आनो घंट बँधाय॥ ७९॥
जैसौ गुन दीनौ दई तैसौ रूप निबंध।
ए दोऊ कहँ पाइयै सोनौ और सुगंध॥ ८०॥
अभिलाषी इक बात के तिनमे होय विरोध।
काज राज के राजसुत लरत भिरत करि क्रोध॥ ८१॥
जो जाकौ चाहै भलौ सो ताही की भीर।
नीर बुझावै आग कौं सोखै ताहि समीर॥ ८२॥
अहित किए हू हित करै सज्जन परम सधीर।
सोखे हूं सीतल करै जैसैं नीर समीर॥ ८३॥
है सहाय हित हू करै तऊ दुष्ट दुख देत।
जैसैं पावक पवन कौं मिलै जरायै लेत॥ ८४॥
अपनी अपनी ठौर पर सोभा लहत विसेष।
चरन महावर ही भलौ नैनन अंजन - रेख॥ ८५॥
जो चाहौ सोई करौ मेरौ कछु न कहाव।
जंत्री के कर जंत्र है जो भावै सो वजाव॥ ८६॥
जाकौ जैसो उचित तिहिँ करिए सोइ विचार।
गीदर कैसे ल्याइहै गज-मुक्ता गज मार॥ ८७॥
जुदे न जैसे लहत हैं मिले विरंगहु रंग।
काथ संग चूनो परत होत लाल मिल संग॥ ८८॥
नहिँ इलाज देख्यौ सुन्यौ जासों मिटत सुभाव।
मधुपुट कोटिक देत तऊ विष न तजत विषभाव॥ ८९॥

जाकौ जासों मन लग्यो सो तिहिँ आवै दाय।
भाल भस्म विष मुंड शिव तेऊ शिवा सहाय॥ ९०॥
होय कछू समझै कछू जाकी मति विपरीत।
कनक भखी जैसे लखै स्याम सेत कौ पीत॥ ९१॥
प्रेम निवाहन कठिन है समझ कीजियौ कोय।
भाँग भखन है सुगम पै लहर कठन ही होय॥ ९२॥
कोउ विन देखे विन सुनै कैसें कहै विचार।
कूप भेख जाने कहा सागर को विस्तार॥ ९३॥
देव सेव फल देत है जाको जैसौ भाय।
जैसैं मुख करि आरसी देखौ सोइ दिखाय॥ ९४॥
कुल वल जैसौ होय सो तैसी करिहै वात।
वनिक पुत्र जाने कहा गढ़ लैवे की घात॥ ९५॥
जाकी ओर न जाइयै कैसै मिलिहै सोइ।
जैसैं पच्छिम दिस गए पूरव काज न होइ॥ ९६॥
जैसो वंधन प्रेम कौ तौ सौ वंध न और।
काठहि भेदै कमल कौं छेद न निकरै भौंर॥ ९७॥
जे उदार ते देत हैं रीझत जिहि विहिँ चाल।
गाल वजाए हू करै गौरीकंत निहाल॥ ९८॥
अपनी अपनी गरज सव वोलत करत निहोर।
विन गरजै वोलै नहीं गिरिवरहू कौ मोर॥ ९९॥
जो सव ही कौ देत है दाता कहियै सोइ।
जलधर वरषत सम विषम थल न विचारत कोइ॥ १००॥
तिन सों बिमुख न हूजियै जे उपकार समेत।
मोर ताल जल पान करि जैसैं पीठ न देत॥ १०१॥
जो समझै जा वात कौं सो तिहिँ कहै विचार।
रोग न जानै ज्योतिषी वैद्य ग्रहन कौ चार॥ १०२॥

नवल नेह आनँद उमँग दुरै न मुख चख ओर।
तब ही जान्यौ जात है ज्यौं सुगंध कौ चोर ॥१०३॥
प्रकृत मिले मन मिलत है अनमिलते न मिलाय।
दूध दही तैं जमत है कांजी तैं फटि जाय ॥१०४॥
बात कहन की रीति मैं है अंतर अधिकाय।
एक वचन तैं रिस बढ़ै एक वचन तैं जाय ॥१०५॥
एक वस्तु गुन होत है भिन्न प्रकृत के भाय।
भटा एक कौं पित करत करत एक कौं वाय ॥१०६॥
सुख मैं होत सरीक सौ दुख सरीक सो होय।
जाकौ मीठौ खाइयै कटुक खाइयै सोय ॥१०७॥
स्वारथ के सब ही सगे बिन स्वारथ कोउ नाहिँ।
जैसे पंछी सरस तरु निरस भए उड़ि जाहिँ ॥१०८॥
जो लायक जिहिँ भाँति को तासौं तैसी होय।
सज्जन सो न बुरी करै दुरजन भली न कोय ॥१०९॥
सुख बीते दुख होत है दुख बीते सुख होत।
दिवस गए ज्यौं निसि उदित निसगत दिवस उदोत ॥११०॥
जो भाखै सोई सही बड़े पुरुष मुख बानि।
है अनंग ताकौ कहैं महारूप की खानि ॥१११॥
दोप-भरी न उचारियै जदपि यथारथ बात।
कहै अंध कौं आंधरौ मान बुरौ सतरात ॥११२॥
पर घर कबहुँ न जाइयै गए घटत है जोति।
रवि-मंडल में जाति ससि छीन कला छवि होति ॥११३॥
औरहि तैं कोमल प्रकृत सज्जन परम दयाल।
कौन सिखावत है कहो राजहंस कौं चाल ॥११४॥
सज्जन अंगीकृत कियौ ताकौं लौं निबाहि।
राखि कलंकी कुटिल ससि तउ शिव तजत न ताहि ॥११५॥

जिन पंडित विद्या तजहु धन मूरख अवरेख।
कुलजा सील न परिहरैं कुलटा भूपित देख ॥११६॥
एक सदा निवहै नहीं जनि पछतावहु कोय।
दुरजोधन अति मान तें भए निधन कुल खोय ॥११७॥
होय शुद्ध मिटि कलुपता सत संगति कौ पाय।
जैसें पारस को परसि लोह कनक है जाय ॥११८॥
ब्रह्म बनाए बन रहे ते फिर और बनै न।
कान कहत नहिँ बैन ज्यौं जीभ सुनत नहिँ बैन ॥११९॥
जाहि परयौ जैसौ व्यसन ता बिन रहत न सोय।
सुरा सुरापी ना तजै जदपि बिकल गति होय ॥१२०॥
जे चेतन ते क्यौं तजैं जाकौ जासों मोह।
चुंबक के पीछे लग्यौ फिरत अचेतन लोह ॥१२१॥
घटति बढ़ति संपति सुमति गति अरहट की जोय।
रीती घटिका भरति है भरी सु रीती होय ॥१२२॥
आपति तैसी होति है जिहिं जैसी लौ भाइ।
भाजन मित भरि सरित में जल भरि भरि लै जाइ ॥१२३॥
उत्तम जन की होड़ करि नीच न होत रसाल।
कौवा कैसे चल सकै राजहंस की चाल ॥१२४॥
उत्तम जन के संग मैं सहजै ही सुख भास।
जैसें नृप लावै अतर लेत सभा जन बास ॥१२५॥
या जग की विपरीति गति समझी देखि सुभाव।
कहैं जनार्दन कृष्ण कौं हर कौ शंकर नांव ॥१२६॥
भले लगैं सब कौं कहौ कोऊ हित के बैन।
पिय आगम के काग वच बिरहनि कौं सुख दैन ॥१२७॥
जो जाके हित की कहै सो ताके अभिराम।
पिय आगम भाषी भलौ वायस पिक किहि काम ॥१२८॥

कोऊ है हित की कहै ह्वै ताही सों हेत।
सबै उड़ावत काक कौं पै बिरहनि बलि देत ॥१२९॥
को चाहे अपनो तऊ जा सँग लहियै पीर।
जैसैं रोग सरीर तैं उपजत दहत सरीर ॥१३०॥
एक बिरानौ ही भलौ जिहिं सुख होत सरीर।
जैसैं बन की औषधी हरत रोग की पीर ॥१३१॥
जो पावै अति उच्च पद ताकौ पतन निदान।
ज्यों तपि तपि मध्याह्न लों अस्त होतु है भान ॥१३२॥
अनुचित अतिबल आपनौ कहे अनादर होय।
संग्रह कियौ न नृप दुहनि रुक्म गयौ पति खोय ॥१३३॥
कलुष भाव देखै जहाँ उत्तम जन न रहायँ।
जैसैं पावस तजि अनत राजहंस उड़ि जायँ ॥१३४॥
जो चाहै सोई लहै यौं सुख होइ सरीर।
ज्यौं प्यासे जिय कौं मिलै निरमल सीतल नीर ॥१३५॥
मन-भावन के मिलन बिन यों जिय होय उदास।
ज्यों चकोर की दिन दसा चकवा चंद प्रकास ॥१३६॥
जिहिं प्रसंग दूषन लगै तजिए ताकौ साथ।
मदिरा मानत है जगत दूध कलाली हाथ ॥१३७॥
जाके सँग दूषन दुरै करिए तिहिं पहिचानि।
जैसैं समझैं दूध सब सुरा अहीरी पानि ॥१३८॥
जिहिं देखैं लांछन लगै तासों दृष्टि न जोर।
ज्यौं कोऊ चितवै नहीं चौथ चंद की ओर ॥१३९॥
मूरख गुन समझै नहीं तौ न गुनी मैं चूक।
कहा भयो दिन को बिभौ देखै जो न उलूक ॥१४०॥
खल जन सौं कहियै नहीं गूढ़ कबहुँ करि मेल।
यौं फैलै जग माहिँ ज्यौं जल पर बूंद कि तेल ॥१४१॥

एकहि गुन ऐसौ भलौ जिहिँ अवगुन छिप जात।
नीरद के ज्यौं रंग बद बरसत ही मिट जात ॥१४२॥
मूढ़ तहां ही मानिए जहां न पंडित होइ।
दीपक की रवि के उदै बात न पूछै कोय ॥१४३॥
बिन स्वारथ कैसैं सहै कोऊ करुए बैन।
लात खाय पुचकारियै होय दुधारू धैन ॥१४४॥
सज्जन तजत न सजनता कीन्हेहु दोष अपार।
ज्यौं चंदन छेदे तऊ सुरभित करहि कुठार ॥१४५॥
दुष्ट न छाँड़ै दुष्टता पोखै राखै ओट।
सरपहि केतौ हित करौ चुपै चलावै चोट ॥१४६॥
धन संच्यौ किहिं काम कौ खाउ खरच हरि प्रीति।
बँध्यो गँधीलौ कूप जल कढ़ै बढ़ै इहिं रीति ॥१४७॥
करै बुराई सुख चहै कैसै पावै कोइ।
रोपै बिरवा आक को आम कहां ते होइ ॥१४८॥
होय बुराई तें बुरौ यह कीनौ निरधार।
खांड खनैगौ और कौं ताकौं कूप तयार ॥१४९॥
दिए सहस गुन देत सो पावै यह सच बात।
बीज देत विहिँ कर सिरौ और देत तिहिँ दात ॥१५०॥
एक भेष के आसरे जाति बरन छिप जात।
ज्यों हाथी के पांव में सबको पांव समात ॥१५१॥
जाको जहँ स्वारथ सधै सोई ताहि सुहात।
चोर न प्यारी चांदनी जैसैं कारी रात ॥१५२॥
जैसी ही भवतव्यता तैसी बुद्धि प्रकास।
सीता हरिबे तैं भयौ रावन कुल को नास ॥१५३॥
निहचै भावी कौ कहौ प्रतीकार जौ होइ।
तौ नल से हरचंद से बिपत न भरते कोइ ॥१५४॥

कछू सहाय न चलि सकै होनहार के पास।
भीष्म युधिष्ठिर से तहां भो कुरुवंस-विनास ॥१५५॥
अति ही सरल न हूजियै देखौ ज्यों वनराय।
सीधे सीधे छेदियै बांकौ तरु वच जाय ॥१५६॥
बहुतन कौं न बिरोधियै निबल जानि बलवान।
मिल भखि जाहिँ पिपीलका नागहि नग के मान ॥१५७॥
बहुत निबल मिलि बल करैँ करैँ जु चाहे सोय।
तिनकन की रसरी करी करी निबंधन होय ॥१५८॥
दुर्जन के संसर्ग तें सज्जन लहत कलेस।
ज्यौं दसमुख अपराध तैँ बंधन लह्यो जलेस ॥१५९॥
सुजन कुसंगति संग तैँ सज्जनता न तजंत।
ज्यौं भुजंग गन संग तउ चंदन विप न धरंत ॥१६०॥
कष्ट परेहूं साधु जन नैक न होत मलान।
ज्यौं ज्यौं कंचन ताइयै त्यौं त्यौं निरमल बान ॥१६१॥
जे उत्तम ते असम सौं धरत न रिस मन माहिँ।
घन गरजै हरि हुंकरै स्यार बोल सुनि नाहिँ ॥१६२॥
खल वंचत नर सुजन कौं नहि न बिसास करेहि।
डहक्यो उड़ प्रतिबिंब तैँ मुकुता हंस न लेइ ॥१६३॥
मिथ्या-भाषी सांच हू कहै न मानै कोइ।
भांड पुकारै पीर बस मिस समझै सब कोय ॥१६४॥
सदा समै बलवान पै नाहिँ पुरुष बलवान।
काबरि लरि गोपी लई बिरथ भए पथवान ॥१६५॥
कन कन जोरै मन जुरै खाते निवरै सोय।
बूंद बूंद ज्यौं घट भरै टपकत बीतै तोय ॥१६६॥
थोरे ही गुन तैँ कहूँक प्रगट होत जग माहिँ।
एकहि कर तें जय करी करी सहस कर नाहिँ ॥१६७॥

ऊंचे बैठे ना लहैं गुन बिन बड़पन कोइ।
बैठो देवल सिखर पर बायस गरुड़ न होइ॥१६८॥
दुख पाए बिनहूं कहूं गुन पावत है कोइ।
सहैं छेद बंधन सुमन तब गुन संजुत होइ॥१६९॥
निपट अबुध समझैं कहां बुध जन बचन बिलास।
कबहूं भेक न जानई अमल कमल की बास॥१७०॥
बिनसत सतगुन गुनिय के अगुन पुरुष के पास।
ज्यों अंजन सिर चंद कर नेंक न होत प्रकास॥१७१॥
सांच झूंठ निरनै करैं नीति-निपुन जो होय।
राजहंस बिन को करै छीर नीर को दोय॥१७२॥
इक समीप बसि अहित कर इक हितकर बसि दूर।
हंस बिनासै कमल दल अमल प्रकासै सूर॥१७३॥
दोषहि को उमहैं गहैं गुन न गहैं खल लोक।
पियैं रुधिर पय ना पियैं लगी पयोधर जोंक॥१७४॥
भलो न होवै दुष्ट जन भलो कहैं जो कोय।
बिष मधुरो मीठो लवन कहैं न मीठो होय॥१७५॥
कारज करत असाध के सब मैं साध कहाय।
जैसैं सीत हसंत को बन जग देत जराय॥१७६॥
एक उदर बाही समय उपज न इक से होय।
जैसें कांटे बेर के बांके सीधे जोय॥१७७॥
दरव देवहू निबल अरु दुरबल ही के प्रान।
बाघ सिंह को छांड़ि कै देत छाग बलिदान॥१७८॥
जिहिं जासों मतलब नहीं ताकी ताहि न चाह।
ज्यों निसप्रेही जीव के तृन समान सुरनाह॥१७९॥
जे पर ते पर यह समझ अपनो होय न कोय।
पाले पोषें काग तउ पिक-सुत काग न होय॥१८०॥

दीजै सीख अजान कौं मानै सीख सुजान ।
टारहि ताजन मारियै ज्यौं कांपे के कान ॥१८१॥
उद्यम कबहुँ न छांड़ियै पर आसा के मोद ।
गागरि कैसैं फोरियै उनयौ देखि पयोद ॥१८२॥
कारज धीरै होतु है काहे होत अधीर ।
समय पाय तरुवर फरै केतक सींचौ नीर ॥१८३॥
जो पहिलै कीजै जतन सो पीछै फलदाय ।
आग लगे खोदै कुँवा कैसै आग बुझाय ॥१८४॥
होत सिद्धि जैसै समय तैसौ ही अभिलाख ।
कौड़ी बिन जात न लियो करी लेत दै लाख ॥१८५॥
क्यों कीजै ऐसौ जतन जातैं काज न होय ।
परबत पै खोदै कुँआ कैसैं निकसै तोय ॥१८६॥
सांची संपति और की और भोगवै आय ।
कन संग्रह चैंटीन कौ ज्यौं तीतर चुगि जाय ॥१८७॥
सेयौ छोटौ ही भलौ जासौं गरज सराय ।
कीजै कहा पयौधि कौं जातैं प्यास न जाय ॥१८८॥
स्रम ही तैं सब मिलत है बिन स्रम मिलै न काहि ।
सीधी अँगुरी घी जम्यो क्यौं हू निकरै नाहिँ ॥१८९॥
कहियै बात प्रमाण की जासौं सुधरै काज ।
फीकौ थोरे लौन तैं अधिकै खारौ नाज ॥१९०॥
कहै रसीली बात सो बिगरी लेत सुधारि ।
सरस लौन की दाल मैं ज्यौं नीबू रस डारि ॥१९१॥
जो चाहै सोई करै बड़े असंकित अंग ।
सबके देखत नगन हर धरत गौरि अरधंग ॥१९२॥
बड़े सहज ही बात तैं रीझि देत बकसीस ।
तुलसी दल तैं बिष्णु ज्यौं आक धतूरे ईस ॥१९३॥

बड़े कहैं सो कीजियै करैं सु करियैं नाहिँ।
हर ज्यौं पंचन मैं फिरैं और जो विकल कहाहिँ ॥१९४॥
काहू कियौ न कीजियै तिय जिय को विस्वास।
गौर धरी अरधंग हर हरि वर घर में वास ॥१९५॥
सुधरी विगरै वेग ही विगरी फिर सुधरै न।
दूध फटै कांजी परै सो फिर दूध बनै न ॥१९६॥
न कछु तऊ ताकी तजब ताही की मनुहार।
तिलक समैं नृप लेत हैं तृन हू हाथ पसार ॥१९७॥
गुनी तऊ अवसर विना आग्रह करै न कोइ।
हिय ते हार उतारियैं सयन समय जब होइ ॥१९८॥
जदपि आपनौ होय तउ दुख मैं करत न सीर।
ज्यौं दुखती अँगुरी निकट दुसरी ताहि न पीर ॥१९९॥
विद्या मिलै अभ्यास तैं सुजन सुभाव मिलै न।
सीत विपुल काननि करै विपुल न ह्वैहैं नैन ॥२००॥
काम समै पावै सु दुख जस निर्बल के अंग।
मरदन खंडन सहत हैं ज्यौं अवला के अंग ॥२०१॥
यह कहवत जैसौ करै तैसौ पावै लोय।
औरन कौं आंधे करै आंधौ कहियत सोय ॥२०२॥
छोटे नर तैं रहत है सोभायुत सिरताज।
निर्मल राखै चांदनी जैसैं पायंदाज ॥२०३॥
हित हू भलौ न नीच कौ नाहिन भलौ अहेत।
चाटि अपावन तन करै काटि स्वान दुख देत ॥२०४॥
सहज रसीलौ होय सौं करै अहित पर हेत।
जैसैं पीड़ित कीजियैं ऊख तऊ रस देत ॥२०५॥
कर विगरी सुधरै वचहि जैसैं वनिक विसेख।
हींग मिरच जीरौ कहै हग भर जर लिख लेख ॥२०६॥

अरि के संग कुटुंब लखि जिय उपजत है त्रास।
वैसौ लगै कुठार कौं तव वनराइ विनास ॥२०७॥
कवहू संग न कीजियै किए प्रकृत की हानि।
गूंगे कौं समझाइवो गूंगे की गति आनि ॥२०८॥
कोऊ काहू कौ वुरौ करै परै तिहिँ धाम।
काटे पर की नाक कौं नकटी रानी नाम ॥२०९॥
कहा करै कोऊ जतन प्रकृति न वदलै काइ।
सानै सदा सनेह मैं जीभ न चिकनी होइ ॥२१०॥
जदपि सहोदर होय तऊ प्रकृत और की और।
विष मारै ज्यावै सुधा उपजै एकहि ठौर ॥२११॥
डरै न काहू दुष्ट सों जाहि प्रेम की वान।
भौंर न छांड़ै केतकी तीखे कंटक जान ॥२१२॥
वहुत किए हू नीच कौ नीच सुभाव न जात।
छांड़ि ताल-जल कुंभ मैं कौवा चोंच भरात ॥२१३॥
चतुर कूर इक से गनै जाके नाहिं विवेक।
जैसैं अवुध गँवार कौं पांच कांच है एक ॥२१४॥
कूर न होवै चतुर नर कूर कहै जो कोइ।
मानौ कांच गँवार तऊ पांच कांच नहिं होइ ॥२१५॥
कैसैं हू छूटत नहीं जा मैं परी कुवानि।
काग न कोइल ह्वै सकै जो विधि सिखवै आनि ॥२१६॥
भेप वनावै सूर कौ कायर सूर न होय।
खाल उढ़ावै सिंह की स्यार सिंह नहिँ होय ॥२१७॥
धन वाढ़ै मन वढ़ि गयो नाहिन मन घट होय।
ज्यौं जल संग वाढ़ै जलज जल घट घटै न सोय ॥२१८॥
सव तैं लघु है मांगिवौ जा मैं फेर न सार।
वलि पै जांचत ही भए वावन तन करतार ॥२१९॥

बड़े न लोपैं लाज कुल लोपैं नीच अधीर।
उदधि रहै मरयाद मैं वहै उलट नद नीर ॥२२०॥
नाम भलौ होत न भलौ भलौ भाग जिहिँ भाल।
लच्छि नाम मांगत फिरै भूखौ नाम भुवाल ॥२२१॥
उत्तम पर कारज करै अपनौ काज विसार।
पूरै अन्न जहान कौं तापर भिच्छा धार ॥२२२॥
देवन हू सौं देव प्रभु कहा सुरेस नरेस।
कीनौ मीत धनेस तउ पहरैं चर्म महेस ॥२२३॥
सब इक से होत न कहूं होत सबन मैं फेर।
कपरौ खादी बाफतौ लोह तवा समसेर ॥२२४॥
अपनौ समै बिचारि कै अरि जीतिए अचूक।
दिवस काग घूघहि हनै कागहिं निसि ज्यौं घूक ॥२२५॥
छल बल समय विचारिकै अरि हनिए अनयास।
कियौ अकेलै द्रोण-सुत निसि पांडव कुल नास ॥२२६॥
काम परै ही जानियै जो नर जैसौ होय।
बिन तायै खोटौ खरौ गहनो लखै न कोय ॥२२७॥
जैसी संगति तैसियै ईजत मिलि है आय।
सिर पर मखमल सेहरै पनही मखमल पाय ॥२२८॥
अनघर सुघर समाज मैं आय बिगारै रंग।
जैसैं हौज गुलाब कौ विगरै स्वान प्रसंग ॥२२९॥
अनमिल सुमिल समाज सौं होत गए उठि चैन।
जैसैं तिन पर देत दुख निकसै बिकसै नैन ॥२३०॥
चतुर सभा मैं कूर नर सोभा पावत नाहिँ।
जैसैं बक सोभित नहीं हंस-मंडली माहिँ ॥२३१॥
रसिक सभा मे निरस नर होत होत रस हानि।
जैसैं भैंसा ताल परि मलिन करत जल आनि ॥२३२॥

मिल्यौ दुष्ट नाहिन भलौ उपजत मिलै अहेत।
ज्यौं काँटौ गड़ि देह में अटकि खटकि दुख देत ॥२३३॥
दोख धरैं निरदोख कौं जे नर होयँ सदोष।
घटि उदार दाता कहै जाहि न जिय संतोष ॥२३४॥
होत सुसंगति सहज सुख दुख कुसंग के थान।
गंधी और लुहार की देखहु बैठि दुकान ॥२३५॥
भले वचन मुख नीच के नाहिन होत प्रकास।
हींग लसुन में ना मिले घन कस्तूरी बास ॥२३६॥
सुधरै बिगरि कुसंग तैं सत संगति कौं पाय।
वासहि सीकर हींग की जीरा सँग मिटि जाय ॥२३७॥
मिलै सुसंगति उच्च हू करत नीच सों प्यार।
खर कौं गंग न्हवाइए तऊ न छाँड़ै छार ॥२३८॥
बिगरौ होय कुसंग जिहिँ कौन सकै समझाय।
लसुन बसाए बसन कौं कैसैं फूल बसाय ॥२३९॥
ह्वै है बड़े बड़ेन सों होय न छोटे काज।
गहै विटप जु फनीन कौं गहि न सकै गजराज ॥२४०॥
अजुगत लखि नर नीच की काहू कौं न सुहात।
दाख बिरानी खात खर को न देखि अनखात ॥२४१॥
छांड़ि सबल अरु निबल की कबहुँ न गहिए ओट।
जैसैं टूटी डार सौं लगै बिलंबै चोट ॥२४२॥
प्रेम छके मन कौं हटकि रखि न सकै कुल लाज।
कमल-नाल के तंतु सौं को बाँधै गजराज ॥२४३॥
बात प्रेम की राखिए अपने ही मन माहिँ।
जैसे छाया कूप की बाहर निकसै नाहिँ ॥२४४॥
ताकौं त्यौं समझाइए ज्यौं समझै जिहि बानि।
बैन कहत मन अंध कौं ज्यौं बहिरे कौं पानि ॥२४५॥

बिपत परे सुख पाइए ता ढिँग करिए भौन।
नैन सहाई बधिर के अंध सहाई स्रौन ॥२४६॥
हीन अकेलौ ही भलौ मिले भले नहिँ दोय।
जैसेँ पावक पवन मिलि बिफरै हाथ न होय ॥२४७॥
जैसौ थानक सेइए तैसौ पूरै काम।
सिंह गुफा मुक्ता मिलै स्यार खुरी खुर चाम ॥२४८॥
बांके सीधे को मिलन निबहै नाहिँ निदान।
गुन-ग्राही तोऊ तजत जैसे बान कमान ॥२४९॥
क्यों करिए प्रापति अलप जामें स्रम अति होय।
कौन जु गिरिवर खोद कैँ चूहा काढ़ै जोय ॥२५०॥
होय पहुँच जाकी जिती तेतौ करत प्रकास।
रवि ज्यौं कैसे करि सकै दीपक तम को नास ॥२५१॥
जहां चतुर नाहिन तहां मूढ़नि सों व्यवहार।
बर पीपर बिन हो रहै ज्यों एरँड अधिकार ॥२५२॥
होत न कारज मो बिना यह जु कहै सु अयान।
जहां न कुक्कुट शब्द तहँ होत न कहा बिहान ॥२५३॥
उत्तम कौ अपमान अरु जहां नीच कौ मान।
कहा भयौ जौ हंस की निंदा काग बखान ॥२५४॥
यथाजोग की ठौर बिनु नर छबि पावै नाहिँ।
जैसेँ रत्न कथीर मैं कांच कनक के माहिँ ॥२५५॥
बिपति बड़ेई सहि सकैँ इतर बिपति तैँ दूर।
तारे न्यारे रहत हैं गहैं राहु ससि सूर ॥२५६॥
ठौर छुटे तें मीत हू है अमीत सतरात।
रबि जल उखरे कमल कौं जारत गारत जात ॥२५७॥
होत बहुत धन होत तउ गुन जुत भए उदोत।
नेह भरयो दीपक तऊ गुन बिनु जोति न होत ॥२५८॥

कहा भयौ जो धन भयौ गुन तैं आदर होइ।
कोटि दोइ धारी धनुप गुन बिन गहत न कोइ ॥२५९॥
जात गुनी जात न तहाँ आडंबर युत सोय।
पहुँचे चंग अकास लौं जौ गुन संयुत होय ॥२६०॥
गुनवारौ संपति लहै लहै न बिन गुन कोय।
काढ़े नीर पताल तैं जो गुन युत घट होय ॥२६१॥
को करि सकै बड़ेन सौं कबहूं प्रति उपकार।
गिरि सुर तरु न रख्यो उदधि मुनि अँचयो जिहिँ बार ॥२६२॥
विद्या गुरु की भक्ति सौं कै कीन्हे अभ्यास।
भील द्रोण के बिन कहे सीख्यो बान - बिलास ॥२६३॥
गुरु हु सिखावै ज्ञान गुन सिष्य सुबुद्धि जु होय।
लिखै न खरदरि भीत पर चित्र चितेरौ कोय ॥२६४॥
पंडित पंडित सों मिलै संसै मिटत न बेर।
मिलै दीप दुहुँ दुहुँन कौं होत अँधेर निबेर ॥२६५॥
उद्दिम बुधि-बल सौं मिलै तब पावत सुख-साज।
अंध कंध चढ़ि पंगु ज्यौं सबै सुधारत काज ॥२६६॥
जाको हृदय कठोर तिहिँ लगै न कोमल बैन।
मैन बान ज्यौं पथर मैं क्यौं हूं किए भिदै न ॥२६७॥
सबको रस में राखिए अंत लीजिए नाहिँ।
विष निकस्यो अति मथन तैं रतनाकर हू माहिँ ॥२६८॥
फल विचारि कारज करौ करहु न व्यर्थ अमेल।
तिल ज्यौं बारू पेरिए नाहिन निकसै तेल ॥२६९॥
पीछे कारज कीजिए पहिले पहुँच विचार।
कैसे पावत उच्च फल बावन बांह पसार ॥२७०॥
दुष्ट निकट बसिए नहीं बस न कीजिए बात।
कदली बेर प्रसंग तैं छिदै कंटकन पात ॥२७१॥

तिनके कारज होत हैं जिनके बड़े सहाय।
कृष्ण पच्छ पांडव जयी कौरव गए बिलाय ॥२७२॥
पुन्य विवेक प्रभाव तैं निहचल लच्छ निवास।
जौ लौं तेल प्रदीप में तौ लौं जोति - प्रकास ॥२७३॥
नर कारज की सिद्धि लौं करै अनेक प्रकार।
छूटै रोग सरीर तैं को ढूंढ़ै उपचार ॥२७४॥
अरि छोटौ गनियै नहीं जाते होत बिगार।
तिन-समूह को छिनक मैं जारत तनक अँगार ॥२७५॥
छोटे अरि पर चढ़त हूं सजै सुभट तनत्रान।
लीजै ससा अखेट पर नाहर कौ सामान ॥२७६॥
गुन तें संग्रह सब करैं कुल न विचारै कोय।
हरि हू मृगमद को तिलक करत लेत जग मोय ॥२७७॥
बुरौ होय तउ सुकुल कौ तासो बुरी न होय।
जदपि धुवां है अगर को करत सुगंधित सोय ॥२७८॥
ताकौ अरि कहा करि सकैं जाकौ जतन उपाय।
जरै न ताती रेत सौं जाके पनही पाय ॥२७९॥
पंडित जन कौ स्रम मरम जानत जे मतिधीर।
कबहूं बांझ न जानई तन प्रसूत की पीर ॥२८०॥
सूर वीर की संपदा कायर पै नहिं जाय।
निहचै जानो सिंह बलि स्यार न कबहूं खाय ॥२८१॥
भूपति के सँग सुभट गन आपस मे यह रीति।
बन अभीत ज्यौं सिंह तैं बन तैं सिंह अभीत ॥२८२॥
जाय दरिद कवि जनन कौ सेवै राज-समाज।
सिंह तृपित तब होतु है हाथ चढ़ै गजराज ॥२८३॥
वीर पराक्रम ना करै तासों डरत न कोइ।
बालक हू कैं चित्र कौ बाघ खिलौना होइ ॥२८४॥

वीर पराक्रम तैं करै भुव-मंडल कौ राज।
जोरावर यातैं करत बन अपनौ मृगराज ॥२८५॥
जोरावर अरि मारियै बुध बल कियै उपाय।
कालयमन कौ ज्यौं किसन पट मुचुकुंद उठाय ॥२८६॥
राजा के बल लोक सब फिरै थिरैं चहुँ ओर।
ज्यौं बन मे छूटै चरै बांधे हय के जोर ॥२८७॥
नृप प्रताप तैं देस में रहै दुष्ट नहिँ कोय।
प्रगटत तेज दिनेस कौ तहां तिमिर नहिँ होय ॥२८८॥
यहै बात सब ही कहैं राजा करै सु न्याव।
ज्यौं चैापर के खेल में पांसौ परै सु दाव ॥२८९॥
कारज ताही को सरै करै जु समै निहारि।
कबहुँ न हारै खेल जो खेलै दांव बिचारि ॥२९०॥
सब देखै पै आपनौ दोष न देखै कोइ।
करै उजेरौ दीप पै तरे अँधेरौ होइ ॥२९१॥
संत कष्ट सहि आपुही सुखि राखै जु समीप।
आप जरै तउ और कौ करै उजेरौ दीप ॥२९२॥
मारै इक रच्छा करै एकहि कुल कौ होय।
ज्यौं कृपान अरु कवच ये एक लोह सों दोय ॥२९३॥
अपनी अपनी ठौर पर सबकौं लागै दाव।
जल में गाड़ी नाव पर थल गाड़ी पर नाव ॥२९४॥
मुनि मन सुथिर कुबात तैं कैसैं राखे कोइ।
जल प्रतिबिंबित बात बस थिर हू चंचल होइ ॥२९५॥
जो हाजिर अवसान पर सोई शस्त्र प्रमान।
दाभहि तैं बलदेव ज्यौं हरे सूत के प्रान ॥२९६॥
बड़े अनीति करैं तऊ बुरो कहै नहिँ कोय।
बालि हत्यो अपराध बिनु ताहि भजे सब कोय ॥२९७॥

नीति-निपुन राजानि कौं अजगुत नाहिं सुहाय।
करत तपस्या सूद्र कौं ज्यौं मारयौ रघुराय ॥२९८॥
लघु मिलिए गरुवें जदपि बड़े कछू नै वाहि।
गिरिवर आने कपिन कै जौं मकरालय माहिं ॥२९९॥
भले बुरे छोटे बड़े रहैं बड़ेनि पै आय।
मकर असुर सुर गिर अनल दधि मथि सकल बसाय ॥३००॥
बड़े भार लै निरवहैं तजत न खेद बिचारि।
शेष धरा धरि धर धरैं अब लौं देत न डारि ॥३०१॥
बुरी करैं पर जे बड़े भली करैं हित धारि।
जैसें दधि बांध्यौ तऊ कपि दल दियौ उतारि ॥३०२॥
उत्तम जन सौं मिलत ही अवगुनहूं गुन होय।
घन सँग खारो उदधि मिलि बरसै मीठौ तोय ॥३०३॥
काहू सों नाहीं मिटै अपरापत के अंक।
बसत ईस के सीस तउ भयो न पूर्न मयंक ॥३०४॥
कोऊ दूर न करि सकै बिधि के उलटे अंक।
उदधि पिता तउ चंद को धोय न सक्या कलंक ॥३०५॥
गहिए ओट बड़ेन की जहां मिटै दुखदंद।
उदधि सरन मैनाक को कछु करि सक्यो न इंद ॥३०६॥
छल बल धर्म अधर्म करि अरि साधिए अभीति।
भारत में अर्जुन किसन कहा करी युध रीति ॥३०७॥
गाहक सबै सपूत के सारे काज सपूत।
सब को ढंपन होत है जैसे बन को सूत ॥३०८॥
आप कष्ट सहि और कौं सोभा करत सपूत।
चरखी पींजन चरन खिच जग ढांकन ज्यौं सूत ॥३०९॥
करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तैं सिल पर परत निसान ॥३१०॥

सुख दिखाय दुख दीजियै खल सों लरियै नाहिं।
जो गुर दीने ही मरै क्यों विष दीजै ताहि ॥३११॥
बिन बूझे ही जानिए बुध मूरख मन माहिँ।
छलकै ओछे नीर घट पूरे छलकत नाहिँ ॥३१२॥
सहज सँतोष है साध कौं खल दुख देन प्रवीन।
मछुवा मारत जल बसत कहा बिगारत मीन ॥३१३॥
सुंदर थान न छोड़ियै जौ लौं होय न और।
पिछलो पांव उठाइए देखि धरन को ठौर ॥३१४॥
फिर पीछे पछताइए सो न करै मति सूध।
वदन जीभ हिय जरत है पीवत तातो दूध ॥३१५॥
को सुख को दुख देत है देत करम झकझोर।
उरझै सुरझै आप ही ध्वजा पवन के जोर ॥३१६॥
सब सुख है संतोष मैं धरियै मन संतोष।
नेक न दुरबल होत है सर्प पवन के पोष ॥३१७॥
पांय परे हू पिसुन सों बिखसि न करिए बात।
नमत कूप को डोल ज्यौं जीवन हर लै जात ॥३१८॥
सबल न पुष्ट सरीर को सबल तेज युत होय।
हृष्ट पुष्ट गज दुष्ट ज्यौं अंकुस के बस होय ॥३१९॥
कायर नर को देख रन मुख फीको दरसाय।
काँचो रँग ज्यौं धूप मैं झटक चटक उड़ि जाय ॥३२०॥
दोष धरै गुनि को पिसुन इह डर गुन न बिसारि।
जूं के भय ते बसन को देत कहा कोउ डारि ॥३२१॥
भली करत लागत बिलम बिलम न बुरे बिचार।
भवन बनावत दिन लगैं ढाहत लगति न बार ॥३२२॥
सोई अपनो आपनो रहै निरंतर साथ।
होत परायो आपनो सक्ल पराए हाथ ॥३२३॥

बिनसत बार न लागई ओछे जन की प्रीति।
अंबर डंबर सांझ के ज्यौं वारू की भीति ॥३२४॥
करिए बात न तन परस खल ढिग जैए नाहिं।
कटुक नींब तर जात ही मुख करुऔ ह्वै जाहि ॥३२५॥
निपट अमिलती बात कों कैसे करिहै कोइ।
बसन नील के माट में कबहूं लाल न होइ ॥३२६॥
देखि ठिकानौ मांगिए मांगे मिलै जु होइ।
मुनि घर भीतर कांगही ढूंढ़ै लहत न कोइ ॥३२७॥
कहे मूढ़ की बात के करिए जो चित होय।
सौंह दिवाए और के परे अग्नि मे कोय ॥३२८॥
झूठहु ऐसो बोलिए सांच बरोबर होय।
ज्यौं अँगुरी सों भीति पर चांद बतावै कोय ॥३२९॥
समझै अनसमझै कछुक कहिए मीठी बात।
बालक के सुन सुन बचन जैसैं स्रवन सुहात ॥३३०॥
सुबुध बीच परि दुहुँन कों हरत कलह रस पूर।
करत देहरी-दीप ज्यौं घर आंगन तम दूर ॥३३१॥
अधिक दुखी लखि आप तैं दीजै दुख बिसराय।
धरमसुवन बन-दुख हर्‍यो मुनि नल बिपत बताय ॥३३२॥
होत बुरे हूं तें भलो काहू समै प्रकास।
अधिक मास तें ज्यौं मिट्यौ पांडव फिर बनबास ॥३३३॥
एक अनीति करै लहै संगी दुख सुख नाहिँ।
भीम कीचकन कौं दिए मारि चिता के माहिँ ॥३३४॥
बड़े बिपत मे हूं करैं भले बिराने काम।
किय बिराटतनु की बिजय अर्जुन करि संग्राम ॥३३५॥
बड़े बड़े हू काम करि आप सिहावत नाहिँ।
जय जस उत्तर कों दियो पथ बिराट के माहिँ ॥३३६॥

बड़े बचन पलटैं नहीं कहि निरबाहैं धीर।
कियो बिभीषन लंकपति पाय बिजय रघुबीर ॥३३७॥
बुरो करैं तेई बुरे नाहिँ बुरो कोउ और।
बनिज करै सो बानिया चोरी करै सो चोर ॥३३८॥
झूठ बसे जा पुरुष मैं ताही की अप्रतीति।
चोर जुआरो सों भले यातें करत न प्रीति ॥३३९॥
कुल सपूत जान्यो परै लखि सुभ लच्छन गात।
होनहार बिरवान के होत चीकने पात ॥३४०॥
नियमित जननी उदर में कुल को लेत सुभाव।
उछलत सिंहनि को गरभ सुनि गरजन घनराव ॥३४१॥
बिना सिखाए लेत है जिहिँ कुल जैसी रीति।
जनमत सिंहनि को तनय गज पर चढ़त अभीति ॥३४२॥
सत्य बचन मुख जो कहत ताकी चाह सराह।
गाहक आवत दूर ते सुनि इक शब्दी साह ॥३४३॥
प्रेम पगन जासों भई सुख दुख ताके संग।
बसत कमल अलि बास बस स-कमल भखत मतंग ॥३४४॥
चहल पहल अवसर परे लोक रहत घर घेर।
ते फिर दृष्टि न आवही जैसे फसल बटेर ॥३४५॥
बुद्धि बिना बिद्या कहो कहा सिखावै कोइ।
प्रथम गांव ही नाहिँ तौ सींव कहां ते होइ ॥३४६॥
बहुत न बकिए कीजिए कारज अवसर पाय।
मौन गहे बक दांव पर मछरी लेत उठाय ॥३४७॥
भजन निरंतर संत जन हरि पद चित्त लगाय।
जैसे नट दृढ़ दृष्टि करि धरत बरत पर पायँ ॥३४८॥
का रस मे का रोष में अरि ते जिनि पतियाय।
जैसैं सीतल तप्त जल डारत आगि बुझाय ॥३४९॥

चप चप करती ना रहै नर लवार की जीह।
चल-हल दल जैसे चपल चलत रहै निस दीह॥३५०॥
जैसो प्रभु तैसो मनुग होय सुबात प्रमान।
वामन कर की लष्टिका वढे चढ़ी असमान॥३५१॥
बढ़े न ऐसो कौन है दान मान को पाय।
पाय धरा वामन भए सीस स्वर्ग धर पाय॥३५२॥
अपनी कीरति कान सुनि होत न कौन खुस्याल।
नाग मंत्र के सुनत ही बिष छांड़त है व्याल॥३५३॥
बिद्या याद किए विना विसरत इहिँ उनमान।
विगर जात विन खवर के ढोली कैसो पान॥३५४॥
सबै धकावै निवल कौं सवल पुरावन पाठ।
डारै जारि वहाय दे अनिल अनल जल काठ॥३५५॥
अंतर अँगुरी चार कौ सांच भूठ मैं होय।
सब मानै देखी कही सुनी न मानै कोय॥३५६॥
निबहै सोई कीजिए पन अपने उनमान।
कैसैं होत गरीव पै राजा कैसौ दान॥३५७॥
जोर न पहुँचै निवल कौं जो पै सबल सहाय।
भोडर की फानूस कौ दीप न बात बुझाय॥३५८॥
कारन बिन कारज नहीं निहचै मान बचन्न।
करै रसोई जौ मिले आग इँधन जल अन्न॥३५९॥
परी बिपत तैं छूटियै करियै जोर उपाव।
कैसैं निकसै जतन बिन परी भौंर मैं नाव॥३६०॥
दुख सुख दीवे कौं दई है आतुर इहिँ ठाट।
अहि करंड मूसा पर्‍यो भखि निकस्यौ उहि बाट॥३६१॥
प्रेरक ही तैं होत है कारज सिद्ध निदान।
चढ़ैं धनुष हू ना चलै बिना चलाए बान॥३६२॥

होय भले कैं सुत बुरो भलौ बुरे कै होय।
दीपक कै काजर प्रगट कमल कीच तैं जोय ॥३६३॥
हार बड़े की जीत है निबल न मानै तास।
बिमुख होय हरि ज्यौं कियौ कालयमन कौ नास ॥३६४॥
होय भले चाकरन तैं भलौ धनी कौ काम।
ज्यौं अंगद हनुमान तैं सीता पाई राम ॥३६५॥
सबकी समै बिनास मे उपजति मति बिपरीति।
रघुपति मारयौ लंकपति जो हरि लै गयो सीति ॥३६६॥
जो धनवंत सु देय कछु देय कहा धन-हीन।
कहा निचोरै नग्न जन न्हान सरोवर कीन ॥३६७॥
सुख सज्जन के मिलन कौं दुर्जन मिलै जनाय।
जाने ऊख मिठास कौं जब मुख नीम चवाय ॥३६८॥
होत चाह तब होतु है प्रेम सु सज्जन संग।
पास दियै बिन बांस पर चढ़ै न गहरौ रंग ॥३६९॥
जाहि मिलै सुख होतु है ता बिछुरै दुख होय।
सूर उदै फूलै कमल ता बिन सकुचै सोय ॥३७०॥
झूठे ही करियै जतन कारज बिगरै नाहिँ।
कपट पुरुष धन खेत पर देखत मृग भज जाहिँ ॥३७१॥
प्रेम नेम के पंथ कौ है कछु अद्भुत रूप।
पिय हिय लागै लगत ज्यौं सरद जौन सी धूप ॥३७२॥
दुखदाई सोइ देतु सुख सुखदाई सँग जात।
घट जल भीजे चीर कौं लागि लूश्र सियरात ॥३७३॥
सम सहाय के विन मिलैं सुखदाई दुख देइ।
भिँजे चीर विन घट सलिल लागत तपत करेइ ॥३७४॥
कारज सोई सुधरिहै जौ करियै सम भाय।
अति बरपै बरपै विना जौ करिसन कुम्हलाय ॥३७५॥

सज्जनता न मिलै कियै जतन करौ किन कोइ।
ज्यौं करि फार निहारियै लोचन बड़ौ न होइ ॥३७६॥
विन वनाव बानिक वने ताही के कुवखान।
दगले पर ज्यौं अरगजो मीठे पर तनत्रान ॥३७७॥
तन वनाय उपजाय रुचि ठानत मान निदान।
ज्यौं पंचामृत छाँहि कै करत लपत जल पान ॥३७८॥
मन देत न तन देन कौं मन मिलयो तजि लाज।
ज्यौं आंकुस कौं नटत कोउ दै गिरि सौं गजराज ॥३७९॥
छोटे मन मे आइहै कैसैं मोटी वात।
छेरी के मुँह में दियौ ज्यौं पेठा न समात ॥३८०॥
होत निवाह न आपनौ लीने फिरत समाज।
चूहा विल न समात है पूंछ वांधिए छाज ॥३८१॥
रहै प्रजा घन यत्न सौं जहँ वांकी तरवार।
सो फल कोउ न लै सकै जहां कटीली डार ॥३८२॥
जासौं परिचै होय सो पावै तिहि उनमान।
रुपिया कौं खोटौ खरौ कैसैं कहै अजान ॥३८३॥
विना प्रयोजन भूलि हू ठठिए नाहीं ठाट।
जैवो नहिं जा गांव कौं ताकी पूछ न वाट ॥३८४॥
आपहि कहा बखानियै भलो बुरी को जोग।
ऊढ़े घन की वान कौं कहैं वटाऊ लोग ॥३८५॥
इंगित तैं आकार तैं जान जात जो भेट।
तासौं वात दुरै नहीं ज्यौं दाई सौं पेट ॥३८६॥
जानै सो बूझै कहा आदि अंत विरतंत।
घर जन्मे पशु के कहा देखत कोऊ दंत ॥३८७॥
कहवौ कछु करिवौ कछू है जग की विधि दोय।
देखन के अरु खान के और दुरद रद होय ॥३८८॥

आप कहैं नाहीं करै ताकौ है यह हेत।
आप जाय नहिँ सासुरै औरन कौं सिख देत ॥३८९॥
जो कहियै सो कीजियै पहिलै करि निर्धार।
पानी पी घर पूछवौ नाहिन भलौ विचार ॥३९०॥
पीछे कारज कीजियै पहिलै जतन विचार।
बड़े कहत हैं बांधियै पानी पहिले बार ॥३९१॥
अरि हू बूझै मंत्र कौं कहियै सांच सुनाय।
ज्यौं भीषम पांडवन कौं दीनौ मरन बताय ॥३९२॥
कहियै तासौं जो हितू भली बुरी हू जायि।
चोर करै चोरी तऊ सांच कहै घर जायि ॥३९३॥
संपत बीते विलसवौ सुख कौं चाहै कोइ।
रूख उसारें फूल फल कहु धौं कैसैं होइ ॥३९४॥
रन सनमुख पग सूर के वचन कहैं ते संत।
निकसन पीछैं होत है ज्यौं गयंद के दंत ॥३९५॥
आय बसैं जिहिँ दिन सुछिन्न जे सज्जन चित माहिँ।
चित्र महावत दुरद पर ज्यौं चढ़ि उतरै नाहिँ ॥३९६॥
विन पूछे ही कहत हैं सज्जन हित के वैन।
भले बुरे कौं कहत हैं ज्यौं तमचर गत रैन ॥३९७॥
विछुरं गए विदेस हू सज्जन विछुरे नाहिँ।
दूर भए ज्यौं कुरज की सुरति सुतन के माहिँ ॥३९८॥
वसियै तहां विचार कै जहां दुष्ट गति नाहिँ।
होत न कवहूं भँवर डर ज्यौं चंपक वन माहिँ ॥३९९॥
दान देत धन-हीनता होत तथापि वखान।
दुरवल तऊ सराहियै दुरद झरत जब दान ॥४००॥
ठीक किये विन और की वात सांच मत थर्प।
होत अँधेरी रैन में परी जेवरी सर्प ॥४०१॥

झूठ बिना फीकी लगै अधिक झूठ दुख भौन।
झूठ तितौ ही बोलियै ज्यों आटे में लौन ॥४०२॥
ठौर देखि कै हूजियै कुटिल सरल गति आप।
बाहर टेढ़ौ फिरत है बाँबी सूधौ साँप ॥४०३॥
एकतहू रह सजन खल तजत न अपनौ अंग।
मनि विष-हर विष-कर सरप सदा रहत इक संग ॥४०४॥
भलौ बुरौ जो आदरै कौन सकै निरवारि।
सीत विमल पावन करन चलत नीच गति बारि ॥४०५॥
दोऊ चाहैं मिलन कौं तौ मिलाप निरधार।
कबहुं नाहिन बाजिहै एक हाथ सौं तार ॥४०६॥
हिए दुष्ट के बदन तें मधुर न निकसै बात।
जैसे करुवी बेल के को मीठे फल खात ॥४०७॥
रूखे बचन मिलाप में कहत होत रस-भंग।
बीन बजत ज्यों तार के टूटे रहत न रंग ॥४०८॥
आप अकारज आपनौ करत कुबुध के साथ।
पायँ कुल्हारी आपने मारत मूरख हाथ ॥४०९॥
ताही कौ करियै जतन रहियै जिहिँ आधार।
को काटै ता डार कौं बैठै जाही डार ॥४१०॥
न्याय चलत बिगरै कछू तौ न करै अफसोस।
धार परत जो राजपथ तौ न देत कोउ दोस ॥४११॥
भले भलौ ही कहत हैं पै न कहत हैं दाप।
सूरदास कहैं अंध कौं उपजावत है ताप ॥४१२॥
सदा सुथान प्रधान है बल न प्रधान बताव।
नाग डरावत गरुड़ कौं हर उर हार प्रभाव ॥४१३॥
जामें विद्या नारदी बिगरत देत न लाग।
पैस चोर मुँसि स्वान कौ कहत धनी सौं जाग ॥४१४॥

भाग-हीन कौं ना मिलै भली बस्तु कौ भोग।
दाख पके मुख पाक कौ होत काग को रोग ॥४१५॥
सब कोऊ चाहत भलो मित्र मित्र की ओर।
ज्यों चकई रवि कौ उदै ससि कौ उदै चकोर ॥४१६॥
भले बंस संतति भली कबहूं नीच न होय।
ज्यौं कंचन की खान मैं कांच न उपजै कोय ॥४१७॥
सूर बीर के बंस मैं सूर बीर सुत होय।
ज्यों सिंहनि के गर्भ मैं हिरन न उपजै कोय ॥४१८॥
करै न कबहूं साहसी दीन हीन कौ काज।
भूख सहै पर घास कौं नाहिँ भखै मृगराज ॥४१९॥
मान-धनी नर नीच पै जांचै नाहीं जाय।
कबहुँ न मांगै स्यार पै बलि भूख्यौ मृगराय ॥४२०॥
छोटे नर कौं बड़ेन सों कबहूं बुरौ न होय।
फूस आगि करि ना सकै तपत उदधि कौ तोय ॥४२१॥
नीचहु उत्तम संग मिलि उत्तम ही है जाय।
गंग संग जल निंद्य हू गंगोदक के भाय ॥४२२॥
अधिक चतुर की चातुरी होत चतुर के संग।
नग निरमल के डांक तैं बढ़त जोति छवि रंग ॥४२३॥
परतछ नीके देखिए कहा बरन कोउ ताहि।
कर कंकन कौं आरसी को देखत है चाहि ॥४२४॥
सहज सील गुन सजन के खल बुधि होत न भंग।
रतन दीप की ज्यों सिखा बुझत न बात प्रसंग ॥४२५॥
रति रस श्रुति रस राग रस पाय न चाहत और।
चाखत मधु अरविंद कौ लै न ईख रस भौंर ॥४२६॥
मोह महातम रहतु है जौ लौं ज्ञान न होत।
कहा महातम रहि सकै भए अदीत उदोत ॥४२७॥

सबुध अबुध की सेव कौ यह सरूप जिय थाप।
थल में रोपित कमल ज्यौं बधिर करन ज्यौं जाप ॥४२८॥
यौं सेवा राजान की दीन्ही कठिन बताय।
ज्यौं चुंबन व्याली बदन सिंह मिलन के भाय ॥४२९॥
पंडित अरु बनिता लता सोभित आश्रय पाय।
है मानिक बहु मोल कौ हेम जटित छबि छाय ॥४३०॥
इक गुन तैं सोभा लहैं इक औगुन अवरोह।
सोह उरोजन पीनता त्यौं कटि कृसता सोह ॥४३१॥
सुजन सुजन के दरस ही पावत जिय संतोष।
लहत कच्छ के वत्स ज्यौं सोम दृष्टि तैं पोष ॥४३२॥
सब संपति फल करत है सुहृद जनन कौ हेत।
दूरहिँ सूरज उदित ज्यौं कमलन कौं सुख देत ॥४३३॥
ऊंचे पद कौं पाय लघु होय तुरत ही पात।
घन तैं गिरि पर गिरत जल गिरिहू तैं ढरि जात ॥४३४॥
अपनी प्रभुता को सबै बोलत झूठ बताय।
बेस्या बरस घटावही जोगी बरस बढ़ाय ॥४३५॥
अपने लालच के लियै दुख हू आवै दाय।
कान बिधावैं खाय गुर पहिरै बीरबलाय ॥४३६॥
धनी गुनी कौं न्याय ही धन अरपै धरि हेत।
सगुन पात्र कौं कूप हू मिलतहि जीवन देत ॥४३७॥
गुन सनेह जुत होतु है ताही की छबि होत।
गुन सनेह के दीप की जैसैं जोति उदोत ॥४३८॥
सुनि सुनि मीठी बात कौं को चाहत कटु बात।
चाखि दाख के स्वाद कौ कौन निबौरी खात ॥४३९॥
रस की कथा सुनी न तिहिँ कूर कथा की चाहि।
जिन दाखैं चाखी नहीं मिष्ट निबौरी ताहि ॥४४०॥

प्रेमी प्रीत न छांड़हीं होत न प्रन तैं हीन।
मरै परे हू उदर मैं जल चाहत है मीन ॥४४१॥
अति उदारता बड़ेन की कहँ लौं बरनै कोय।
चातक जाचै तनिक घन बरस भरै घन तोय ॥४४२॥
बड़े जु चाहैं सो करैं करन मतो उर धारि।
हरि गिरि तारे जलधि पर करी सिला तैं नारि ॥४४३॥
औसर बीते जतन को करिबो नहिँ अभिराम।
जैसे पानी बह गए सेतबंध किहिँ काम ॥४४४॥
दुष्ट संग बसियै नहीं दुख उपजत इहिँ भाय।
घसत बांस की अगिन तैं जरत सबै बनराय ॥४४५॥
करै अनादर गुननि को ताहि सभा छबि जाय।
गज कपोल शोभा मिटत ज्यौं अलि देत उड़ाय ॥४४६॥
कहूं कहूं गुन तैं अधिक उपजत दोष सरीर।
मीठी बानी बोलि कै परत पींजरा कीर ॥४४७॥
भले बुरे निबहैं सबै महत पुरुष के संग।
चंद सांप जल अगिन ए बसत शंभु के अंग ॥४४८॥
बिना कहे हू सत पुरुष पर की पूरैं आस।
कौन कहत है सूर को घर घर करत प्रकास ॥४४९॥
कछु कहि नीच न छेड़ियै भलो न वाको संग।
पाथर डारे कीच मैं उछरि बिगारै अंग ॥४५०॥
हीन जानि न विरोधियै वह तो तन दुखदाय।
रजहू ठोकर मारियै चढ़ै सीस पर आय ॥४५१॥
नाहिँ करत उपकरन तैं काज सिद्ध बलवान।
मुनि बन बसिबो संग मृग किय अगस्त दधि पान ॥४५२॥
बिना दिए न मिलै कछू यह समझो सब कोय।
होत सिसिर में पात तरु सुरभि सपल्लव होय ॥४५३॥

यह निश्चय करि जानियै जानहार सो जाय।
गज के भुक्त कपित्थ के ज्यौं गिर वीज विलाय ॥४५४॥
दूर कहा नियरै कहा होनहार सो होय।
धुर सीचै नालेर के फल मे प्रगटै तोय ॥४५५॥
आए आदर ना करै पीछै लेत मनाय।
आयौ नाग न पूजई वांवी पूजन जाय ॥४५६॥
कहूं अनादर पाय कै गुनी न करहु अँदेस।
विद्या है तौ करहिँगे सब कोऊ आदेस ॥४५७॥
अपने अपने समय पर सब कौ आदर होय।
भोजन प्यारौ भूख मैं तिस मैं प्यारौ तोय ॥४५८॥
होय सो होय हिसाव सौं विन हिसाव नहिँ होय।
भषै बदन तैं अन्न मन नाहिं नाक तैं कोय ॥४५९॥
जिहिँ डर डरि करियै जतन उपजत सोइ अमेट।
लगै दूखती चोट ज्यों होति कनौड़े भेट ॥४६०॥
मीठी कोऊ वस्तु नहिँ मीठी जाकी चाह।
अमली मिसरी छांड़ि कै आफू खातु सराहि ॥४६१॥
वड़ी वड़ाई नीच कौं दीजै अपने काम।
खरहू कौं वोलत पथिक कहत विनायक नाम ॥४६२॥
कहा भयौ जौ नीच कौं देत वड़ाई कोय।
कहत विनायक नाम पै खर न विनायक होय ॥४६३॥
भले वुरे कौं जानिवौ जान वचन के वंध।
कहै अंध कौ सूर इक कहै अंध कौं अंध ॥४६४॥
जानि वूझि कै करत नर अपने हेत अहेत।
झूठी सांची बात पर दोऊ मुचलका देत ॥४६५॥
चिरजीवी तन हूं तजै जाकौ जग जस वास।
फूल गएहूं फूल की रहै तेल मैं वास ॥४६६॥

बहुत भए किहिँ काम के भार निबाहक एक।
सेस धरे धर सीस पर मैंडक भखी अनेक ॥४६७॥
वृद्ध न ह्वैहै पाप तैं वृद्ध धरम तैं धार।
सुन्यौ न देख्यौ सिंह कै मृग कौ सौ परवार ॥४६८॥
देखत कौ पै कछु नहीं मुख पै खल की प्रीति।
मृग-तृष्णा में होति है ज्यों जल की परतीति ॥४६९॥
ऊपर दरसै सुमिल सी अंतर अनमिल आंक।
कपटी जन की प्रीति है खीरा की सी फांक ॥४७०॥
निबल सबल के परस तैं सबलन सौं अनखात।
देति हिमायत की गधी ऐराकी कैं लात ॥४७१॥
दोष लगावत गुनिन कौं जाकौ हृदय मलीन।
धरमी कौं दंभी कहैं छमियन कौं बलहीन ॥४७२॥
द्वै ही गति है बड़नि की कुसुम मालती भाय।
केशव कें सिर पर रहै कै बन माहिँ बिलाय ॥४७३॥
सब विधि डरियै दुष्ट सौं रहियै जतन समेत।
शंभु सुधाकर सिर धरयो विष विषधर के हेत ॥४७४॥
खाय न खर्चै सूम धन चोर सबै ले जाय।
पीछे ज्यौं मधु मच्छिका हाथ मलै पछिताय ॥४७५॥
जगत बहुत जन तदपि मन बिन सज्जन अति दीन।
ससि तारा निस हूँ तऊ रबि बिन नलिन मलीन ॥४७६॥
कोऊ कहै न जानियै जोतिवंत सुनि कोय।
हाथ दिया लै देखियै ऐसी आग न होय ॥४७७॥
खल निज दोष न देखई पर के दोषहि लागि।
लखै न पग तर सब लखै परवत बरती आग ॥४७८॥
जैसौ जैसौ अधिक गुन तैसौ होय मिलाय।
अहि-उर विष गल अनल चख शिव ससि सीस बसाय ॥४७९॥

भागहीन कौं देवहू देत सु लेत वनै न।
दीठ परै जहँ वस्तु तहँ चलै मूंद कै नैन ॥४८०॥
दिवस भले विगरै न कछु रहै। निचींतै सोय।
आवै चोरी करन कौं चोर आंधरो होय ॥४८१॥
दान दीन कौं दीजियै मिटै दरिद की पीर।
औषध ताकौं दीजियै जाके रोग शरीर ॥४८२॥
सवसौ आगे होय कै कवहुँ न करियै वात।
सुधरै काज समाज फल विगरै गारी खात ॥४८३॥
आवत समै विपत्ति के मित्र शत्रु ह्वै जाय।
दुहत होत वछ बँधन कौं थभ मातु कौ पाय ॥४८४॥
उत्तम विद्या लीजियै जदपि नीच पै होय।
परयो अपावन ठौर कौ कंचन तजत न कोय ॥४८५॥
निहचै कारन विपत कौ किएँ प्रोति अरि संग।
मृग के सुख मृगराज को होत कवहुँ अँग-भंग ॥४८६॥
जौ घर आवत शत्रु हू सजन देत सुख चाहि।
ज्यौ काटै तरु-मूल कोउ छांह करत रह ताहि ॥४८७॥
ताकौ बुरौ न ताकियै जासौं जग व्यौसाइ।
छांह फूल फल देत तरु क्यौं तिहि कटन कराइ ॥४८८॥
दुष्ट भाव हिय मुख मधुर तासौं करहु न प्रोति।
भीतर विष पय घट भरयौ ताहि न छुइ इहि रीति ॥४८९॥
दुष्ट न छाँड़ै दुष्टता वड़ो ठौर हू पाय।
जैसैं तजत न श्यामता विष शिव कंठ वसाय ॥४९०॥
विन उद्यम मसलत कियै कारज सिद्ध न ठाय।
रोग न जानत औषधी जानै जाइ जो खाय ॥४९१॥
नृप अनीति के दोष तैं चूकै मंत्र प्रयोग।
करै कुपथ- ता पुरुष कौं उपजै क्यों नहि रोग ॥४९२॥

कहा करै आगम निगम जो मूरख समझै न।
दरपन कौ नहिं दोष कछु अंध वदन देखै न ॥४६३॥
दया दुष्ट कै चित्त मैं कबहूं उपजत नाहिं।
हिंसा छोड़ी सिंह यह क्यों आवै मन माहिं ॥४६४॥
प्रीति टुटै हू सजन के मन तैं हेत छूटै न।
कमलनाल कों तोरियै तदपि सूत टूटै न ॥४६५॥
सज्जन के प्रिय वचन तैं तन संताप मिटाय।
जैसैं चंदन नीर तैं तापन तन कौ जाय ॥४६६॥
सजन वचन दुर्जन वचन अंतर बहुत लखाय।
वे सबकौं नीके लगैं वे काहू न सुहाय ॥४६७॥
धन अरु गेंद जु खेल कौ दोऊ एक सुभाय।
कर में आवत छिनक में छिन में कर तैं जाय ॥४६८॥
प्रभु कौं चिंता सवन की आपु न करियै नाहिं।
जनम अगाऊ भरत है दूध मात थन माहिं ॥४६९॥
धन अरु जोवन कौ गरब कवहूँ करिए नाहिं।
देखत ही मिट जात है ज्यौ वादर की छांह ॥५००॥
नृपति चोर जल अनल तैं धनि कौ भय उपजाय।
जल थल नभ मे मांस कौं झख केहरि खग खाय ॥५०१॥
वड़े वड़े कौं विपति तैं निहचै लेत उवारि।
ज्यों हाथी कौं कीच तैं हाथी लेत निकारि ॥५०२॥
वड़े कष्ट हू जे वड़े करैं उचित ही काज।
स्यार निकट तजि खोज कै सिंह हनै गजराज ॥५०३॥
जिहिं जेतो उनमान तिहिं तेतो रिजक मिलाय।
कन कीड़ो कूकर टुकर मन भर हाथी खाय ॥५०४॥
वहु गुन श्रम तैं उच्च पद तनक दोष तैं पात।
नीठ चढ़ै गिरि पर सिला टारत ही ढुरि जात ॥५०५॥

छोटे अरि कों साधियै छोटो करि उपचार।
मरै न मूसा सिंह तें मारै ताहि मँजार ॥५०६॥
बड़े बड़े सों रिस करै छोटे सों न रिसाय।
तरु कठोर तारै पवन कोमल तृन बच जाय ॥५०७॥
सेवक सोई जानियें रहै विपति में संग।
तन-छाया ज्यों धूप में रहै साथ इकरंग ॥५०८॥
बुरो वऊ लागत भलो भली ठौर पै लीन।
तिय नैननि नीको लगै काजर जदपि मलीन ॥५०९॥
जोरावर हू को कियो विधि वस करन इलाज।
दीप तमहि अंकुस गजहि जलनिधि तरनि इलाज ॥५१०॥
दुष्ट रहै जा ठौर पर ताको करै बिगार।
आगि जहाँ ही राखियै जारि करै तिहिँ छार ॥५११॥
विना तेज के पुरुष की अवसि अवज्ञा होय।
आगि बुझै ज्यों राख कों आनि छुवै सब कोय ॥५१२॥
पाय प्रकृति वस कीजियै करि बुधि वचन विवेक।
लष्ट पुष्ट सों एक कों जष्ट मुष्ट सौं एक ॥५१३॥
नेह करति तिय नीच सों धन किरपन घर माहिँ।
बरसै मेह पहार पै कै ऊसर बरसाहिँ ॥५१४॥
जहाँ रहै गुनवंत नर ताकी सोभा होत।
जहाँ धरै दीपक वहाँ निहचै करै उदोत ॥५१५॥
खाली तजि पूरन पुरुष जिहिँ सब आदर देत।
रीतो कुवां उसारियै ऐंच भरयो घट लेत ॥५१६॥
सब आसान उपाय तैं तुरत फुरत फल देत।
मथि अरनी अरु काठ ज्यौं आगि प्रगटि करि लेत ॥५१७॥
जाको प्रापति होय सो मिलै आप तैं आय।
पाले पोषे खग वचन देहै कहा कमाय ॥५१८॥

खल सज्जन सूचीन के भाग दुहूं सम भाय।
निगुन प्रकासै छिद्र कौं सगुन सु ढांपत जाय ॥५१९॥
तुला सुई की तुल्यता रीति सजन की दीठि।
गरुवे दिस नै जाति है हरुवे कौं दै पीठि ॥५२०॥
भले बुरे सौं एक सी मूढ़नि की परतीति।
गुंजा सम तोलत कनक तुला पला की रीति ॥५२१॥
जिहिँ दिसि भय तिहिँ दिसि कबहुँ ना जैयै करि चोज।
गज तिहिँ मग पग ना धरै जहां सिंह कौ खोज ॥५२२॥
सिद्धि होत कारज सबै जाके जिय बिस्वास।
पूजत ऐपन कौ हथा तिय जिय पूरै आस ॥५२३॥
बहुत द्रव्य संचै जहां चोर राज भय होय।
कांसे ऊपर बीजुरी परति कहैं सब कोय ॥५२४॥
जानि बूझि अजगुत करै तासौं कहा बसाय।
जागत ही सोवत रहै तिहिँ को सकै जगाय ॥५२५॥
जहँ तहँ सज्जन मिलैं नहि गुन गरुवे जग माहिँ।
जोति भरे पानिप भरे पति गज मुक्ता नाहिँ ॥५२६॥
विद्या विन न विराजहीं जदपि सरूप कुलीन।
ज्यौं सोभा पावै नहीं टेसू वास विहीन ॥५२७॥
एकहि भले सुपुत्र तैं सब कुल भलौ कहाय।
सरस सुवासित वृच्छ तैं ज्यौं वन सकल वसाय ॥५२८॥
गुरुमुख पढ़्यो न कहतु है पोथी अर्थ विचारि।
सो सोभा पावै नहीं जार गर्भजुत नारि ॥५२९॥
जाकौं बुधिबल होत है ताहि न रिपु कौ त्रासु।
घन बूंदैं कह करि सकैं सिर पर छतना जासु ॥५३०॥
छमा खड्ग लीने रहै खल कौ कहा बसाय।
अगिन परी तृन रहित थल आपहि तैं बुझि जाय ॥५३१॥

एकै थल विश्राम कौ ताकौ तजि कहँ जाय।
ज्यौं पंछी सुजहाज कौ उड़ि उड़ि तहां बसाय ॥५३२॥
जिहिँ जैसो अपराध तिहिँ तैसौ दंड बखानि।
थाप ककरिया-चोर कौं धन-चोरहि जिय हानि ॥५३३॥
ओछे नर के पेट में रहै न मोटी बात।
आध सेर के पात्र में कैसैं सेर समात ॥५३४॥
चलिए पैंड़े सांच के साईं सांच सुहाय।
सांचौ जरै न आग तैं झूठौ ही जरि जाय ॥५३५॥
गूढ़ मंत्र जौ लौं रहै कँ जु मिलि जन दोय।
भई छकानी बात तब जानि जात सब कोय ॥५३६॥
गूढ़ मंत्र गरुवे विना कोऊ राखि सकै न।
धातु पात्र विन और मैं बाघिन दूध रहै न ॥५३७॥
बहुत जु बीते तनक धन संचै सजन करै न।
मनन हानि ऊपज तहां कन कन कबहुँ भरै न ॥५३८॥
भिरत भार सब तैं उतरि गिरही पर ठहरात।
नीर निवानहि पाइयै ज्यौं बीते बरसात ॥५३९॥
सील करम कुल श्रुत चतुर पुरुष परिच्छा जान।
ताड़न छेदन कस तपन इन तैं कनक पिछान ॥५४०॥
जो पै जैसे होय तिहिँ हित सौं मिलिहै आय।
गांठी चोरा चोर कौ साहै साह मिलाय ॥५४१॥
कबहूं रन विमुखी भयौ तउ फिर लरै सिपाह।
कहा भयौ काहू समै भाग्यौ तऊ बराह ॥५४२॥
कबहूं प्रीति न जोरियै जोरि तोरियै नाहिँ।
ज्यौं तोरै जोरै बहुरि गांठ परति गुन माहिँ ॥५४३॥
अंतर तनक न राखियै जहां प्रीति विवहार।
उर सौं उर लागै न तहँ जहां रहतु है हार ॥५४४॥

निरखत पलक न मारियै सज्जन मुख की ओर।
उदय अस्त लौं एकटक चितवत चंद चकोर ॥५४५॥
सेवक साहिब के बढ़ै बढ़ै बड़ाई ओज।
जेतौ गहरौ जल बढ़ै तेतौ बढ़ै सरोज ॥५४६॥
ओछे नर के चित्त मैं प्रेम न पूर्यौ जाय।
जैसें सागर को सलिल गागरि में न समाय ॥५४७॥
जे न होयँ दृढ़ चित्त के तहां न रहै सटेक।
ज्यौं काचे घट मैं सलिल नहिँ ठहरतु छिन एक ॥५४८॥
रस पोपे विनहीं रसिक रस उपजावत संत।
बिन बरसे सरसै रहैं जैसें बिटप बसंत ॥५४९॥
मन भावन के मिलन कौ सुख कौ नाहिन छोर।
बोलि उठै नचि नचि उठै मोर सुनत घन घोर ॥५५०॥
विरही जन के चित्त कौं नाहिँ रहतु बुधि बोध।
थिर चर कौं बूझत फिरैं राघव सीता सोध ॥५५१॥
जहां सजन तहँ प्रीति है प्रीति तहां सुख ठौर।
जहां पुष्प तहँ बास है जहां बास तहँ भौंर ॥५५२॥
जो प्रानी परवस पर्यौ सो दुख सहत अपार।
जूथ बिछोही गज सहै बंधन अंकुस मार ॥५५३॥
गुनी होय श्रम कष्ट करि लहै राज-दरबार।
बीध बंध मुक्ता सहै तब उर-हार बिहार ॥५५४॥
मन प्रसन्न तन चैन जहँ स्वेच्छाचार विचार।
संग मृगी मृग सुख सबै घन बसि तृन आहार ॥५५५॥
रहनहार जाइ न बसत तदपि जतन बिवहार।
देखौ सब के देखिये काहे द्वार किवार ॥५५६॥
है पासे के दाव पर कहां जीत कहँ हारि।
सारि उठै यौं चौकसी छक पै उठै न सारि ॥५५७॥

सबकौं ब्याकुल करति है एक जठर की आगि।
परै किलकिला जलधि मधि जल जलचर डर त्यागि ॥५५८॥
उदर भरन के कारनै प्रानी करत इलाज।
नांचै बांचै रन भिरै रांचै काज अकाज ॥५५९॥
दुरभर उदर न दीन कौ होत न तन संताप।
तै। जन जन कौ को सहत तरजन गरजन ताप ॥५६०॥
उदर धरन नर तैं भलौ राहु उदर तैं हीन।
कबहूं नाहिन होतु है जन जन कौ आधीन ॥५६१॥
करी उदर दुरभरन भय हर अरधंगी दार।
जै। न होय तै। क्यौं रहै अन लौं तनय कुमार ॥५६२॥
भरत पेट नट निरत कै डरत न करत उपाय।
धरत बरत पर पायँ अरु परत बरत लपटाय ॥५६३॥
एक एक कौ शत्रु है जो जातैं बलवंत।
जलहि अनल अनलहि पवन सरप जु पवन भखंत ॥५६४॥
एक एक तैं देखियै अधिक अधिक बलवंत।
सेस धराधर गिर धरै गिरधर हरि भगवंत ॥५६५॥
देत न प्रभु कछु बिन दियै दियै देत यह बात।
लै तंदुल धन दुजहि मुनि त्रिपत किए भखि पात ॥५६६॥
यथाशक्ति ही दै सकै जो कुछु जाके पास।
ब्राह्मन कन चावर दिए श्रीपति धन आवास ॥५६७॥
जोरावर कौं होति है सबके सिर पर राह।
हरि रुक्मनि हरि लै गयो देखत रहे सिपाह ॥५६८॥
अगम पंथ है प्रेम कौ जहां ठकुरई नाहिँ।
गोपिन के पीछैं फिरे त्रिभुवनपति बन माहिँ ॥५६९॥
बचन रचन कापुरुष के कहे न छिन ठहराय।
ज्यौं कर पद मुख कछप के निकसि निकसि दुर जाय ॥५७०॥

कवहूं झूठी बात कौ जो करिहै पछपात।
झूठे सँग झूठौ परत फिर पाछैं पछतात ॥५७१॥
कुल कुपुत्र किहिँ काम कौ तिहिँ सुख सोभा नाहिँ।
ज्यौं वकरी के कंठ थन दूध न जल तिहिँ माहिँ ॥५७२॥
विगरनवारी वस्तु कौं कहौ सुधारै कौन।
डारै पय औटाय कै मिसरी भोरै नौन ॥५७३॥
काहू कौं हँसियै नहीं हँसी कलह कौ मूल।
हांसी ही तैं ह्वै गयौ कुल कौरव निरमूल ॥५७४॥
दुरजन गहत न सजनता जतन करौ किन कोय।
जौ पै जौ कौं रोपियै कवहूं सालि न होय ॥५७५॥
जग परतीति वढ़ाइयै रहियै सांचे होय।
झूठे नर की सांचिहु साखि न मानै कोय ॥५७६॥
वड़े वड़ाई के जतन गहैं विरद की लाज।
भए चतुर्भुज चोर तैं नृप कन्या के काज ॥५७७॥
है अयुक्त पै युक्त है करिए वहै प्रमान।
ब्राह्मन सौं गुरु जनन सौं हारे होत वखान ॥५७८॥
जामैं हित सो कीजियै कोऊ कहौ हजार।
छल वल साधि विजै करी पारथ भारथ वार ॥५७९॥
सुनियै सवही की कही करियै सहित विचार।
सर्व लोक राजी रहैं सो कीजै उपचार ॥५८०॥
प्रापति के दिन होति है प्रापति वारंवार।
लाभ होतु व्योपार मे आमंत्रन अधिकार ॥५८१॥
अपरापति के दिनन में खरच होत अविचार।
घर आवतु है पाहुनौ विन जन लाभ लगार ॥५८२॥
दीन धनी आधीन ह्वै सीस नवावत नाहिँ।
मान-भंग की भूमि यह पेट दिखावत ताहि ॥५८३॥

रूखे सूखे उदर कौं भरे होतु संतुष्ट ।
ये मन लाख करोर के पायैं तुष्ट न दुष्ट ॥५८४॥
एक एक के काम कौं रचि राखै जगदीस ।
जैसैं भरियै पेट कौं निहुरै सब कौं सीस ॥५८५॥
भली किए ह्वैहै बुरी देखौ विधि विपरीत ।
भक्ति करी द्विज जमदगनि अर्जुन करी अनीति ॥५८६॥
कहे बचन पलटैं नहीं जे सत पुरुष सधीर ।
कहत सबै हरिचंद नृप भरयो नीच घर नीर ॥५८७॥
मति फिर जाय बिपत्ति मे राव रंक इक रीत ।
हेम हिरन पाछैं गए राम गँवाई सीत ॥५८८॥
जानहार सो जाय अरु होनहार ह्वै आय ।
रावन तैं लंका गई बसे बिभीषन पाय ॥५८९॥
अन उद्यम सुख पाइयै जौ पूरब कृत होय ।
दुख कौ उद्यम को करतु पावतु है नर सोय ॥५९०॥
प्यारी अन प्यारी लगै समै पाय सब बात ।
धूप सुहावै शीत में सो ग्रीषम न सुहात ॥५९१॥
जन्मत ही पावै नहीं भली बुरी कोउ बात ।
बूझत बूझत पाइयै त्यौं त्यौं समुझत जात ॥५९२॥
भलौ ज्ञान अज्ञान नहिँ है अज्ञान न ज्ञान ।
भानु उयौ तौ तम नहीं है तम उयौ न भान ॥५९३॥
सत पुरुषनि तैं उतरि कै होत नीच अधिकार ।
यह खटकत रवि से असित तम कौ जगत प्रचार ॥५९४॥
हरवी गरुवे के हिए ठहरत नाहीं बात ।
तुंबी जल मे दाबियै ज्यौं ऊपर ही आत ॥५९५॥
पावत बहुत तलास तैं कर तैं छूटी बात ।
आंधी में टूटी गुड़ो को जानै कित जात ॥५९६॥

पिय के बिछुरे बिरह बस मन न कहूं ठहरात ।
धरनि गिरतु बीचहि फिरतु परयौ भँभूरे पात ॥५९७॥
होत अधिक गुन निबल पै उपजत बैर निदान ।
मृग मृगमद चमरी चमर लेत दुष्ट हत प्रान ॥५९८॥
आप तरै तारै अवर काठ नाव चित चाव ।
बूड़ै बोरै अवर कौं ज्यौं पाथर की नाव ॥५९९॥
जूवा खेलै होतु है सुख संपति कौ नास ।
राज-काज नल तैं छुट्यौ पांडव किय बनवास ॥६००॥
सरसुति के भंडार की बड़ो अपूरव बात ।
ज्यौं खरचे त्यौं त्यौं बढ़ै बिन खरचै घटि जात ॥६०१॥
यह अनखोही बात पर को न देखि अनखात ।
नकटी बूची इक-नयनि पान खाति मुसकात ॥६०२॥
देखा देखी करत सब नाहिन तत्त्व विचार ।
याकौ यह अनुमान है भेड़ चाल संसार ॥६०३॥
काज बिगारतु और को इक निज काज सुधारि ।
किय मंत्रिनि मिल राज नृप सुरथहि दियौ निकारि ॥६०४॥
काज बिगारतु आपनौ एक और के काज ।
बलहि निवारत नैन की हानि सही कविराज ॥६०५॥
एक आपनौ और कौ साधत काज सतोल ।
अंगद अपने राम कौ कीनौ सभा सबोल ॥६०६॥
एक बिगारतु आपनौ और परायौ काज ।
रावन कौ अरु आपनौ इंद्रजित कियौ अकाज ॥६०७॥
देखत कौ सुंदर लगै उर में कपट विषाद ।
इंद्रायन के फलन सम भीतर कटुक सवाद ॥६०८॥
बिरह पीर व्याकुल भए आयौ प्रीतम गेह ।
जैसैं आवतु भाग तैं आग लगे पर मेह ॥६०९॥

खरचत खाति न जातु धन औसर किये अनेक ।
जातु पुण्य पूरन भए अरु उपजै अविवेक ॥६१०॥
चलै जु पंथ पिपीलिका समुद पार ह्वै जाय ।
जौ न चलै तौ गरुड़ हू पैंड़हु चलै न पाय ॥६११॥
एक एक अच्छर पढ़ै जानै ग्रंथ विचार ।
पैंड़ पैंड़ हू चलत जो पहुँचै कोस हजार ॥६१२॥
भले बुरे हू सौं करत उपकारी उपकार ।
तरवर छाया करत है नीच न ऊँच विचार ॥६१३॥
सजन करत उपकार कौ वित माफिक जग माहिँ ।
गहरे गहरी छांह तरु विरले विरली छाहिँ ॥६१४॥
विन देखे जाने परै देखै जहाँ निसान ।
दीप धरै धन लाख पर कोर ध्वजा फहिरान ॥६१५॥
भले वंस कौ पुरुष सो निहुरे वहु धन पाय ।
नवै धनुष सदवंस कौ जिहिँ ह्वै कोटि दिखाय ॥६१६॥
एक एक सौं लगि रहै अन्नोदक संवंध ।
चोली दामन ज्यौं रच्यौ जगत जँजीरा वंध ॥६१७॥
नेगी दूर न होतु है यह जानौं तहकीक ।
मिटत न ज्यौं क्यों हूं किए ज्यौं हाथन की लीक ॥६१८॥
चिदानंद घट मे वसै वूझत कहां निवास ।
ज्यौं मृगमद मृगनाभि में ढूंढ़त फिरत सुवास ॥६१९॥
कै सम सों कै अधिक सों लरियै करियै वाद ।
हारे जीते होतु है दोऊ भांति सवाद ॥६२०॥
सज्जन सों रस पोखियै त्यौं त्यौं वढ़त हुलास ।
जेतौ मीठौ वस्तु मैं तेतौ अधिक मिठास ॥६२१॥
करियै सभा सुहावती मुख तैं वचन प्रकास ।
विन समझे सिसुपाल के वचनन भयौ विनास ॥६२२॥

जासौं पहुँचि न आइयै तासौं वहसि न ठान।
गई प्रतिष्ठा करन की फिर न वसे पुर आन ॥६२३॥
सब काहू की कहत हैं भलो बुरौ संसार।
दुरजोधन की दुष्टता विक्रम कौ उपकार ॥६२४॥
जोति सरूपी हिय सवै सब शरीर में जोति।
दीपक धरिए ताक में सब घर आभा होति ॥६२५॥
वय समान रुचि होति है रुचि प्रमान मन मोद।
वालक खेल सुहावही जोवन विषै विनोद ॥६२६॥
दान मान सनमान अरु अपनी अपनी वान।
छोटो छोटी गति कही मोटो मोटी मान ॥६२७॥
भले वुरे दोऊ रहौ चिरंजीव संसार।
जिनते गुन अरु दोष कौ जान्यौ परतु विचार ॥६२८॥
सरस निरस नर होतु है समय पाय सब कोइ।
दिन में परम प्रकास रवि चंद मंद दुति होइ ॥६२९॥
बांके रन तैं होतु है वंदनीक सव लोय।
नमत द्वुतीया चंद कौं पूरन चंद न कोय ॥६३०॥
करियै तहँ पैसार जहँ जो जानियै निसार।
चक्रव्यूह अभिमन्यु कौ सुन्यौ सवनि संसार ॥६३१॥
अधिक अधिक वल फोरि कै कंस हत्यौ व्रजराज।
चढ़तैं चढ़तैं मोल ज्यौं दरसै वसन वजाज ॥६३२॥
परुष वचन तैं रोष हित कोमल वचन समाज।
रजक पछारयो कूवरी राखि लई व्रजराज ॥६३३॥
सुदृढ़ सूर नाहिन चलै कायर लगि रन वात।
देवल डिगै न पवन तैं जैमैं ध्वज फहरात ॥६३४॥
मित्र मित्र के काम कौं देतु विभव करि देत।
जैसैं चंद प्रकास करि रवि-मंडल तैं लेत ॥६३५॥

तन धन हू दै लाज के जतन करत जे धीर।
टूक टूक ह्वै गिरत पै नहिँ मुख फेरत वीर ॥६३६॥
भले बुरे गुर जन वचन लोपत कबहुँ न धीर।
राज-काज को छाँड़ि कै चले विपिन रघुवीर ॥६३७॥
विपति समय हू देत हैं सत पुरुषन के काम।
राज विभीषन को दियो वैसी विरिया राम ॥६३८॥
लोकन के अपवाद को डर करियै दिन-रैन।
रघुपति सीता परिहरी सुनत रजक के वैन ॥६३९॥
भले भले विधिना रचे पै सदोष सब कीन।
कामधेनु पसु कठिन मनि दधि खारो ससि छीन ॥६४०॥
जैसौ कारन होतु है तैसौ कारज थाप।
कर सर धनु प्रानी हनत कर माला हरि जाप ॥६४१॥
इन कौं मानुप जन्म दै कहा कियौ भगवान।
सुंदर मुख बोल न सकै दै न सकैं धनवान ॥६४२॥
कहा कहौं विधि की अविधि भूले परम प्रवीन।
मूरख कौं संपति दई पंडित संपति - हीन ॥६४३॥
वह संपति केहि काम की जन काहू पै होइ।
नीठ कमावै कष्ट करि विलसै औरहि कोइ ॥६४४॥
नर भूषन सब दिन छमा विक्रम अरि बन घेर।
ज्यौं तिय भूषन लाज है निलज सुरति की बेर ॥६४५॥
यों निवाह सब जगत कौ रस रिस हेत अहेत।
एक एक पै लेत है एक एक कौं देत ॥६४६॥
तृन हू तें अरु तूल तें हरवौ जाचक आहि।
जानतु है कछु माँगिहै पवन उड़ावत नाहि ॥६४७॥
नृप गुरु तिय वन्हि सेइयै मध्य भाग जग माहिँ।
है विनास अति निकट तें दूर रहै फल नाहिँ ॥६४८॥

देखत है जग जातु है तउ ममता सौं मेल।
जानतु हौ या जगत मैं देखत भूलो खेल ॥६४९॥
भले बुराई तैं डरैं राख्यौ चाहै सोय।
जानत है पै दुष्ट के अवगुन कहत न कोय ॥६५०॥
गुन तैं अवगुन होतु हैं लिखे मिटत नहिँ अंक।
बढ़ति जात ज्यौं ज्यौं कला त्यौं त्यौं ससि सकलंक ॥६५१॥
निस दिन खटकत तनक तृन परै जु आंखनि माहिँ।
तिनमैं सज्जन राखिए सो छिन खटकतु नाहिँ ॥६५२॥
सजन वचावत कष्ट तैं रहैं निरंतर साथ।
नैन सहाई ज्यौं पलक देह सहाई हाथ ॥६५३॥
धनी होत निरधन वहुर निरधन तैं धनवान।
वड़ी होति निस सीत ऋतु ज्यौं ग्रीषम दिन-मान ॥६५४॥
सवही कुल मे होत है एक एक सरदार।
गज ऐरावत सुर सुरिँद तरुवर में मंदार ॥६५५॥
जहां सनेही तहँ रहत भ्रमत भ्रमत मन आय।
फिरत कटोरी मंत्र की चोरहि पै ठहराय ॥६५६॥
प्रान पियारे के दरस हिय तैं वढ़त हुलास।
फैलत लगै वयार तैं ज्यौं फूलन मैं वास ॥६५७॥
सुनत स्रवन पिय के वचन हिय विकसै हित पागि।
ज्यौं कदंव वरषा समय फूलति वूंदनि लागि ॥६५८॥
ज्यौं ज्यौं छुटै अयानपन त्यौं त्यौं प्रेम प्रकास।
जैसे कैरी आंव की पकरत पकै मिठास ॥६५९॥
चोरा चोरी प्रीति के कीने वढ़त हुलास।
अति खाए उपजै अरुचि थोरी वात मिठास ॥६६०॥
नीति अनीति वड़े सहैं रिस भरि देत न गारि।
भृगु उर दीनी लात की कीनी हरि मनुहारि ॥६६१॥

रहै न कबहूं दोय लखि एक सदन के माहिँ।
एक म्यान में द्वै छुरी जैसे मावैं नाहिँ ॥६६२॥
परधन लेत छिनाय इक इक धन देत हसंत।
सिसर करतु पतझार तरु गहरे करत वसंत ॥६६३॥
जो न परत किहि वात मैं तिहिँ मनुहारि न गारि।
ऐसो खेल न खेलिए जामैं जीति न हारि ॥६६४॥
गहत तत्त्व ज्ञानी पुरुष बात विचार विचार।
मथनिहारि तजि छाछ कौं माखन लेत निकारि ॥६६५॥
मात पिता के पच्छ के पुरुषहि प्रगट प्रभाव।
जामदग्नि में देखिए सम रस वीर सुभाव ॥६६६॥
गुरु वच जोग अजोगहू करिए भ्रम विसराय।
राम राज सुख छांड़िकै वनवासी भए जाय ॥६६७॥
ओछी मति युवतीन की कहैं विवेक भुलाय।
दशरथ रानी के वचन वन पठए रघुराय ॥६६८॥
पूजनीक गुन तैं पुरुष दरसन पूज न होय।
यज्ञ तिलक किय कृष्ण कौं छांडि बड़े सब कोय ॥६६९॥
स्रवन करी त्यौं कीजिए मात पिता की सेव।
कांधे कांवरि लै फिरयौ पूजे जैसैं देव ॥६७०॥
बड़े जिती लघुता करैं तिती बड़ाई पाय।
काम करैं सब जगत के तातैं त्रिभुवनराय ॥६७१॥
अरि के कर मैं दीजियै अवसर कौ अधिकार।
ज्यौं ज्यौं द्रव्य लुटाइयै त्यौं त्यौं जस विस्तार ॥६७२॥
जो लायक जिहि होय सो ताही ठौर मनोग्य।
चंदेरीपति क्यों वरै रुक्मिनि श्री हरि जोग्य ॥६७३॥
घन घेरे को मिलन सुख होत भरोसौ नाहिँ।
होय न होवै चांदनी जैसे पावस माहिँ ॥६७४॥

बड़े भले सब लच्छ तैं नहिँ बिन लछ के जोग।
राम लखन धनु धरि विपिन कहत पारखी लोग ॥६७५॥
ता बिनु होय न काज सिधि जासौं लागी बात।
गुड़ बिनु होत न चौथ व्रत' दूलह बिना बरात ॥६७६॥
प्रभु सौं बात दुरी न तउ करियै अरज मुखेन।
रुक्मिनि आतुरता लिखी हरि कहा जानत हे न ॥६७७॥
कठिन कला हू आइहै करत करत अभ्यास।
नट ज्यौं चालतु बरत पर साधै बरस छ मास ॥६७८॥
जहँ उपजै सोई करै जिहिँ कुल जो अभ्यास।
छोटे मच्छहु जल तिरैं पंछी उड़ैं अकास ॥६७९॥
विद्या लक्ष्मी पुरुप पै होय नहीं इक ठांय।
नाहिन दुख सुख सौति में पिय पै एकहि जाय ॥६८०॥
गुन प्रगटै अवगुन दुरै जाके कमला साथ।
तिय मारी परिहरी तउ कृष्ण त्रिलोकी-नाथ ॥६८१॥
मिलै दियो पूरब जनम न दिए मिले न सोइ।
कौन सयाने धन कियौ किहिँ अयान दियौ खोइ ॥६८२॥
जाको न्यौत जिमाइयै ताही की मनुहारि।
परनै सोई गाइयै बचन सुधारि सुधारि ॥६८३॥
निरस बात सोई सरस जहां होय हिय हेत।
गारी हू प्यारी लगै ज्यौं ज्यौं समधिन देत ॥६८४॥
जो जिहिँ कारज में कुसल सो तिहिँ भेद प्रवीन।
नद-प्रवाह मैं गज बहै चढ़ै उलट लघु मीन ॥६८५॥
जो जैसो तिहँ तैसियै करियै नीति प्रकास।
काठ कठिन भेदै भ्रमर मृदु अरविंद निवास ॥६८६॥
इन लच्छन तैं जानियैं उर अज्ञान निवास।
ऊंघै कथा पुरान सुनि विकथा सुनै हुलास ॥६८७॥

उर उछाव हित धरम सौं असुभ करम की हानि।
मन प्रसन्न रुचि अन्न सौं ज्यौं ज्वर छूटै जानि ॥६८८॥
जपत एक हरि नाम तैं पातक कोटि विलाय।
एकहि कनिका आगि तैं घास ढेर जरि जाय ॥६८९॥
जो समरथ सब बात मैं तिहि भजिए तजि संक।
करै रंक तैं राव हरि करौ राव तैं रंक ॥६९०॥
गर्व-प्रहारी हरि सही या मैं नहिँ संदेह।
जरे लंक के लाख ज्यौं लाख लाख के गेह ॥६९१॥
कहा बड़े छोटे कहा जहँ हित तहँ चित लागि।
हरि भोजन किए विदुर घर दुरजोधन कूं त्यागि ॥६९२॥
परजन सो मनसौ करै परहरि हरि सौं प्रीति।
झूंठे सौं मानैं हरष अहो जगत विपरीति ॥६९३॥
अहै अवधि अविवेक की देखि कौन अनखाय।
काग कनक के पांजरा हंस अनादर भाय ॥६९४॥
मूरख कौं हित के वचन सुनि उपजतु है कोप।
सांपहि दूध पिवाइयै वाके मुख विष ओप ॥६९५॥
गुन गरुवो लघुता गहै तिहिँ सनमानत धीर।
मंद तऊ प्यारो लगै सीतल सुरभि समीर ॥६९६॥
वड़ो ठौर को लघु लहै आए आदर भाय।
मलयाचल की ज्यौं पवन परसै मंद सुहाय ॥६९७॥
महिमा युत को देत ही लेत न तन सकुचाय।
लेत भात जगनाथ को नृपहू सीस चढ़ाय ॥६९८॥
धन पूरन धनवान पै विन दीने न लहात।
ज्यौं विन वरषै सघन जल लियौ पियौ नहिं जात ॥६९९॥
इक विन मांगे ही लहै मांगे एक लहै न।
घन जल सर सरिता भरै चातक चोंच भरै न ॥७००॥

वड़ेन की संपति सबै लघु बिलसंत अनंत।
दधि जल घन घन जल धरा धर जल जग बिलसंत ॥७०१॥
जिहि जेतो निहचै तितौ देत दई पहुँचाय।
सक्कर खोरे को मिलै जैसैं सक्कर आय ॥७०२॥
जिय संतोष बिचारियै होय जु लिख्यौ नसीब।
खल गुर काच कथीर सौं मानत रली गरीब ॥७०३॥
जथाजोग सब मिलत है जो बिधि लिख्यौ अँकूर।
खल गुर भोग गवारनी रानी पान कपूर ॥७०४॥
समय सार दोहानि को सुनत होय मनमोद।
प्रगट भई यह सतसई भाषा वृंद विनोद ॥७०५॥
संवत ससि रस वार ससि कातिक सुदि ससि वार।
सातैं ढाका सहर मैं उपज्यौ इहै विचार ॥७०६॥

---

(७) विक्रम-सतसई

कूल कलिंदी नीप तर सोहत अति अभिराम।
यह छबि मेरे मन बसो निसि दिन स्यामा स्याम॥ १॥
राधापति हिय मैं धरौं राधापति मुख बैन।
राधापति नैनन लहौ राधापति सुख दैन॥ २॥
मनमोहन मन मैं बसौ हृषीकेस हिय आहि।
कमलनैन नैननि बसौ मुरलीधर मुख माहिँ॥ ३॥
है प्रचंड अति पौन तैं रुकत नहीं मन मंद।
जौ लौं नाहीं कृपा कर बरजत हैं ब्रजचंद॥ ४॥
आधि अगाधा ब्याधि हरि हरि-राधा जप सोइ।
साधि समाधा सिव कह्यौ बाधा-बाधक होइ॥ ५॥
बृंदावन राजैं दुवैा साजैं सुख के साज।
महरानी राधा उतै महाराज ब्रजराज॥ ६॥
विहरत बृंदा-विपिन मैं गोपिन सँग गोपाल।
विक्रम हृदै सदा बसौ इहि छवि सौं नँदलाल॥ ७॥
सुरतरु तैं बुधि कृत त्रिनैं हत दित तनै सजोर।
करुनामय भव-भय-हरन जै जै जुगल-किसोर॥ ८॥
मोहन लखि छवि परसपर चंचल चख चित चोर।
मंजु मालती-कुंज मैं विहरत नंदकिसोर॥ ९॥
फिरि फिरि राधा-कृष्ण कहि फिरि फिरि ध्यान लगाइ।
फिरिहैा कुंजन बे-फिकिर कब बृंदावन जाइ॥ १०॥
मेरी करुना की अरज दीनबंधु सुनि कान।
ना तर करुनाकर तुम्हैं कैहै कहा जहान॥ ११॥

हौं चेरौ तेरौ भयौ तापर पेरौ कर्म।
कहा हमारी दासता कह प्रभुता कौ धर्म॥ १२॥
करुना उर मैं धारि प्रभु वेग सुधारहु काज।
ना तर करुनाकर-बिरद छाँड़ि देहु ब्रजराज॥ १३॥
चंद सूर जाके हुकुम निस दिन आवहिं जाहिँ।
स्तुति साखै जाके कहत विक्रम ताके आहि॥ १४॥
करुना-कोर किसोर की रोर-हरन वरजोर।
अष्ट सिद्धि नव निद्धि जुत करत समृद्ध करोर॥ १५॥
नाउ जाजरी धार मैं अदफर भौंर भुलान।
जदुपति पार लगाइए मोहिँ अपनो जन जान॥ १६॥
त्रन समान वज्रहि करत त्रन कहँ वज्र समान।
नंद-नंद जग-वंद प्रभु औढर-ढरन अमान॥ १७॥
नदी-नीर तीछन बहै मेघ-वृष्टि अति घोर।
हरि विनु को पारहि करै लै नैया वरजोर॥ १८॥
मेरी दीरघ दीनता दयासिंधु दिल देव।
प्रभु गुन-आला जानि कै बालापन तैं सेव॥ १९॥
प्रनत-पाल-विरदावली राखी आनि जहान।
अब मम बार अबार कत कीजत कृपानिधान॥ २०॥
कै तुव कान परी नहीं दीनबंधु मम टेर।
चार जुगन सुनि चारि भुज लगी न एती देर॥ २१॥
दीनवंधु है दीन की जौ तुम नहिँ सुध लेत।
नाम कियो इमि प्रगट किमि दीनवंधु केहि हेत॥ २२॥
निज सुभाय छोड़त नहो कर देखौ हिय गौर।
अधम-उधारन नाम तुव हौं अधमन-सिरमौर॥ २३॥
तेरौ तेरौ हौं कहत दूजो नहीं सहाइ।
कहिबी बिरद सम्हार अब विक्रम मेरो आहि॥ २४॥

हौं चेरी ब्रजराज कौ जानत सकल जहान।
मेरी कहत न चूकवी अधम-उधारन-बान ॥ २५ ॥
दीनबंधु तुम दीन हौं यह नातो उर लेख।
ह्वै कृपाल सुन लीजिए विक्रम विनय विशेष ॥ २६ ॥
भूलि तजत हौं भूल नहिँ यहै भूलि कौ देस।
तुम जिन भूलौ नाथ मम राखहु सुरत हमेस ॥ २७ ॥
भू भारे तारे पतित गनि हारे स्रुति सेष।
हिय हारै कत जात अब तिहि गिनती मुहि लेख ॥ २८ ॥
समुझि समुझि गुन आपुनै अपडर हिए सकात।
सुनि सुनि प्रभु तेरै गुननि तुव खातर कै जात ॥ २९ ॥
नभ तारे तारे जिते कहत निगम हरपात।
अब प्रभु विक्रम ओर कौ हिय हारे कत जात ॥ ३० ॥
जरतारी मुख पै सरस सारी सोहत सेत।
सरद जलद भिद जलज पर सहज किरन छवि देत ॥ ३१ ॥
सोहत गोल कपोल पर हद रद-छद-छवि वेस।
जनु कंचन के नगन मैं मानिक जड़े सुदेस ॥ ३२ ॥
नूपुर के ऊपर वढ़ी कहत न वनत सिताव।
छीन लई गुलफन मनौ गुल गुलाव की आव ॥ ३३ ॥
गोरी की रोरी लसत थोरी आड़ लिलार।
मनौ चंद ऊपर लसत इंद्रवधू सुकुमार ॥ ३४ ॥
स्याम वसन पहिरत वढ़ी तिय-तन मैं अति आव।
मनौ सघन घन घटा नै लई छटा छिन दाव ॥ ३५ ॥
सोहत सघन सिवार मैं निज कर विव तरवार।
मनौ कमल मुकलित ललित छयौ सघन तिमिधार ॥ ३६ ॥
वरल तरौना पर लसत बिथुरे सुथरे केस।
मनौ सघन तमतोम नै लीनो दाव दिनेस ॥ ३७ ॥

सेत कंचुकी मैं लसत राते कुच गरकाव।
मनौ काच सीसीनि मैं झलकत साफ सुहाव॥ ३८॥
लाल साल विच बाल कौ झलकत वदन अमंद।
मनौ सांझ बदरान तैं निकस्यो राका चंद॥ ३९॥
मुख उघारि प्रासाद तैं चली सुघर गति मंद।
जनु अकास तैं अवनि पै आवत राका चंद॥ ४०॥
आलस-जुत लखि अधखुले प्रात नयन अभिराम।
मनहु अपूरव कमल जुग बिगसे पूरब जाम॥ ४१॥
नील वसन दरसत दुरत गोरी गोरे गात।
मनौ घटा छन रुचि छटा घन उघरत छपि जात॥ ४२॥
मृगनैनी वेनी निरख छवि छहरत बरजोर।
कनकलता जनु पन्नगी विलसत कला करोर॥ ४३॥
सोहत अलक कपोल पर बढ़ छवि-सिंधु अथाह।
मनौ पारसी हरफ इक लसत आरसी माह॥ ४४॥
तिरछौहैं करि करि दृगनि चितई भौंह चढ़ाइ।
मनौ मैन जग विजय कौ खैंच्यौ धनु हरषाइ॥ ४५॥
अरुनाई एड़ीन की झलकत गहक गँभीर।
मनहु काच सीसीनि मैं झलकत जावक-नीर॥ ४६॥
मोतिन मांग भरी खरी सोहत छवि बरजोर।
मनौ कलानिधि किरन इक धसी निविड़ तम घोर॥ ४७॥
काजर-रेख अशेष दृग छवि दरसत पट झीन।
नागफांस बांधे मदन जनु चंचल जुग मीन॥ ४८॥
पाटी लखि तरुनी जुगल लखियत आभा सोइ।
ससि-मंडल ऊपर उमड़ उठो घटा जनु दोइ॥ ४९॥
सोहत जड़ित जराय के तरल तरौना कान।
मानहु परसत भानु जुग ससि मंडल कौ आन॥ ५०॥

हरुए कर छूवत वज्यौ विछिया छवि सरसात।
बँध्यौ कोकनद कोस जनु गुंज उठ्यौ अलि प्रात ॥ ५१ ॥
कनक दंड जुग जंघ तुव लखियत आभा ऐन।
धर जोवन खर सान पर मनौ खरादे मैन ॥ ५२ ॥
कनक तरौना तरुन के सोहत ऊपर पान।
मनमथ के रथ पर लसत फहरत मनौ निसान ॥ ५३ ॥
कर परसत मसकत खरी रोवत दृग अकुलात।
जनु खंजन धोखे चुने मोती उगलत जात ॥ ५४ ॥
तरुन तिहारो देखियतु यह तिल ललित कपोल।
मनौ वदन विधु गोद मैं रविसुत करत कलोल ॥ ५५ ॥
राते पट विच कुच-कलस लसत मनोहर आव।
भरे गुलाव सराव सौं मनौ मनोज नवाव ॥ ५६ ॥
नूपुर राजत रजत के वजत मधुर धुनि लाल।
जनु पग पिंजर चहचहे चहचर करत मराल ॥ ५७ ॥
आनन तैं स्रम-स्वेद-कन परसत उदित उरोज।
मानौ मोतिन संभु जुग पूजत मुदित सरोज ॥ ५८ ॥
गोरे मुख चूनर हरी अति छवि वढ़ी विसाल।
हरित भूमि वगरी मनौ इंद्रवधूटी लाल ॥ ५६ ॥
मृगनैनी की पीठ पर वेनी लसत सुदेस।
कनकलता पर जनु चढ़ी स्याम भुजंगिनि वेस ॥ ६० ॥
कहा कलानिधि कमल कह अमल लसत मुख वेस।
खौर भौर अहि-सुतन से सोहत कुंचित केस ॥ ६१ ॥
पिय आनन की आन तूं तुव प्रिय आनन प्रान।
जान परत गुनवान अब हित चित के अनुमान ॥ ६२ ॥
तुव तन निरखत पिय प्रिया क्यों कहि सकै सिताव।
आफताव की ताव कहँ कहँ गुलाव महताव ॥ ६३ ॥

हार दयौ पिय पहिर कै हार दयौ निसि चंद।
हुलसत विलसत सपनि मैं विलम्मत लसत अमंद ॥ ६४ ॥
दई पिया जो मतलरी सो सतलरी लमान।
सौत देखि अति हिय जरी मुदित नई सुखदान ॥ ६५ ॥
गति गयंद कटि केहरी श्रीफल उरज उतंग।
वदन चंद दृग भख जितौ भौंहैं धनुप अनंग ॥ ६६ ॥
कै रंभा कै उरवसी कै तिलोत्तमा नाम।
किधौं काम की कामिनी किधौं वाम अभिराम ॥ ६७ ॥
क्यों नख-छत छवि ढाकियत सुंदर सुखद सुनैन।
ज्यों ससि-सेखर ससिकला है पिय मंगल दैन ॥ ६८ ॥
चंदमुखी अति चंद सै अकस वढ़ी सविसेख।
चंद चाँदनी क्यों जुरै रूप चांदनी पेख ॥ ६९ ॥
कहँ मिसरी कहँ ऊख रस नहीं पियूप समान।
कलाकंद-कतरा कहा तुव अधरा-रस-पान ॥ ७० ॥
रंध्र-जाल ह्वै देखियतु तिय तन प्रभा विसाल।
चामीकर चपला लखौ कै मसाल मनिमाल ॥ ७१ ॥
रूप-सिंधु तेरो भरयौ अति घनि अधिक अथाह।
जे वूड़त हैं विन कसर ते पावत मन चाह ॥ ७२ ॥
मिहो अगौंछनि पोंछ लै फैल्यो काजर नैन।
सरद चंद अति मंद यह चाहत समता ऐन ॥ ७३ ॥
है मुख अति छवि-आगरौ कहा सरद कौ चंद।
पै हित मान समान किय तुव ठोढ़ी को बुंद ॥ ७४ ॥
जाति परत अव परसपर यह इक वस्तु अनूप।
तुव नैननि पिय-रूप है पिय-नैननि तुव रूप ॥ ७५ ॥
कह रंभा कह उरवसी कितिक मैनिका सान।
जिहि देखैं तैं होत है ग्यानी ग्यान अग्यान ॥ ७६ ॥

भोगवती भोजन रचन मृगलोचनि सुखदानि।
घूंघटपट की ओट करि पिय को आगम जानि॥७७॥
लगन दसा आवाल तन उजियारी किमि होति।
विना नेह नहिँ बढ़त है तिय-तन-दीपति-जोति॥७८॥
गौने आई नवल तिय वैठी तियन समाज।
आस पास प्रफुलित कमल वीच कली छवि साज॥७९॥
जलचर थलचर गगनचर मोहि रहत सव जीव।
चढ़ी रहत मोहन हगन तेरी छवि सव जीव॥८०॥
नहिं नजरत हियरो जरत चकित चितै चहुँ ओर।
तिय तेरे मुखचंद के मेरे नैन चकोर॥८१॥
ठोढ़ी धर अँगुरी कहत दई निरदई लोग।
करन वियोग सँजोग मैं करत सँजोग वियोग॥८२॥
ऊधौ कछु कहत न वनत कहत सु आवत लाज।
कै जानत मेरौ हियौ कै जानै व्रजराज॥८३॥
यह तोमै नोखो नई भई अटपटी वीर।
जाहि चाह तुव हगन की ताहि करत कत पीर॥८४॥
विन वूझै सूझै न कछु होत हिए अति संक।
उर परजंक उतारि कै कति पारत परजंक॥८५॥
करि सिँगार सखि लै चली वनी वनिन सिरताज।
ज्यौं मतंग गाठे करी लिए जात सजि साज॥८६॥
मदन महावत लै चल्यौ यह तन तिय गजराज।
रुकि रुकि त्यौं फिर फिर चलत पगनि सु आघू लाज॥८७॥
वन तज चलिए कुंज कौ परन सघन सखि वुंद।
नहिँ जानत इहि गांउ के क्यौंरै ह्वै मुख मुंद॥८८॥
दै महदी पग पर रही कहै चाहियत वात।
नहिँ रायँ रँग जात है रायँ मत्र रँग जात॥८९॥

यौं प्यारी परजंक मैं नैकु न ठिक ठहरात।
रजत थार मुकता विमल ज्यौं चलदल कौ पात ॥ ९० ॥
पहिलौ दिन पहिलौ मिलन ऐसौ वढ़त न मोह।
यौं चित चुभकै दुहुन के ज्यौं चुंवक कौ लोह ॥ ९१ ॥
मानि सु यह सांचौ कहत मोहि रावरी आन।
लगी रहत उनके दृगनि तो मुख की मुसक्यान ॥ ९२ ॥
हौं वोलौ लखि चुप रही जानि गाँव को तोत।
सिर डुलाइ नाहीं करत नाहीं नाहीं होत ॥ ९३ ॥
सोच मोच मृग-लोचनी मिलि लीजै भर अंक।
व्रज मैं पूरन चंद मैं है इक स्याम कलंक ॥ ९४ ॥
वड़रे गुन वड़रे दृगन वड़रे वोल न वोल।
कहत कहा समुझत कहा लए स्याम कहँ मोल ॥ ९५ ॥
यह देखन कौ रैन दिन राखत मो दृग लोच।
मृगलोचन खोलौ हँसौ मेरौ कौन सँकोच ॥ ९६ ॥
आली वनमाली कहा कहँ सूनौ संकेत।
विधि विधि करि विधि निसि रची तो विलास के हेत ॥ ९७ ॥
यौं कहि टेरत प्रानपति भामा अति अभिराम।
पै मेरे मन रुचि वढ़त कहत कामिनी नाम ॥ ९८ ॥
दुहुँ कर सौं तारी वजत है प्यारी यह रीति।
प्रीति वढ़ावत वनत तव जव लखियत उत प्रीति ॥ ९९ ॥
डरत नहीं भय लाज ते काम करत अति घोर।
तेरे री दृग जो रहैं मेरे री दृग जोर ॥१००॥
चटकि चटकि चहुँ दिसि उठे चक्रवाक मिलि जात।
प्रफुलित भए सरोज सर भामिनि भयौ प्रभात ॥१०१॥
मनि मंदिर सुंदर खरी विलसत लसत अमंद।
लेखौ हिय विष सूल सौं देखौ उदित मयंक ॥१०२॥

जहां जहां नागरि नवल गई निकुंज मझाइ।
तहां तहां लखियत अजौ रही वही छवि छाइ ॥१०३॥
तुव तन सरस सुगंध तैं अति सुगंध अधिकात।
तहँ तहँ अतर गुलाब सौं छिरक्यो जान्यो जात ॥१०४॥
पद पंकज मन मैं धरत जहां नवेली बाल।
तहां तहां लखियत दृगनि बगरत मनहु गुलाल ॥१०५॥
तनक नजर फेरैं कहूं मिलत सु हेरे नाहिं।
सरद-मयंकमुखी दुरी सरद जुन्हाई माहिं ॥१०६॥
जटित जवाहिर तन झलक मिलि मसाल के जाल।
नैकु नहीं जानी परत यह मसाल यह बाल ॥१०७॥
देखहु बलि चलि औचकनि नवल वधू सुकुमार।
भौंह कसति हुलसति हँसति रीझ भरी रिझवार ॥१०८॥
लखौ लाल कैसी लसत लग्वत छबीली छांह।
ठोड़ी कर अँगुरी दिए ठाढ़ो आंगन मांह ॥१०९॥
देखहु बलि चलि औचका यह औसर फिरि नाहिं।
खेलत कर कंदुक लिए रंग रावरी माहिं ॥११०॥
गात गुराई मिलत पट अरुन पीत ह्वै जात।
नित नित देत उराहनो रँगरेजहि उठि प्रात ॥१११॥
चंदन की चौकी चढ़ी पटतर दीजै काहि।
बढ़ै चांदनी चौक मैं रहो चांदनी चाहि ॥११२॥
तिरछौंहैं करि करि दृगनि भौंहैं कसत सुभाइ।
तकति छकति उझकति जकति हरपि दुरै हँसि जाइ ॥११३॥
रस उलही डुलही वही अंगनि दुति अधिकात।
सौंहैं कर भौंहैं कसत हँस विहँसत बतरात ॥११४॥
निकसि निकसि सखि साथ तैं विहँसि विहँसि हँसि देत।
लंक चलनि लचकनि लचनि कसकनि हिय हरि लेत ॥११५॥

फूल गेंदना इक नवल मेलत मृदु मुसुकाइ।
विहँसि विहँसि करि ओट तन नागरि लेत वचाइ ॥११६॥
मनि मंदिर आंगनि खरी फैल रही छवि वृंद।
गात गुराई लखि भई सरद जुन्हाई मंद ॥११७॥
रंग रँगीली सेज पर जवै सहज हँसि देत।
सुमुखि सवै सुख-सिंधु कौ सुधा सकेलै लेत ॥११८॥
जगत जवाहिर जेव-जुत मनि मय साज-समाज।
नवल वधू दुति पै अरी न जुरी विजुरी आज ॥११९॥
विनु देखे समुझ न परत तुव कटि कौ अनुमान।
उरज विलोक विरंचि कौ कछु प्रपंच परवान ॥१२०॥
काम-कामिनी तैं ललित केलि कला कमनीय।
रंगभरी राजत रवन वहर वनी रवनीय ॥१२१॥
एँड़िन पिँडुरिन जंघ कटि त्रिवली उरजन जाइ।
कंठ कपोलन मुख सुमन अधरन रह्यौ लुभाइ ॥१२२॥
ललकि रूप लालच लग्यौ पल न कहूं ठहरात।
भयौ रहै मुखचंद कौ चित चकोर दिन-रात ॥१२३॥
जहँ जहँ सहज सुभावही चलत अजिर सुखदान।
तहँ तहँ लाली पगन की चुई परत सी जानि ॥१२४॥
गोरे गोल कपोल पर सोहत अति छवि सोइ।
तरुनी तिल तेरो लखे वनत न उपमा कोइ ॥१२५॥
छन वितवत जुग कोटि सम दृग चितवत इहि ओर।
मग परवत प्यारौ पिया जिमि ससि उदय चकोर ॥१२६॥
भुज मृनाल लोचन कमल पानिप रूप अथाह।
तिय सरिता मन मीन पर तिहि पायो तिहि माह ॥१२७॥
नयन मीन भुज तट दुवौ कुच चक्र कुंतल ग्राह।
नागरि सरित सुहावनी पूरित प्रेम-प्रवाह ॥१२८॥

मोर मुकुट कटि पीत पट उर वनमाल रसाल।
आवत गावत सखिन मग लखे आज नँदलाल ॥१२९॥
अहे अहेरी लखत नहिँ मृगमाला ब्रज-वाम।
नैन-सरन घनश्याम नै वेधे हिए तमाम ॥१३०॥
रूप सिंधु मुख रावरो लसै अनूप अपार।
पैरवार दृग ललन के पैर न पावत पार ॥१३१॥
कसे कंचुकी मैं दुवौ उच्च कुच करत विहार।
गुंमज के गजकुंभ के गरभ गिरावनहार ॥१३२॥
कुंद कुंद-कलिका करौ कनिकी हीर कहौ न।
देखे दसनन की दमक दामिनि की दुर कौन ॥१३३॥
गरैं परत गहत न बनत गुन सौं गुंफित गास।
यह नथ पथ दृग पथिक को ठग मनमथ की फांस ॥१३४॥
जगमगात पग धरत लूं जहँ जहँ पग जलजात।
तहँ तहँ आली अवनि पर लाली परसत जात ॥१३५॥
तिय तेरे यह देखियतु उपजावत रतिभाउ।
करत चित्त तापस रली त्रिवली तीरथराउ ॥१३६॥
लगन लगी सो हिय लगी पगी प्रेम रस रंग।
लाज खगी मोहन ठगी देखि जगमगी अंग ॥१३७॥
दुवौ हुलास विलास सौं आसव धरो गिलास।
पीवत झुकि झूमति झपति विलसति विमल विलास ॥१३८॥
झलक कपोलन की लखे अटक्यो मन सुख पाइ।
हार हिए कुच-भार छ्वै रह्यौ तहां ठहराइ ॥१३९॥
नैन चोट आसी लगी गासी ज्यौं भरपूर।
मचत चलत क्योंहू नहीं खैंचत काम अमूर ॥१४०॥
चित्र लिखी मूरत लखी 'पति हिए सिहाव।
खैंचत नीवी कुच सकुच आपुन जात लजात ॥१४१॥

उठ जैवो कैसो अली लगत न ऐसो सोइ।
जौ लौं पल वैठी रहो तौ लौं कल हिय होइ ॥१४२॥
हार निहार उतार धर विधि तन रचे सिँगार।
धरनि चलत लचकत तरुन वार भार सुकुमार ॥१४३॥
उतरत कहुँ परजंक तैं पग द्वै धरत ससंक।
कुम्हलान्यौ अति ही परत आतप वदन मयंक ॥१४४॥
कहत सु आवत लाज मुहिँ चलि देखौ नँदनंद।
रंध्र-गलिन लखि नलिनपति होत मलिन मुखचंद ॥१४५॥
पगन मंद आवत अजिर लखियतु निपट ससंक।
उरज-भार लचक्यौ परत ललित लचीलौ लंक ॥१४६॥
देखत रूप अनूप वह वढ़त दृगन दृग जोत।
फिर कैसै वह सांवरो आखिन ओलक होत ॥१४७॥
विसरि जात सुधि वुधि सवै देत जवै हँसि हेरि।
रोमन तन मन सदन मैं हेरे मिलत न फेरि ॥१४८॥
हटके हठ पैंडे परत डरत न नैकु कलंक।
विन विचार भैंटे वनत भुज पसारि धरि अंक ॥१४९॥
मिलत नहीं हेरे कहूं तू कत होत अजान।
जाको मन मोहन ठगौ ठग्यौ सु ठग्यौ निदान ॥१५०॥
चौज चवाइन के रचत हँसत सवै व्रज लोग।
तैंही कहि सखि सांवरो है नहिँ देखन जोग ॥१५१॥
रँगी सांवरे रंग जे पगी प्रेम दिन-रात।
जे व्रज मैं कुलकान तैं नैकु न सुनी सकात ॥१५२॥
कहा कहौं कहत न वनत परी कठिन अव आनि।
नेह निवाहे हू वनै किए वनै कुलकानि ॥१५३॥
मोहि सिखावत तू कहा मैं हूं जानत वात।
उर उरझ्यो चितचोर सौं सो फिर सुरझ्यो जात ॥१५४॥

नँदनंदन पैंड़े परयो नित निकसत इत आन।
भई बहुत कलकान अब राखन को कुलकान ॥१५५॥

सुनत सबै समुझत सबै तऊ न छोड़त छोह।
परबस हठ मोही करत निरमोही सौं मोह ॥१५६॥

बरजे नैकु न मानई कैहू लाख कहौ जु।
कपट भरी चूचतौ खरी चरच चवाइन चौजु ॥१५७॥

बिन बातन रचती खरी वृथा सखी परिहास।
मिलतौ जो मन-भावतौ तौ नीकौ परिहास ॥१५८॥

नित पनघट अनघट फिरत तजत न वाही बान।
अरबस करि हँसि हँसि करत बरबस हरि पहिचान ॥१५९॥

सखी सांवरो रूप वह देखत दृग न अघात।
लोच भरे लालच लगे नित उत ही चलि जात ॥१६०॥

नित नित जाइ उराहनो का कहि दीजै काहि।
गो-रस कौ चसकौ नहीं रस कौ चसकौ वाहि ॥१६१॥

हौं जानत हिय की दसा तू नहिँ जानत बीर।
ए री कठिन अहीर कौ पीर रहित बे-पीर ॥१६२॥

उर औरै आनत नहीं पहिचानत नहिँ पीर।
जरद भई जाके दरद निपट बेदरद बीर ॥१६३॥

ब्रज-बीथिनि नोखो रचत नित ही नित यह ख्याल।
दोऊ चाहत फिरत हैं गोरस गोरस लाल ॥१६४॥

सोवत जागत मैं वही सखी सवेरे सांझ।
सूरत वह सखि सांवरी बसी रहत उर मांझ ॥१६५॥

गोकुल मैं कुल की कहौ क्यौं निबहै कुमलात।
बलिहारी तुम सौं लगा हौं हारी इन भांत ॥१६६॥

केलि-कुंज मग पाइ कै मैन मनमथन मेंटि।
छैल छली कब भेंटिहौ भरि भरि भुजन समेटि ॥१६७॥

लोक-लाज कुल-कानि अब रहै सवै किन जाइ।
वह निसंक उर संक तजि लैहौं अंक लगाइ ॥१६८॥
लोक-लाज गुरुजन-सकुच ताको नहीं डराउ।
विनवति या देखत दृगनि छतिया सों लग जाउ ॥१६९॥
अनत दृगनि फेरत वहुत टेरत हिए हिरात।
जान परत नहिं कौन सी लखा कला करि जात ॥१७०॥
चल न सकत उत ही रहत पल न कहूं ठहरात।
उर उरझत सुरझत न फिरि फिरि फिरि उरझत जात ॥१७१॥
लगन लगावत निपट हठि सवै बचावत डीठ।
लखि ललचावत मो हियौ वरवस नैन वसीठ ॥१७२॥
कानन लागे ही रहत कानि न लागत ऐन।
हिए कसाले दै कठिन होत निराले नैन ॥१७३॥
मिलत अगाऊ विन कहे यहै दोष इन माहिँ।
उर उरझावत हठ नयन सुरझावत फिर नाहिँ ॥१७४॥
रही भरोसे हौं सदा दिनहू के दिन राति।
दृग वसीठ पारत हियो परवस हठ हर भांति ॥१७५॥
जुरत नैन पर जरत हिय अरी कौन यह रीति।
यह न कहूं देखी नई नेह नगर की रीति ॥१७६॥
हित अनहित समुझत नहीं इत उत करत अचेत।
रंग रचाइ लचाइ चित फिर फँसाइ दृग देत ॥१७७॥
कल न परत कैहूं कहूं पल न लगत दिन रैन।
वही सांवरी छवि छके भरत भांवरी नैन ॥१७८॥
या व्रज मैं सखि सांवरो जिन देखौ अँखियान।
लोकलाज नाखी न किन किन राखी कुलकान ॥१७९॥
जिन अँखियन सखि सांवरा लख्यो कहूं इक वार।
ते किमि घूंघट राखतीं करि कुल-कानि-विचार ॥१८०॥

ये अँखियाँ कैहूं कहूं आनन आन लगैं न।
थकी पल न उझकी न छवि छकी रहैं दिन रैन ॥१८१॥
उझकि झरोखन ह्वै कहूं दृग सौं दृग जुरि जात।
चाह भरे चित दुहुन के फिरि आवत फिरि जात ॥१८२॥
इत चितयो नागर नयौ उत चितई हँसि ईठ।
लगी अचानक मूठ सी दुहुनि दुहुनि की दीठ ॥१८३॥
कहौं कहा कहत न वनत अहे लखत ब्रजनाथ।
दृग दलाल वेचत हियो उर वस मनमथ हाथ ॥१८४॥
वा मुख की छवि-माधुरी पियत न नैकु अघात।
अनिमिष चख चंचल चितै चाह भरे चलि जात ॥१८५॥
खंजन सरि करि क्यों सकै मीनौ मन हिल जाहि।
मनरंजन अंजन वलित कंज लखत सकुचाहि ॥१८६॥
तरुन तिहारे दृगनि की भए नहीं छवि लीन।
याते वनचारी भए अलि खंजन मृग मीन ॥१८७॥
हित चित लेत चुराइ कै लेत न देखे जात।
जुरत सुरत बिप दृग लगत तुरत फुरत करि जात ॥१८८॥
नेह फौज दुहुँ दिसि वढ़ी अपनी अपनी जोट।
दृग हरौल कटि कटि लरत करत परसपर चोट ॥१८९॥
कोऊ वन कोऊ विपिन उपमा रही न ठौर।
देख्यो वलि तुव दृगन कौ अजव अनोखो त्यौर ॥१९०॥
खंजन कंजन मीन से कहत सवै कवि मैन।
तेरेई जुग मैन से तेरेई जुग नैन ॥१९१॥
क्यो हूं काटे कटत नहिं एरी मेरी वीर।
अनियारे दृग यौं लगे ज्यौं कनियारे तीर ॥१९२॥
खंजन छवि गंजन सु ए कंज लखत सकुचाहिं।
अली मैन तुव सर लगे मतिवारें मत जाहिं ॥१९३॥

चंचल चोखे चपल अति नहीं देत पल चैन।
कमनैती सीखी नई अमनैकी इन नैन ॥१९४॥
कमल-दलन की छवि-दलन ललन तरुन के नैन।
कजरारे कानन लगे भरे खरे रस मैन ॥१९५॥
तुव दृग उपमा कमल की सब कवि कहैं सु मैं न।
ए पिय हिय सुख-दैन हैं वे सब जन सुख-दैन ॥१९६॥
चपल चलाकन सौ चलत गनत न लाज लगाम।
रोके नहिँ क्यों हू रुकत दृग-तुरंग गति वाम ॥१९७॥
तोरत कानि जँजीर हठ पल अंकुस न डरात।
लाज अगड़ कैहु न रुकत दृग मतंग चल जात ॥१९८॥
हटके हठ मानत नहीं दृग-तुरंग तजि नेहु।
समुझ सयानी अब इन्हैं लाज लगाम न देहु ॥१९९॥
कै हरौल अगमन जुरत मरत न देखे सोइ।
मन महीप के निकट ए विकट सुभट दृग दोइ ॥२००॥
लोभ लोह मुख मेलि फिरि पाइ प्रेम चौगान।
मन बाहन फेरे फिरत दृग तुरंग गति आन ॥२०१॥
मीन मृगन कौ हीन करि मैन सरन है ऐन।
अब न सजब करि है गजब अजब अजूबे नैन ॥२०२॥
अंजन जुत लखि कै सदा खंजन मीन लजाहिँ।
तेरे अलि दृग देखियतु ऐन मैन सर आहिँ ॥२०३॥
चंचल समद तुरंग हैं देखि कुरंग लजात।
आली नैन तुरंग लौं चमक चहूं दिसि जात ॥२०४॥
तिय तड़ाग मंजन करत मकर सऊ मनमान।
सी सी यह जल सीत की मीत सुधा सी जान ॥२०५॥
बूड़ि कहूं उछलत कहूं यौं सखि अति छवि देत।
अलक नाग खैंचत ससी मनौ सुधा के हेत ॥२०६॥

अलक भूमि दुहुँ ओर तैं तिय मुख रही प्रकास।
मनौ मदन राख्यौ ससी नागफांस सौं फांस ॥२०७॥
सखिन संग नागरि नवल मनहि बढ़ावत मोद।
करत केलि जल मैं खरी बिलसति भरी विनोद ॥२०८॥
जहां जहां सरसिजमुखी मंजन करत प्रभात।
तहां तहां प्रफुलित सबै कमल कला ह्वै जात ॥२०९॥
फौजदार कचनार किय दिय पलास भट साज।
किय जुवराज रसाल कौ इहि वसंत महराज ॥२१०॥
मौर धरे सब द्रुम लता अपने अपने तौर।
इहि ऋतुराज समाज मैं है रसाल सिरमौर ॥२११॥
सुभट समीर हरौल करि मधुप मतंग समाज।
आयौ ढाहन मान गढ़ मैन हुकुम ऋतुराज ॥२१२॥
लगे पवन झुकि झुकि लता डोलैं मृदुल समाज।
घने मान मानिन मनै मने करत ऋतुराज ॥२१३॥
कुंज कुंज विहरत विपिनि गुंजत मधुप मदंध।
ललित लता लपटी तरुनि प्रफुलित वलित सुगंध ॥२१४॥
दिसि विदिसिनि सरितन सरनि अवनि अकास अपार।
वन उपवन वेलिन वलित ललित वसंत वहार ॥२१५॥
वन वन वनक वसंत की वेलिन वलित सुदेस।
वलि वहार वगरी वही वाग वगलन वेस ॥२१६॥
सुमन सेत प्रफुलित ललित सोहत कुंज लतान।
मनौ मैन मुकतानि के तानैं मंजु वितान ॥२१७॥
झरत मंद मकरंद मद गुंजत मंजुल भृंग।
मनु वसंत महराज कौ मारुत मत्त मतंग ॥२१८॥
वरवै—बहत समीर सु-सीतल मंद सुगंध।
ठौर ठौर सखि गुंजत मधुप मदंध ॥२१९॥

सीतल मंद सुगंधित बहत समीर।
चलि बलि मिलि बलबीरहि जमुना तीर ॥२२०॥
लखि जमुना-तट सूनौ अति अनमोल।
लिय प्यारी प्यारी के चूमि कपोल ॥२२१॥
पाइनि परि हौं हारी अब नहिँ सोर।
मिलत नहीं ब्रजचंदहि का मति तोर ॥२२२॥
ढूंढ़े बन सब उपबन सो बन चाहि।
जो बन मिलै बिहारी जोबन जाहि ॥२२३॥
रति रंभा छवि निदरत मंदिर माहिँ।
सोवत दिए उसिसवां पिय की बाहिँ ॥२२४॥
जब कब पाइ अँगनवां धरति सुभाइ।
कसकनि वही करिजवां कसकति आइ ॥२२५॥
नहिं सुहाइ घर बाहिर जहर जहान।
मोहन मोहि मिलावो वे प्रिय प्रान ॥२२६॥
अंजन आंजत अँखियन कै मनुहार।
लालहि नाच नचावत नोखी नार ॥२२७॥
दोहा—भिर पिचकारी की मची आंधी उड़त गुलाल।
यह धूंधरि धँसि लीजिए पकरि छबीले लाल ॥२२८॥
मुख मोड़त अनखाति कति कर कर टेढ़ो भौंह।
होरी मैं यों होत है मेरी तेरी सौंह ॥२२९॥
लै लै मूठ गुलाल की घालत सबै समाज।
वह घालन औरै कछू ज्यौं घालत ब्रजराज ॥२३०॥
मिल लीजै अब अंक भर ह्वै निसंक सब गात।
सुनि गोरी होरी दिवस कहँ चोरी की बात ॥२३१॥
नीचे मुख मुसक्यात कत यहै फागु वड़ भाग।
फगुवा मांग गुलाल सौं दिन दिन बढ़ै सुहाग ॥२३२॥

होरी मिस भोरी तिया लिय लगाय सब गात।
धुप करिए थोरी न यह बरजोरी की बात ॥२३३॥
लाज मान गुरु-जनन की वनत न और उपाय।
छाया सौं लागी फिरै होरी औसर पाय ॥२३४॥
लखियतु लाल गुलाल की धूधरि अवनि अकास।
खेलैं खुलि दंपति खरे विलसति बिमल विलास ॥२३५॥
चोरी कर होरी धरत भोरी हिय न सकात।
सुनि गोरी यह दिवस मैं है चोरी की बात ॥२३६॥
धूम धमारिन की मची अंगन अतन उमंग।
अरी आज बरसत घनो ब्रज-वीथिन रस रंग ॥२३७॥
पिय पिचकारिन रंग भरि भिंजवत करि करि प्यार।
सब विधि सब भांतिन भलै भींजति वह सुकुमार ॥२३८॥
होरी मैं जोरी करत भोरी करि ब्रजबाल।
कहूं तकत घालत कहूं भरि भरि मूठ गुलाल ॥२३९॥
उझकि अलिन की ओट ह्वै नवल नारि दृग जोइ।
घालत मूठ गुलाल की छुटत अरगजा होइ ॥२४०॥
साजि साजि भूपन सकल अंग अंग छवि दौर।
पूजि पूजि गुन गौर कौ मांगत वर गुन गौर ॥२४१॥
लिए लचोली लोद कर उजवति भौंहनि तान।
करि सतून जन तून तै लै प्रसून धनु बान ॥२४२॥
लौद लचोली लौं लचति घालत नहिँ सकुचात।
लगि जैहै वोदर लला वहै कसोदर गात ॥२४३॥
तीज तमासो रस भरी नवल वधू छवि लीन।
लियैं लौद हरि करि रहे कौल मुखिन पै कौल ॥२४४॥
गरक गुलाव उसीर वहु सीरे कर उपचार।
तऊ निपट ग्रीषम लपट निकटहु झपटनिवार ॥२४५॥

घसि चंदन चंद्रक चहल महलनि महल फिराइ।
विषम गरम ग्रीषम तऊ नेंकु न नरम लखाइ ॥२४६॥
अति भीषन सोखन तपन पिय सोखत लिखि लेख।
ग्रीषमऊ में तें उपन विषम विषन दृग देख ॥२४७॥
चंद्रक चंदन बरफ मिलि छिलें बिजन चहुँ पास।
ग्रीषम गाल गरम लगें गे गुलाब के बास ॥२४८॥
बर माहुति है मिलन की बरसाइत है लेखि।
पूजन बर साइत भली बरसाइत चलि देखि ॥२४९॥
पगनि धरत झनकत खरी भरी सनेह निसोत।
नागरि बर भांवर भरत लाल निछावर होत ॥२५०॥
दिन प्रति बारह मास भर करि सनेह रस रीति।
दियौ जीति मनमथ मनौ गड़ा सुबारह जीति ॥२५१॥
हरित पीत अंकुर वसन नव लतानि कै हार।
तनु अपाढ़ कीनी मही टुलही नयौ सिंगार ॥२५२॥
चढ़ी अटा छन छटा सी वह लचकीलें लंक।
अंक भरें पिय मोद सों देखत घटा निसंक ॥२५३॥
उमड़ि घुमड़ि बरसें घटा मोर सोर सरसात।
धनि दंपति सोवत सुमनि रस सोवत सब गात ॥२५४॥
चात्रक मुख मूंदत नहीं दादुर दूदै देह।
बिरहिन हिय खूंदै खरी खूंदं रूंधें लेह ॥२५५॥
पावस निसि कारी घटा दामिनि दमकत जोर।
मोर सोर घन घोर सुनि चित चाहत चितचोर ॥२५६॥
दामिनि दमक दिसानि मैं देखि हगन दुख देति।
उमड़ि घुमड़ि हठि करि हियौ जलद जलद हरि लेति ॥२५७॥
झीने झर झुकि झुकि झमकि झलनि झाँपि झकझोर।
झुमड़ घुमड़ बरसत सघन उमड़ि घुमड़ि घन घोर ॥२५८॥

लहराती लतिकांत नित छहराती छित छोर।
छहराती कारी घटा रँगराती वन मोर ॥२५९॥
रहे झुमड़ि घन गगन घन भौ तन तोम विसेख।
निसि वासर समुझ न परत प्रफुलित पंकज पेख ॥२६०॥
अरुन वसन तन मैं पहिरि पीत सु दौना हाथ।
साउन मैं भाउन लगत सखी सुहावन साथ ॥२६१॥
हरित भूमि गिरि तरु हरित हरी लता लपटात।
वीर-बधूटी सी वधू लखि लालन ललचात ॥२६२॥
तरुन तमालन सौं लता लपट रहीं चहुँ कोद।
मनभावन दावन लगौ सावन सरस विनोद ॥२६३॥
हठ तरसावन चित लग्यौ मनभावन विन वीर।
लाग्यौ बरसावन सलिल सावन दावनगीर ॥२६४॥
मनभावन आवन भवन सुख सरसावन काज।
सावन वरसावन सुखनि समय सुहावन आज ॥२६५॥
रंग हिँडोरे नवल तिय झूलत द्रुति दरसात।
जनु अकास तैं दामिनी छिति छ्वै आवत जात ॥२६६॥
प्यारी झूलत प्यार सौं पीय झुलावत जात।
मनौ सितारे भूमि नभ फिरि आवत फिरि जात ॥२६७॥
रेसम डोरे कर गहे रंग हिँडोरे हेत।
झूलत पिय झोरै लगी मोह अरोरै लेत ॥२६८॥
हरष हिँडोरैं डार गहि झूलत अति छवि देत।
गोरे मुख छवि सौं छहरि लहरि लहरिया लेत ॥२६९॥
पाइन लखि लाली ललित नाइन अति सकुचात।
चितै चितै मृदु आँगुरिन फिरि फिरि मीड़त जात ॥२७०॥
सहज अरुन एँड़ीनि की लाली लखै विसेखि।
जावक दीवै जकि रही नाइन पायन पेखि ॥२७१॥

भादौं भयकारी लगत पिय बिन कारी रैन।
धाराधर धारी लखैं प्यारी मन नहिं चैन ॥२७२॥
सोभित अवनि अकास अति अनुपम अमल अमंद।
अब बिधु वदन बिलोकिवै सरद सरद कौ चंद ॥२७३॥
सुखद सरद ऋतु पाइ कर कुंजित सरनि मराज।
चलि चलि दृगनि बिलोकि यह प्रमुदित उदित मनोज ॥२७४॥
बैठी जसन जलूस करि फरस फबी सुखदान।
पानदान तैं लै दयैं पान पान प्रति पान ॥२७५॥
जै दसमी जानी जगत महरानी सुख पाइ।
पीराहर सब सखिन कौं बीरा बगसे आइ ॥२७६॥
जुवा खेल खेलन गई जोपित जोबन जोर।
क्यौं न गई तैं मति गई सुन सुरही के सोर ॥२७७॥
अगहन मैं गौने चली संग साजि अधिकात।
पन्नग नग भूषन बसन ससकत रोवत जात ॥२७८॥
सेज सुपेती तरुन तिय सुरा सुराही प्रीति।
देखि रीति भयभीत ह्वै भजत सिसिर कौ सीति ॥२७९॥
घटत नहीं कैहू कहूं अधिक अधिक अधिकात।
हनत हियै अति निरदई सिसिर सीत दिन-रात ॥२८०॥
सुखद सँजोगिनि कौ निसा सुखमय पल सम जात।
सम सम बिरहिन कौ लगत वही पूस की रात ॥२८१॥
कल न परत परजंक पर दृग न नींद नियरात।
अब ग्रीषम दिन है विषम लखी माघ की रात ॥२८२॥
तबै न मान्यौ मो कह्यौ सूधौ अलि जुग कंज।
देखि अधर छत झुकत अलि अब पिय कौ मन रंज ॥२८३॥
निय तिय तो पिय पहँ रमैं आवन चाहत आज।
साजि आरती पांवड़े अब अलि तज वह काज ॥२८४॥

नव रसाल के पौन लगि डोलत डारन मौर।
जनु वसंत रतिकंत पर झुकि झुकि ढारत चौंर ॥२८५॥
नख फौकै मनि गन कलित ललित आंगुरी तीर।
तो कर सोभा के सदन मानौं मदन तुनीर ॥२८६॥
हियै और मुख और कछु अब व्रज की यह चाल।
उत्तिम मारग एक तुम निरबाहौ नँदलाल ॥२८७॥
दुसह बिरह वृप सूर सम चलन कहत अब आप।
तिय कौ कोमल प्रेम-तरु क्यौं सहिहै संताप ॥२८८॥
विधु सम सोभा सार लै रच्यौ बाल मुख इंदु।
दियौ इंदु मैं अंक मिस राहु हेत मसि विंदु ॥२८९॥
ऐसौ और न जानिबो जग अनीत कर नार।
जामैं उपज्यौ सरन सौ ताकौ बेधत मार ॥२९०॥
लखि पुरैनि के पात मैं लसत बकी चल नाहिँ।
मनौ संख सूती धरी मरकत भाजन माहिँ ॥२९१॥
चारु चाहि गोपाल के गरै मालती माल।
अरुन तरुन अँखियान तैं अँसुवा चलत विसाल ॥२९२॥
जाको मुख ससि सौ सुखद सजल जलद सी देह।
वसन वीजुरी सी धरै लख्यौ सु वह वन गेह ॥२९३॥
तोसी मोरै को हितू आई काम बनाइ।
धनि धनि तैं मेरे लियै सहे रदन नख घाइ ॥२९४॥
स्वास स्वेद कर ताड़िवौ लचि लचि मुरनि अनेक।
तो सँग यौं खेलत तरुन धनि कंदुक तैं एक ॥२९५॥
ज्यौं ज्यौं दुहू दुहून के रस सौं भिंजवत गात।
त्यौं त्यौं चित्त दुहूनि के रस सौं भींजत जात ॥२९६॥
सकल ससिन तैं सकल सुख मो दृग चहत निहार।
चंदमुखी मुख चंद तैं हरै हरै पट टार ॥२९७॥

दोऊ द्रोही तात के दया दुहुन कै नाहिँ।
हर जार्यौ दृग मदन क्यौं ससि धार्यौ सिर माहिँ ॥२९८॥
वरनहीन इव रन विना अनिल वाहि तुव आन।
हरि वृषभानुकुमारि कों सखी भयौ वृष-भान ॥२९९॥
तो मन वास दृगंत सर भौंहैं चाप समान।
सुतन अतन चाहत भयौ तुव सुन कान पयान ॥३००॥
हरि राधा राधा भई हरि निसि दिन के ध्यान।
राधा मुख राधा लगी रट कान्हर मुख कान ॥३०१॥
हर जार्यो लोचन-अनल भो अलि मदन पिसाच।
मीडे डारत मो हियो रति सहाइ लहि साच ॥३०२॥
द्रग सु जरायौ सिव मदन तौ वह भूतल दंभु।
फिरि फिरि मींजत मो हियौ समुझि उरोजन संभु ॥३०३॥
तरुनी मुख छवि पान कों नैनन वांध्यो नेत।
सुमन सुमन पै वैठि जनु रस खोरा रस लेत ॥३०४॥
वा मुख की छवि पै परत जब मग लोल अमोल।
हरत विरह अहि विषम विष तुव लोचनन कलोल ॥३०५॥
गुललाची के फूल की क्यौं न लखत छवि वाल।
उलटी कूकत है मनौ मधुप काम कर माल ॥३०६॥
गसे परसपर कुच घने लसे वसे हिय माहिँ।
कसे कंचुकी मैं फँसे मुनि मन निकसे नाहिँ ॥३०७॥
सेत कंचुकी कुचन पै लसत मिही चित चोर।
सोहत सुरसरि धार जनु गिरि सुमेर जुग ओर ॥३०८॥
उठी केलि करि ससिमुखी नैन मूंदि अँगिराइ।
जल-कन-छवि झलकन लगी अलकन पलकन छाइ ॥३०९॥
कहा मैनका उरवसी कहा काम की वाम।
रहे चित्र केसे लिखे लखि राधा घनस्याम ॥३१०॥

लिखे चितेरे चित्र मैं पिय विचित्र तसवीर।
दरसत दृग परसत हियै पसरत तिय धर धीर ॥३११॥
तो घनस्याम विसेस छवि चित्र पूतरी चाहि।
जानत परसन पूतरी जनु पखान की आहि ॥३१२॥
है विदेस तो प्रानपति कीजै वचन प्रमान।
स्याम धूम तैं कीजियतु विरह-अनिल अनुमान ॥३१३॥
लखि ससंक सूनौ सदन मंद हास गति मंद।
चंदमुखी कौ अंक भर लूटौ सुख व्रजचंद ॥३१४॥
कुंभकरन कौ देखि कपि नासा-करन-विहीन।
अट्टहास करि भू झुके मन भौ मोद अधीन ॥३१५॥
मारतंड परचंड महँ फरकत जुग भुजदंड।
रघुनंदन दसकंध लखि टंकोर्‌यो कोदंड ॥३१६॥
पाटौ अवनि अकास सर डाटौ दुज्जन जाल।
काटौ दस दसकंध के मुंड आज विकराल ॥३१७॥
हनूमान बहु गिरि लिए गरजत प्रभु कौं घेर।
लगी दृगन मैं टकटकी रहे रिच्छ कपि हेर ॥३१८॥
भूमि भूधराकार लखि उद्धत क्रुद्ध कराल।
कँपे रिच्छ लखि लच्छ कपि कुंभकरन जनु काल ॥३१९॥
रघुनंदन दसकंध के काटे मुंड कराल।
छलक्यो छतज कबंध तैं कर्‌यो भूमि नभ लाल ॥३२०॥
रोदन करत सुलोचना पिय कौ मरन सुनाय।
रघुनंदन के दृग कमल रहे आँसु उतराय ॥३२१॥
भावत कुंज करील की जातिन मांह अधीर।
जानौ जात बड़ेन कौ मन नहिं मेरी वीर ॥३२२॥
कुबजा मन टेढ़ौ कियौ वह टेढ़ेई गात।
कौन चलावत वीर अब व्रज की सीधी बात ॥३२३॥

सत्रु न मारयौ रोस करि रीझ पर्यो मन माहिँ।
तहां न जैए सुघर नर वा दर की दर नाहिँ ॥३२४॥
लै कै दै राख्यौ तऊ गए पताले स्वात।
वलि वावन लौं देखिए सव तैं सव छल जात ॥३२५॥
मघा मेव वरसत विविध उमड़ि भरहि दरियाउ।
चातक पातक आपनैं कहत पियाउ पियाउ ॥३२६॥
धरपत हर हरषित जगत पूरित अवनि अकास।
सांची प्रीति पपीहरै स्वात बुंद की आस ॥३२७॥
विटप रसाल रसाल ए वड़े किए जगदीस।
फिरि वसंत आए मधुप मौर धरैंगे सीस ॥३२८॥
कहा भयौ जौ लखि परत दिन दस कुसुमित नाहिँ।
समुझि देखि मन मैं मधुप ए गुलाव वे आहिँ ॥३२९॥
जो पराग मकरंद मधु कमल फूल मैं होइ।
मधुकर तू चाहत लह्यौ कनक कली मैं सोइ। ३३०॥
कव गुमान गुड़हल करत समुझि देखि मतिमंद।
छोड़ि नलिनि पीवत कहूं अलिन मलिन मकरंद ॥३३१॥
वहकायै वहकत फिरत अहे कहा मति भूल।
सुख स्वादहि चाहत लह्यौ सेकै सेमर फूल ॥३३२॥
नहिं जानत गुन जासु कौ सो तिहि निंदत जाइ।
गजमुक्ता तजि कै अधम गुंजा लेत उठाइ ॥३३३॥
सघन घनै उडुगनि गगनि अगनित करत उदोत।
परम प्रकासक पै निसा निसानाथ तैं होत ॥३३४॥
पंकज के धोखैं मधुप कियौ केतकी संग।
अंध भयौ कंटक विधौ भयौ मनोरथ भंग ॥३३५॥
परमारथ साधत सदा अवरावत गुन एक।
वे विरले जग देखिए कहुँ हजार मैं एक ॥३३६॥

तो ढिग आवत कल परत गुन पूरन तौ होइ।
गुन विहीन लघु कीर की पीर सुनावै कोइ ॥३३७॥
विटप तिहारे पुहुप हम सोभा देत बढ़ाइ।
और ठौर सीसन चढ़त पै रावरे कहाइ ॥३३८॥
श्रीफल दाख अँगूर अति नूत तूत फल भूर।
तजिकै सुक सेमर गयौ भई आस चकचूर ॥३३९॥
देखि सुधाकर लसतु है सिव के सीस समोइ।
समय पाइ तम परसि कै दरस फेर नहिँ होइ ॥३४०॥
केसर पूर कपूर सौ अगर धूर करपूर।
अति रस मोइ समोइ कै तजै प्याज नहिँ नूर ॥३४१॥
कहँ तड़िता सुवरन लता कहँ मनिमाल विसाल।
दीप-सिखा फीकी लगै देखत वाल रसाल ॥३४२॥
पिय प्रानन की प्रान तूं तुव प्रिय प्रानन-प्रान।
जान परत गुनखानि अब चित हित के अनुमान ॥३४३॥
हित उत ही चितवत नयौ नाह नेह सरसात।
लिखत चित्र पिय आनकौ फिरिकी लौं फिरि जात ॥३४४॥
जानत रिस ठानत नहीं नहिँ आनत मन मान।
मनहु मैन छतिया लगी वतिया कहत सुआन ॥३४५॥
छमा छमा सी अनुहरत पिय प्रानन की प्रान।
कै कमला विमला कला कै कुल की कुल-कान ॥३४६॥
गवन करत रत तौलनौ मान मौन लौं पेखि।
वचन रचन सखि स्रवन लौं छमा अवनि लौं लेखि ॥३४७॥
पतिव्रत लौं व्रत करत है भाषत अनृत न लेस।
सील छमा छिति लौं करै हित लौं रहै हमेस ॥३४८॥
सदा सत्यमय सत्यव्रत सत्य एक-पति इष्ट।
विगत असूया सील से ज्यौं अनसूया सृष्ट ॥३४९॥

ज्यौं ज्यौं पिय परतिय मिलन त्यौं त्यौं तिय दिनरात।
हसत लसत हुलसत हियै विलसत नहिँ अनखात ॥३५०॥
अरुन उदै लौं तरुनई अँग अँग झलकी आइ।
छिन छिन तिय तन ओस सी मिटत लरकई जाइ ॥३५१॥
मंद भई गति मति विमल मुख छवि छई अमंद।
परी सौति दुख फंद सी मुदित होत नँदनंद ॥३५२॥
छुटत लरकई तरुनई नित नूतन अधिकात।
करक निसा मकरादि दिन घटत बढ़त जिमि जात ॥३५३॥
अभिरामा स्यामा सरस यह लचकीले लंक।
ह्वै निसंक उर संक तजि गहि लीजे भरि अंक ॥३५४॥
छुटत लाज भय अतन तन बाढ़त जात सहूर।
सौति हिए विषमूर सी पिय हिय जीवन-मूर ॥३५५॥
लोचन बढ़ि कानन लगे पगे मधुर रस बोल।
मनौ मदन मौंजै मुकर झलकत गोल कपोल ॥३५६॥
तिय तन मैं पानिप भरे उलहे तनक उरोज।
रूप सरोवर जनु जुगल सुवरन कली सरोज ॥३५७॥
मधुराई बैनन बसी लसी पगन गति मंद।
चपलाई चमकी चखनि चखन लखौ नँदनंद ॥३५८॥
नई तरुनई नित नई चिलक चिकनई चोप।
नजर नई नैनन नई नई नई अँग ओप ॥३५९॥
नवल वधू अंगन बस्यौ अतन जतन सौं आइ।
छिन छिन जोवन छनछटा दिन दिन अति अधिकाइ ॥३६०॥
तन तैं निकसि गई नई सिसुता सिसिर समाज।
अंग अंग प्रति जगमग्यौ नव जोवन रितुराज ॥३६१॥
कहा करत देखत कहा लालन इत चित देहु।
ललित अंकुरित कुचन की बनी बनी लखि लेहु ॥३६२॥

जगत जगौंही जेब जुत जोवन जगमग जोर।
ललित लगौंही लखि परत उकसौंही कुच-कोर ॥३६३॥
बस्यौ मदन तन सदन मैं बदन मंद मुसक्यान।
पग्यौ प्रेमरस सौं बचन लग्यौ लाल ललचान ॥३६४॥
नैननि कौ प्रतिबिंब लखि जल मैं चितै अयान।
गहिबे कौ मेलै भुजा खेलत सफरी जान ॥३६५॥
कान्ह कौन है कौन के कहि गोरी मुसक्यान।
कछु प्रतीत कछु भीत उर कछुक नैन ललचान ॥३६६॥
थाकी मत लखत न बनत जाकी सखी विचित्र।
बनत न मन औरै उकत चुकत चितेरे चित्र ॥३६७॥
सिसुता मैं जोबन झलक जगमगात प्रति अंग।
ईंगुर अरुनाई लसै ज्यौं मिलि केसर रंग ॥३६८॥
भय भीनी दुलही नई दई सकुचि विधि भूर।
गई समिटि पिय कर परस भई लजावन मूर ॥३६९॥
नाहीं नाहीं कहत ही नाहीं सौं लगि जाइ।
छुटी मुठी तैं भय भरी लगी धाइ उर धाइ ॥३७०॥
भवन नाह आवत सखी तज भज चली निहार।
लाज पगी अति डगमगी रही ठगी सी नार ॥३७१॥
भरी अंक परजंक पर गर मेलै भुजमाल।
जाल परी सफरी मनौ उछल परी तिहि काल ॥३७२॥
जदपि सखी के सँग रहत तदपि न थिर मन माहँ।
जल सफरी लौं तरफरत छरकत छुअत न छाहँ ॥३७३॥
घरी धाइ पिय रस भरी सूनौ भवन विलोकि।
गई पाइ ससकत सकत सकत न हिलकी रोकि ॥३७४॥
लखि परछाहीं लाल की जानत नहिँ रस रीत।
त्रसत मृगी लौं जकि रही इत उत चितै सभीत ॥ ३७५ ॥

कर परसत ससकत खरी सकत न अंग सम्हार।
इंद्र-बधूटी लौं दुरत नवल वधूटी नार ॥३७६॥
नेह नीर वंसी नयन बतरस गारौ लाइ।
कछु प्रतीत कछु भीत तिय भमकि भमकि भुकि जाइ ॥३७७॥
चाहि चाहि चित नाह के लोचन लखि ललचात।
आइ आइ कर नाह की नहिं छाती लगि जात ॥३७८॥
छयौ अतन अति सकल तन लाज सु अति हिय माहिं।
बैननि मैं नाहीं करत नैननि नाहीं नाहिं ॥३७९॥
नहीं करत इतही रहत नहीं लगत उर आइ।
मदन जगाइ जगाइ उर रहत लजाइ लजाइ ॥३८०॥
रद-छद अधर न कीजिए नागर नंद-किसोर।
सास ननद सौंजोर मुख कहा कहौंगी भोर ॥३८१॥
सास ननद ये क्रूर हैं मेरो दुरनय जान।
करिहैं भोर अनर्थ जे प्रतिभा संका मान ॥३८२॥
आजु राति इहि भाँति मैं देख्यौ सपन प्रसंग।
काम लाज के जुद्ध मैं लिय फतूह जुर जंग ॥३८३॥
सास ननद जागत अवै भींजन दै रजनीय।
कर सौं पाइ छियौ नहीं है घुँघरू वजनीय ॥३८४॥
रहत चाह चित नित नई वढ़त सनेह उदोत।
करत विमुख हठ लाज हिय पिय मुख सनमुख होत ॥३८५॥
मुख सौंहैं नहिं मुख करत झूठै मूंदत नैन।
पग लागत लागत लपट जागत लगत हियै न ॥३८६॥
सखिन ओट कै पिय वदन सुमुखि सुलोचनि हेर।
हरषि हँसति विहँसत रहत सकुचि सकुचि मुख फेर ॥३८७॥
लाज गहौ धीरज धरौ ए पिय चतुर सुजान।
स्रवन सुखद नूपुर निनद ननद न सुनिहै कान ॥३८८॥

सरस सलौनी सखिन सँग लखि लालन सकुचात।
उझकि उझकि झाँकति झुकति झिझकि झिझकि दुर जात ॥३८६॥
छिन बिहँसति छिन छिन हँसति छिन छिन कहति सिताव।
इत उत चितै गिलास गहि पीवति गुले गुलाव ॥३९०॥
मुरि मुरि मुख नाहीं करत पलकाही लगि जात।
हँसि हँसि पिय बाही गहत मन माही मुसकात ॥३९१॥
तरफरात तलफत खरे नैन ऐन पट झीन।
रूपसिंधु पर जुगल जनु उछलत मनसिज मीन ॥३९२॥
रस रंगनि संगनि करत अंगन छुवन न देत।
काम उमंगन मैं भरी अंगनि लौं चित चेत ॥३९३॥
प्रथम नगरि नूपुर रही जुरत सुरत रन गोल।
घाइल ह्वै सोभा बढ़त कुच भर अधर कपोल ॥३९४॥
मोर मोर मुख लेत है जोर जोर दृग देत।
तोर तोर तर लाज कौ चोर चोर चित लेत ॥३९५॥
रति विपरीत समै दुवौ झलकै मुख कन स्वेद।
निकसे मानौ अमृत कन ससि मंडल कौ भेद ॥३९६॥
दंपति रति विपरीत मैं करत किंकिनी सोर।
मनौ मदन महिपाल की नौबत होत टकोर ॥३९७॥
जटित जवाहिर आभरन छवि के उठत तरंग।
लपट गहत कर लपट सी लपट लगी अघ संग ॥३९८॥
लपटानी घन-स्याम सौं ज्यौं तमाल सौं बेल।
रही हार सी नारि गल-बाँह मृनालिनि मेल ॥३९९॥
सुरति समै स्रम स्वेद कन तिय मुख आइ सिताब।
जनु प्रीतम निज करन सौं छिरके आब गुलाब ॥४००॥
मिलत खिलत बतरस पगन मिल मिल बिहँसत जात।
भौंह भूर भाइन भरत सौंह परसपर खात ॥४०१॥

विहँसि विहँसि लागत हियै लपटि लपटि लपटात।
गुह्यौ तरौनन तामरस वसन छपावत जात ॥४०२॥
रस ही रस बतरस पगत नेहै वर सरसात।
देखि देखि दोऊ दुनी रीझ रीझ मुस्कात ॥४०३॥
उठ न जाइ चाहत उठौ अति अलसात जम्हात।
ललकि ललकि लालन गरै ललकि ललकि लपटात ॥४०४॥
दोऊ काम कलानि कर लूटे सुख अनमोल।
नींद भरे झूमत झुकत चूमत चारु कपोल ॥४०५॥
सुरति प्रेम-मद सौ छकी रंग-महल छवि लेत।
लपटि लगति लालन गरै हरै हरै हँसि देत ॥४०६॥
विगसत सुमन गुलाब को सुरभित परसत पात।
ज्यौं ज्यौं पिय भेटति भुजनि त्यौं त्यौं तिय अकुलात ॥४०७॥
परखि परखि अति प्रेम रस करपि करपि चित लेत।
परखि परखि पिय हित हियै हरपि हरपि हँसि देत ॥४०८॥
हिय हुलसत विहँसत वदन विलसत विमल विलास।
सुखनि समोइ रही सही रसिक रसीले पास ॥४०९॥
भरत अंक परजंक पर दोऊ रसनि समोइ।
कंचन चित हित सौं कसत बुद्धि कसौटी दोइ ॥४१०॥
स्रवन सरोजन की कली मली भोर बहु बार।
मुकतहार परिहार कर किय तिय पिय हिय हार ॥४११॥
पाइन परि बूझत तुम्हैं रसिक रसीले सोइ।
कहिए छाती छाप कौ कितिक महातम होइ ॥४१२॥
सुचि सुगंध सोभा सरस राजत अमल अमंद।
सखि गुलाब के फूल तैं झरत मधुर मकरंद ॥४१३॥
तुमही मैं देखी नई ललन रीति जग जोइ।
सिसिर निसा मैं स्वेद-कन अंगन लखियतु सोइ ॥४१४॥

तुरत स्वेद सात्विक भयौ मोहि लखत बड़ भाग।
जान परत दुर दुर परत उमगि उमगि अनुराग ॥४१५॥
पगनि चलत अति स्रम भयौ इत आवत उत जात।
पलक पौढ़िए पलँग पर प्यारे प्रीतम प्रात ॥४१६॥
अरुन नील पियरे लसत अंकन सुमन समाज।
अरी आज रितुराज की बनक बनै ब्रजराज ॥४१७॥
आए पिय प्यारे प्रिया पेखे प्रगट प्रभात।
रँग सौ जाती राति रति मुसकानी बिन बात ॥४१८॥
झपकि झपकि लागत पलक नैकु न उघरत स्याम।
मूँदि मूँदि राखत वही बलकन प्यारी बाम ॥४१९॥
बाद करत बकवाद वे-सवाद रस बाद।
नीकै उनही कै रहौ पीके प्रेम प्रमाद ॥४२०॥
मन भावन आवन कियौ हियौ जुड़ावन लेखि।
उत प्यारी दावन लगे छल बावन लौं पेखि ॥४२१॥
निसि बीते आए इतै हिय तैं कहत सुबात।
नित नीतै रीतै करत जीतै जौ न सुहात ॥४२२॥
कीनै रँग रति राति मैं आए प्रात सखेद।
नेह नवीनै स्रम कहत सीनौ स्रवन सुस्वेद ॥४२३॥
नहिँ जम्हाति अलसात नहिँ नींदौ नहिँ नियरात।
वह विभावरी भवन की भरत भावरी जात ॥४२४॥
आंसू लखि पिय हँसि कह्यौ बोली बचन सभाग।
लखै रूप छुटि छुटि परत मो हिय कौ अनुराग ॥४२५॥
इत आवत अति स्रम भयौ प्रीतम प्रान अधार।
आए मंजुल कुंज तैं नई विलोकि बहार ॥४२६॥
घर आवत पिय सुघर तिय नहिँ बोली अनखाइ।
ज्यौं ज्यौं अति आदर करै त्यौं त्यौं हियौ सकाइ ॥४२७॥

कलाकंद वतरान मैं मधुराई मुसकानि।
है पियूष मुखचंद मैं क्यों दृग वान समान ॥४२८॥
देखिस चिह्न गुपाल कौ वाधिमान कौ सेत।
नहिँ हिरकी फिरकी नहीं लखैही रुख देत ॥४२९॥
नींद भरे आलस भरे भरे खरे रस मैन।
लखि लालन लागी गरै करै निचौहैं नैन ॥४३०॥
पिय सौंहैं भौंहैं कसै करि तिरछौंहैं नैन।
कहत जाहु मन भावते जितै करत नित सैन ॥४३१॥
कह्यौ एक सौ लखि भए तुव मुख मुकुलित कंज।
तौ लगि प्यारी के लिए चूमि कपोल सु मंजु ॥४३२॥
लाल लखावत एक कौ साँझ गुड़िन कौ ख्याल।
परसि उरोज मनोज वस मुदित भई तिय वाल ॥४३३॥
इक कौ रति विपरीत कौ चित्र दिखायौ लाल।
रही मूंदि लोचन सु वह भुज भेंटी पिय वाल ॥४३४॥
दीठि गई सिरपैंच पै फिर हारी मैं ऐंच।
जो उरझी सुरझी न फिर परी पैंचि कै पैंच ॥४३५॥
डारौ डर गुरु जनन कौ कहुँ इकंत ग्रह पाइ।
अति रुचि दोउन उर बढ़ो अधरन अधर लगाइ ॥४३६॥
भरत भांवरैं जिय रहत नैन तावरे जोइ।
गाउ नाउ रे किन धरौ मिलन सांवरे होइ ॥४३७॥
कल न परत देखे विना देखे लगत कलंक।
कव भुज भेंटन पाइए भरि भरि अंक निसंक ॥४३८॥
विन वूझे अपसोस यह वूझे होत सकोच।
मिलन अनमिलन एक कौ करि मेरे मन सोच ॥४३९॥
हौं कव आवत ती इतै सखी लियाईं घेरि।
फिरि मद मयौ न मन कियौ गडुवा गढ़त न भेरि ॥४४०॥

हिलकी लै दिल कहत सुन सखी स्रवन संदेस।
मिलकी मोहन मोह कौ ये दृग रहत हमेस ॥४४१॥
खटकी चित भटकी फिरत हटकी रहत हियैं न।
अटकी यह नटसाल सी नागर नट की सैन ॥४४२॥
थाकी करि करि जतन अति अतन तपन अति ताप।
गजब हियैं समझ्यौ न तब अजब इसक संताप ॥४४३॥
छ्वै छिगुनी छल सौं कहूं छली छैल छक पाइ।
लखि रूखौ रुख करि रही अँगुरी अधर लगाइ ॥४४४॥
छल सौं छुपि छतिया छुई कहूं अचानक स्याम।
गोसै गहि रसना दसन वसन कँपायौ वाम ॥४४५॥
घूंघट पट की ओट मैं रहे थके से नैन।
नृह छके पिय छवि छके छके रहे दिन रैन ॥४४६॥
नेह दुरावत दुहुन कौ हेस देत सुख भूरि।
राति मिलत है रति हँसत होत रुखाई दूरि ॥४४७॥
फिरि कै चितई प्रेम वस चली जात सतसंग।
चाह मित्र के चित वढ़्यौ सुख-अनुराग अनंग ॥४४८॥
जानि भीत संकेत मैं मिलिवे कौ अकुलात।
देखि अँधेरो वैठवो सखि ढिगहू न सुहात ॥४४९॥
उन हँगनकै वीरा दई हरपि लई सुखदान।
होन लगी अब दुहुन की मग मधुरी मुसक्यान ॥४५०॥
सवै कौन परमान सम रख्यो विरंच अचूक।
सोच मैन-सरजाल भिद भयो हजारक टूक ॥४५१॥
कुंजन प्रति गुंजत मधुप कूजत कीर कपोत।
इत कछु करिवे कौं सखी पर अधीन मन होत ॥४५२॥
और हाय मन होत है देखौ याही ठौर।
कारन कौन सखी कहौ तू प्यारी सिरमौर ॥४५३॥

यह मग देख भयावनी अहे सघन वन कुंज।
बढ़ी सीक उर धकधकी भयौ स्वेद कन पुंज ॥४५४॥
वंशीवट की गैल मैं हौं सखि गई भुलाइ।
तब बरजाइ जदुराज नैं दीन्हीं राह बताइ ॥४५५॥
आजु चतुर्थी व्रत कियौ गई लैन हौं फूल।
पापिन पाप लगावती इहा पाप नहिँ मूल ॥४५६॥
मनचाही सब कहत है नहिँ मेरे मन मैल।
आवत है नित फैल कर वही छैल नित गैल ॥४५७॥
सांचे कौ झूठो करत लिखत चित्र बिनु भीति।
देखी हौं अतिही अजब गजब गाड़ की रीति ॥४५८॥
भूली बन भटकी फिरत गली अँधेरी माहिँ।
बिलखी लखि सखि सांवरे पहुँचाई गहि वाहिँ ॥४५९॥
कालिंदी जल-केलि मैं आली घाले ह्वाल।
लखि अलि ये उरधर लगे कंटक कमल सनाल ॥४६०॥
सरिता मैं मेरो सदन बसौ पथिक इत आइ।
चित तै ग्रीषम गरभ कौ दीजै भरम भगाइ ॥४६१॥
बसौ बरोठै पथिक ह्वां बसन न पावत और।
यह मेरौ यह सास कौ यह ननदी कौ ठौर ॥४६२॥
यह निकुंज सीतल सुखद सुखद मंद गत बात।
बितै दुपहरी फिरि गवन करौ सांवरे गात ॥४६३॥
पिय बिदेस घर सास नहिँ ननद न रहत घरीक।
सूनौ घर कैसै बनत पथिक बसेरो ठीक ॥४६४॥
सुभग सरित सीतल सलिल पथिक न अति सुख देत।
भीषन तीखन जेठ की तुरत ताप हरि लेत ॥४६५॥
लखि लालन प्रफुलित बदन पुलकित सुरस सरीर।
गहि गाधर आलिन भरति भरत न गागर नीर ॥४६६॥

यह ग्रीषम तीखन तपन भीषन अति दरसाइ।
मंजुल कुंज-लतान मैं बसौ विहारी जाइ ॥४६७॥
मुख छपाइ सकुचाइ कछु अरु कँपाय भुज-मूल।
इंदीवर नैननि लखति कान्ह कलिंदी कूल ॥४६८॥
बैठी गुर जन साथ मैं लखी अचानक लाल।
नैन इसारन सौं कही सैन निसारत बाल ॥४६९॥
छवि सागर सागर गुननि नट नागर तकसीर।
गुन आगर नागर नवल भरत न गागर नीर ॥४७०॥
सरित तीर मीतहि निरखि हरषि हरषि हँसि देत।
नीर तरफ तकि तकि रहत फेर फुरहरू लेत ॥४७१॥
न्हात सरोवर सखिन सँग विहँस बेस वर बाम।
जोरि जुगल कर मित्र मिस मित्रहि करत प्रनाम ॥४७२॥
साजि जतन तन अति अतन तनक न बनत न जात।
नई सुघर बैठी सुघर उघर परैगी बात ॥४७३॥
चढ़ी अटा देखति घटा कितिक करत छल-छंद।
नेह निसेनै पैठती तेरी नजर विलंद ॥४७४॥
हठक हठीलो हठ करत बरजै बार कितेक।
चोट अचूक न चुकत ये तेरे हग अमनेक ॥४७५॥
हरित बसन तन मैं पहिरि तिय न रँगै कर हेत।
घूंघट पट की तार की हग फँसिया फँस लेत ॥४७६॥
कान्ह कान्ह मुख आन नहिँ कौन परी यह वान।
तू जानत हौ जान हौ सब जग जान-अजान ॥४७७॥
नाम सु मोहनलाल कौ सबै कहत चितचोर।
चोरन की चोरी करत री तेरे हग - जोर ॥४७८॥
वेसर है सुंदर सुखद तैसी लसत सुढार।
मित्र लखत प्रमुदित हियै अमल कमल सी नार ॥४७९॥

लोक लाज खोई खुदी घूंघट पट की श्रोट।
हरदफ वेधत हेर हिय ज्यौं हरदफ की चोट ॥४८०॥
घरहू तैं निरसंक तैं भरहू तैं न डरात।
पहिर चूनरी हैं निते हर पूजन कौं जात ॥४८१॥
यह पूजन कौ वेष नहिँ हरहि पुजावन जात।
हर पूजन कौ जात नहिँ पहिरि चूनरी रात ॥४८२॥
कहा छपैयतु लखि परत प्रगट हियै कौ हेत।
सारी गत अनुराग की सारी कहि कहि देत ॥४८३॥
नागर नट नागर निरखि विहँसि विहँसि हँस देत।
निते निते हरि कौ चितै चितै चितै हरि लेत ॥४८४॥
वांके विरुदैती भरे भौंह धनुष सर नैन।
कहौ करत है कौन पै कमनैती तुव नैन ॥४८५॥
अनियारे अंजन सहित अति अमनैक सुमान।
सरफ सरफ रस होस कै तेरे दृगन समान ॥४८६॥
हँसि हेरत फेरत दृगन लगन लगावन ईठ।
छनक छबीले छल छकत तकत तिरीछी दीठ ॥४८७॥
मंजु करन मांजे मदन धरि सुहाग खर सान।
तीछन लग वेधत हियौ तेरे ईछन बान ॥४८८॥
भेद तेरिए उर कढ़े यं उरोज जुग वाम।
श्रौरन उर वेधत इन्हैं दया होइ किहि काम ॥४८९॥
आनन तैं स्रम स्वेद कन छुटि छुटि परत उरोज।
मानौं मोतिन संभु जुग पूजत मनहु मनोज ॥४९०॥
मिलन सबै रस लै सकत लख लख मन न सकात।
इक गुलाब के फूल पै बहु मधुकर मँडरात ॥४९१॥
कोमल तन धन मालती सहत भार घन कोति।
देत मलिन मधुकर गलिन पै न मलिन द्युति होति ॥४९२॥

जोबन छाक छकी रहत मद के मद उमहात।
कहति नटति रीझत खिझत हँसति झुकति झहरात ॥४९३॥
लखत छांह छन छबि छकति छलनि छबीली छैल।
अरबीली ऐंड़ति अड़ति गरबीली गहि गैल ॥४९४॥
नैकु न उत टारे टरति नित निदरति सखियान।
मन ललच्यावत जगत कौ घनियारी अँखियान ॥४९५॥
जुन्हरी राखन जात नित पहिरे चुनरी लाल।
वह लुमरी 'हुमरी कुचनि गरे गुंज की माल ॥४९६॥
ढीमर वह छीमर पहिरि लूमर मदन अरेर।
चितहि चुरावत चाहिकै बेंचत बेर सुरेर ॥४९७॥
फिर फिर कुच कसकत कसत लसत गुंज उर हार।
तीछन ईछन सरन सौ बेधत हियौ गँवार ॥४९८॥
अंग मोर आंचर उचै बार बार अँगिरात।
ऐंड़ भरी ऐंठति खरी पैंड़ पैंड़ इठलात ॥४९९॥
गुंज-हार उर मैं पहिर दीन्है आड़ लिलार।
मदमाती झूमति झुकति विहँसति हँसति गँवार ॥५००॥
आवत लखि रितुराज कौ समुझि सुखन कौ मूल।
फूलि भई मालिन हियै लखि गुलाब कौ फूल ॥५०१॥
निकट परोसिन कलह बस रहि न सकी तिहि ठाम।
सुख सौतन दूनौ भयौ सूनौ ग्रह लखि वाम ॥५०२॥
ज्यौं ज्यौं पति परनारि सौं करत सनेह निहार।
त्यौं त्यौं प्यारी के हिए बाढ़त मोह अपार ॥५०३॥
ननद सासुरै पिय अनत सासु सौत के धाम।
विहँसि उठे दृग वाम के सूनै सदन सकाम ॥५०४॥
सोरठा—अरहर आई जानि भाई नहिँ तन थरहरी।
यहै सोच उर आनि विरह ज्वाल जालन जरी ॥५०५॥

दोहा—अपत करी बन की लता जपत करी द्रुम साज।
बुध बसंत कौ कहत हैं कहा जानि रितुराज ॥५०६॥
परिहरि सुख थरिहरि परी करि करि सुरत विसेखि।
तरिहरि आनन करि रही अरिहरि याकी पेखि ॥५०७॥
लखि आगम रितुराज कौ घर बाहिर न सुहात।
पिय हियरै लागी रहत तऊ हियै अकुलात ॥५०८॥
हरि दृग समता कवि कहै करि कविता मिस सोइ।
नाहक तोरत कंज बन मूरख कहत न कोइ ॥५०९॥
बंसी धुन स्रवनन सुनत अंग अनंग मरोर।
चित्र लिखी सी ह्वै रही चकित चितै चहुँ ओर ॥५१०॥
मृगलोचनि सोचति कहा कह मोचत जल नैन।
बन उपवन बहु वाटिका सुनियतु पिय पुर ऐन ॥५११॥
नाह महल आगै बनौ सुंदर बाग तड़ाग।
सोच मोच मृगलोचनी चलौ भलौ तौ भाग ॥५१२॥
सुंदर हारसिंगार कौ हरि उर हार निहारि।
हारि परी हिय हहरि कै यह सुकुमारि कुमारि ॥५१३॥
आवत केलि-निकुंज कर लिए मंजरी लाल।
देखि मंजरी मंजरी रूप मंजरी बाल ॥५१४॥
लखी कंज कर आम की मंजु मंजरी ऐन।
पीरी सब अंगन परी बीरी लेत बनै न ॥५१५॥
गहत चहत नहिँ पंचसर जान याहि जय मूल।
एकै रौदा पर धरयौ मदन करौंदा फूल ॥५१६॥
छवि-सागर नागर निरखि नट नागर बर वेस।
कदलि पत्र सम थरहरी कदलि पत्र कर देखि ॥५१७॥
सुन सखि हौं बैरी भई मोहि चढ़ो यह गारि।
हा हा जाहुँ जु नंदघर तन मन आऊं वारि ॥५१८॥

करत उछाहै मिलन की सुनि चाहै चित चाहि।
बिन ब्याहै ब्रजचंद की छाँहीं छुवत लजाहि ॥५१६॥
चटक चटकतानन फटिक लटकि लटकि फिर जाति।
खटक खटक पिय हिय घटकि गहति सु पर मुसक्याति ॥५२०॥
गाइन अति भाइत भरति अर्प तर्प की तान।
अर्प दर्प कंदर्प जनु कीनौ सर संधान ॥५२१॥
सबज पोस जरपोस करि लीनौ लाल लुभाइ।
भाइ भाइ फिर भाइ करि करति घाइ पर घाइ ॥५२२॥
मो दृग बांधे तुव दृगनि बिना दाम बे-दाम।
मन महीप के हुक्रम तैं फौजदार कौ काम ॥५२३॥
तन तैं मन तैं मिलन तैं भई कबहुँ न्यारी न।
रही लालसा री हियै दई लाल सारी न ॥५२४॥
हित ही कौ नीकौ कियौ जी कौ जीवन जंत्र।
सी कर रति आरंभ कौ महाबसीकर मंत्र ॥५२५॥
कर परसत सिसकीन कौ सोर सुनावत बाम।
चहति अदा मैं कौनही चहति अदामै दाम ॥५२६॥
अंग अंग आभा दृगनि निरखति तजति न भौन।
नित पलकन दूषित रहत पिय सुभाय यह कौन ॥५२७॥
अलि आए परदेस तैं कालि सांवरे गात।
आज संग के सखन सौं पूछत मग की बात ॥५२८॥
तेरो पति सब काम तजि आवत सांझ सहेत।
मेरे देखन कौ ललन फिर फिर फेरी देत ॥५२९॥
सांझ समै कुंजन गई देखत चकित चकोर।
ससि तैं नैन निवार कै चितवत मो मुख ओर ॥५३०॥
अंग अंग छवि वनक लखि कनक तनक छवि देत।
भूषन दूषन से लसत पहिरावत किहि हेत ॥५३१॥

यह समता क्यौं करि बनत मो कर मुख मृदु गात।
कमल कलाधर कनक लखि कवि कुल कहत लजात ॥५३२॥
मो दुति देखे दामिनी दमयंती रँग फीक।
रंभा मैं रंचक नहीं रति मैं नहीं रतीक ॥५३३॥
गात गुराई हेम की दुति सु ढुराई देत।
कंज बदन छबि जान अलि भूलि भाउरै लेत ॥५३४॥
नाह और के हाथ यह सुनी सखिन मुख बात।
समुझ रूप गुन चतुरई चतुर न हिए सकात ॥५३५॥
मो हित तू अति स्रम कियौ यहै स्वेद कन साख।
भली गई आई भली भलौ लाल रुख राख ॥५३६॥
भाग नगर काबिल दिनी निपट कुमाऊं लेखि।
मो रँग रह्यो विहार मैं आई सूरति देखि ॥५३७॥
अरी बदी सी लखि परी अवधि बदी सी जाइ।
गई नदी सी तासु ढिग रही नदी सी न्हाइ ॥५३८॥
कलित स्वेद-विगलित बचन लखियतु कंपित गात।
भली भांति समझी अली कहत चली क्यों जात ॥५३९॥
तू न लखति कसि तून कटि सजि प्रसून धनु बान।
आन आनि फेरी मदन करी मान तजि मान ॥५४०॥
होत सुजान अजान कत बैठी भौंहन तान।
ल्यायो मदन महीप कौ ना फुरमा फुरमान ॥५४१॥
यह वसंत आयौ लखौ रह्यौ मदन सर तान।
अब न मार नैहै कहूं मानिन मानि न मान ॥५४२॥
देखि घटा छन छबि छटा छुटत मुनिन के ध्यान।
बैठी भौंहैं तान सखि क्यौं रैहै मन मान ॥५४३॥
मोरि मोरि मुख लेत है नहिँ हेरत इहि ओर।
कुच कठोर उर पर बसत तातै हियो कठोर ॥५४४॥

गही गुसा चितवत मही कही बहुत समुझाइ।
यही पकर पारी रही रही मनाइ मनाइ ॥५४५॥
कही मान ऐंठति कहा दै दै बैठति पीठ।
पिय मुख किन हेरत हरष फिर फिर फेरत दीठ ॥५४६॥
नए मान देखे न ये उनए घन अमनैक।
लालन ये पाहुन नए नए मानती नैक ॥५४७॥
तोहि रसत तो तन बसत निकसत मन अकुलात।
मंजु मालती तजि अली कनक कली पर जात ॥५४८॥
मनहि मान मेरी कही नव दुलही सुखदान।
इतनौ तन सोहत न ये एरी इतनौ मान ॥५४९॥
कहियतु सो करियतु नहीं धरियतु रिस मन आन।
अनख अंग छीजत खरौ कत कीजतु मन मान ॥५५०॥
पर सौंहैं चितवत कहा घर सौंहैं चित लेखि।
वर सौंहैं दृग कर अहै बरसौंहैं घन देखि ॥५५१॥
अभिरामिनि जामिनि सरद दामिनि दुति सरसाव।
गज-गामिनि तज मान अब कामिनि सुख सरसाव ॥५५२॥
यह तोमैं नोखी नई परी अरी कह बान।
गई बीत जुग जामिनी कह्यौ भामिनी मान ॥५५३॥
कोटि जतन करि करि थके तजत न कैहूं मान।
हरष हँसी नागर सुघर दो हा कहत सुजान ॥५५४॥
सौहैं लखि सौहैं करत अब त्यौरी न तरेरि।
नेह भरे निजु नाथ सौं नेह नजर भर हेरि ५५५॥
दंपति एकै सेज पर काम कला रस लेत।
मान करै मानै दुवौ मान मनावन हेत ॥५५६॥
ताकी यौ ताकी दसा थाकी कर उपचार।
मार सुमार करी खरी वह सुकुमार कुमार ॥५५७॥

पानिपहीन लखै परत कहा छपैयतु आप।
नथ-मोती तैं जानियतु अली बिरह कौ ताप ॥५५८॥
फूल-माल अति प्यार कर कर सौ दिय पहिराइ।
तुरत उतार लई सुघर पिय की दीठ बचाइ ॥५५९॥
चंदन चूर कपूर घसि अरु कपूर लपटाइ।
आब गुलाव सुलाव किय तऊ न ताप बुझाइ ॥५६०॥
मोर सोर घन घोर तैं उर उपजावत मार।
लपटी लता तमाल सौं बिरहिन करत सुमार ॥५६१॥
कल न परत तलफत तलप अलप बचन मुख नाहि।
जतन जतन की जाचना करत अतन तन माहि ॥५६२॥
प्रनत रसत मिलत न बनत रहत न घनत विहाल।
घरी घरी तलफत खरी परी परी सी बाल ॥५६३॥
अलप सलिल सफरी भई नए बिरह सुकुमार।
तलप परी तलफत खरी करी सुमार सुमार ॥५६४॥
बिरह जरनि गुरजन दुरनि छुवत न पंकज-पात।
जोवति मग सोवति नहीं रोवत रैन बिहात ॥५६५॥
नहिँ बोलत डोलत नहीं खोलत नहीं कपाट।
लेखत दिन बेषत गहै पेखत पिय की बाट ॥५६६॥
लै प्रसून पूजत सिवा मेटन बिरह कलेस।
खोल मुठी चित चकित ह्वै देत चढ़ाइ महेस ॥५६७॥
यह निसि दिन माथे बसत वह सिव कियौ अनंग।
बंधु हेतु हिय समुझि ससि करत ताप अति अंग ॥५६८॥
अधरन पर बेसर सरस लुरकत लुरक बिसाल।
राखन हेतु मराल जनु मुकति चुगावति बाल ॥५६९॥
तन झुरसी तरसी हियै परसी बिरह जरूर।
दृगनि वारि झर सी लगी दरसी अरसी नूर ॥५७०॥

कहत आन की आन मुख सुनत आन की आन।
पिय प्यारे चल चाहियै तिय प्रानन की प्रान ॥५७१॥
कोइन की छबि कहि सकै को इनकी छबि लाल।
रोचन तैं रोचन कहा जावक जपा गुलाल ॥५७२॥
लसत हिए छबि देत यह बिन गुन मन की माल।
रोचन रँग रोए मनौ सोहत लोचन लाल ॥५७३॥
लाल लाल लोइन निरखि लालन के नव बाम।
हाथ आरसी लै लखति निज लोचन अभिराम ॥५७४॥
उसनीधे बींधे बिधे सुखन लखि लोचन भर पाथ।
बोली नहिँ सुंदर सुघर सुकर मुकर दै हाथ ॥५७५॥
सुनियत गुनगन रावरे गुनियत मन दै ठीक।
वहै लीक जाहिर करत यहै पीक की लीक ॥५७६॥
ओंठनि अंजन दृग अरुन बनी घनी छबि आज।
भोरहि आए भोर बन मोहि भोरवन काज ॥५७७॥
वाके उर लागे निसा पागे परम सनेह।
लागे नख रागे रँगन अनुरागे अवगेह ॥५७८॥
सब गुन आगर देखिए नागर परम प्रवीन।
रस-सागर जा उर लगे रूप उजागर कीन ॥५७९॥
निसि जागे रागे नयन पागे परम सनेह।
भाल लाल इहि हाल सौ आए मेरे गेह ॥५८०॥
झपकौहैं पल देखियतु कहत हँसौहैं बैन।
अलसौहैं सौ गात कत करत मिचौहैं नैन ॥५८१॥
रोस सोस फिरि होस करि फेर पठावति मोहि।
मोह सुमोहन सौ लग्यौ कहा सिखाऊं तोहि ॥५८२॥
कलह करत नेहै करत तेरी बान सनाम।
कहा चूक है स्याम की तूही बाम सुवाम ॥५८३॥

कल न परति हहरति हियै नए बिरह व्रजनाथ।
खिन खिन छबि छीजति खरी खिन खिन मींजति हाथ ॥५८४॥
बिन गुनाह निज नाथ सौं नाहक भई सरोस।
अनख हिए कत कीजियतु काहि दीजियतु दोस ॥५८५॥
हौं रस मैं अनरस कियौ तूं न लगी रस राह।
तब कस ना बस ना कह्यौ अब रसना लगि नाह ॥५८६॥
साजि साज कुंजन गई लख्यौ न नंदकुमार।
रही ठौर ठाढ़ी ठगी जुवा जुवा सौ हार ॥५८७॥
पिय बिन सूनी सेज लखि सूनी सी हिय बाल।
भौंहैं चढ़ो कमान सी उतर परी तिहि काल ॥५८८॥
सजि सिँगार कुंजन गई लह्यौ नहीं बलबीर।
ठोढ़ी ठाढ़ो सी तरुन बाढ़ी गाढ़ी पीर ॥५८९॥
दिनकर कर दरसे सुखद गई निसा सब बीति।
मोसौं प्रीति प्रतीत दै कहूं रची रस-रीति ॥५९०॥
यही अवधि पर ल्याइहौं तेरी सपथ सुजान।
उडगन गन बिरले परे भामिनि भयो बिहान ॥५९१॥
अधरतिया की कर अवधि कीनी फिर न सम्हार।
भए कौन धौं तिया के छक छतिया के हार ॥५९२॥
दीप-सिखा फीकी भई गई छपा की छांह।
जानत पिय पागे अनत अनुरागे छवि मांह ॥५९३॥
उडुगन गगन मलीन छबि छनदा गई सिराइ।
रसिया रस लूटौ कहूं बन हैं अनतै जाइ ॥५९४॥
नहि डोलति खोलति दृगनि सकुच न बोलत बोल।
अमल कमल दल से दुवौ पीरे परे कपोल ॥५९५॥
कुंजन अलि गुंजन लगे किय कलकिंखकन सोर।
सजनी गत रजनी भई नीरजनी छबि ओर ॥५९६॥

इतै उतै चितवत रहै वितै रहै निसि जाम।
हितै हितै तन कौ अली कितै रहै घनस्याम ॥५९७॥
जटित जवाहिर आभरन करि बैठी इक तौर।
पिय कौ आउन जानि कै दिया दिया कहि दौर ॥५९८॥
करि मजेज सज सेज पर बैठी साज सिँगार।
खोलि किवारन कौ रही इकटक नैन निहार ॥५९९॥
महल महमही महक मग मनधर मैन मजेज।
सौति सुहागहि रेज करि साजी सुंदर सेज ॥६००॥
सजि सिँगार आनँद मढ़ी बढ़ी सरसऊ छाह।
रंगमहल फूली फिरति चितवत मग चित चाह ॥६०१॥
उदित उमंग अनंग बर उर उमग्यौ अनुराग।
सजत सेज भूषन बसन अंग अंग अँगराग ॥६०२॥
सज सिँगार सुख सेज पर बैठी बाल रसाल।
लाल लाल मनि लालमनि जनु जगमगत रसाल ॥६०३॥
तन सिँगार कुच-भार तैं हार हियै पहिरै न।
ल्याई प्यारी प्यार कर प्यारे हिय हहरै न ॥६०४॥
भौहैं तान कमान बर नैन सरन कर साधि।
गहि राख्यौ मन लाल कौ अलक जँजीरन बांधि ॥६०५॥
प्यारी पेखत पेखनौ उझक झकोरन बंक।
भौ प्यारे कौ पेखनौ प्यारी बदन मयंक ॥६०६॥
घन घेरे नेरे रहत हेरे खरी लजात।
मो मुख देखे बिन उन्हैं कल न परत दिन-रात ॥६०७॥
चलौ छबीली हित चितै छोड़ सहेली साथ।
अति इतरात बतात कह परखत गोपीनाथ ॥६०८॥
चंदमुखी मुखचंद की दई छटा छुटकाइ।
रही चांदनी चौक में चारु चांदनी छाइ ॥६०९॥

बड़ अँखियां बड़रे दृगन बड़े रूप यह बाल।
वह चित चाहति चाह सौं चलौ छबीले लाल ॥६१०॥
चलौ लाल वह बाल सौं कीजै सरस बिलास।
मंजु कुंज मैं करि रही अति छवि पुंज प्रकास ॥६११॥
लाई मान मिटाइ सखि पाइन पारी आइ।
रहे लाल उर लाइकै मनौ रंक निधि पाइ ॥६१२॥
लता लचत बरही नचत रचत सरस रसरंग।
घन बरसत दरसत दृगन सरसत हियैं अनंग ॥६१३॥
सुंदरि मनि मंदिर खरी छिति छलकत छवि जाल।
लसत मंजु मर्हँदी नखनि चखनि बिलोकहु लाल ॥६१४॥
तैसी जरतारी सुही सारी जगमग जोति।
चलि प्यारी पिय पै बिहरि बलिहारी रति होति ॥६१५॥
सजि सिँगार अनुराग कर देखौ बाग बहार।
चलि बस मैं प्रीतम करहु रसमय समय निहार ॥६१६॥
चलन कहत नाहीं कहत कौने सिखई तोहि।
बहिरावत बातन कहा बहकावति नित मोहि ॥६१७॥
चलि बल अब न बिलंब कर लखि इत रात सिरात।
समुझ सयानी बात अब कत बैठी इतराति ॥६१८॥
सटकारे कारे सरल लसत सुहाए बार।
देखहु बलि चलि औचका नवल बधू सुकुमार ॥६१९॥
जुवति कन्हाई रस पगी पगन डगमगी ऐन।
सुचि सौंधे से सगबगी करी जगमगी रैन ॥६२०॥
चीर चुरैलन भीर मग नीर गभीर मझाइ।
करि पन्नग के पाउँड़े पिय पै पहुँची जाइ ॥६२१॥
तन-दुति लखि लाजति तड़ित भाजत घन छपि जात।
छवि छाजत राजत खरी नए नेह सरसात ॥६२२॥

सरद कलानिधि कमल की नारद करत बिसेखि।
छवि छलकत झलकत वदन मन ललकत दुति देखि ॥६२३॥
खरी दुपहरी जेठ की लखि न परी तिहि माहिँ।
लपट अरुन पट लपट सी झपट चली छपि छाहिँ ॥६२४॥
चलि देखौ दुति दामिनी दिपति मनौ दुति रूप।
मंजु मंजुघोषा भई जोषा जगत अनूप ॥६२५॥
कुंजन लौं नव नलिन की कली रही फव फैल।
कीनी गरक गुलाब सौं तिन कुंजन की गैल ॥६२६॥
पंकज से पसरे लखे कंटक विकट अपार।
दिखि अपंथ सौ पंथ लौं चली भली अभिसार ॥६२७॥
अली जात मग देखिए दीप सिखा सी नार।
चली भली निज गेह तैं स्याम सनेह निहार ॥६२८॥
काम-केलि सुंदर कला निसि दिन करति अलेखि।
पिय-अनुराग सुभाग कर चलौ सुहागिल देखि ॥६२९॥
फैले बूँद फनिंद के गैल छैल नहिँ भूल।
मेघपुंज तमकुंज कौ चली अली अनुकूल ॥६३०॥
भूर भाइ हिय दूर लगि लखियतु सदा सहूर।
नेह नूर दरसत दृगन प्रेम पूर भरपूर ॥६३१॥
पहिरि सेत सारी सरस चंदन चरचित देह।
चंद्र उदै लखि चंद्रमुख विहँसि चली पिय-गेह ॥६३२॥
लखि निकुंज सूनौ दृगनि रही सुघर मुख मोर।
पिय लखि फूलन मिस चली कलित कुंज की ओर ॥६३३॥
वह न कहत हौं हूं कहत तन कौ विरह कलेस।
घरी एक मैं होइगो दुर्लभ वचन सदेस ॥६३४॥
ललन चलन सुनि पलन मैं आइ गयो वहु नीर।
अधखंडित वीरी रही पीरी परी सरीर ॥६३५॥

तिय हिय अंकुर प्रीति के होन लगे द्वै पात।
यह हांसी छोड़ौ चलन ललन चलन की बात ॥६३६॥
रवन गवन सुनि भवन मैं चटपट निपट उदास।
हियै दहत कहत न कछू दीरघ लेत उसास ॥६३७॥
ललन चलन कौ चलन सुनि मलिन हिए अकुलात।
फिलकी बूझति सासु के हिलकी उर न समात ॥६३८॥
मांगी बिदा विदेस कौ दै जराइ अनमोल।
बोली बोलन सुघर तिय दिय अलाप हिंडोल ॥६३९॥
पीरी पीरी तन भई बीरी लेत लजात।
सुनि स्रवनन प्रीतम गमन सोसन हियौ हिरात ॥६४०॥
कल न परत जब तैं कही ललन चलन की बात।
लगी पिया छतिया तिया छतिया नहीं सिरात ॥६४१॥
चितवत घूंघट ओट है गुर जन दीठ बचाइ।
स्रवन सुनत प्रीतम गमन अगमन गई ससाइ ॥६४२॥
कहा कहौं कहत न बनत प्रीतम करत पयान।
वरबस आप समान मुहि करिहै अतन अमान ॥६४३॥
गमन तिहारौ सुनि रवन पठवत सब सुख साथ।
निज प्रानन प्यारी वहै सौंपति मेरे हाथ ॥६४४॥
मिलि बिछुरत मिलि मिलि चलत फिरि फिरि मिलि अकुलात।
दिन दिन चलन कहै ललन दिन दिन रहि रहि जात ॥६४५॥
तुरत गमन सुनि ललन कौ सुन सखि परम प्रबीन।
छिन उछलत छिन छिन बिकल जल बिछुरत जनु मीन ॥६४६॥
ललन चलन सुनिकै वही रही हिए मैं हार।
मुख बोलत खोलत न दृग नवल बधू सुकुमार ॥६४७॥
मनभावन आवन सुनै सुख सरसावन बोल।
पुलकत तनु हुलसत हियै बिहँसत ललित कपोल ॥६४८॥

बहु बासर बिछुरे मिले दंपति परि परजंक।
हियरे लगि मेटति बिरह भेंटति भरि भरि अंक ॥६४९॥
स्रवन सुनत पिय आगमन हरषि हरषि सुखदानि।
भुज फरकत हुलसत हियौ दरसत मुख मुसक्यानि।६५०॥
तन की गति औरे भई नहिँ जानत सखि सोइ।
बाम आंख फरकत चुरी कर की करकी दोइ।६५१॥
आवत पति परदेस तैं लखि हरपी तिय बाम।
ललकि लगाइ लगाइ उर सुख पावत अभिराम ॥६५२॥
सखिन संग सोहत खरी आए सुनि नँदनंद।
लोचन लालन के लखे भयौ मोद-सुख-वृंद ॥६५३॥
मनि मंदिर डोलत खरी हँसि हँसि बोलत बैन।
लखि नँदनंद अनंद की उघरी सुघरी ऐन ॥६५४॥
नींद भरे आलस भरे लखि पिय अंकित गात।
तऊ ललकि लागी गरैं हरैं हरैं मुसक्यात ॥६५५॥
गहौ मौन धीरज धरौ रति अंकित पिय पेखि।
हरैं बात कहि अलि अहे वे हिय बसे विसेखि ॥६५६॥
आवत अंक न अंक लखि रति के तिया ससंक।
करौ मान पिय पगन पर तजौ मान तिहि बंक ॥६५७॥
पगनि परो पेखत न पिय हिय न लगत अनखात।
दृगन असुझर सी लगी झुकि झुकि झुकि झहरात ॥६५८॥
डरत नहीं कुलकानि तैं जदपि कठिन व्रज तीर।
तदपि तरुनि तरुनी भई नेह नदी की भौर ॥६५९॥
उन नैननि चितवत न अन्न चितवत चित कौ हेत।
नई नई रीतैं करत नई नई चित देत ॥६६०॥
कहत और औरै करत निसिदिन आठौ जाम।
नीकै नेह नियाहियो है सबही को काम ॥६६१॥

सोच मोच मृगलोचनी कितिक सौति छलछंद।
मंद करत ससि सरद कौ तो मुख राका चंद ॥६६२॥
चरचि चवाइन कहति है सो नाहीं चित देहु।
नैन कलस कर सांवरौ रूप-सुधा-रस लेहु ॥६६३॥
सीख मान मेरी हियै तजि सब चार विचार।
सो तन देखत ह्वै रह्यौ निज प्रीतम उर हार ॥६६४॥
कहत रात कौ पेखनौ क्यौं सब सखिन सुहात।
मो उर गांसी सी लगत मो हाँसी की बात ॥६६५॥
तुव तन लगि सुरभित पवन गवन करत गति मंद।
ताकौ अति आदर सहित परिरंभत नँदनंद ॥६६६॥
रस ही मैं रस पाइयतु यह सुरीत जग जोइ।
वा मुख की बतियान सौं अनरस मैं रस होइ ॥६६७॥
यह समयो पैहौ न फिर अजौ समुझ चित चेत।
बनत न फिरि कौनो जतन अतन अतन कर देत ॥६६८॥
स्रम बिलोकि दोरत पवन कहत न गवन प्रसंग।
राखत पिय करि प्यार जिमि हरि गिरिजै अरधंग ॥६६९॥
दरसै तै दुख दूर है परसै होत अनंद।
तुव तन सोभासिंधु है तुव मुख राकाचंद ॥६७०॥
नेह भरी अँखियान सौं चितवत तो तन ओर।
भयो रहै नँदनंद अलि मो मुख-चंद चकोर ॥६७१॥
मुख नांही वांही गहत नाही नाहीं ठीक।
प्यारी तौ प्यारी लगत ही तै नाहीं नीक ॥६७२॥
करी बहुत मनुहार पै अनख भई अनखैल।
गांठी कस दीवी मिसन नीवी छोरत छैल ॥६७३॥
बचनन मैं दरसावती अनखाहट की रौस।
बनी रहत उर मैं ललक रूखे रुख की हौस ॥६७४॥

लियै आरसी लाल कर मांगी एक लुभाइ।
राखि उकर सबकौ गए मंदिर मुकर लिवाइ ॥६७५॥
तोर कंज दीजे हमैं सबन कह्यौ पिय आइ।
तोरि कंज मंजुल बिहँसि दीन्हें स्याम चलाइ ॥६७६॥
तोरि फूल दीजै हमैं सबनै कह्यौ सुनाइ।
चंपक तरुनी स्याम हँसि दीन्ही डार नवाइ ॥६७७॥
धरत न चित सीखे कहा डुरत न लोक कलंक।
रहत सदा परदार हित परदा रहित निसंक ॥६७८॥
बिहँसि बिहँसि सखि साथ तैं मुरकि चितै इहि ओर।
मो मन मांझ गड़ी रहै वह कजरारी कोर ॥६७९॥
बदन मोरि हँसि हेरि इत नैन नैन सौं जोर।
गोरी थोरी बैस की लै जु गई चित चोर ॥६८०॥
मिली सांकरी खोर मैं गोरी मुख मुसकाय।
नैन जोरि ढिग ह्वै कढ़ी नैसुक नेह जनाय ॥६८१॥
रूप सरस पानिप भरयौ पावत नेकु न थाह।
घूम घूम मन घिरतु है झूम झूमकन माह ॥६८२॥
मन मनमथ फंदन परयौ क्यों हूं निकसतु नाह।
तिहि पर लुरकन लुरक की गड़ी रहत हिय माह ॥६८३॥
हावनि बहु भावनि करति मनसिज मन उपजाइ।
दाइल वह थाइल करत पाइल पाइ बजाइ ॥६८४॥
धनुप वेद के भेद बहु मनौ पढ़ाए मैन।
चुकत न चोट अचूक ये मृगनैनी के नैन ॥६८५॥
घूंघट पट की ओट दै चोट अचूक चलाइ।
चंचल चखन चितै गई चितै गई ललच्याइ ॥६८६॥
सरसत सुख दरसत द्दगन परसत रस की खानि।
गांसति चित चितवनि ललित फांसति मुख मुसक्यानि ॥६८७॥

वदन फेरि हँसि हेरि इत करि ललचौंहैं नैन।
उर उरकी दुरकी लुरक जुर मुरकी कर सैन ॥६८८॥
दृगन जोरि चित चोर विधु वदन मोरि मुसक्याइ।
गई अली की ओट ह्वै चितवन चोट चलाइ ॥६८९॥
ऐन मैनमय सैन करि वदन मोरि दृग जोरि।
नागर नेह निसा करी वहां सांकरी खोरि ॥६९०॥
ललचौंहीं कछु बात कहि तिरछौहीं अँखियान।
खटकी उर अटकी रहत वा मुख की मुसक्यान ॥६९१॥
सखिन संग कर गहि अटति नटति दिवावति सौंह।
नैकु नहीं हिय तैं टरति वह तिरछौंहीं भौंह ॥६९२॥
कछुक मोरि मुख जोरि दृग तिरछी भौंह चढ़ाइ।
गई अली की ओट उठि मंद मंद मुसक्याइ ॥६९३॥
कहु ऐसी रति वर कला अनत न लखियतु चारु।
या तैं मो मन पुरवधू भई हिए को हारु ॥६९४॥
झिलमिलात भूषन वसन अंग अंग सुकुमार।
मनमथ की बूटी मनौ नगर-बधूटी नार ॥६९५॥
और तौर आभा अमल भूषन औरै तौर।
रची विधाता पै न कहु वार-बधू सी और ॥६९६॥
तौन कौन दिन भौन मैं सोनजुही सी बाल।
झमकि लागिहै मो गरे ज्यो वनमाल रसाल ॥६९७॥
विरह लपट की झपट की तवै तपन यह जात।
लपटि लपटि पिव भेटिए गोरो गोरे गात ॥६९८॥
नैन सुने जे नेह के गड़े हिए निकसै न।
वह इठलानि वतानि वह विसराए विसरै न ॥६९९॥
सालै नित नटसाल सी निकसि सकै किहि भांति।
वड़ी वड़ी अँखियां हियै गड़ी रहैं दिन राति ॥७००॥

मुख विलोक दृग करि सकल गरै मेलि भुजमाल।
सुख समेटि कब भेंटबी सोनजुही सी बाल ॥७०१॥
हँसि हँसि छठि हियरा हरति करति बहुरि मनुहारि।
सुखद प्रीति परनारि की रची बिरंचि बिचारि ॥७०२॥
सौंहैं करि लोचन जुगल करि करि भौंहैं बंक।
कब लगिहै गुन आगरी नगर नागरी अंक ॥७०३॥
अंग अंग आभा अमित अमल कमल सी बाल।
तासौं रुख रूखो करत कौन चाल यह लाल ॥७०४॥
बार बार याते' कहत यह मेरे जिय सोस।
क्यों सैहै सुकुमार वह तुमरौ आतप रोस ॥७०५॥
जब ते' रुख रूखो कियो तब तैं अति अकुलात।
लालन लखि वाकी दसा मो पर कही न जात ॥७०६॥
लाल तिहारे रूप कौ नयो जाल दरसात।
जामै खंजन दृगन के दृग गंजन फँसि जात ॥७०७॥
लगी अंक परजंक पर मुख मयंक मुसकात।
जान परी नहिँ ललन कौ वह जिय तैं' रिस जात ॥७०८॥
उठे सघन घन लखि गगन अधिक अँधेरी रात।
कहो अकेलो जावगी बरसाने किहि भांत ॥७०९॥
हम सबके दृग मूंदिहैं जान आपनो मेल।
आवो जुर मिल खेलिए चोर-मिहोचन खेल ॥७१०॥
हँसकै हरि सब सौं कह्यौ देखहु बाग बहार।
हम गूंदत निज करन सौं सुमन सुमन कौ हार ॥७११॥
लखी लाल कर नागरी सुघर मंद मुसक्याइ।
मुख मिलाय गवरी रहो अँगुरी हियै लगाइ ॥७१२॥
खेलन के मिसि संग की दई सबै बहराइ।
मनभाई प्यारी ललन लीन्ही कंठ लगाइ ॥७१३॥

समकत मुख सीवी करत वहै छवीली बाल।
फिर फिर चित्र भुजंग कौ दृगन दिखावत लाल ॥७१४॥
दोऊ प्रेम भरे खरे करि करि स्वांग अनूप।
लालन ललना रूप धरि ललना लालन रूप ॥७१५॥
अंगराग अंगनि चरचि भूषन साज सिँगार।
बिहँसति रति-मंदिर चली सुंदर अति सुकुमार ॥७१६॥
अंग अंग छवि जगमगत पहिरत भूषन अंग।
वही हरी सारी हरी सारी सोति उमंग ॥७१७॥
वंसी धुनि स्रवनन सुनत तन मन अति अकुलाइ।
दौरी जावक दै दृगनि अंजन पगनि लगाइ ॥७१८॥
उझकि झरोखनि झांकि झुकि लखि लालन मन मोद।
हिय हुलसति सरसति सुखनि बिलसति बिविध बिनोद ॥७१६॥
रस मैं हौं अनरस कियो प्रीतम दियौ उठाइ।
अब कासौं कहिए कहा ल्यावै कौन मनाइ ॥७२०॥
भरत अंक परजंक पर हँसि बिहँसति बतरात।
ज्यौं ज्यौं तिय नाहीं करत त्यौं त्यौं सुख सरसात ॥७२१॥
कह्यौ न मानत हौ कहूं सीखे कौन सुभाय।
सकुचत नैकु न आपने कत सकुचावत आय ॥७२२॥
सजि सिँगार भूषन बसन सुंदर सरस सभाग।
चली भली नँदलाल कौं मिली सहित अनुराग ॥७२३॥
हौं तो सौं सांची कहत तू झूठी मति मान।
मन भावन देखे घरी लाज लजावत आन ॥७२४॥
ढुरि दरसति दामिनि दमक बरसत घन घनघोर।
चाहत चित चित-चोर कौ डारी मदन मरोर ॥७२५॥
जितै बसै प्रीतम वहै करि करि उर अभिलाप।
राखत सूरजमुखी लौं मुख वाहीं रुख राख ॥७२६॥

रहत विसूर विसूर नित तातैं विनऊं तोहिँ।
दै रे लिखि सूरत वहै चतुर चितेरे मोहिँ ॥७२७॥
यह रँग है घनश्याम कौ काहू दीनौ तूल।
तिहि रँग सौं रँग सी गई देखत अरसी फूल ॥७२८॥
मान करन नाहीं करन फिर हिय सौं लगि जान।
निसि दिन चतुर सुजान की नहिँ विसरति वह वान ॥७२९॥
लागत अगर अँगार सौं कहा कहौं सखि तोहिँ।
गर सौं बर लागत सवै नगर नाग सौ मोहिँ ॥७३०॥
औरै मन औरै विपिन औरै पौन विसेखि।
औरै ना औरै कछू औरै औरै देखि ॥७३१॥
हारो हरि करि करि जतन करी अतन तनवी न।
सेज परी तलफत खरी विना वारि ज्यौं मीन ॥७३२॥
घटत नहीं कैहूं कहूं अनुदिन वढ़त अछेह।
वही कूवरी के विरह भई दूवरी देह ॥७३३॥
सपनैं मैं प्रीतम मिले हिले खेल रस ऐन।
कहा कहौं तौ लगि गई नींद निगोड़ी नैन ॥७३४॥
वह चितवन विहँसन वहै आए प्रीतम भौन।
वीरी लेत न देत कर कहा रहे गहि मौन ॥७३५॥
मोर मुकुट कटि पीतपट मुरली अधर विराज।
पाइ दरस पायौ अली नैनन को फल आज ॥७३६॥
जब जान्यौ या जीव कौ कहूं नहीं विस्राम।
सुन साके जुग चार के तातै ताके राम ॥७३७॥
सचर अचर जग जीव ते सब विधि होत सनाथ।
देत काम सब काम के तकत कामतानाथ ॥७३८॥
मन वच कर्म सुनाइ कर रघुपति पद अनुराग।
सो जानत सिय राम हैं धन्य भरथ कौ भाग ॥७३९॥

जो कविता मैं आदरत साहित रीति विचार।
सो निहार लघु करि कह्यौ निज मति के अनुसार ॥७४०॥
जो कछु पूरब कविन तै बरनी काव्य सुबानि।
से विचार करु चारु मैं दोहा कहे बखानि ॥७४१॥
रस धुनि गुनि अरु लच्छना विंग्य सब्द अभिराम।
सप्त सही यामैं सही धरयौ सतसई नाम ॥७४२॥

दीपिका

[अंक दोहों की संख्या के सूचक है]

(१) तुलसी-सतसई

१. परधाम—सबसे परे है धाम जिसका अर्थात् सर्वोपरि।

२. सुर-तरु—कल्पवृक्ष जो इच्छानुकूल फल देता है।

३. जापर—जिसके ऊपर; अपर न आन—और दूसरा कोई नहीं। निरबान—निर्वाण, मोक्ष।

७. घरतर—श्रेष्ठ घर।

८. अनत—अन्यत्र, और जगह। अटन—दौड़ना, भटकना।

१०. रुख—(फारसी) सम्मुख।

११. बदहि—(संस्कृत वदति) कहता है।

१२. न अथवत—अस्त नहीं होता। कुतसित—कुत्सित, तुच्छ, नीच। तम—अंधकार, पाप, अज्ञान।

१८. बरन-बिपरजय—वर्ण-विपर्यय, अक्षरों की उलट पुलट। 'राम' शब्द सब मंत्रों का और ज्ञान का मूल समझा जाता है। रेफ और अनुस्वार से ही व्याकरण के सूत्रों के अनुसार प्रणव मंत्र 'ॐ' और 'सोऽहम्' तथा हीं, श्रीं, क्लीं आदि सब बीज मंत्र सिद्ध किए जाते हैं।

२१. इस दोहे से तुलसी-सतसई का रचना-काल निकलता है। अहि-रसना—२, थन-धेनु—४, रस—६, गनपति द्विज—१। अंक उलटी तरफ से गिने जाते हैं—अंकानां वामतो गतिः। इस प्रकार १६४२ संवत् निकलता है। माधव—वैशाख मास। सित—शुक्ल पक्ष। सिय-जनम-तिथि—सीताजी का जन्म नवमी को हुआ था।

२४. म-न-भ-य-ज-र-स-त—पिंगल के नियमानुसार विभिन्न गणों के नाम। एक गण में तीन वर्ण होते हैं। म गण में तीनों गुरु, न गण में तीनों लघु, भ गण में केवल आदि का वर्ण गुरु, य गण में केवल आदि का वर्ण लघु। ज गण में केवल मध्य का गुरु, र गण में केवल मध्य का लघु, स गण में केवल अंत का गुरु और त गण में केवल अंत का वर्ण लघु होता है। प्रथम चार गण मंगलकारक माने जाते हैं और शेष चार अमंगलकारक। मंगलकारक गणों से ही छंदों को आरंभ करने का विधान है, अमंगलकारक गणों से नहीं। ला—लघु; ग—गुरु। घटना—योजना।

२५. समान—अ-इ-उ-ऋ-ऌ ये पंच स्वर समान कहे जाते हैं। अपर वेद गुरु मान—और गुरु चार प्रकार के होते हैं (वेद ४); दीर्घाक्षर, संयुक्ताक्षर के पहले का अक्षर, अनुस्वार-युक्त और विसर्गयुक्त अक्षर। विकल्प—जहाँ दोनों रूप हो सकते हैं यथा पद के अंत का लघु अक्षर भी कभी कभी सुवीते के अनुसार गुरु पढ़ा जाता है।

२८. मुनियों के कहे हुए उनके सहस्रो नामों मे से 'तुलसी-वल्लभ' नाम को सुनकर धर्म-परायण राम को हँसकर देखती हुई सीताजी हृदय में सकुचा जाती हैं। हँसीं इसलिये कि अब आप दूसरों के भी वल्लभ होने लगे और संकोच इस वात का कि हमने राम से ऐसी दिल्लगी की।

२९. रस—काव्यास्वाद। परिजन—सेवक। वरन—राम नाम के अक्षर।

३०. पुरट—सुवर्ण।

३१. करतब—कृत्य, यहाँ पर कविता।

३५. मोर चाहे (वर्षा ऋतु में) मदमत्त होना छोड़ दे।

३६. जोय—स्त्री।

३८. रस आठ—चौदह (६ + ८) विद्या। जुग—भक्ति और ज्ञान।

४०. केवल—एकमात्र। आराम—उद्यान। कलि-कर—कलि रूपी हाथी। निहत—गिराया हुआ। मोहि—मोह में पड़कर।

१०३. चरग—बाज़।

१०४. तुख—छूकला, भूसी।

१०५. जीवन-दानि—जल देनेवाला, बादल। जीवन जल का एक नाम है।

११३. परिहेलु—त्याग दे।

११७. घुर-विनियाँ—घूर पर जाकर मुर्गी की तरह एक एक दाना बिननेवाला अर्थात् हर किसी की सेवा करनेवाला।

१२१. कुतरुक—बुरे वृक्षोंवाला, दंडकारण्य जो रामचंद्रजी के पदार्पण से नंदन वन के समान हरा-भरा हो गया।

१४८. सतर—सत्वर, शीघ्र। लोगों ने इसका अर्थ त्रिगुण अर्थात् स से सत्त्व त से तम और र से रजगुण भी माना है, पर यह खींचा-तानी मात्र है।

१५१. हलंत—व्यंजन, र् और म्। रेफ और अनुस्वार अक्षरों के ऊपर ही दिए जाते हैं। रामचरितमानस में यही भाव तुलसी-दासजी ने और खूबी के साथ प्रकट किया है—

> एक छत्र, एक मुकुटमनि, सब बरननि पर जोउ।
> तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोउ॥

१५३. विहरत—हरता है। आसु-कर—शीघ्रता से।

१७३. निरय—नरक, नरग्र, नरय।

१९७. तामरस—(देशज शब्द) कमल।

१९८. विहार—दुःख देती है। वढ़ियार—बढ़ती हुई, बाढ़ में।

२०४. विलसत—भोगता है।

२१४. दस-जान—दशरथ। उरग-ईस—शेषावतार लक्ष्मण। अ—भरत। भ—शत्रुघ्न। दस पद—पाँच व्यक्तियों के दस पैर।

२१५. राग धर—शार्ङ्गधर (शार्ङ्ग एक राग का भी नाम है) विष्णु।

२१६. तरक-विसेख-निखेध-पति—उमापति, शिव। (विशेष तर्क में उ अक्षर का प्रयोग होता है और निषेध के लिये **मा** का); मराल ल-रहित पलटि—राम।

२१७. शुक्ल का पर्याय सित होता है। इसके आदि और अंत में एक मात्रा बढ़ाने से सीता हो जायगा। इसी प्रकार कमला का पर्याय **रमा** है। रमा के अंत से **मा** की मात्रा को मध्य में रख देने से राम हो जायगा।

२१८. धनंजय (अग्नि) का बीज र, सूर्य का अ और मयंक (चंद्रमा) का **म** हुआ। इन बीजाक्षरों के योग से राम हुआ। यहाँ यह भी ध्वनित होता है कि अग्नि आदि का मूल राम मे है। तम—अज्ञान। तमी—रात।

२१९. कोकनद कानन रंजन वंस अवतंस—सूर्यवंश के भूषण। पुरहित-अरि—पुरहूत इंद्र का शत्रु रावण।

२२०. छत्तीस ह्वै—पीठ फेरकर, जैसे ३६ में ३ और ६ के अंक, विमुख होकर। छव तीन—सम्मुख जैसे ६ और ३।

२२१. कं—सिर। दिग—दस, दशशीश, रावण। दून—इसके दुगुने २०। नक्षत्र—हाथ (हस्त एक नक्षत्र का नाम है)।

२२२. सिला—अहल्या।

२२४. विहँग—(शकुनि), उसका बीच **कु**। रैयत—(पूरजा), उसका तृतीय अक्षर **जा** इस प्रकार कुजा बना जिसका अर्थ है पृथ्वी की पुत्री सीता। भोर—असावधान।

२२५. कोल (वराह) का दूसरा (**रा**) और राजिव (महोत्पल) का पहला अक्षर (**म**) मिलकर राम। वाहन के पर्याय

जान और निहचय के पर्याय **किल** के आदि **कि** में एक मात्रा बढ़ाकर (**की**) योग करने से जानकी हुआ।

२२६. जलज—मच्छ। राघव—मत्स्य विशेष; मिति—मर्यादा। रावण के निकट रहने से सागर की मर्यादा भंग हुई, उस पर पुल बँधा।

२२७. तरनि (सूर्य) के अरि राहु का आदि **रा** तथा आत्मज (काम) का अंत्य **म**—राम। पंचानन—शिव। पदुम—कमल, वेद।

२२८. सैल (हिमालय)-सुत मैनाक के आस (निवास) समुद्र की वनिता (स्त्री) गंगा के जन्म का स्थान, विष्णु के चरण। प्रनत—भक्त।

२२९. पतंग (सूर्य) के सुत राधेय (कर्ण) का आदि रा और मृत्युंजय (शिव) के शत्रु काम का अंत्य म—राम। पुष्कर (तीर्थ) में यज्ञ करनेवाले, ब्रह्मा। पांसु—धूलि।

२३०. उलटे तासी—तासी का उलटा, सीता। सौ हजार (लाख) मन—लक्ष्मण; एक (१) सून (०)रथ—दशरथ।

२३१. हर के आसन वाराणसी का द्वितीय और चर्म का तृतीय अक्षर—राम। सास न लहे—प्राणायाम अथवा योग से। उपास—उपवास, लंघन।

२३२. द्वितीय अवतार कूर्म का आदि **कु**, नृप (राजा) का अंत्य **जा**—कुजा, सीता। कमल (राजीव) का प्रथम **रा** और कमल का द्वितीय **म**—राम।

२३३. सुर-पति-अरि—इंद्र का शत्रु रावण। सुचिता-अवधि—गंगा।

२३४. नैन करन-गुन-धरन-वर—आँखों से कानों के गुण का धारण करनेवाले सर्पों में श्रेष्ठ शेषनाग, जिनके लक्ष्मण अवतार माने जाते हैं। यह प्रसिद्ध है कि सर्प के कान नहीं होते, वह नयनों ही से सुनता है। इसी लिये उसे चक्षुःश्रवा कहते हैं। ता वर—उनसे भी श्रेष्ठ राम।

२३५. वाटिका (आराम) के आदि के अक्षर आ को दूर करके राम रहता है और राजिव (ससी) के अंत्य अक्षर के साथ ता जोड़ देने से सीता बनता है।

२३६. जड़ (मृग) मोहनेवाले (राग) और चंचल चित्त (मन) दोनों के आदि—राम।

२३७. अमर-अधिप-बारन—(ऐरावत) का दूसरा वर्ण, रा और अगार (धाम) का अंतिम वर्ण म। इखु—इषु, बाण। सारंग—धनुष।

२३८. उरबिज—उर्विज, भूमि का पुत्र मंगल। सुमनस—देवता।

२३९. पयोधर (धाराधर बादल) का द्वितीय वर्ण रा और बाग (आराम) का अंतिम म—राम।

२४०. पति (भर्ता) छीर-सागर पावन पयोधि और पवन (मरुत) के क्रमशः पहले, दूसरे और अंत्य अक्षर के योग से भरत बना। ता मत—भरत का मत, राम-भक्ति।

२४१. हंस (मराल) का अंतिम, कपट (छल) का पहला, रस (मकरंद) का पहला और गुन का अंतिम अक्षर मिलाकर लक्ष्मण बनता है।

२४२ कना (मकरा) का क निकालकर मरा हुआ। इसमे अंत का अक्षर आदि में रख देने से राम हो जायगा।

२४३. (दश) अंक दसा में, रस का आदि र और पार्थ (पांडु-सूनु) का अंतिम वर्ण—दशरथ।

२४४. (आशु) झटिति का आदि अक्षर निकालकर उसमे सखा (मित्र) जोड़ने और अंत में प्रथम स्वर अ को लगाने से सुमित्रा हुआ।

२४५. चंद्र (राकेश) और चंचल (मन) का आदि—राम

२४६. विगत देह तनुजा—विदेह जनक की पुत्री, सीता।

२४७. करता—ब्रह्मा। सुर-सर-सुता—मानसरोवर की पुत्री, सरयू; शशि (राकेश) का आदि और सारंग (विहंगम—पपीहा) का अंत—राम।

२४८. गिरिजापति (शिव) के आदि अक्षर में एक मात्रा बढ़ाकर, तारा (नक्षत्र) का आदि हरि (तारा) का अंत और संग्राम का अंत्य अक्षर जोड़ो—सीताराम।

२४९. ऋतुपति (बसंत) पद में से आदि अर्थात् **ब** निकाल लो और पड़िक (रजत—चाँदी में) के अंतिम अक्षर अर्थात् **त** को निकालकर जोड़ दो, संत-पद-रज हुआ।

२५०. शेष का वाहन कूर्म का आदि कु।

२५१. उडुगण (तारा) के अन्त्य अक्षर तथा वनज (चंद्रमा, समुद्र से उत्पन्न) के अंतिम अक्षर **रा** और **मा** को जोड़कर एक कला रहित करने से राम होगा।

२५२. वारिज (राजीव—कमल) और वारिज (मत्स्य) के आदि अक्षरों को मिलाने से राम बनता है।

२५३. कुलिस (हीरा) का अंत्य **रा** और धाम का अंत्य म दोनों को मिलाकर राम। अली—सखी, सखी फारसी में उदार के लिये कहते हैं इसलिये अलि का अर्थ उदार।

२५४. चंचल (पारा) और चंचला (बाम—स्त्री) के अंतिम अक्षरों को मिलाने से राम हुआ।

२५५. बसंत के आदि में इकार देने से विसंत हुआ जिसका अर्थ हुआ विशेष संत।

२५६. धरा और **म**हीध (धराधर) के दो चुने हुए वर्ण रा और म।

२५७. धनंजय-सूनु-पति—वायु के पुत्र हनुमान् और उनके पति रामचंद्र।

२५८. पूर्णिमा की रात्रि (राका) का आदि और हार (दाम) का अंत्य।

२५९. भानु (सूर्य) का बीज अक्षर अ, गोत्र (अग्नि) का बीज अक्षर र और तमी (रात्रि) के पति चंद्रमा का बीज अक्षर म को उचित क्रम से मिलाने से राम होता है।

२६०. ओघ (समूह, राशि) का आदि और व्योम (एक तत्त्व का नाम) का अंत्य।

२६१. प्रसन्न होने पर राजा (पान का) बीरा देता है और अप्रसन्न होने पर मर्यादा छीन लेता है। बीरा का अंत और मर्यादा का आदि मिलाने से राम हुआ।

२६२. अनुराधा (एक नक्षत्र, नक्षत्र चंद्रमा की स्त्रियाँ मानी जाती हैं) शब्द का तीसरा (गुण तीन होते हैं) रा और अनुराग (प्रेम) का अंतिम अक्षर म—राम।

२६३. हरिवाहन—गरुड़, संकेत से गरुआपन या गंभीरता; दधि-सुत सुत—उदधि का पुत्र चंद्रमा, उसका पुत्र बुध, अतएव बुद्धि।

२६४. चंचल रवि—लोलार्क। ब्रह्मद्रव—गंगा। काशी में अस्सी पर लोलार्क और गंगाजी के बीच तुलसीदासजी की कुटी थी।

२६५. घन (नारा—जल) का अंत्य और स्त्रियों की आँखों की उपमा मछली का आदि—राम।

२६६. उर्वी (धरा—पृथ्वी) का अंत्य और उरवां (मही) का आदि—राम। सील (कुल की शोभा, शील) का आदि और कमल (तामरस) का आदि ता।

२६७. तामरस (वारिज, कमल) का तृतीय वर्ण र हटा देने से तामस (तमोगुण) रह जाता है। तमोगुण के कारण ही इंद्रियाँ बलवती होती हैं।

२६८. सुभ-आसु-अरि—शुभ आशा (मोक्ष) के बाधक काम क्रोध इत्यादिक। सुमनस-अरि-काल—देवताओं के शत्रु रावण के काल, रामचंद्र। ईस-अवंतिका—उज्जयिनी के देवता महादेव। उनका मत—राम-भक्ति।

२६९. पत-बंस वर—सूर्य-वंश में श्रेष्ठ राम।

२७०. य का मित्र वर्ण रकार, उसमें एक और स्वर अ जोड़ देने से रा हुआ, उसके साथ पवर्ग का पंचम वर्ण म जोड़ो।

२७१. हल—ह य व र ल में र, ञम—ञ से ण ङ न म में से म लेकर इनके बीच में समान (अ इ उ ऋ ऌ को समान कहते हैं) अ जोड़ देने से राम होता है।

२७२. इसमें प्रश्नोत्तर साथ है। सीता की कौन जाति ? सती; दुख देनेवाली कौन ? कर्कशा स्त्री; चंद्रमा की किरणें किसके लिये दुःखद हैं ? कोक (चकवा) के हृदय को; सुखदायक कौन है ? राम।

२७३. संकर—कल्याणकारी। बाग—वाणी। सिव—मंगल। अज—ब्रह्मा।

२७४. तामरस (राजीव, कमल) का अक्षर से ३ (गुण) र में श्रेयस् (कल्याणकारी क्योंकि अ विष्णु स्वरूप माना जाता है) स्वर अ मिलाकर फिर पवर्ग का पंचम वर्ण मिलाने से राम होता है।

२७७. कं—जल। खं—आकाश।

२७८. आस—निवास; सरदेव—मानसरोवर। हरि-बाम—सरस्वती। हंस मानसरोवर में रहते हैं और सरस्वती के वाहन माने जाते हैं।

२७९. वा विकल्प-सूचक वर्ण है इसमें चप (च ट त प) का तीसरा आकार मिलाने से वात हुआ।

२८०. चंचल (पारा) और तिय (वाम) का पहला अक्षर निकालकर (हरि) रा और म शेष रहते हैं।

२८१. कुलेस (हीरा) और धरम दोनों के अंत्याक्षर मिलाने से राम होता है।

२८३. दो हा—दोनों प्रेम और वैर का नाश कर अर्थात् उदासीन होकर।

२८४. प्राग—पहला स्थान पाने योग्य, बड़ा।

२८५. निरय (नरक) का नाश करनेवाले नारायण का द्वितीय वर्ण रा और रसाल (आम) का अंतिम वर्ण म—राम।

२८६. चप—च ट त क प मे के क में श्रेयस स्वर अ मिलाकर यम—ञ ण ङ न म में से म मिला देने से काम हुआ जो दुखदायी है। 'हल' प्रत्याहार मे से ल के स्थान पर र कर देने से 'हर' हुआ। इसके अंत मे इकार कर देने से 'हरि' (विष्णु—राम) हुआ जो कुशल-क्षेम के कर्त्ता हैं।

२८७. यम और गुन शब्दों के म और न अक्षर मिलाने से मन हुआ। मन को जब तक ज्ञान न होगा तब तक संसार-जनित दुःख मिट नहीं सकता, क्योंकि जगत् का भ्रम-ज्ञान मन ही का प्रपंच है।

२८८. भगन—भादि गुरुः-तामस इसी प्रकार जगन—जो गुरुमध्यः, विरोध। किससे तामस (क्रोध) करते हो किससे विरोध, सब तो राम ही हैं।

२८९. तगन—(ऽ ऽ ।) संतोष। नगन—(।।।) जगत। (आवागमन)। यगन—(। ऽ ऽ) सुखाशा। सगन—(।।ऽ) जड़ता।

२९०. इंद्रवँनि—इंद्राणी, मगण। सुर—अमर, न-गण। देव-ऋषि—नारद, भ गण, रुक्मिणी-पति—कन्हैया, य-गण। ये चार पिंगल में शुभ गण माने जाते हैं और कवित्त के आदि मे बरते जाते हैं। भोजन—आहार, ज गण। काक दुहिता—कोकिला, र-गण। अलि—सजनी, स-गण। सुख—आनंद, त-गण। ये चार कविता के आदि में अशुभ माने जाते हैं।

२६१. प्रश्नोत्तर साथ साथ हैं।

२६२. नगन, (१) शिव। (२) ।।।, भरत। जगन—(१) संसार में। (२) ।S।, विचार, विज्ञान।

२६३. भगन—भक्ति। S।। माधव की भक्ति। तगन—SS।, संतोष। सगन—।।S, शुचिता। विधि—यह आज्ञा है, इनको धारण करो। सगन—।।S, जड़ता, (अज्ञान)।

२६४. शृंगज (धनुष) के असन (आहार अथवा फेंकने की चीज) सर (वाण) के साथ जू जोड़ देने से सरजू होता है। यज्ञ (मख) और (मय) पाप (मल) का है पाद-त्राण (जूता) जिसका।

२६५. वाण (सर) युक्त जू—सरजू।

२६६. मृदु-मेचक-सिर-रुह—कोमल काले वाल।

२६७. हंस (मराल) और कमल वीच के वर्ण मिलाने से राम हुआ।

२६८. आदि...तेहि जान—मरम, मर्म, भेद, रहस्य।

२६९. आदि...वात—दरद, दुःख।

३००. भरन—(१) किसी अक्षर को भरना या जोड़ना, (२) अलंकार, रस आदि काव्य-गुणों से पुष्ट करना। हरन—(१) अक्षरों को निकालना, (२) कर्ण-कटुता तथा अश्लीलता आदि दोषो को निकालना गोसाईजी ने अपने ही सांकेतिक (कूट) दोहों को लक्ष्य करके यह दोहा कहा है।

३०२. विशिष्ट—विलक्षण, कूट। कूटों को समझने के अधिकारी अथवा सुलक्षण कवि का वर्णन।

३०६—अधिकारी लोग ओसरी (अवसर) के वश भले और बुरे होते हैं, चंद्रमा अमृत का घर है किंतु चौथे, आठवें और वारहवें स्थान पर वह भी बुरा फल देता है।

३०७. नरश्रेष्ठ कवि स्वर्ग के तालाव (नभ-सर) हैं जिनके जल में विनय और विज्ञान (संसार की असारता का ज्ञान)-रूप कमल खिल रहे हैं। उनकी सुमति उसमे सीप है जिसमें से सरस्वती (कविता)-रूप मोती (स्वाती की बूँद) निकलता है।

३०८. सम—इंद्रिय, मत, अहंकार आदि का शमन। दम—नेत्र, रसना, नासा, कान तथा त्वचा को उनके बाह्य विषय रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श से हटाकर वश में रखना। दोख-दुरत-हर—दोषों और पापों (दुरित) को हरनेवाली। दरद-दर—दुःख को दलनेवाली।

३०९. धरा–पृथ्वी। धराधर—पर्वत।

३१०. चौंतिस के प्रस्तार में—क से लेकर च तक ३४ अक्षर हैं। इन्हीं के सहारे क्रम के उलट-पुलट, संयोग और भेद से, सार्थक शब्द बनते हैं। प्रस्तार—पिंगल का पारिभाषिक शब्द है। नियत मात्रा के छंद कितने प्रकार के हो सकते हैं यह इसके द्वारा जाना जा सकता है।

३११. क वर्ण से वेद (चौथा) और विषम (वीसवाँ) अक्षर मिलाकर घन हुआ। घन से भी अच्छी (सु-तर) और शीघ्र फल देनेवाली (सतर) रीति रामचंद्रजी की है। मेघ के समान दया (जल) से भरते हैं, परंतु फिर उसे हरते (सोखते) नहीं। मेघ से अधिकता यह कि मेघ ते। समय ही पर बरसता है परंतु रामचंद्र भक्ति-पूर्वक माँगते ही शीघ्र अपनी दया की वर्षा करते हैं। श्लेष से वेद, विषम क-वर्ण के माने घन वर्ण, श्याम रंग भी यहाँ पर लगेंगे।

३१२. ब से तीसरा (गुन) वर्ण म, न से तीसरा वर्ण र और कानन (वन) से तीसरा वर्ण न लेकर मिलाने से मरन। दिशा दिशा में और तीनों लोकों मे मरन (मृत्यु) व्याप्त है; कहीं जाकर उससे बच नहीं सकते।

३१३. चंद्र अनल—शीतोष्ण; ठंढ गरम के भेद से सब प्रकार के भेद की ओर संकेत है।

३१४. पर पद—परमपद। तुल—तुल्य। सम—सब दशाओं में एक सा बरतनेवाला।

३१५. चौदह विद्या—चार वेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छंद, निरुक्त और ज्योतिष छः वेदांग, मीमांसा, न्यायशास्त्र, धर्मशास्त्र और पुराण। चार उपवेद—आयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्ववेद और स्थापत्य-वेद। अठारहों उप-पुराण—आदि, नरसिंह, स्कंद, शिव, धर्म, नारद, कपिल, वामन, वरुण, शांब, सौर, पराशर, भार्गव, मारीच, कालिका, देवी, महेश्वर और पद्म।

३१६. इस दोहे का आध्यात्मिक अर्थ भी है। (आध्यात्मिक पक्ष में) गृह—शरीर। सुंदरि—भक्ति। कवि—जीवात्मा।

३२०. सुचैन—आनंदपूर्ण।

३२१. रसना-सुत—जीभ से उत्पन्न शब्द अर्थात् शब्द-ब्रह्म।

३२२. त्रिविध—दोहा ३३५ देखिए। बिघट न लट परमान—बाल बराबर भी नहीं घटते। कारण—शब्द ही सारे संसार का बीज रूप है। अविरल—अखंड। अल—समर्थ। अपि तु—और। अविद—मूर्ख।

३२४. वर्णात्मक श्रेष्ठ शब्द भुलावे में डाल देता है। यह चार कारणों से—१ जाति (हम ब्राह्मण हैं अथवा क्षत्रिय हैं इस गर्व में पड़कर धर्म-कार्य की अवहेलना करना), २ यदिच्छा (हम तो राजा हैं, हरिभजन करना तो प्रजाजन का काम है, यह विचार), ३ गुण (हम सुंदर हैं यह गर्व), ४ क्रिया (हमने अमुक कार्य किया है जिसके कारण हमारा यश हो रहा है, यह गर्व)। इनके अति-रिक्त और कोई नहीं। ये गुण दोष-युक्त हैं। यही सदुपयोग से गुणमय हो जायँगे। दिगभ्रम—जीव का भटकना।

३२८. रचत जगत—वेदांत का मत है कि संसार वास्तविक नहीं भ्रम मात्र है। जो कुछ भ्रम से पड़ा हुआ जीव विचार करता है उसे ही वह देखता है, यही संसार है। मनुष्य इस भ्रम से माया का बंधान रचता है कि उसे इससे सुख मिलेगा।

३२९. मनुष्य चाहे तो अपने विभव को सुखप्रद अथवा दुःखप्रद बना सकता है।

३३०. रचना-सुत—शब्द-ब्रह्म, वेद इत्यादि धर्म-ग्रंथ।

३३१. माया के संसर्गजात जो ईश्वर, ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं वे भी शब्द-ब्रह्म का उपदेश करते हैं और सरस्वती से लेकर ब्रह्म तक इसी का उपदेश करते हैं। अथवा शब्द-ब्रह्म से ही इनका उपदेश अथवा परिचय मिलता है।

३३२. बरन—अक्षर।

३३३. सु-बेल—सुंदर किनारा, भक्ति।

३३४. कानों से जो सुनते हैं वह आँखों से जो देखते हैं उसके साथ मेल नहीं खाता, उनमें स्पष्ट विरोध है। सुनते तो हैं कि ब्रह्म एक है किंतु देखते हैं अनेक।

३३५. श्रवणात्मक—सदा व्याप्त मूल रूप। ध्वन्यात्मक—जो मृदंग आदि के शब्द के समान अस्पष्ट हो। वर्णात्मक—जो अकारादि अक्षरों से बना हो और स्पष्ट सार्थक सुन पड़े।

३३६. कहने-सुनने में तो ब्रह्म वर्णमय है कुछ अक्षरों से वह व्यक्त किया जाता है, किंतु तात्त्विक दृष्टि से देखने में वह अक्षरों से रहित है। चर अचर जो दिखाई देते हैं उनमें भी विरोध दीखता है।

३३७. स्वेदज—पसीने से पैदा होनेवाले, जैसे खटमल।

३३८. अस्थावर—स्थावर, अचर सृष्टि।

३४१. सरखप—सरसों। सुमेरु—परमात्मा का विराट् रूप।

३४२. वाचक ज्ञानी का वर्णन।

३४३. जल कहँ परम पियास—जल ही को बड़ी प्यास लगी रहती है। अर्थात् परमात्मा के अपने में ही होते हुए भी जीवात्मा, अज्ञान के कारण, उसके अभाव का दुःख उठा रहा है।

३४४. प्रति वर्ष सेमल से धोखा खाते हुए भी मोह में पड़ा हुआ सूआ चेतता नहीं है। वसंत होते ही फिर सेमल के घूआ पर चोंच मारता है और धोखा खाता है।

३४५. समन—यमराज के समान अटल।

३४६. बस हा भौ अरि—शत्रु (काम क्रोधादिक) के वश होकर।

३४७. वाचक ज्ञानी का वर्णन।

३४८. जो—माया। सो—माया-रहित सुख।

३४९. इष्ट—(१) व्यावहारिक दृष्टि से, जिससे आजीविका चले। विधाता भी जिस उपदेश से अब तक कष्ट उठा रहे हैं। विधाता के पिता विष्णु ने उनसे कहा कि सृष्टि करिए। अब तक उस झंझट से छूटे नहीं। तब और पुत्रों की क्या दशा होगी?

इष्ट-(२) कल्पित इष्ट देवता। झूठा धर्म (वाम मार्ग) जिसे मानकर उन्हें क्लेश उठाना पड़ता है।

३५०. मिथ्या विश्वासी सब देवताओं से मनौती मानकर आकाश का गेडुआ बना रहा है, अर्थात् असंभव की आशा कर रहा है।

३५१. बलि के बहाने हिंसा-वृत्ति की तुष्टि की इच्छा से जो देवता को देखते हैं, उसे पूजते हैं, और मरे पशु को मारते हैं वे मूर्ख स्वार्थी हैं। जैसी उनकी करनी है वैसे ही उनके देवता भी।

३५२. बिना बीज तरु—परब्रह्म राम का विराट् रूप। शाखा—ब्रह्मा, विष्णु, महेश। पत्र—और देवता। फल—त्रिलोकादि सृष्टि।

३५३. मुनि इत्यादि उस वृक्ष पर बसनेवाले पक्षी हैं जो उसके फलों की आशा रखते हैं। तासु—परमात्मा के।

३५५. इस वृक्ष से फलों की आशा तो लोग बहुत करते हैं, परंतु प्रमाणरूप से किसी ने उस पर से एक भी फल नहीं पाया। प्रतिष्ठा—फल मिलने का महत्त्व।

३५७. नभ-तरु-मूल—आकाश-वृक्ष की जड़ जिसका अस्तित्व ही नहीं।

३५८. गाडर ढरनि—भेंड़िया धसान।

३५९. ससि-कर-स्रग—चंद्रमा की किरणों की माला जिसका बनना असंभव है। स्वरग-सुमन-अवतंस—आकाश के फूलों का गहना।

३६६. गगन-बाटिका—आकाश का बगीचा, असंभव।

३६७. दखत—दृषत्, पत्थर। बिहरि—फोड़कर। तूल—समान। तूल—क्रोध।

३६८. तेरी इच्छा अपने आपसे पूर्ण हो जायगी। दूसरों का मुँह मत ताक, केवल अपने स्वामी राम को पहचान, उससे अधिक और किसी को मत मान।

३७०. तोख—तोष, संतोष।

३७२. कुथि—कूथता हुआ। अटत—भटकता है। उदघटत न—खुलता नहीं।

३७३. भू-भुजंग-गत-दाम-भ्रम—पृथ्वी पर पड़ी रस्सी में सर्प का भ्रम जिस प्रकार होता है वैसे ही अपनी सब कामनाओं को समझ।

३७४. भोडर—अभ्रक। पड़िक—रूपा, चाँदी।

३७७. मालाकार न जान—माली को नहीं जानते। बिद—ज्ञान।

३७८. करतब—करनी। करम—भाग्य।

३७९. लट पद—व्याकरण में वर्तमान के लिये लट लकार प्रयुक्त होता है, आज कल, संसार में।

३८१. बारत—त्यागते हैं। स्वऽपि पदारथ—अपना सार पदार्थ, आत्म-तत्त्व।

३८२. सुनहा—श्वान, कुत्ता।

३८३. मुट्ठी में आकाश भरना—असंभव काम की आशा करना।

३८४. बसन बारि बाँधत—कपड़े में पानी बाँधता है। विधि-विधान, रीति।

३८६. अधवर—अधर, अंतरिक्ष। बधूर (भँवर) में पड़ा पत्ता अधवर ही में घूमता रह जाता है, न ऊपर को उड़ता है, न नीचे ही गिरता है।

३८७. कीर सरिस—बिना अर्थ समझे हुए।

३९०. बरन-बिंदु-कारन...—जैसे अक्षर बिंदु से बनते हैं, वैसे ही शरीर भी मन की कृति है।

३९२. नाम—संसार में नाम पाना। जगत सम—भ्रम मात्र। वस्तु न चित चैन कर—सांसारिक वस्तुओं में चित्त को सुखी न समझ। ग़ैन (غ) फारसी में अशुभ अक्षर समझा जाता है और ऐन (ع) शुभ। बिंदु रूप सांसारिक वासनाओं के चले जाने से जीवात्मा शुद्ध चेतन आत्म-तत्त्व रह जाता है।

३९३. ऐन—शुद्ध आत्म-तत्त्व। सिद्धि—पूर्णता।

३९५. हिम मूर्ति को सूर्य की किरणों से पानी की प्राप्ति होती है उसी प्रकार गुरु के उपदेश से संसार की आशाएँ छूटकर मुक्ति मिलती है।

३९६. जिस किसी श्रेष्ठ हृदय साधु पुरुष के हृदय में भगवदु-पासना के अतिरिक्त कोई और सांसारिक वासना उदय हो जाय तो उसके भ्रम का प्रमाण देना अत्यंत कठिन होता है।

३९८. बचन-अल बल—सामर्थ्यवान् के वचनों के बल से। कुचाह—विविध वासनाएँ।

३९९. त्रिजिनि—पाप, संसार-जन्य दुःख।

४०२—०३. विधि—कर्तव्य। उलटो—विधि का उलटा, निषेध, अकर्तव्य। गति राम की—कर्मों को रामाभिमुख करके शुभाशुभ फल का त्याग। बर मेधा—श्रेष्ठ धारणा-शक्ति जिसे गुप्त सरस्वती नदी माना है। न्यग्रोध—(अक्षय) वट।

४०५. बिसेसर—विश्वनाथ, महादेव।

४०६. नय-क्रिय—न्याय।

४०७. सित—पवित्र, शुक्ल पक्ष। असित—कृष्ण पक्ष, अप-वित्र। बसु जाम—आठों पहर।

४०८. बीते दिन तो आवेंगे नहीं, जो वर्तमान है उसका पहि-चान कर उपयोग कर। आज और कल मत कर। भविष्य के लिये कुछ मत छोड़ क्योंकि जैसा आज वैसा कल। कल भी तुम आज की तरह टाल-मटूल करोगे। भ्रम में मत पड।

४०९. निरुबार—निर्वाह कर।

४१०. पंडितों अर्थात् सज्जनों की नीति सुस्थिर हो जाती है।

४१३. राम बरा पुरि—राम की श्रेष्ठ नगरी।

४१५. सुरसर-सुता—मानसरोवर की पुत्री, सरयू।

४१६. बिखयि—विषयी।

४१९. जतन—(संसार-सागर को तरने का) उपाय। सकल-कला-गुन-धाम यह तनु (मनुष्य शरीर) धरि अबिनासी अव्यय अमल राम भेंट।

४२०. अप्रमेय—जिसका कोई परिमाण या माप नहीं। यातें—इस शरीर के होने मात्र से ही ज्ञान छिपता नहीं। इस शरीर के होते हुए भी वल्कि इसी मनुष्य शरीर से ज्ञान प्राप्त होता है।

४२१. हंस-रसाल—जैसे सूर्य (हंस) की किरणें ही जल (रसाल) को वरसाती हैं और फिर ऊपर खींच लेती हैं, उसी प्रकार जीव ईश्वर की माया से संसार में आता है और उसी की दया से मोक्ष पाता है। यही भाव ४२२वें दोहे में भी है।

४२३. आहन—लोहा। रिच्छ-रसम—नक्षत्र की रीति अथवा गति। आर्द्रा नक्षत्र में मछली अंडे देती है।

४२४. जल वरसते सब कोई देखते हैं किंतु सूर्य कैसे जल को सोखते हैं (हरत) यह किसी को नहीं दिखाता। इसी प्रकार जन्मते समय सब देखते हैं परंतु मरकर कौन कहाँ गया यह किसी को नहीं दिखाई देता। (परंतु यह निश्चय है कि) सुगुरु इत्यादि।

४२५. असमंजस—कठिनता।

४२६. अप—आप, पानी।

४२७. कोस—आवरण। विलसै—भोगता है। परै कहाँ पहिचान—आत्म-स्वरूप पहचान नहीं पड़ता।

४२८. हेतु—कारण, वीज।

४२९. आदरस—आदर्श, दर्पण।

४३१. इन दोउन तें—शुभाशुभ कर्म से।

४३३. अमि-सदन—अमृत के घर में अर्थात् भक्ति में। करम-विपरजय—कर्म की विपरीतता, प्रभु से विपरीत दिशा में ले जाने-वाले कर्म।

४३४. सदा एक-रस निसिकर—चंद्रमा जो सदा एक सा पूर्ण रहे, घटे-बढ़े नहीं।

४३५. उरबिजा—पृथ्वी की पुत्री, सीता। रसमय—रस-पूर्ण राम।

४३६. जात-रूप—सोना। सीत-कर—ठंडी किरणोंवाला चंद्रमा।

४३७. सुख-दायक—रामचंद्र अथवा सत्संग।

४३८. अधम—नीचे। उरध—ऊपर। तंतु—तार।

४३९. बानि—स्वभाव। सुधरै—बानि इसका कर्ता है।

४४०. सूर्य और चंद्रमा जिस प्रकार पृथ्वी तथा उसमें रहनेवाले जीवों का पालन करते हैं, उसी प्रकार राम और सीता स्थूल शरीर के कारणभूत जीवात्मा का सद्गुणों द्वारा पालन करते हैं।

४४३. प्रगटत—पैदा होते हुए। दुरत—छिपते या मरते हुए।

४४४. सुख-दुख का मार्ग मनुष्य स्वयं पकड़ता है, वे किसी को राह चलते नहीं लग जाते। तात्पर्य यह कि सुख-दुःख अपने कर्मों के फल हैं।

४४५. ससि-मग—चंद्रमा का मार्ग, सीता की भक्ति।

४४६. सीतकर—चंद्रमा, सीता।

४४७. ससि—चंद्रमा, सीता। अमिय तजत—अमृत की वर्षा करता है, मुक्ति देती है। गहत नहीं—ग्रहण नहीं करते, भजते नहीं।

४४८. कोक—चकवा। चकवा चकई के और कमल सूर्य के विरह में दुःखी रहता है, चंद्रमा उन्हें वास्तव में दुःख नहीं देता फिर भी वह उन्हें दुःखप्रद ही मालूम देता है। इसी प्रकार दुष्ट जनों को सीताजी वास्तव में दुःख नहीं देतीं परंतु वे उनसे विमुख रहते हैं। इसी से उनका निस्तार नहीं होता।

४५०. जवास घास बरसात में पानी पड़ने से जल जाती है। ज्ञान और भक्ति से यदि किसी दुष्ट को दुःख पहुँचे तो उनका क्या दोष, वे तो स्वभाव से सुखद ही हैं।

४५१. चंद्रमा संसार के ताप-रूप विष को हरकर अमृत की वर्षा करता है, ऐसी ही अपार महिमा सीताजी की भी है।

४५२. सूर्य चंद्रमा दोनों के जोड़े का यश संसार कहता है क्योंकि रात को चंद्रमा और दिन को सूर्य उसे अपने किरणों से पालता है इसलिए दोनों समान हैं। संकेत से राम-सीता समान हैं।

४५३. पृथ्वी से अपनी किरणों के द्वारा लिए हुए जल का सार अमृत के रूप में सूर्य चंद्रमा के द्वारा पृथ्वी को देते हैं। सूछम—(१) जीवन। (२) जीव। रवि-रजनीस—राम-जानकी।

४५४. स्थूल शरीर (भूमि) में सूक्ष्म जल है जिसे सूर्य पृथ्वी को देता है। सारी चराचर सृष्टि का यही रूप है। वह रामचंद्र सूर्य रूप पर जीवन रूप जल के लिये अवलंबित है।

४५५. निसिकर—(१) चंद्रमा। (२) सीता। (३) भक्ति। रवि—(१) सूर्य। (२) रामचंद्र। (३) ज्ञान। भक्ति सरल है, ज्ञान कठिन।

४५७. विभीषण ने सेवक पद ग्रहण किया, राम ने अपनी शरण लिया। रावण ने सेव्य स्वामी पद ग्रहण किया तो निर्वंश हुआ।

४५८. सूर्य और चंद्रमा शीत और उष्ण के रूप मात्र हैं, उनमे से करतार एक भी नहीं। वास्तव में रात-दिन का कर्ता तो परमात्मा है।

४५९. जो चीज नहीं है उसका नाम नहीं पड़ता। परमात्मा को देखा किसी ने नहीं है पर परमात्मा नाम लोगों ने रख ही दिया है।

४६०. उदाहरण, अमृत को किसी ने देखा तो नहीं परंतु उसके रोगनाशक गुणों को सब कहते हैं।

४६१. गंध, शीत और उष्णता गुणों को सब जानते हैं। ये देखे नहीं जा सकते परंतु पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि में फिर भी

लोग इन गुणों मे से कुछ या संपूर्ण को मानते ही हैं। अर्थात् आँखों से देखना ही एक मात्र प्रमाण नहीं है।

४६२. बिलखत—देखते हैं।

४६४. काक-सुता—कोयल, उसका सुत या सुता, कोकिल या कोकिला। कोयल कौवे के अंडे फोड़कर खा जाती है और उनके स्थान पर अपने अंडे रख आती है। कौवी अपने ही अंडे समझकर उन्हे सेती है। परंतु उनमे से निकले हुए बच्चो के पंखों में जब बल आ जाता है तब वे उड़कर कोयलों से मिल जाते हैं। माया में भी मनुष्य तभी तक पड़ा रहता है जब तक उसके ज्ञान रूप पंख नहीं उगते। ज्ञान हो जाने पर वह आत्म-स्वरूप में मिल जाता है।

४६५. जिनहिं अनेक न एक—जिन्हें एक ही का भरोसा है, अनेक का नही।

४६६. घटत न—नहीं घटता, पूरा होता।

४६८. मनवा—रुई। कार्य—कारण का फल-रूप आनंद। आनंद को तो सबको इच्छा है। परंतु जिस कारण का आनंद कार्य है, उसे कोई नही देखता। अच्छे कपड़े पहनना चाहते हैं, मिठाई खाना चाहते हैं, पर कपास और ऊख नहीं बोवेंगे।

४६९. कारन कार्य—कारण से कार्य होता है। कारन-कार—कारण का भी करता है, तू ही है।

४७०. कर्ता लोपत—कर्ता को लोप कर देता है और अहंकार-वश आप कर्ता बन बैठता है और बंधन में पड़ जाता है।

४७१. वायु और जल के योग से तरंगें उठती हैं परंतु तरंगों का करना, करवाना इनके बूते का काम नहीं, उनका कर्ता और कारण परमात्मा है। क्योंकि उसके बनाए नियम से यह सब अपने आप होता रहता है।

४७४. कार्य तो घटते-बढ़ते रहते हैं परंतु कर्ता और कारण सार-पद, अविनाशी निर्मल और भेद-रहित अर्थात् एक है।

४७६. पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तेरे व्यक्त रूप हैं।

४८०. अकस्मात् भगवान् की दया से।

४८२. चंद्र, सूर्य, प्रकाश से जगत् (महि) में शारीरिक असुविधा दूर होकर सुख मिलता है। ज्ञान से मोह दूर होकर आत्मानंद मिलता है।

४८३. चेतन समुझ अचेत—हे अचेत अपनी आत्मा को समझो।

४८४. जिनमें यश-लिप्सा का दूषण न हो, ऐसे कर्मों की घटना समझकर कोई बात कहनी (अथवा करनी) चाहिए।

४८५. सूर्य और चंद्रमा जब मिलते हैं तो चंद्रमा की कला क्षीण होने लगती है। अमावस को पूरा मेल होता है। फिर वे अलग होने लगते हैं और चंद्रमा की भी कला बढ़ने लगती है।

४८६. जैसे तेरे माता-पिता उत्पन्न हुए वैसे ही तू भी। माता-पिता की उसमें कोई विशेषता नहीं। वास्तव में न माता है न पिता। जो (परमात्मा) है उसे जानो।

४८७. बिसलेसित—विश्लेषित, अलग, सब ठौर व्यापक।

४८८. अलंकार घटना कनक—मूल तो सोना है, गढ़ने से भिन्न भिन्न गहने हो जाते हैं। यही बात नाम, रूप और सत, रज, तम गुणों की भी है। उनके मूल में एक ही तत्त्व है।

४८९. संज्ञा—नाम।

४९०. गंधन—स्वर्ण। मूल—ब्रह्म तत्त्व।

४९१. प्रभास—मालूम देता है।

४९२. असथिर—स्थिर।

४९४. परखे—पहचाने।

४६५. एक उपाधि—धर्म, सगुण भक्ति में एक ही उपाधि धर्म है। उपाधि—विघ्न, परंतु निर्गुण ज्ञान की प्राप्ति के लिये अनेक विघ्न होते हैं।

४६६. वेद गुन—चार गुण; शक्ति, सत्य, शील और सौंदर्य। इन एक एक के अंतर्गत कई भेद हैं।

४६८. पराय—पलाय, भागा (नहीं जाता)।

५०४. मृण्मय—मिट्टी का। कुलाल—कुम्हार।

५०६. बिना साक्षी के अनुमान प्रमाणित नहीं होता, इसलिये जो प्रत्यक्ष है उसी का कथन करो। दूसरा है ही कौन ?

५०७. मृद—मिट्टी।

५०६. चामीकर—सोना। करतब—करनी, कर्म। ताहि रमित—गहनों में (नाम रूपों में) रम रहते हैं।

५१०. सोई परमान—वैसा ही बरतने लगा।

५१२. मृत—मिट्टी।

५१३. बरतन—पात्र, शरीर। नित्य-स्वरूप—मिट्टी, निर्विकारी आत्मा।

५१५. श्वास की हवा में जो जल है वह साफ आईने पर प्रत्यक्ष दिखाई देता है।

५१६. तुल—कुछ, कहीं तिल पाठ भी है। जुग-तन—सूक्ष्म और स्थूल शरीर।

५१७. कर्ता समय के योग से शुभ-अशुभ कर्म करता है, फिर काल के परिवर्तन से कर्ता में भी परिवर्तन हो जाता है परंतु कारण ज्यों का त्यों रह जाता है।

५१८. समन—काल।

५२१. सबद—शब्द-ब्रह्म। सुर-गुरु—बृहस्पति अर्थात् जीव जो ब्रह्म का अंश माना जाता है।

५२२. विभावरि—पृथ्वी; पृथ्वी में गंध का गुण माना जाता है। इसी लिये उसे गंधवती भी कहते हैं।

५२३. तासु रहित—अनुस्वार रहित, क्योंकि एक एक करके कई बिंदुओं से ही अक्षरों की आकृति बनती है।

५२७. अनिल...रज—वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तत्त्व। तन गत—शरीर में एकत्र होते हैं।

५२९. संग्या—संज्ञा, नाम। कहतव—कहना (संज्ञा का गुण)।

५३१. वर्णों के संयोग से ही संज्ञा बनती है। परंतु जब तक वर्णों का वियोग रहता है तब तक संज्ञा नहीं हो सकती। इसी तरह माया के संयोग से ही ब्रह्म की जीव संज्ञा होती है।

५३३. सुत-पद—जीवात्मा पद। पिता-पद—ब्रह्मत्व। चोप—बुद्धि।

५३५. सुअन—माया अथवा कर्म जो माया के बंधन हैं और जीवात्मा-पद के कारणभूत हैं। अगरज—अग्रज। पहले माया-जनित कर्म होता है तब संसार का बंधन होता है।

५३६. मन करत मलीन—मन को मैला करता है अर्थात् वैर-भाव रखता है।

५३८. जाहि—परमात्मा को। कहतब—कहने भर का, यह सृष्टि कहने भर की है; सृष्टि, माया। ऐन—घर। चैन—शांति।

५३९. विडंबना—धोखा।

५४४. पूत—पुत्र, माया के बंधन कर्म। बाप—परब्रह्म।

५४५. बरन-भव—अक्षर से उत्पन्न।

५४७. मृगा गगन-चर—पशु-पक्षी।

५४८. तेहि को—शिष्य को। तोहि को—गुरु को। तुलसी कहत...बात—तुम्हारी कही हुई हित-रहित बात को सुनकर वह (माया के बंधन में पड़कर) दुःख सहता है, सोचो तो।

५४९. निहसंसय—निःसंदेह, शंका-रहित।

५५१. सुरुति—स्तुति, श्रुति, वेद। पथ-रति—सन्मार्ग में प्रीति रखनेवाला। अनय-अतीत—अन्याय के पथ से बाहर रहनेवाला।

५५५. रस निरास—रस छः होते हैं। यहाँ छः कहने से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर इन छः का भाव है। इनमे मनुष्य को अपनी आशा न रखनी चाहिए। इनसे निराश रहे अर्थात् विरत रहे। चाह न—इच्छा रहित हो। काम-सुरा न रम—काम-लोलुपता की मदिरा में रमण न करे।

५५८. करत...सदा—जिसका कार्य सदा तर्क मे लगा रहना है। सो मन दुख-दातार—वह मन दुःख को देनेवाला है, क्योंकि वह अनुमान तर्क के द्वारा कई दुःखों की सृष्टि कर लेता है, जब कि वास्तव में सुख-दुःख कुछ है ही नहीं। तुलसी जौं...विचार—जिस तर्क के द्वारा मन समझे नहीं उसे विचार करके सर्वथा त्याग देना चाहिए, क्योंकि ऐसा तर्क कुतर्क है। वह उलझन ही में डालेगा, जीवन की गुत्थियों को सुलझाने में समर्थ न हो सकेगा।

५६०. सुनत कोटि...न हाथ—केवल करोड़ों की संख्या को कहने या सुनने से तो यह नहीं संभव है कि एक भी कौड़ी हाथ आ जाय।

५६३. गुन—त्रिगुण, सत, रज और तम।

५६६. अपनो करमु...काल—जिस समय अपने कर्म का अपने लिये भला-बुरा फल न चाहे, अर्थात् जब मनुष्य निर्लिप्त होकर कर्म करने लगता है।

५६९. तू तो सचा है किंतु तू झूठी रचना (कर्म) करते थकता नहीं।

५७१. समय-रूपी ज्योतिषी, कर्म-रूप खड़िया से मोह-रूपी थल (पटिया) पर चराचर जीव रूप अंकों को लिखता और मिटाता हुआ गणित कर रहा है।

५७४. कहना-करना सब के मूल में उसी एक परमात्मा को जान (जिसके विधान से 'फूलि परत रितु अनुहरत' आदि और) जिसके बिना कोई नहीं है, अभिमान और अनुमान से दूसरी रीति से नहीं समझना चाहिए अर्थात् अपने आपको कहने अथवा करने-वाला नहीं अनुमान करना चाहिए। यह दंभ मात्र होगा।

५७५. विधान—पहले ही से नियत रीति।

५७६. सालक—दुःख देनेवाला। पालक—पालन करनेवाला। सम—समभाव रखनेवाला, सज्जन। बिखम—विषम अथवा अस-मानता का भाव रखनेवाला, कठोर व्यक्ति। अट—अटन, भ्रमण (नाना योनियों मे)। घट—छोटा होना। लटन—किसी बात में बेतरह पड़ना। नटनादि—नाचना आदि। जीव समय समय पर नाना अवस्थाओं में रहता है, परंतु वह चाहे जिस अवस्था में रहे उसे परमात्मा से रहित न जान अथवा परमात्मा के विधान से रहित न जान।

५७७. कर्म की करनी का वर्णन करना कठिन है। करनेवाला और करानेवाला दोनों काम ही हैं। कर्म ही शरीर-रूपी क्लेश का कारण है (अर्थात् कर्मों के ही कारण आवागमन के फेर में पड़ता है) और समय पाकर कर्म ही शांति अथवा मोक्ष को देनेवाला हो जाता है। निष्काम कर्म से मोक्ष की प्राप्ति कही जाती है।

५७८. चित्त धन, रीति-भाँतियों, कठिन और सहल कामों, जय और मृत्यु, धैर्य और धर्म के धारण में तथा इनके हरण में समय समय पर पड़ा रहता है परंतु (वास्तविक आत्मा में) इन सब अवस्था-भेदों के कारण कोई भेद (बीच) नहीं पड़ता। (वह नित्य और बोधमय है।)

५७९. (इस चित्त का) खर्व (नाश) बिना प्रचंड आत्म-ज्ञान के कभी नहीं हो सकता। और जो लोग गुरु अथवा परमात्मा की

शक्ति से हीन हैं वे वस्तुतः नित्य और बोधमय आत्मा (सोऽहं) होने पर भी प्रचंड आत्म-ज्ञान को प्राप्त नहीं हो सकते।

५८०. शब्द ब्रह्म के रूप का विस्तार विशेषकर अक्षरों से होता है। अक्षरों को जोड़ने से नाम बनता है। इसी नाम (संज्ञा) से नर अपने को आत्म-सत्ता से भिन्न समझता हुआ त्रिगुणों का धाम होकर (कर्म का) कर्त्ता बनता है और भिन्न भिन्न योनियों (जातियों) में भ्रमण करता है।

५८३. करता—वास्तविक कर्त्ता, परमात्मा।

५८४. वर्तमान-विपरीत—जगत की परस्पर विरोधी बातें जिनका उत्तरार्द्ध में उदाहरण दिया गया है।

५८६. विधि—कर्तव्य। निषेध—अकर्तव्य।

५८८. अक—(अ—नहीं + क—सुख) दुःख।

५८९. आक—दुःखी।

५९०. जुग करम—शास्त्र से विहित और निषिद्ध कर्म, कर्तव्य और अकर्तव्य।

५९१. निज कर करि करिहै बहुरि—जो कर्म किया है उसी को फिर करना पड़ेगा। अर्थात् अपने कर्म को भोगना पड़ेगा।

५९२. भो भाज—आभास मिला।

५९३. भो लघु सुरति सुजानि—क्षुद्र संसार के मोह में डूबा हुआ है।

५९४. सून—शून्य। खार—हीन। बचन-गाय—बात की गौ।

५९८. बात ही से (भली बात जैसे सत्संग) बात बन जाती है और बात ही (बुरी बात जैसे बुरी संगति) से बात बिगड़ती है। जैसे वायु ही में दीपक जलता है (जहाँ वायु न होगी वहाँ दीपक न जलेगा) और वायु (के झोंके) से ही वह बुझता भी है।

५९९. वर बर—श्रेष्ठ वरदान।

६००. (प्रथम दो) बात—वायु या वार्तालाप। (तीसरा) बात—काम। (चौथा और पाँचवाँ) बात—वचन, बोली।

६०३. विहित—चिह्नित, माने हुए। नरक-निसेनी—नरक के चिह्न।

६०४. सरग—स्वर्ग।

६०६. विधि और निषेध दोनों कार्य अज्ञान (तम) के हैं, पर समय पाकर वे बड़े शक्तिशाली और अचूक हो जाते हैं। (दोनों प्रकार के कर्म बंधन में डालते हैं। उनका फल भोगना ही पड़ता है।) तीन प्रकार के विशेष बल (सत, रज और तम, त्रिगुण) से उत्पन्न हठ इसका कारण है, यह प्रमाण की बात है।

६११. सुखधाम जितने काम हैं, वे सब प्रधान हैं। यह बात वेद में कही गई है। परंतु उसमें गुण और नाम से दो भेद हैं जिनको समझना कठिन है। शुभ कर्म सभी करने चाहिएँ परंतु यदि नाम और गुण के प्रभाव से अर्थात् कामना के वशीभूत होकर वे किए जायँगे तो बंधन के कारण होंगे और यदि निष्काम होकर किए जायँगे तो मोक्ष के कारण होंगे।

६१२. नाम—भगवान् का नाम। खात—कुंड।

६१३. नाम—भगवान् का नाम। नाम—माया।

६१९. पाछे करी—त्याग दी। निरास—संसार से नैराश्य।

६२१. चाड़—चाह, प्रयोजन।

६२२. नाग-नग—गज-मुक्ता। गुंजा—रत्ती, घुँघची।

६२३. करि बास—सुवासित कर, सुगंधित कर।

६२४. निरास—मारवाड़ के कुओं में जल न मिलने के कारण। बंचे—धोखा दिया, ठगा।

६२५. मित्र—(१) सखा। (२) सूर्य।

६२६, बर-तर—अधिक श्रेष्ठ। अनहित मृदुल—वैरी का कोमल भाव। सिसिर जब कि ठंड भी कम हो जाती है और गरमी भी कड़ाके की नहीं पड़ती। निदाघ—ग्रीष्म ऋतु जब कि कड़ाके की गर्मी पड़ती है। अति-लाल—नई पत्तियाँ लाल होती हैं।

६२७, दाता-ओप—दाता की कांति, उसका प्रताप।

६२८, करखत—खींचते हुए, सोखते हुए। पृथ्वी ही से सूर्य जल को भाप के द्वारा सोखता है जिससे बादल बनकर वर्षा होती है। वर्षा होते हुए सब लोग देखते हैं और प्रसन्न होते हैं, परंतु कैसे सूर्य ने पृथ्वी से इस जल को ऊपर खींचा इसे कोई नहीं देखता। इसी प्रकार राजा को भी चाहिए कि प्रजा से ऐसे रूप में कर ले जिससे उसको वह खटके नहीं। और फिर उसे प्रजा के ही लाभ में व्यय करे जिसे देखकर वह प्रसन्न हो। ऐसा राजा प्रजा के भाग्य से ही मिलता है।

६२९, समय परे—विपत्ति में पड़े होने पर भी।

६३०, प्रेम-पैज—भक्ति की प्रतिज्ञा या टेक। चाहि—अपेक्षा।

६३१, माली—उद्यान में वृक्ष लगाता है, उन्हें सींचता है और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें काटने छाँटने में भी नहीं हिचकता। सूर्य—देखो टिप्पणी ६२८। अग्नि—तेजस्विता अग्नि का गुण है। जल जाने के डर से कोई उससे छेड़छाड़ नहीं करता। ये सब गुण राजा में भी होने चाहिएँ।

६३३, दत्त न होइ—नहीं दी जाती, नहीं मिलती।

६३५, सकहिं न काढ़ि—दूर नहीं कर सकते।

६४२, सुकृती—पुण्यवान्।

६४३, पर-मन-रंजन—दूसरे के मन को अत्यंत प्रसन्न करनेवाले।

६४५, सरस परिहरे रंग रस—जब तक पूर्वोक्त बातों में आनंद है उसी बीच उन्हें त्याग देना चाहिए। इससे आनंद बढ़ जाता है;

नहीं तो कुछ आनंद नहीं रह जाता। अधिक सहवास से रस फीका पड़ जाता है।

६४७. घाव लगने पर जल्दी से लोहा खींच लेनेवाला, नीच के साथ लाग करनेवाला तथा बलिष्ठ पापी के साथ वैर करनेवाला, इन तीनों ने जानकर मौत मोल ली, यह समझना चाहिए।

६४८. अंध...डोठि—ऐसे को अंधा कह दो तो उसे दुःख मालूम होगा क्योंकि ऐसे किस दृष्टिवाले को भी दिखाई पड़ता है? अर्थात् ऐसे लोग आँख होने पर भी अंधे हैं।

६४९. अन-समुझे अनु-सोचनो—विना समझे (काम करने से) पीछे सोच करना पड़ता है।

६५१. गयो—नष्ट हुआ। भयो—हुआ, पनपा।

६५३. कि (की)—क्या। कातिवो नान्ह—वहुत वारीक सूत कातना है जो कठिन काम है।

६५४. पाप प्रतिष्ठा—प्रतिष्ठा को भी ज्ञानी लोग अवांछनीय समझते हैं, इसी लिये उसे पाप कहा है।

६५५. वहराइच जाय—वहराइच में मुहम्मद गोरी के साले सैयद सालार (गाजी मियाँ) का रौजा है। हिंदू मुसलमान सभी वहाँ जाकर मनौती मनाया करते हैं।

६५६. जल जल गौ—जल तो बह गया, माया तो हाथ न आई। झख—मछली, जीवात्मा जो बढ़े हुए जल में की मछली की तरह माया के साथ उलटा बहता है। माया तो हाथ नहीं लगती पर वह स्वयं संसार रूपी जाल में फँस जाता है।

६५९. अनट—अन्याय।

६६१. माहुर (गरल)—विष। पराइ—भाग जाता है, उड़ जाता है।

६६२. निमल—देखने में निर्मल, चिकनी-चुपड़ी।

६६३. दान—दया-रूप युद्ध के ही वीर सच्चे धीर वीर हैं, अन्य नहीं।

६६४. सुकरित—सुकृत, पुण्य।

६६५. रिजु—सीधा, सरल, कोमल।

६६७. वामनावतार धर, विष्णु ने राजा वलि से तीन पग पृथ्वी माँगी और सारी पृथ्वी नाप ली। परंतु इसके लिये उन्हें वलि राजा का द्वारपाल होना पड़ा।

६६८. बस—अधीन। देखो ऊपर ६६७।

६६९. तुलसी स्त्री पति-सिर लसै—जालंधर दैत्य की स्त्री विंदा बड़ी पतिव्रता थी। इस कारण महादेव उस दैत्य को परास्त न कर सकते थे। विष्णु ने जलंधर का रूप धारण कर विंदा का धर्म नष्ट किया तब महादेव की जय हुई। इसी के फल रूप में वे उसे अब तुलसी की पत्तो के रूप में अपने सिर पर रखे रहते हैं।

६७०. मेंढक—पंचतंत्र का गंगदत्त जिसने अपने शत्रु अन्य सर्पों के नाश के अभिप्राय से प्रियदर्शन सर्प को बुलाया था। सर्प ने सब सर्पों को खा डाला, इसके परिवार को भी न छोड़ा। यदि गंगदत्त ठीक समय पर न भागता तो स्वयं भी उस सर्प का आहार बनता।

मर्कट—एक बंदर ने एक नदी के किनारे पेड़ पर से फल गिरा-गिराकर एक भूखे मगर के प्राण बचाए। अंत में मगर ने उस बंदर को ही खाने का उपाय सोचा। वह किसी तरह भाग निकला।

बनिक—एक बनिए ने दया कर किसी मंत्र की सिद्धि के लिये अपनी स्त्री एक राजकुमार के पास भेज दी। राजकुमार ने स्त्री का धर्म ही नष्ट कर दिया।

बक—एक बगुले ने भूख से मरते हुए एक नेवले को साँप बतला दिया। परंतु नेवले ने बगुले पर भी हाथ साफ कर दिया।

६७३. कपि—बालि को उसकी स्त्री तारा ने बहुत समझाया कि सुग्रीव से वैर न करो। राम उसके सहायक हैं। पर बालि ने न माना और अंत में मारा गया।

काक—जयंत ने सीताजी के चरणों पर चोंच मारकर चंचलता दिखलाई थी। इस अपराध से उसकी एक आँख फूट गई।

६७६. खोइ—खोए हुए।

६८२. तुपक—तोप। दारू—बारूद। पलीता—चाँप।

६८३. मित्र—सूर्य (अविवेक)। मनोज—चंद्रमा (विवेक)।

६८४. वैर सनेह सयानपहि—वैर, स्नेह और चतुरता कहाँ करनी चाहिए और कहाँ नहीं। विखान—विषाण, सींग।

६८६. राजा प्रजा को सुधार सकता है। परंतु उसका एक ही अवगुण प्रजा में तिगुना होकर प्रकट होता है।

६८९. नय—न्याय। नेम—नियम, कानून। नियोग—आज्ञा। भय—हो गए हैं। नेवारित—छिपाया जाता है।

६९१. विटप—वृक्ष (प्रजा)।

६९२. गोठ की गाय—जो स्वच्छंदता से घास चर नहीं सकती, थोड़ी सी घास-भूसी पर ही रहती है।

६९३. कंट कंट—टुकड़ा टुकड़ा।

६९५. प्रभुहि—राजा को।

६९८. राख—रखते हैं। चपरि—बलपूर्वक। जब कोई चीज डूबने लगती है तो चारों ओर का पानी वेग से उधर ही को धाता है।

६९९. जो राजा अपनी सब वस्तुओं को धर्म-रूप सुंदर भुजाओं और सत्य-रूप मंत्री को सौंप देता है वह निश्चित होकर सुख भोग सकता है।

७००. रसना मंत्री—जिह्वा के समान मंत्री जो सब रसों को चखकर खट्टे मीठे आदि का ठीक ठीक ज्ञान कराती है। अर्थात्

मंत्री वस्तु-स्थिति का यथार्थ ज्ञान करानेवाला होना चाहिए। दसन जन—सेवक दाँतों के समान हैं। दाँत भोजन को चबाकर उसे पचने योग्य बनाते हैं परंतु स्वयं उसमें से कुछ नहीं लेते। इसी प्रकार सेवक भी राजा की आवश्यकताओं को जानकर उसके कर्तव्य को सुगम करनेवाले और त्यागी होने चाहिएँ जिससे (मुख के समान राजा) उनके प्रयत्न के फल द्वारा सेना पदाति और प्रजा (बालक) आदि अपने राज-समाज के सब अंगों को पुष्ट कर सके।

७०१. डौवा—चिमचा। सरस—रस सहित, सुख देनेवाले। काज अनुहारि—कार्य के अनुसार।

७०३. मूलहि अनुकूल—मूल के अनुसार अर्थात् जड़ को अच्छा पानी-खाद मिलेगी तो पेड़ के अन्य अंग भी अच्छी वृद्धि पाएँगे, नहीं तो नहीं।

७०५. साधन समय—किसी कार्य की साधना करते समय ही; अर्थात् कार्य आरंभ हुआ कि सिद्धि मिली। उभय मूल—इस लोक और परलोक दोनों के मूल अर्थात् दोनों को सुधारनेवाले।

७०६. रामायन...रीति—रामायण की शिक्षा का अनुसरण करते हुए संसार भारत की रीति पर चलने लगा। दूसरे प्रकार से भी इसका अर्थ हो सकता है यद्यपि उसमे दूरान्वय दोष आ सकता है। (को) रामायन सिख अनुहरत—रामायण की शिक्षा का कौन अनुसरण करता है? सत्यप्रतिज्ञा, पितृ-आज्ञापालन, भ्रातृ-प्रेम, स्वार्थ-त्याग, आदि शांतिमय गुणों की कौन परवा करता है? क्योंकि (जग भै भारत रीति) संसार मे तो अब महाभारत की रीति का चलन हो गया है अर्थात् भाई भाई छोटी सी बात के लिये लड़ मरते हैं।

७०७. हितकारी, सुखद और गुण-युक्त बाते भी समय पाकर दुःख देती ही हैं। परंतु केवल इसी लिये उन्हें त्याग नहीं देना

चाहिए। आग जब घर में लग जाती है तब सब धन-माया को जला डालती है, पर आग को लोग घर में रखते ही हैं। क्योंकि उसे त्याग देने से सुख नहीं मिलता।

७०८. खंभ—खोदकर बनाए हुए तालाबों के बीच में बहुधा एक खंभा गड़ा रहता है। चेतन—आत्मा। तपनहुँ—घाम से भी (नहीं सूखता)।

७१०. अरथ आदि हन—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का नाश करनेवाली बातें। अंत गहन सब कहँ—अंत (मृत्यु) सभी को ग्रहण करना पड़ेगा।

७११. उ-कार—ॐकार, हाँ, विधि, कर्तव्य अथवा तर्क के सहित। बिबिचार—विशेष विचार-पूर्वक।

७१२. निरावहि निरस तरु—नीरस तरु अफीम इत्यादि को मूर्ख लोग निराते हैं, उसके आस-पास की घास को उखाड़-कर फेंक देते हैं अर्थात् नीरस वृक्षों को परिश्रम से पालते हैं या विषय के जाल में पड़े रहते हैं जिसमें वास्तव में कोई रस नहीं है, केवल नशा है। ऊख—प्रेम-रस-पूर्ण भक्ति। पोखत...रूख—यद्यपि बादल परमात्मा का विधान विषय (अफीम आदि) के वृक्षों और ऊख को समान रूप से जल-दान कर पुष्ट करता है। विषय-वासना बुरी और भक्ति भली, यद्यपि हैं दोनों मायासंभूत और इस कारण तात्त्विक दृष्टि से एक समान।

७१३. दगौ—दग गया है, प्रसिद्ध है (कि भले को लोग बुरा नाम दे ही देते हैं) धर्मराज को लोग यम और (पवि) इंद्रायुध को गाज कहने में न तो कुछ हिचकते ही हैं और न विचार ही करते हैं अर्थात् चट कह डालते हैं।

७१५. गाँवर—गँवार, अज्ञान।

७१६. तन, धन, महत्त्व और धर्म जिसे प्राप्त हैं परंतु जिसके पास इनके साथ साथ अभिमान भी है, उसका जीना धोखा ही है और परिणाम में भी उसे धोखा ही मिलेगा।

७१७. जप करनेवाले और पूजा करनेवाले राजाओं से अपमानित किए जाते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि हम लोग देवताओं से बढ़कर हैं, ये हमारी पूजा छोड़ देवताओं की पूजा करके भारी अपराध करते हैं।

७१८. बालि ने सुग्रीव से वैर किया और रावण ने विभीषण का निरादर, दोनों ने राम से मिलकर अपने अपने भाइयों का नाश किया।

७२२. चंग—गुड्डी, पतंग। ढिलाई देना—(नीच पक्ष में) कड़ाई न करना।

७२३. खग मृग-मीन—पक्षी, पशु और मछली को साथी, अर्थात् क्रमशः बाज, सिंह और बड़ी मछली इत्यादि, कच्चा ही खा जाते हैं और लोग पकाकर खाते हैं। कैसे बेचारे अपना समय व्यतीत करे?

७२४. इतना पापी कि बड़े पापों को करने में प्रशंसा समझता है और छोटे पापों के करने में लज्जित होता है (पापत्व के कारण नहीं बल्कि छोटाई के कारण)।

७२५. सद्बुद्धि का निवारण कर और उसे त्यागकर चाहे आयुधों के स्थान पर फूलों और पत्तों ही से क्यों न संग्राम कीजिए परिणाम बुरा ही होगा। यदुवंशी और कामदेव इसके साक्षी हैं। यदुवंशी एक घास लेकर लड़े थे जिससे उनका नाश हो गया। कामदेव फूलों के बाण लेकर शंकर पर प्रहार करने चले थे सो शरीर खो बैठे।

७२७. ठहके तें ठहकाइबो—ठगने से ठगा जाना अच्छा।

७२८. परे मामला—मामला पड़ने पर, टीकाकारों ने इसका अर्थ 'न्यायालय में मामला चलन' पर किया है।

७२९. सनाह—कवच।

७३३. कालकूट—विष।

७३४. पाही खेती—पराई खेती जोतना; पाही काश्त।

७३६. बधूर—बवंडर, वात्याचक्र।

७३८. रुचि अनुहरत अचार—स्वच्छंद आचार, जिसके मन में जैसा आता है वैसा ही करता है।

७४५. महि...सरूप—पृथ्वी पर से जैसे पहाड़ पर का आदमी छोटा (खर्व) दीखता है और पहाड पर से पृथ्वी बड़ी।

७४७. सुकृत...मरजाद—यह सतसई पुण्य, स्वार्थ और परमार्थ सब की सीमा है; इसके अनुसार चलने से तीनों सिद्ध होते हैं।

(२) बिहारी-सतसई

१. स्यामु—(१) कृष्ण, (२) काला, (३) पाप। हरित-दुति—(१) निष्प्रभ, (२) हरा रंग, (३) प्रभाव-रहित।

२. अंग के—राज्य के कई अंग माने जाते हैं जिनमें राजा प्रधान है और उसके कर्मचारी तथा प्रजावर्ग सहायक। इजाफा—(अरबी) वृद्धि, बढ़ती।

३. अर—हठ। बर-परे—बरजोर, बलिष्ठ, जबर्दस्त। मरक—बढ़ावा।

४. गनी—गिनी गई, समझी गई। घनी-सिरताज—बहुतों (सौतों) में श्रेष्ठ। मनी—मणि; भिन्न प्रकार की मणियों के भिन्न भिन्न प्रभाव माने जाते हैं।

५. सनि...लगन—ज्योतिष के अनुसार वह व्यक्ति जिसके जन्म के समय मीन का शनैश्चर हो, राजा होता है।

६. नटसाल—बर्छी की टूटी हुई नोक जो घाव में रह जाती है। (नष्ट शल्य)।

७. सौंधे—सुगंधि।

६. बहके—वे वश।

१३. कानतु—(१) कानों का, (२) वन का अर्थात् कान-रूपी वन।

१४. पातरी कान की—कान की पतली अर्थात कच्ची। बहाऊ—बहा देनेवाली, काम बिगाड़नेवाली।

१५. दुरजोधन लौं—दुर्योधन को शाप था कि जब उसे हर्ष और शोक एक साथ होगा उसी समय उसकी मृत्यु हो जायगी।

१९. सुमनु—(१) अच्छा मन, (२) फूल; फूल लगने पर फल होता है। बारी—(१) बालिका, (२) माली। बारी—(१) पारी (नायक के आने की), (२) वाटिका, उद्यान।

२०. तरयौना—(१) कान का एक गहना, (२) नहीं तरा हुआ, माया में फँसा हुआ। स्रुति—(१) कान, (२) वेद। नाक—(१) नासिका, (२) स्वर्ग। मुकुतनु—(१) मणियों के, (२) जो मुक्त हो चुके हैं उनके।

२१. तरहरि—नीचे। धरहरि—निश्चयपूर्वक।

२५. उरबसी—एक अप्सरा का नाम। उर-बसी—उर में बसी हुई। उर-बसी—छाती पर पहनने का एक गहना।

२६. चाँह—लालच, इच्छा। ईठि—इष्ट, मित्र।

३०. किबलनवी—किब्ल:नुमा, वह यंत्र जिससे दिशा का ज्ञान होता है।

३१. गीधे—ललचाए हुए, परचे हुए। गीधहिं—जटायु को।

३४. कमल—चरणों की उपमा होने के कारण इससे चरणों का संकेत होता है। कमल को सिर से छुवाकर नायक ने पाँव पकड़कर मिलने की प्रार्थना की। हरि—सूर्य। सूर्य की ओर दर्पण करके हृदय (कुच) पर लगाने से यह भाव सूचित किया कि जब पर्वतों के उस ओर जाकर सूर्य अस्त हो जायँगे तब मिलूँगी।

३९. झर—वर्षा की झड़ी। झार—ज्वाला।

४१. हरि—परमात्मा।

४२. बिंदु सुरंग—लाल बेंदी। केसरि-आड़—केसर का तिलक। नारी—(१) स्त्री, (२) ज्योतिष में नाड़ी। जब चंद्रमा, मंगल और बृहस्पति एक ही नाड़ी के चारों नक्षत्रों में से किसी पर होते हैं तो सारे संसार में वर्षा होती है। रस—(१) शृंगार रस, प्रेम, (२) जल (वर्षा से)।

४८. पजरै—प्रज्वलित होती है, जलती है। बात—बातरूपी हवा।

४९. अटपटी—बेढंगी। कर बर—चितकबरा, चीते का रंग चितकबरा होता है, इसलिये चीता।

५३. रोज परै—दिन पड़ने पर, विपत्ति पड़ने पर।

५४. होमति—हवन करती है।

५५. सायक—संस्कृत शायक का अपभ्रंश रूप। सुलानेवाला समय, सायंकाल। संध्या समय की लाली से आँखों की लाली की उपमा दी भी जाती है। लाला भगवानदीनजी ने सायँक पाठ ग्रहण किया है।

६५. खिसौंहैं—अपराध से संकुचित।

६६. कै बा—कै बार, बहुत समय।

६९. दिया बढ़ाएँ—दिया बुझाने को उसे बढ़ाना कहा जाता है।

७२. सतरौंहैं—रोष भरे। रचौंहैं—रचने पर आया हुआ, अनुराग की ओर ढला हुआ। नचौंहैं—प्रेम से चंचल।

७४. सोधति—शोधती है, शुद्ध करती है, तपाती है।

७७. छबि-गुर-डरी—छवि-रूपी गुड़ की डली। वशीकरण के एक प्रयोग में गुड़ की डली अभिमंत्रित करके उस मनुष्य से छुवाई अथवा उसे खिलाई जाती है जिसे वश में करना होता है।

७९. मुकुरु—मुकरनेवाले। मुकुरु—दर्पण।

८०. मौज—आनंद, ऐश्वर्य।

८२. बिकान—बिक गया, लोप हो गया। चौका—आगे के चार दाँत। चीन्ह—चिह्न।

८६. चौसर—चौलड़ हार।

८७. मैना—राजपूताने की एक जाति जो पहाड़ों और जंगलों में रहती है और लूट-खसोट से अपनी आजीविका चलाती है। इस जातिवालों को मीना भी कहते हैं। मवासु—दृढ़ निवास-स्थान।

८८. त्रिवली—नाभि से ऊपर बालों की एक लकीर सी होती है इसी को त्रिवली कहते हैं। समाहि—सामना करके। चाहि—देखकर।

८९. उुरै—उड़ै, उड जाता है अथवा डरा जाती है या व्यय हो जाती है। कहीं कहीं ढुरै पाठ भी मिलता है।

९०. चुहुटिनी—(१) घुँघुची, (२) चिमटकर पकड़ रखनेवाली।

९२. सुधा दीधिति—चंद्रमा। अगस्तिया—अगस्त्य का वृक्ष।

९३. गदराने—पकने पर आए हुए अर्थात् यौवन में प्रवेश करती हुई। गोरटी—गौर वर्णवाली। ऐपन—चावल और हल्दी को पीसकर बनाया हुआ एक प्रकार का लेप। हूठ्यौ दै—मुट्ठियाँ बाँधकर कमर पर रखना हूठा देना कहलाता है। गँवारु स्त्रियाँ जब इठलाती अथवा किसी को चिढ़ाती हैं तो ऐसा करती हैं। वार—आक्रमण।

९४. तंत्रीनाद—वीणा इत्यादि का मधुर स्वर।

९५. सहज सचिक्कन—स्वाभाविक ही (बिना तेल लगाए) चिकने।

९६. छुटैं पीक—प्रिय के चुंबन करने के कारण पीक के छूट जाने पर।

९७. गाड़ैं—गड्ढे। उपटो—कोमल वस्तुओं पर किसी कठोर वस्तु से दबने से चिह्न पड़ जाने को उपटना कहते हैं। गुरेरनु—छोटी छोटी गोलियों से जो गुलेल के द्वारा निशाने पर चलाई जाती हैं।

१००. नीठि—कठिनता से।

१०१. केसव—कृष्ण। केसवराइ—बिहारी के पिता केशवराय। द्विजराज कुल (१) चंद्रवंश, (२) ब्राह्मण कुल।

१०२. सरि—सादृश्य, समानता, बराबरी। जातरूप—स्वर्ण।

१०३. मकराकृति—मछली के आकार के। हिय-घर—हृदय-रूप घरा (स्थान)। समरु—स्मर, कामदेव। निसान—निशान, ध्वजा।

१०४. खौरि—बीच में से खुरचा हुआ आड़ा तिलक। सुरक—तिलक का नाक तक आया हुआ भाले के आकार का भाग।

१०६. तरल—चंचल, हिलता हुआ।

१०९. लोइन लगै—लोचनों में लग सकती है, अर्थात् सुंदर लग सकती है।

१११. सूमति—सूमता, कृपणता।

११२. जेठ में दिन बड़े होते हैं और रातें छोटी। उसी प्रकार युवावस्था में कुच बढ़ते हैं और कमर घटती है।

११३. तेह तरेरे—क्रोध से तिरछे।

११४. छाम—क्षाम, क्षीण, दुर्बल। उठति नाँदि—दीए की ज्योति का एकाएक भभक जाना नाँद उठना कहाता है। यह बहुधा तेल चुक जाने पर होता है।

११५. चटकाली—गौरैयों की पंक्ति। चाली—चाल डाली या चलनी चलनी कर दी।

११६. नींदनु जोग—निंदा करने के योग्य।

११७. नवत—(१) वाल नीचे की ओर जाते हैं, (२) नर नम्र होते हैं। सतर—(१) चिड़चिड़े, (२) ऐंठे हुए, उठे हुए। नरम—(१) ढीले, (२) नम्र।

११८. विय—द्वै, दोनों।

११९. रस—(१) प्रेम, रति। (२) वैद्यक में धातु औषधों को रस कहते हैं।

१२०. नग—रत्न, स्त्री-रत्न। जाइयैं—ज्याइयैं, जिलाने के उद्देश्य से। सुदरसनु—(१) सुंदर दर्शन, (२) सुदर्शन चूर्ण जो ज्वर में दिया जाता है।

१२२. विय—द्वितीय, दूसरी, अन्य। डहडही—हरी भरी, प्रफुल्लित। मरगजी—मुरझाई हुई।

१२४. संसौ—संशय, प्राण वचते हैं या नहीं नित्य यह संशय बना रहता है। हंसौ—(१) आत्मा, प्राण; (२) हंस पक्षी; प्राण रूप हंस। सीचु-सचानु—मृत्यु रूप वाज।

१२५. गैल—रास्ता।

१२६. गोरस—इंद्रियों का स्वाद। गोरसु—गव्य, दूध, दही, मक्खन इत्यादि।

१२८. हरकी—हटकी, वरजी, रोकी।

१२९. पर्यौ जोरु—जोड़ा पड़ा (अखाड़े की भाषा), प्रतिद्वंद्वी नीचे आ दवा। यहाँ पर नायिका का पक्ष लेकर कहा जा रहा है, इसलिये जोड़ से अभिप्राय नायक से है। किंकिनी—कमर पर पहनने का एक आभूषण जिसे उस पर वँधी हुई छोटी छोटी घंटियों के कारण क्षुद्रघंटिका भी कहते हैं। संजीर—नूपुर।

१३०. दियौ वताइ—दीया वुझाकर।

१३३. सौनजाइ—सोनजुही, पीली चमेली।

१३४. चाले—गौने।

१३५. बनौ—ऊख। धरहरि—धैर्य।

१३६. छिगुनिया—छोटी उँगली, कनिष्ठिका।

१३९. डगकु—एक डग या पग। चोरटी—चोरी (चित्त की) करनेवाली।

१४२. अचका—सहसा, अचानक, एकाएक।

१४४. जावनु—जामन, दही आदि कोई खट्टी चीज जो दूध जमाने के लिये उसमें डाली जाती है। नेहैं—स्नेह को।

१४५. रैहाल—पारसी 'रहवार' का विकृत रूप जिसका अर्थ होता है चलनेवाला। रूढ़ि से अब रैहाल घोड़े के लिये प्रयोग में लाया जाता है। ग्वैंड़ौ—घर के चारों ओर की भूमि जो उसकी सीमा में सम्मिलित समझी जाती है। पैंड़ौ—मार्ग।

१४६. सवारु—सवेरे, जल्दी, प्रिय को अभी परदेश से आए बहुत दिन नहीं हुए कि उसने जल्दी ही फिर परदेश जाने की तैयारी कर दी, यह भाव है।

१४७. चैंपु—लासा, जिससे बहेलिए पक्षियों को पकड़ते हैं।

१४९. अमिलु—जो अपने मेल के न हों। धर्यौ सीस हियैं धरि हाथु—हृदय पर हाथ धरकर फिर उसे सिर पर रक्खा। हृदय पर हाथ रखने से अभिप्राय कि मैं तुम्हें हृदय में रखता हूँ। सिर पर हाथ रखने से यह तात्पर्य है कि तुम्हारी सब प्रेमपूर्ण आज्ञाएँ शिरोधार्य होंगी।

१५०. नैननु लगैं—आँखों के लड़ने से।

१५२. चुभकी—डुबकी। केसरि नीर—(उसके शरीर की कांति से) जल ऐसा मालूम पड़ता है मानों उसमें केसर घुला हो। सरि-नीर—नदी का जल।

१५३. नवोढ़—नवोढ़ा, नई (नव) व्याही (ऊढ़ा) दुलहन। पिचकी—पिचकारी।

१५५. सुरत—रति।

१५६. मनि मुत्तिय-माल—मणि और मुक्ताओं की माला।

१५९. छिगुनी—छोटी उँगली, कनिष्ठिका। गिलत—निगल डालते हो। छ्वै छिगुनी पहुँचै गिलत—उँगली पकड़के पहुँचा पकड़ना मुहावरा है। ब्यौंत—ढंग, डौल।

१६२. छटतु—शोभित होते हैं। छाँह—झलक। अटक-भटक-वट—वट का वह वृक्ष जो भूलभुलैया बन रहा हो। 'व्रजभूमि के 'भांडीर वन' में अभी तक कुछ ऐसे वट के पुराने वृक्ष हैं जिनकी बरोहें लटक-भटककर इस प्रकार जम गई हैं कि उनके नीचे भूल-भुलैयाँ सी बन गई हैं।'—रत्नाकर।

१६३. ओप—द्युति, शोभा, चमक।

१६४. राते हिये—अनुरक्त हृदय से। काती—काटनेवाली, छुरी अथवा कैंची।

१६५. सिहाति—सिहाती हैं। किसी को देखकर मुग्ध होते हुए स्वयं भी वैसी ही होने की इच्छा करना। उकसौंही भाँति—उभरने पर आई हुई (छाती)।

१६६. डभकौहैं—आँसू भरे। बराइ—टालकर, बचाकर। गह-वरि आएं गरैं—गला भर आने से, कंठ के रुँध जाने से। गढ़वाली भाषा में इसे गभर भर आना कहते हैं। राखी—रक्षा की।

१६७. दरपन-धाम—काच-मंदिर, शीशमहल। काय-व्यूह—शरीर का मोरचा। व्यूह सेना की उस रचना को कहते हैं जिसमें घुसकर बाहर निकल आना कठिन हो जाता है।

१७०. अठान—ठानने के अयोग्य।

१७२. गरमी के दिन और शिशिर की रातें बड़ी लंबी और दुःखप्रद होती हैं।

१७४. बटपरा—रास्ते में छापा डालनेवाले ठग या डाकू।

१७६. अथाइनु—चौपालों, द्वार पर की ऊँची उठी हुई बैठकें। अभिसार—नायिका का नायक से मिलने के लिये संकेत-स्थान पर जाना। सँझैाखैं—साँझ की, संध्याकाल की।

१७७. रोकि ..नाहिं—सबका यहाँ पर अशुद्ध प्रयोग हुआ है। सब नहीं रोक सकते हैं कुछ रोक सकते हैं। होना चाहिए था रोकि सकैं कोउ नाहिं।

१७८. सरस—(१) रसीले, (२) पुष्ट और सधे हुए। सुमिल—(१) अनुरागो, (२) गोल में मिलकर चलनेवाले। उठान—(१) उमंगें, (२) कावे। गोइ निबाहैं—(१) छिपाकर निर्वाह करने से, (२) गेंद को निश्चित स्थान तक पहुँचाने से। चौगान—आधुनिक पोलो की तरह का एक खेल।

१७९. उमदाति—उन्मत्त सी होती हुई। बलकि बलकि—बहक बहककर। ललकि ललकि—बढ़ बढ़कर।

१८३. ऐंड़—गर्व। ऐंड़ाति—गर्व से ऐंठती है।

१८४. सौंह—सौगंद। पनिहा (प्रणिधाः)—गुप्तचर।

१८५. कनौड़ी—लजीली (अपराध के कारण)।

१८६. मरकत—नीलम।

१८७. बारैं—बारी (पारी) में।

१८८. चुपरी—चोवा चर्चित।

१९१. कनकु—(१) सोना, (२) धतूरा।

१९३. डीठि-बरत—दृष्टि रूपी (वर्त) रस्सी।

१९५. लोइन—लोचन।

१९६. लफति—लचकती हुई। सटक—पतली लचीली छड़ी।

१९८. हरौल—हरावल की सेना, सेना का वह छोटा सा भाग जो सेना के प्रधान अंश के कुछ आगे आगे चलता है जिससे प्रधान

सेना पर बिना खटका पाए शत्रु का आक्रमण न हो सके। गोल—समूह, सेना का प्रधान अंश।

१९९. अनखुली—बिना अपने हृदय की बात को प्रकट किए।

२००. बाथ—अंक—'रत्नाकर'; अँकवार।

२०१. प्रयाग—प्रयागराज में गंगा (गौर वर्ण), यमुना (श्याम) और सरस्वती का मेल होता है। ब्रज के विहार-कुंजों में राधा के गौर वर्ण, कृष्ण के साँवले रंग और भक्त के हृदय के अनुराग—जिसका रंग लाल समझा जाता है—के मिलने से प्रयाग बनता है।

२०४. नौल सिरी—नवल श्री, नई शोभा। बौलसिरी—मौलसिरी।

२०९. अनवटु—पैर के अँगूठे में पहनने का एक गहना।

२१०. केलि-तरुनु—केले के पेड़ों से जिनकी जंघाओं की उपमा दी जाती है। केलि-तरुन—क्रीड़ा में तरुणों को।

२१३. लोइन—लोचन। लोइन-सिंधु—लावण्य के सागर।

२१४. ढिग—किनारी। हद—अत्यंत, परम। रद-छत् (रद-च्छद) रद का आच्छादन करनेवाले, ओंठ। सद—ताजा। रद-छद—दाँतों से किया हुआ घाव।

२१५. यह दोहा रुक्मिणी-हरण के अवसर का है।

२१७. औंधाई—औंधी कर दी, उलट दी।

२१८. छिनदा (क्षणदा)—रात्रि। छाक—एक प्रकार का पकवान जिससे नशा होता है, यहाँ पर नशा।

२२०. जोबन आमिर (अर०)-जौर (फा०)—यौवन-रूप शासक का अत्याचार।

२२३. बरोठे—प्रकोष्ठ, दीवाल से घिरा हुआ आँगन। बिधि की घरी—ब्रह्मा की घड़ी।

२२४. चीर-हरण का प्रसंग। कर-जोरि—हाथ जोड़कर। जिससे कुचों पर से, जिन्हें गोपियाँ लज्जा के मारे हाथ से ढाँपे हुई हैं, हाथ उठ जायँ।

२३०. मलिंग—मलंग, एक प्रकार के मुसलमान फकीर जो बहुत कम कपड़े पहनते हैं और शरीर को लोहे की साँकलों में जकड़ कर भगवद्भजन में मस्त रहते हैं।

२३१. छाँहगीरु—छाँह देनेवाला, छत्र।

२३४. ससहरि—डरकर।

२३५. मोचु—मोच।

२३७. चिरम—घुँघुची।

२४०. सौहैं—सामने। सौंहैं—सौगंद।

२४२. मौरि—मौलि, शिर।

२४३. बूढ़—वीर-बहूटी जिसका रंग लाल होता है।

२४४. निदाघ—ग्रीष्म। उसीर—खस। रावटी—टट्टी की ओट। धावटी—हवली।

२४६. ददोरनु—पित्तों के फूले जिनमें बड़ी खुजली होती है।

२४७. फरी—ढाल। पाइक—पैदल। घाइ—घाव, वार, चोट।

२५०. गुनही—(फा०) गुनाही, अपराधी। अगोटि—कैद करके।

२५२. भावकु—थोड़ा। भरु—भारीपन। सीपहार—सीप का हार।

२५३. भटभेरा—मुठभेड़।

२५५. अपत—अपत्र, विना पत्ते की।

२५७. कुही—बाज की छोटी जाति। नीचौ दयौ—ऊपर से जोर से शिकार पर टूट पड़ा। कुलिंग—एक छोटा पची। झपि—छोपकर।

२५९. हथलेवैं—हाथ लेने में, पाणिग्रहण करने में।

२६०. बाघारि—घर में। एक ही घर में रहने पर भी वर्षों तक नायक और स्त्रियों के पास नहीं जाता।

२६३. जालरंध्र—झरोखे की जाली के छेद। जगत्यौ रह्यौ—जागता ही रहा।

२६८. प्रसंग—गणेश-चतुर्थी, जिस दिन चंद्रमा के उदय होने पर अर्घ्य देकर व्रत समाप्त किया जाता है।

२६९. प्रसंग—वही। सुचिती—स्थिर चित्त होकर, क्योंकि नायिका के अटारी पर रहने से उसका मुख-चंद्र दूसरे चंद्रमा का भ्रम उत्पन्न करता है।

२७४. पुन्यकाल सम दोनु—पुण्यकाल में दोनों समान रहते हैं। जिस रेखा पर किशोरावस्था और युवावस्था मिलती हैं वही यहाँ पर पुण्यकाल माना जायगा। ज्योतिष शास्त्र में सूर्य का मार्ग १२ राशियों में बाँटा गया है। सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में जाना संक्रमण (दोहे में का संक्रोनु) या संक्रांति कहलाता है। सूर्य-पिंड के मध्य बिंदु को दो राशियों की संधि-रेखा में आने और उसे छोड़ने में जो समय लगता है वह पुण्यकाल कहलाता है।

२७५. छत (सत) हूँ—होते हुए भी। अछत समान—न होने के समान। तिथि औम—अवम तिथि जो होती तो है पर उसके नाम से किसी दिन की गिनती नहीं होती। यह बात तब होती है जब कोई तिथि सूर्योदय के बाद से आरंभ होकर दूसरे दिन के सूर्योदय के पहले ही बीत जाती है। सूर्योदय के समय जो तिथि रहती है उस दिन भर वही तिथि मानी जाती है। इससे इस तिथि की गिनती नहीं होने पाती।

२७६. करतार—हाथ की ताली।

२७७. सफरी—मछलियों की एक जाति।

२८१. त्रयताप—शारीरिक, दैविक और आत्मिक। हमाम—हम्माम (अरबी) नहाने का कमरा जो ऊपर, नीचे और दीवालों से गरम किया जाता है। हम्माम में स्नान करने से रोम रोम खुलकर खूब पसीना आता है।

२८५. माह—माघ का महीना।

२८७. लाइ—ज्वाला, लपट।

२८९. लगौहैं—जिन्हें आसक्त हो जाने की आदत ही है।

२९१. लहाछहे—नृत्य में पद-लाघव।

२९२. तरौंस—तटवर्त्ती, कूल के पास का। खिनकु—क्षण भर। खरौंहौ—खारा।

२९३. नै—नदी। बगर बगर कै वार—घर घर के दरवाज़े पर।

२९५. कन—अन्न (भीख)। थुरहथी—छोटे हाथवाली। रहचटैं—लालच में।

२९८. निय—निज। खरौंट—हलका घाव। सरसई—गीला-पन। खोंटि—खुरचकर।

३०४. परिवेखु—मंडल, घेरा।

३०७. घरी—समय-दर्शक जल-यंत्र की घड़ी।

३०९. सहबात—मेल की बात-चीत। भेद-उपाइ—भेदनीति से अपनी तरफ मिलाने का उपाय। सुरँग—(१) सुंदर रंग, प्रेम। (२) सुरंग—वह छेद जिसमें बारूद भरकर आग लगाने से बड़े बड़े चट्टान या किले गिरा दिए जाते हैं।

३११. आटैं परि—दाँव पड़ने पर।

३१४. तिलौंछे—तेल से पोंछे हुए। सुरमा छुड़ाने के लिये आँखें तेल से भींगे कपड़े से पोंछी जाती हैं। तिलौंछे नेत्र रोष के व्यंजक हैं।

३१५. मरगजे मुँह—मलिन मुँह, फीके चेहरे। मरगजैं चीर—मरगजी साड़ी, वह साड़ी जिसमें क्रीड़ा के कारण सलवटें पड़ गई हैं।

३१६. आघु—अर्घ्य, मूल्य।

३१८. काल-विपाकु—अवधि। उछकै न—उतरता नहीं।

३२०. लगनिया—लगन, अभिलाष, अनुराग।

३२२. धर—पृथ्वी।

३२३. सकाइ—शंकित होता है।

३२४. हाँसी—हँसी। हाँसीयै—हाँ के समान ही।

३२५. खुस्याल—खुशहाल (फा०) प्रसन्न, सुखी।

३२८. झरसी—झुलसी हुई। गरी—गली हुई।

३३०. बनौटो रंग—हलका पीला कपासी रंग। वन कपास की एक विशेष जाति है।

३३७. साँठे—पौंडे।

३३९. उरबसी—एक आभूषण। दागु—दग्ध, दाह।

३४०. पँचतोरिया—इतनी झीनी साड़ी कि उसका तोल केवल पाँच तोला हो। जल-चादर—जलकणों का विस्तृत और झीना प्रवाह। इस दोहे से जान पड़ता है कि जल चादर के पीछे किसी उपाय से दीए भी जलाकर रख दिए जाते थे जो निस्संदेह अत्यंत शोभा देते होंगे।

३४४. गढ़वै—गढ़वर्तिनी, किले में रहनेवाली।

३४७. सबी—(अरबी शबीह) चित्र। कूर—कूड़ा, निकम्मा, मूर्ख।

३४८. टुनहाई—टोना करनेवाली। टोल—टोला, मुहल्ला। त्यौं—तरफ। अदोखिल—निर्दोष।

३४९. ईछन—ईक्षण, दृष्टि।

३५०. मूठि—मूठी मारना एक तांत्रिक प्रयोग है जो कई उद्देश्यों से किया जाता है। इसमें उद्देश्य के अनुसार भिन्न भिन्न सामग्री अभिमंत्रित करके मुट्ठी में भर ली जाती है और जिस पर प्रयोग करना होता है उसकी ओर फेंक दी जाती है।

३५१. अरक—आक का पेड़। अरक—सूर्य। उद्दोत—प्रकाश।

३५५. आहु—ललकार।

३५६. कमनैती—बाण चलाने की विद्या।

३५७. मावस—अमावास्या।

३५९. धन—धन्या, स्त्री।

३६०. सोंठ-मिठासु—सोंठ की कुछ गाँठें विषैली हो जाती हैं। विषैली गाँठों में सोंठ की स्वाभाविक चरपराहट न होकर एक प्रकार की मिठास होती है।

३६१. खुटैं—खुलते।

३६२. कपूर मनि—कुछ पीले रंग का मूल्यवान् पत्थर जो तिनके को आकर्षित करता है, इसी लिये यह तृण मणि भी कहलाता है। फारसी में इसे कहरुवा कहते हैं।

३६४. चिकनाई—चिक्कण अथवा स्निग्ध होता है, प्रेममय होता है।

३६६. मरुधर—मरुभूमि, मारवाड़। मतीरु—बड़ा तरबूज। मारू—मारवाड़ी।

३६७. बृपादित—वृषादित्य, वृष राशि का सूर्य।

३६८. ढीठ्यौ—ढिठाई।

३७१. भजन—भजन करना। भज्यौ—भागा। भजन—भागा। भज्यौ—भजन किया।

३७२. सैक—सैकड़ों।

३७३. अँगना—अंगना, स्त्री। अँगना—आँगन।

३७५. छुसाल—आर पार छेदा हुआ।

३७६. आघु—आदर, मूल्य। गर परयौ—गले पड़ा हुआ, निरादृत।

३८०. हरहारु—हर का हार, सर्प।

३८२. उमदाहु—उमंगित होकर झुक पड़ो।

३८३. ईठि—मित्र।

३८४. लंगरु—ढीठ।

३८७. पोढ़—प्रौढ़ा के उपयुक्त। अपोढ़—जो प्रौढ़ा नहीं है। छकए छकी—मद्य के नशे में चूर।

३८८. रनित—बजते हुए। दान—हाथी का मद।

३९३. सूरन—एक प्रकार का कंद होता है जिसकी तरकारी बनाई जाती है। यदि यह जरा भी कच्चा रह जाता है तो मुँह में कनकनाहट मालूम होने लगती है।

३९६. राजसु—राजसिक वृत्तियाँ, क्रोध, गर्व इत्यादि।

३९९. कालबूत—मिट्टी अथवा लकड़ी का साँचा जिसके सहारे जूते का ऊपर का हिस्सा बनाया जाता है या मकान की छत अथवा द्वार का कड़ा जोड़ा जाता है। लदाइ—छत अथवा द्वार के कड़े की जुड़ाई, लदाव।

४०४. बूढ़नु—(१) वृद्धों को। (२) वीरबहूटी।

४०५. जक—असंतोष। भजत—भागते हैं।

४०६. ति—वे। कँटीली—कंटकित हुई, नायिका की।

४१०. उयैं—उदय (सूर्य के) के समय। साँझ—रात भर रति में जागते रहने के कारण आँखों की लालिमा। लालिमा संध्या की विशेषता है।

४११. औथरौ—उथला, छिछला।

४१४. जलथंभ विधि—वह क्रिया जिसके द्वारा जल में बैठा हुआ होने पर भी जल में बैठे हुए मनुष्य पर किसी प्रकार का प्रभाव न पड़े। दुर्योधन को यह क्रिया मालूम थी।

४१५. पति के अवगुण और ऋतु के गुण क्रमशः मान (रोप) और माघ महीने की ठंढक बढ़ती है और उनसे भी क्रमशः स्त्री का मन और मक्खन अत्यंत कठोर हो जाता है।

४१८. सुरंगु रंगु—लाल रंग। कवियों ने प्रेम का रंग लाल माना है। इसी से वह सुरंग भी माना गया है।

४१९. ससिसेखर—शशिशेखर, महादेव। अकस—(अरबी) अक्स, स्पर्धा, किसी से बढ़ जाने की आकांक्षा।

४२४. उफरत—ऊपर सरकने पर। गुफरौट—आँचल का सिमटन पड़ा हुआ वह भाग जो हाथ को ढके रहता है। लौट—लौट जाना। शरीर के अंगों के खुल जाने की आशंका से वह लौट पड़ती है।

४२५. कुवत—बुरी बात। सरल—(१) सीधा, (२) कपट-हीन। त्रिभंगी—तीन जगह से टेढ़े।

४२८. गुन-विस्तारन काल—(१) जब रस्सी बढ़ाई जाती है। (२) त्रिगुणात्मक माया का प्रसार होने पर। निर्गुन—(१) बिना रस्सी का, जिसकी रस्सी समेट ली गई है। (२) भगवान् का निर्गुण रूप। चंग-रंग—पतंग की तरह।

४३३. छाया-ग्राहिनी—सिंहिका नाम की एक राक्षसी जो राहु की माता मानी जाती है। यह समुद्र में रहती थी। इसे यह शक्ति प्राप्त थी कि आकाश में उड़ते हुए जिस किसी की छाया जल में पड़ जाती उसको उसी छाया के द्वारा खींच ले आकर खा डालती। हनुमान् को भी उसने इसी प्रकार पकड़ना चाहा था, परंतु उन्होंने उसे मार डाला।

४३४. सराध पखु—श्राद्धपक्ष या पितृपक्ष। पितृपक्ष में जब पितरों का श्राद्ध किया जाता है तब कौवों को भी अन्न खिलाया जाता है।

४३६. व्यौरनि—बाल सँवारने का ढंग विशेष। व्यौरौ—भेद।

४३८. जिन—जिनके। आव—पानी, यहाँ पर कांति। गँवई गाँव—गँवारों की बस्ती।

४४१. भासिहै—चमकेगी, सुंदर लगेगी। भोडर—अभ्रक।

४४२. बकारी—रुपया सूचित करने के लिये जो एक टेढ़ी लकीर खींची जाती है उसको बकारी कहते हैं।

४४३. कसु करि—कैसे ही करके, या बलपूर्वक। दुसार—आरपार छिदा हुआ। भेदै—पीड़ा देता है। सार—साल, शल्य।

४४५. अछेह—अक्षेप, निरंतर। बरत—चलते।

४४६. निर्गुन—डोरी रहित; प्रिय के आलिंगन से उरस्थल में उपटी हुई माला का चिह्न जिसमें डोरी का चिह्न नहीं आता।

४४७. काक-गोलकु—यह प्रसिद्ध है कि कौए की दोनों आँखों मे एक ही गोला फिरता है। जिस आँख से वह देखना चाहता है, उसी आँख में गोलक चला आता है।

४४८. नह-दी—नखों पर दी हुई या लगाई हुई (मेंहदी)।

४५२. कटनि—काट, (१) प्रेम का घाव, (२) नदी का कूल को काटना। हौंस—हवस, अभिलाषा।

४५४. कौतुक लग्यो—खेल में लगा हुआ।

४५७. टाँकु—जरा भी, टंक तौल का एक बहुत छोटा परिमाण माना जाता है।

४५६. सटपट परी—सिटपिटाई हुई, घबड़ाई हुई।

४६०. बैरु—निंदा। वहीं—उसी निंदा की बात को। वहीं घर—उसी घर को।

४६१. चहलैं पड़ैं—कीचड़ में फँस जाते हैं। बै नै—(वय नय) नई उमर।

४६२. गाढ़ैं—कठोर, सघन। ठाढ़ैं—ऊँचे उठ आए हुए। उकसौहैं—उभरने पर आए हुए। सबै—सब सौतियाँ। उकसाइ—उखाड़।

४६४. बासु—(१) वसन, वस्त्र। (२) वास-स्थान। गुढ़ौ—छिपने का स्थान।

४६७. देह लग्यौ—अत्यंत निकट। गेहपति—गृहपति, घर का स्वामी, अपना पति।

४६८. मनुहार—मन हरने की रीति।

४७१. ब्यौसाई—उद्योग करनेवाला।

४७२. बतरस लालच—बातचीत के आनंद के लालच से।

४७५. बटपरा—डाकू। मत मैं न—चेत में नहीं हैं। कुहौ कुहौ—(१) कोकिल की कूक, (२) मारो मारो।

४७६. सर-पंजर—शर-पिंजर, बाणों का पिंजड़ा।

४७७. टटकी—ताज़ी, अभी की। धोवती—धोती। बगर—घर।

४७८. सारद-बारद—शरद् ऋतु के बादल, जो सफेद होते हैं। रद—व्यर्थ, बेकाम।

४८०. त्यौनार—ढंग, रीति।

४८१. गलीत ह्वै—दुर्दशा मे पड़कर।

४८२. निघरघट्यौ—निघरघट होने से भी। जो बिना घूँटे हुए एक बार सब पानी निगल जाय वह निघरघट कहलाता है। यहाँ वह निर्लज्ज होकर खुल्ले आम अपराध करके साफ मुकर जाने-वाले के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

४८४. धर परसौंहै—पृथ्वी को छूनेवाले।

४८५. लखि चकई चकवानु—चकई चकवा को अलग अलग देखकर रात का अनुमान होता है और एक साथ देखकर दिन का।

४८९. कहलाने—किस लिये। दाघ—दाह, ताप। निदाघ—ग्रीष्म ऋतु।

४९०. अगमन—आगे।

४९१. पोत—प्रकृति, स्वभाव।

४९२. विभावरी—रात्रि।

४९५. अगहनु—अगहन का महीना।

४९७. जुराफा—जिराफ। अफरीका का एक जंतु जिसके जोड़े के विषय में प्रसिद्ध है कि वे एक दूसरे से बिछुड़ने पर मर जाते हैं।

४९८. सौंहैं—सम्मुख, सामने।

४९९. ही—थी। गुलाला-रंग—गुलाब के रंग के।

५०२. हई—विस्मय। जोइ—देखकर।

५०३. झझकावत—डर जाता है।

५०४. महूख—महोच्च, मधु।

५०५. उलमि—झुककर। अँगुरनि उचि—पाँव की उँगलियों पर ऊँचे उठकर।

५०६. हठ्यौ दै—देखो दीपिका, दोहा ९३।

५०७. बिथुर्‍यौ—फैला हुआ, किसी अनजान का सा लगाया हुआ। गाँस—गुप्त भावना।

५०८. भानति भेउ—भेद भंग नहीं करती, प्रकट नहीं करती।

५०९. ग्वैंठी—टेढ़ी।

५१०. ही—हृदय।

५११. रति जगैं—रति के कारण जागरण, या रात का जागरण।

५१५. कै वा—कै वार। थरथरी—कँपकँपी, कंप (सात्त्विक)।

५१६. मीड़े—मसके हुए।

५२२. ढोरी—धुन, आदत।

५२३. ठिक ठैन—ठाट बाट। चुगल—छिपे भेद को खोल देनेवाले।

५२५. डाढ़ी सी—जली हुई सी।

५२९. अरैं—अड़ में, हठ मे। मलै—मलय, चंदन। घन-सार—कपूर।

५३०. चोर-मिहीचनी—आँखमिचौनी का खेल।

५३२. लोइन भरी—(१) लावण्य भरी, (२) लालसायुक्त। लोइन—(१) नेत्र, (२) लवा पक्षी। लाँक—कमर।

५३४. जकि—स्तंभित। रितयौ—खाली किया।

५३६. लोच—लचीलापन, नर्मी, सौंदर्य।

५४०. सद—बुरी आदत। बिहरत—घूमते। बिदरत—विदीर्ण करते।

५४२. चुटकि कै—चाबुक से बिना प्रहार किए डराने भर के लिये केवल आवाज करना जिससे डरकर घोड़ा उड़ान लेने लगता है। खूँद—चलने का प्रयत्न करने पर भी लगाम के खिंची रहने से एक ही स्थान पर घोड़े के पाँव पड़ने को खूँद कहते हैं।

५४३. उताल—उतावली। रहचटैं—रस की चाह अथवा लालच में।

५४६. कननु—दानों से। दारयौ—दाड़िम। कपट-कुचाल—(१) छिपाने की बुरी आदत, (२) अच्छी तरह पकने के लिये कपड़े से दाड़िम का छिपाया जाना।

५४९. धुरवा—बादल। चहुँ कोद—चारों तरफ से।

५५०. नख-रुचि-चूरनु—नखों की शोभा रूप चूर्ण। चूर्ण से ठगों की एक तांत्रिक क्रिया का तात्पर्य है जिसमें अभिमंत्रित राख जिसके ऊपर डाल दी जाती है वह उनके वश में हो जाता है, जिससे वे लोग आसानी से उसके पास का द्रव्य हरण कर सकते हैं। रुचि का अन्वय नख और चूरन दोनों के साथ लगेगा। नख के साथ इसका अर्थ शोभा होगा और चूरन के साथ यथेच्छ प्रभा करनेवाला। हथाहथी—हाथों हाथ।

५५४. चढ़ैं हिडौरैं सैं हियैं—हिडोले पर चढ़े हुए से हृदय से। झोंके खाते हुए विचलित हृदय से।

५५५. नागबेलि—पान।

५५७. नारी-ज्ञानु—(१) नाड़ी-ज्ञान, (२) स्त्री-चरित्र का ज्ञान।

५५८. झुकावति—खिझाती है।

५५९. अधिकाई—अपने आपको बड़ा समझना, महत्त्व। गौं—अभिप्राय (कि देखना चाहिए कौन अपनी आन पर अड़ा रहता है)।

५६०. हुलसी—हूल, सूल, भाले की अनी सी।

५६१. रुचित—अच्छा लगना। सुचितई—चित्त की शुद्धता।

५६२. आन—सूत, सन इत्यादि पर पड़ी हुई।

५६५. पाहुने—पहुनाई के बहाने किसी परकीया के पास जाने-वाले। है गुड़हर कौ फूलु—गुड़हर का फूल लाल होता है। नायक भी बहानेबाजी की पहुनाई से लाल रंग से रँगकर आए। आँखों मे जागरण की लाली, कपोलों पर पीक की लीक और माथे पर महावर की रेखा थी। गुड़हर के फूल के विषय मे यह भी प्रसिद्ध है कि जिस घर मे वह आ जाता है उस घर में कलह ही कलह होती रहती है।

५६८. निसुके—निःस्व, कंगाल। कोसने के अर्थ में इसका प्रयोग किया गया है।

५६६. नाइ—नाइँ, नाम।

५७०. नावक-सर—वे बाण जो नली के द्वारा चलाए जाते हैं। लोहे की नली में छोटे छोटे तीक्ष्ण बाण भर दिए जाते हैं और पीछे से बारूद भी उसमें डाल दिया जाता है। इसी उद्देश्य से छोड़े हुए एक छिद्र से अग्नि लगाकर ये बाण चलाए जाते हैं। छर्रों की तरह ये बाण चारों ओर फैल जाते हैं और निशाने को चलनी चलनी कर देते हैं।

५७१. मूका—भीत पर का वह छेद जो प्रकाश और वायु-संचरण के लिये बनाया जाता है।

५७५. पितमारक—पितृ-मारक, पिता को मारनेवाले (नक्षत्रों का योग)।

५७७. हित समुहौ चितु—प्रेम की ओर ढला हुआ चित्त।

५८२. दिठादिठी की ईठि—जिससे देखने ही से अभी जान-पहचान हुई थी, इससे आगे नहीं बढ़ी थी। नाहीं करति—उसका 'नहीं' कहना।

५८४. निकलंकु मयंकु के—ज्योतिष के अनुसार जब चंद्रमा निष्कलंक दिखाई दे तब अवश्य कोई बड़ा भारी उत्पात होगा, यह समझना चाहिए।

५८६. भृंगी—एक प्रकार का उड़नेवाला कीड़ा जो और कीड़ों को पकड़कर अपनी बाँबी में रख लेता है और उनके चारों ओर भनभनाकर उनको इतना भयभीत करता है कि उनको हर घड़ी उसी का ध्यान बना रहता है जिससे अंत में तल्लीन होकर वे भृंगी का ही रूप धारण कर लेते हैं।

५८७. सैन न भजै—(चारपाई पर किसी दूसरी स्त्री की वेणी का दाग़ देखकर) बिस्तर पर सोने नहीं जाती।

५८६. जुरि—अँगड़ाई लेकर। बीँदि—जानकर।

५९०. सतर ह्वै—खूब तनकर। गैन—गगन, गऊन, गयन, गैन।

५९१. बसीठी—दूती।

५९२. दुख-हाइनि—दुःख की मरी, एक प्रकार की गाली। ढूका—परखी।

५९६. डहि—जलकर।

५९९. चढ़ाऐं—चढ़ाने से।

६०३. अरगट—अलंग। पानूस—फानूस, काँच का वह घेरा जिसमें मोमबत्ती या दीपक जलाया जाता है। लक्षणा से फानूस के अंदर की दीप-शिखा अर्थ होता है।

६०७. नटि न—मुकर मत, नाहीं न कर। सीस...मोट—मेरे सुखों की जो गठरी लूटी गई है, वह तेरे सिर पर है (तूने ही लूटी है), यह बात साबित हो चुकी है। चारी—चुगली। सलोट—सलवटें।

६०९. गाढ़ी गड़नि—गहरा धँसाव।

६१३. कोन—कोना।

६१५. इक झाँक—एकदम। दगैं—दागती हैं, पीड़ा देती हैं।

६१६. जुदी—अलग। जु दी—जो दी थी। बासु—स्थान। बास—सुगंधि।

६१९. पट्ठु पाँखै—पंख ही तेरे वस्त्र हैं। स पर—पर (पंख) सहित।

६२०. परेखौ—बीती बात का दुःख। परिपारि—परिपालि, मर्यादा।

६२६. चीर विनौटिया—चुन्नट देकर रँगी हुई चूनरी।

६३६. कहूँ डीठि लागी—किसी से प्रेम हो गया है क्या? लगी...डीठि—या किसी की नज़र लग गई है।

६३७. भावरि अनुभावरि भरे—पसंद हो चाहे नापसंद हो।

६३८. बतरसु—वार्तालाप का स्वाद ।

६४२. मिसह्हा—बहाना करनेवाले को ।

६४४. जाइ—नहीं घटती ।

६४७. चिकुटी—चुटकी । नारि—गरदन । गति...चलति—नाचने-गाने में गत भी गाती है ।

६४८. अनुमान—तर्कशास्त्र का एक प्रमाण ।

६४६. चलि गै, एक दूसरे की तरफ ।

६५०. आसव—मदिरा ।

६५१. धरधरा—धड़कन ।

६५३. खलित—अर्थ से स्खलित, निरर्थक ।

६५४. सबील—तरीका, उपाय ।

६६०. नई-नमित—नई हुई । नई—नवीन । दइ—देव, दई, दी । उसासि—उभार । उसास—उच्छ्वास ।

६६२. उनदौंहीं—उनींदी ।

६६४. लगी अनलगी—है या नहीं ।

६६६. मुड़हर—साड़ी का वह भाग जो सिर पर रहता है । मौरु—मौलि, सिर । घूँटेनु तें—घुटनों के बल ।

६७०. निचले—निश्चल । कजाकी—तुर्की कज्जाक से, डाकेजनी ।

६७२. कैम—कदंब ।

६७३. मुरासा—कान का एक जड़ाऊ गहना ।

६७७. वृषभानु—(१) वृषभानु की लड़की, (२) वृषभ (बैल) की अनुजा (बहिन), (३) वृषराशि के सूर्य की पुत्री । हलधर के बीर—(१) बलदेव के भाई, (२) बैल के भाई, (३) शेषनाग के अवतार के भाई ।

६७६. सिलसिले—भींगे ।

६८३. त्रासति—डराती है । ऐंचि—खींचकर । इँची—खिंची हुई ।

६८४. करत झाँझि—अड़ता हुआ। झकुरातु—झकोरे लेता हुआ। खूँदतु—देखो दीपिका दोहा ५४२।

६८५. साँक—शंका।

६८६. दुमची-मचक—झूला झूलते हुए पेंग लेने मे जो वदन दुहरा सा तोड़ देना पड़ता है।

६८७. खएँ—भुज-मूलों पर।

६८८. सगिवगि—सरावोर। कँट्यानी—कंटकित, पुलकित।

६८६. आतपु—घाम।

६६०. आखत—अक्षत के चावल। कुज—मंगल जो पृथ्वी (कु) का पुत्र माना जाता है। ज्योतिष के अनुसार मंगल पर राहु की छाया नहीं पड़ सकती।

६६६. गोधन—गोवर्धन। अनगवति—विलंब करती है।

६६८. कुच-कोर-रुचि—स्तनों के किनारों की शोभा। लोटतु—त्रिवलियों पर। चोंटत—नोचते हुए।

७०२. पाटल—गुलाबी।

७०३. बामा—कुटिला। भामा—क्रोध करनेवाली। कामिनी—कामयुक्त।

७०४. ठकु ठकु—बखेड़ा।

७०७. बुधु...गोद—पौराणिक आख्यान के अनुसार बुध तारा से चंद्रमा का पुत्र है। इससे ज्योतिष के अनुसार सुख-वर्धक सुयोग भी गृहीत होता है।

७०८. गदकारी—गुदगुदी, मोटे या दोहरे शरीरवाली।

(३) मतिराम सतसई

३. मन-कुमार—मन का पुत्र, कामदेव।

७. मुसिक्यानी—इसलिये कि तुम्हारी कथा सुनने से लड़का होता तो यह उपाय पहले तुम पर ही क्यों न सफल होता।

८. सीमंत—गर्भस्थिति के तीसरे मास में एक संस्कार होता है। मुसिक्याइ—इसलिये कि गर्भ उस पड़ोसी से है।

६. पति—स्वामी। पति—प्रतिष्ठा।

११. पानिप—पानी, आब, चमक।

२६. किंसुक—पलास।

३०. बिसारे—विषवाले।

३३. नैन मृगनि सों—मृग के से नयनों से। नैन-मृगनि—नयन रूप मृगों को।

३४. मृगपति—सिंह जिसकी कमर पतली होती है। लंक—कमर। मृग-लच्छन—मृग-लांछन—चंद्रमा। मृग-मद—मृगों का गर्व। मृगमद—कस्तूरी।

४२. लाल—माणिक्य। लाल—लाल रंग की।

४३. हर...कपार—इसी लिये शिव को कपर्दी कहते हैं।

४४. लोनी—लावण्यमयी।

४५. सुवरन—सोने ऐसे। रूपै—रूपा, चाँदी। सुवरन—सुंदर वर्ण का।

५३. डाढ़े ठाढ़े ठूँठ—पेड़ों के (विरह ज्वाला से) जले ठूँठ खड़े हैं।

६५. जो—पाठांतर-ब्रज।

६६. नीप-माल—कदंब की माला, सात्त्विक भाव के कारण रोमांचों के हो उठने से।

६७. पटेल—गाँव का प्रधान। ऊख और अरहर के खेत गुप्त मिलन के लिये अच्छे स्थान माने गए हैं।

६८. चंचल चित्त को बेध देनेवाले नेत्र-बाणों के डर से लज्जा लुकी फिरती है।

६९. घायल करनेवाले नेत्रों से प्रेम करना, यही मन की सज्जनता है।

७०. नेह—(१) स्नेह। (२) चिकनाई (घी)।

७१. गिलि—निगल।

७४. भौंरा चंपे की कली पर नहीं बैठता।

८०. नेह-रहचटौ—प्रेम का लालच।

८४. अगमन—आगे या पहले ही।

८५. अनमिख—अनिमेष, एकटक। गई—भाग गई। मीच—मृत्यु। पजरि—प्रजरि, जलकर।

८७. मौर—मुकुट। तुनीर—तूणीर, तरकस।

८८. अंचल...तऊ—अपने शरीर की कांति के कारण प्रकाश हो रहा है, जिससे नायिका को दीपक का बुझना मालूम नहीं होता।

९०. पाट—रेशम।

९२. छटूक—छः टुकड़े।

९७. बंदनि—भाटनी।

९९. और—अधिक।

१०६. जैतवार—जीतनेवाली। अकस–स्पर्धा। गोसा–किनारा।

१११. जँबीर—जँभीरी नीबू। चूक—बहुत खट्टा पदार्थ।

११३. कंद खाकर अरूसे के फूल को चूसने से कोई स्वाद नहीं मिलता।

११९. बरुनी—पलकों के बाल। जलचादर—देखो दीपिका बिहारी दो० ३४०।

१२०. मेरु—पर्वत का नाम (कुच)। सित—गंगा (पसीना)। असित—काले रंग की यमुना (रोमावली)।

१३३. अच्छिनि—अक्षत, आँखों। अच्छ—अच्छी। स-पच्छ—पंख सहित।

१३७. मखतूल—काला रेशम।

१३६. हिलकी—सिसकना।

१४४. गाज—वज्र।

१४७. इंदु-उपल—चंद्रकांत मणि जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि चंद्रमा की किरणों के पड़ने से वह पसीजने लगती है।

१५५. दीप सिखा लौं—डरते डरते कि अब बुझी और तब बुझी।

१६६. रेह—रेखा।

१६७. कोकनद—कमल।

१७४. ऊख-पियूष-रसाल—गन्ने और अमृत की भाँति मीठे।

१८४. तन को बंधु—शरीर की बिरादरी अथवा बराबरी का।

१६०. घट—स्तन। गरुए—भारी। हरऐं—धीरे धीरे।

१६५. गूंदी गूंदति—गुथी माला को फिर गूथती हुई।

२०१. चाहि—देखकर।

२०३. इक बारि—एकबारगी, सहसा। मूँदी—गुप्त।

२१२. तीछन—तीच्ण, तेज़। ईछन—ईचण, आँख।

२१४. स्रौन—श्रवण, कान।

२१८. सौरियत—स्मरण करती हूँ।

२२२. बिभूति—राख। अवदात—सुंदर। श्वेत वस्त्र पहने हुए स्त्री की तुलना राख से ढके जलते अंगारे से दी गई है।

२३४. छला—अँगूठी। छलाइ—छल करके।

२३५. कुआर के बादलों में पानी कम रहता है।

२३८. दृग-सावँत-सर—आँख रूपी अधीन राजाओं के बाण। कुवलय—(१) कमल, (२) एक हाथी का नाम था।

२४०. कौल—कमल, कँवल, कौल।

२५४. पैंड़े कौ खेद—मार्ग की थकावट (रति के कारण)।

२६३. तेह—क्रोध।

३७८. विष-तीर—विष में बुझे हुए बाण।

३६१. गणेश की वंदना।

३६३. हंसवाहिनी—हंस जिसका वाहन है, सरस्वती। हंस—आत्मा, प्राण।

३६४. राजाओं की आँखें मत ताका करो, लक्ष्मी की आराधना करो, धन मिलेगा।

३६६. मारु—मार, थप्पड़। मिरचि-किरच—मिर्चों की चरपराहट।

३६७. मारु—आघात। मारु—कामदेव।

४००. विकच—खिले हुए।

४०८. त्रिभंगी—कृष्ण, तीन जगह टेढ़े होकर जो खड़े होते हैं।

४१३. प्रवाल—मूँगा।

४२६. अँगरानी—अँगड़ाई।

४२७. मुख की छवि से चंद्रमा ते हारकर कलंकी हो गया और कमलों को दुःख हो गया, दोनों में से कोई भी बराबरी न कर सका।

४२८. स्यासनि—काले लोग, जो शरीर और दिल के भी काले हैं। जाति—कृष्ण भी काले थे और भौंरा भी काला होता है, इसलिये दोनों एक ही जाति के हुए।

४४६. कमल के बहुत से दल होते हैं, इसलिये कभी उसे शत-पत्र (सौ दलवाला) और कभी सहस्रपत्र (हज़ार दलवाला) कहते हैं।

४४७. कोकनद—कमल (नायक के हाथ)। रजनिकर—पराग का समूह। रजनिकर—चंद्रमा (नायिका का मुख)।

४४८. सरस्वती का रंग लाल माना जाता है।

४५६. साँकरैं—गाढ़े समय मे, विपत्ति काल में।

४६०. मदरसे—पाठशाला में। मदरि से—मदारी के समान।

४८१. कान्ह करज छत—कृष्ण का हाथों से मर्दन करना।

४८४. इंदिरा-रूप—लक्ष्मी-स्वरूपा, नायिका।

४८७. इंद्र...लाल—नीलम के रंगवाला कृष्ण।

४६०. द्विजराजनि—(१) ब्राह्मणों, (२) दाँतों की पंक्ति। दुजराज—चंद्रमा।

५००. पुन्नाग—सफेद कमल। मुकुलनि—अधखिले फूल।

५०१. सात कुंभ—आनंद राशि।

५०७. पीठ मे कड़े का चिह्न, भुजाओं पर तरौना के और छाती पर स्तनों पर के कुसुंभी रंग के छाप अन्य स्त्री के साथ रति के चिह्न हैं।

५०८. अधर-अंजन-प्रभा—किसी दूसरी स्त्री की आँखों को चूमने से नायक के ओठों पर काजल का रंग लग गया है।

५१२. निसेनी—पताका।

५१६. अतनु-सुतनु—शरीर रहित कामदेव की प्रखरता से वह सुंदर शरीरवाली तड़प रही है।

५२२. पुरैनि—पुरइनि, कमल। चंदन पंकिल—चंदन के गाढ़े लेप से युक्त।

५२४. गुरज—गुंबज।

५२६. झझिया कौ सो घट—फूटो कौड़ियों से भरा हुआ घड़ा।

५३०. कृष्ण नंगी नहाती हुई गोपिकाओं के वस्त्र हरण करके ले गए थे।

५३५. मया—माया, दया। दया-दरिआउ—दया के सागर।

५३६. किंजल्क—पराग।

५३६. मोर-पखानि—मोरपंखों। पखान-समान—जड़ीभूत हो गई।

५४०. कुंभ निकुंभ और शुंभ निशुंभ का, जो बड़े बली राक्षस थे, चंडिका दुर्गा ने संहार किया था।

५४६. नायक ने नायिका के कपोलों को चूमा है जिससे उन पर पीक की रेखा लग गई है।

५४८. अनिल—हवा। अनल—अग्नि।

५५०. तरुणी की एँड़ियाँ इतनी लाल हैं कि उनकी झलक से वेणी पर के मणि भी लाल हो रहे हैं।

५५२. भाँवति—मलती है।

५५५. राग—(१) अंगराग, (२) अ राग, प्रेम।

५५८. तारेस—तारेश, चंद्रमा।

५७१. सुमना—मालती।

५७३. प्रभात होने पर जब मुर्गा बोला तो नायिका ने समझा कि सिंह गरज रहा है। चरनायुध—मुर्गा। नखायुध—सिंह।

५७४. मधूक—महुआ।

५७६. आलोकनि—आँखों में।

५७८. चपला—बिजली (की रेखा के समान नायिका)। चंद—चंद्रमा (के समान मुख)। नायिका एकटक निश्चेष्ट होकर नायक को देख रही है।

५८३. सुकृत-हेतु—प्रेम-रूप पुण्य।

५८६. ओज-अनल—तेज-रूप अग्नि।

५८७. कालकूट जुत बान—विष में बुझे हुए बाण।

५९२. मुकुर—दर्पण। नरलोक—मर्त्यलोक।

५९३. गुन-गौरि—उज्ज्वल गुणोंवाली। गुन गौरि तें अनूप—पार्वती से भी बढ़कर गुणोंवाली।

५९५. डाभ—दर्भ, कुश के काँटे।

६०३. चंचरीक—भौंरे।

६०४. प्रात-रवि-राग—प्रभातकालीन सूर्य की लालिमा।

६०६. कंकेलि—अशोक का वृक्ष।

६०७. जल...आइ—आँखें जल-भरे बादलों की तरह बरसने लगीं। रही...छाइ—अंग कदंब की तरह कंटकित (रोमांच से) हो गए।

६०६. तोट—तोड़ा।

६१६. गंधरब गाम—रात मे पथिक चलते चलते कहीं प्रकाश देखकर समझता है कि पास ही गाँव है, वहाँ जाकर विश्राम करें, किंतु ज्यों ज्यों आगे बढ़ते जाता है त्यों त्यों वह प्रकाश भी आगे बढ़ता दीखता है और फिर अंतर्धान हो जाता है। इसी को गंधर्वों का गाँव कहते हैं। अँगरेजी में इसे विलो-द-विस्प कहते हैं।

६२२. रंग-बाति—पं० कृष्णविहारी मिश्र ने इसका अर्थ 'सुगंधित द्रव्य की बनी बत्तो जिससे गात्रानुलेपन किया जाता है' किया है। परंतु इससे अर्थ ठीक नहीं बैठता। अर्थ की संगति तब बैठेगी जब इसका अर्थ नकली रत्न किया जा सके।

६४५. संधि—वय:संधि, जब कि बाल्यावस्था से युवावस्था में प्रवेश होता है। उदै सैल—मेरु पर्वत जहाँ से सूर्योदय का होना पाया जाता है। उदय-शैल पर दिन और रात्रि दोनों की संधि होती है।

६५३. कुरबक तरु—कटसरैया का पेड़।

६५६. परिहार—रोकनेवाले।

६५८. चुटकी की सैन—गुलाब की कली का चटकना मानों भौंरों को इशारे से बुलाने के लिये चुटकी बजाना है।

६५६. बकिनब—वृक्ष विशेष।

६६४. अरध छोटो—आधी से भी छोटी (संयोगावस्था मे)। थिसाल—वियोगावस्था में रात बहुत लंबी मालूम पड़ती है।

६६६. तारे टूटते से तो दिखाई देते हैं, पर पृथ्वी पर पड़े हुए नहीं दिखाई देते।

६७५. संकु—बर्छी।

६७६. सायुज्य—समीपता, समता।

६७७. जीवन—पानी, श्रोप।

६७८. पून्यौ—प्रभात में नायक पास था इससे उसका मुख पूर्णिमा के समान खिल रहा था। संध्या के समय वह दूसरी नायिका के यहाँ चला गया है, इसलिये उसका मुख अमावास्या के चंद्रमा की तरह पूर्णतया निस्तेज है।

७००. बकी—बकासुर की बहन पूतना का एक नाम, जिसे कृष्ण ने स्तन-पान करके मार डाला।

७०३. आराम—उद्यान। आ राम—हे राम, आओ।

(४) रसनिधि-सतसई

१. लसत—शोभा देता है। सिंधुरबदन—हाथी के मुँहवाले गणेश। नखतेस—चंद्रमा। गणेशजी के सिर पर भी चंद्रमा का वास माना जाता है।

८. साँवरो—श्याम, कृष्ण।

९. विवछि गयौ—उलझ गया।

११. भागवत—भगवान् के भक्त, भक्तों का एक संप्रदाय। साखि—साक्षी।

१२. दरद कौं—दर्द के लिये, यातना को नाश करने के लिये।

१४. जिनके...परमानंद—कृष्ण-प्रेम के कारण।

१५. स्वयं प्रकास—जिसको प्रत्यक्ष दिखाने के लिये और प्रकाशों की आवश्यकता नहीं पड़ती।

१६. काल पक्षी से शरीर-खेत की रक्षा के लिये हरि का भजन कर। हरिया—(१) खेत की रखवाली करते समय किसान 'हरिया हरिया' करके पक्षियों को उड़ाते हैं, (२) 'हरि' 'हरि'।

२० लै—लय, लीन। लै लै—लेकर। लैलै—लैला के।

२२. करनी—कर्म। कर नीके कर—हाथों को अच्छी तरह (पकड़ो)।

२३. करतार—कर्ता, परमात्मा। कर तार—जैसे पुतलियों का तार सूत्रधार के हाथ में रहता है, उसी प्रकार।

३३. वारे—न्योछावर किए। वारे—लाभ।

३४. जाही—जिसी के। हरबर—जल्दी।

३७. कपटौ—काटो। बिगुरदाधार—(सत्यरूप) बिगुरदे (एक हथियार) की धार से।

४६. घटन में—घड़ों में। घट घट मे—प्रत्येक हृदय में।

४७. आसिक—प्रेमी। महबूब—प्रेमिका। अलगरजी—बेपरवाह।

४९. बसाइ—सुगंधित किया।

५०. फटिक—श्वेत मणि। स्फटिक पर जिस रंग की झाँई पड़ती है, वह उसी रंग की झलकने लगती है।

५१. बास्यौ—सुगंधित किया। फुलेल—इत्र।

५२. आद—आदि, आरंभ।

५४. अनल—अग्नि। अनिल—वायु, बिना वायु के अग्नि जल नहीं सकती।

५५. मोहनवारौ—गूँथनेवाला। जोहनिहारौ—देखनेवाला, द्रष्टा।

५६. सप्त सुर—गाने के सात स्वर, सा रे ग म प ध नी।

५७. जर—जड़।

५८. पंचन—पाँचों इंद्रियों को। पंच में—पाँचों तत्त्वों में।

६०. जाग—जगह, स्थान।

६२. बासनवारौ—सुगंधित करनेवाला। पेरनेवारौ—पेरकर तेल निकालनेवाला।

६५. थावर—स्थावर, अचर सृष्टि। जंगम—चर सृष्टि।

६६. अँगेजत—सहता है, स्वीकार करता है।

८३. चिल्ला—प्रत्यंचा।

८७. वेदाना—जो दाना (समझदार) नहीं है। दाना—समझदार। वेदाना...अनार—समझदार आदमी वेदाना के नाम केवल अनार (वेदाना) का आदर करता है।

९०. सिहाइ—प्रसन्न होता है।

९४. मौन—मक्खन, घी।

९६. नेहनि—स्नेहियों को।

१०१. सु—वे। मार—कामदेव। सुमार—गिनती। सुमार—खासी मार।

१०३. विधए—फँसाए।

१०४. मैन—मक्खन। मैन—कामदेव।

१०७. तावन—भट्टी चढ़ाना।

११२. सतन—शरीरधारी। अतन—कामदेव।

११५. बहल—रथ। चका—चक्र। जुआ—जो घोड़े या वैल के कंधे पर रखा जाता है। वहलवान—गाड़ीवान।

११७. डरौई जाइ—डरा जाते हैं। दुरौई जाइ—छिप जाते हैं।

१२१. चिबुके—ठोड़ी में।

१२५. कजाक—कज्जाक, डाकू।

१२८. फरास—फराश, झाड़ू देनेवाले। बढ़ारू—बुहारी, झाड़ू।

१३४. निकाइन तै—अच्छाइयों से। निकाइ—समूह।

१४१. अरगाइ—अलगाइ, चुप।

१४३, कहर—क्रोध।

१४७. जामिन—जमानत देनेवाला।

१४८. ओर वार—पारावार, समुद्र। अहोर—जिनसे कोई होड़ नहीं बाँध सकता।

१५२. सबी—चित्र। कैफ—साक्षात्कार। गजकि—वह चीज जो शराब पीने के बाद स्वाद बदलने के लिये खाई जाती है। चटनी, पकौड़ी इत्यादि। बेहैफ—शोक-रहित।

१५७. खोर—खोल, टोला। खोर—दोष।

१५८. काँध—कंधा देना।

१६१. वारि-बाड़, बाड़ा जिससे वृक्षों की पशुओं से रक्षा होती है।

१६२. रेहाइ—रहता है।

१७४. दृग तारनि—आँख के तारों में। मुख तारन चंद—चंद्रमा को तारनेवाला मुख।

१७६. मदन—(१) कामदेव, (२) नहीं है मद जिसमें।

१८३. बगर-तन—घर की तरफ।

१८६. बँसुरी—बाँसुरी। बसुरी—पृथ्वी। हे सखि बसुरी-हे सखि बस (नहीं चलता)।

१८७. कानन—कानों में। कानन—वन।

१९०. सुर-रसरी—स्वर रूपी रस्सी।

१९१. बंसी—जिससे मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

१९४. बैर—बदनामी।

२००. रंग चुचैाहैं—जिनसे रंग चूता है, प्रेम चू पड़ता है। सुरंग—सुंदर रंग-युक्त, प्रेम-युक्त।

२०१. उनवै—झुकती है।

२०३. ओड़ना—बचाना।

२०६. हरबली—हरावल, नासीर फौज, आगे आगे चलनेवाली सेना। मवास—निवास-स्थान।

२११. महुकम—मजबूत, दृढ़।

२१५. नातवान—तैरनेवाले।

२१६. मैन अमल—कामदेव का अधिकार, यौवन। पयानौ—प्रयाण, प्रस्थान।

२२१. बरत—वह रस्सी जिस पर नट चलता हुआ अपना कौशल दिखाता है।

२२८. तगा—तागा, डोरी।

२२९. त्रपत न मानत—तृप्ति नहीं मानते। पान—पाणि, हाथ।

२३०. बील—मंत्र।

२३४. वटपरा—वटपार, बटोहियों को लूटनेवाले ठग।

२३९. किलकिला—मछली पकड़नेवाला एक बड़ा पत्ती।

२४१. बैरा रहीं—बिगड़ रही हैं।

२४६. भात—भाता है, शोभा देता है।

२४८. आड़ि छुटावति—अड़कर छुड़ा भागने का प्रयत्न करनेवाले।

२५१. नेह...लगाइ—इसी कारण आँखों में आँसू भर आते हैं।

२५२. बैकु—बहक।

२५६. मुहिसल—तहसील वसूल करनेवाला।

२५८. सतरँज-बाज—शतरंज-बाज, शतरंज खेलनेवाला।

२६०. आँदू—रस्सी।

२६३. ईठ—इष्ट।

२६५. कितेब—छल। मकराज—मिकराज, कैंची।

२६६. नेजा—भाला।

२६७. लोइ—लावण्य।

२७७. सुनेह—(१) सुंदर स्नेह, प्रेम (२) अच्छी चिकनाई, तेल। मझयावत—माझी का काम करते हैं।

२८०. गैना—नाटा बैल। नहे—नथे हुए। घुरला—पगडंडी। नाह—नहीं।

२८३. झिलमैं—लोहे का बना हुआ एक प्रकार का झँझरीदार पहनावा जो लड़ाई में पहना जाता है। एक प्रकार का कवच।

२८६. घरिया—वह पात्र जिसमें रखकर सोना आँच में गलाया जाता है।

२८८. हलबी सीसा—हलब्बी (बेल्जियन) शीशा मोटा होता है और उसमें प्रतिबिंब सुंदर झलकता है।

२९२. अहटाह—कष्ट देती है।

२९८. वामन अवतार में भगवान् ने बलि से तीन पग भूमि दान में माँगकर दो ही पग में त्रिभुवन नाप लिए और तीसरे पग के लिये स्थान ही न रहा।

३००. पैरे—सीढ़ियाँ।

३०२. सैफी—मंत्र-प्रयोग। कैफी—साक्षात्कार।

३०३. पलवा—अंजलि, चुल्लू।

३०६. वाह—वहाँ।

३११. सूरती—(१) सुरती तमाखू। (२) सुरति, प्रेम।

३३७. अमोर—न मुड़नेवाले।

३३९. मेव—राजपूताने में बसनेवाली एक लुटेरी जाति। इसी से संभवतः राजपूताने के एक खंड का नाम मेवात पड़ा है। छेव—काटकर।

३४०. खुरी—खुदी, एक ही जगह जल्दी जल्दी खुर पटकना।

३४४. आँखें देव—कष्ट देवे हैं।

३४७. बया—तौलनेवाला। मन—(१) चित्त, तौल का मन जो चालीस सेर का होता है।

३५५. नाखन बाज—बाज के नाखून।

३५७. श्रवत—बरसाते रहते हैं, देते रहते हैं। श्रवन—कान।

३६४. हरुये—हलका। मन—(१) चित्त, (२) चालीस सेर वजन का मन।

३६८. छबी-दान—छबिवाला।

३६९. मट की—मिट्टी की। मटकी—छोटा घड़ा।

३७०. बनवारी—वन में रहनेवाली। वारी—न्योछावर। बनवारी—बनमाली, कृष्ण। मन-वारी—मनवाली स्त्री।

३७१. घैर मथन—चवाव की बेतरह चर्चा, बदनामी।

३७३. छबि-चहले—शोभा की भीड़।

३७५. तबीब—वैद्य।

३७६. मरजी—इच्छा। मरजिया—मरने-जीने की परवा न करके डुबकी लगानेवाले।

३७७. वारन कौं—न्योछावर करने को। परेखौ—पछताव।

३७८. छिगुरी—छोटी उँगली, कनिष्ठिका। याते...श्रौर—प्रेम के कारण अलसाए हुए अधमुँदे नेत्रों से।

३७९. निरधारी होइ—निर्णय किया हो।

३८९. पगरै—पगली की सी चेष्टा करती है। रगरै—झगड़ती है।

३९२. ही—थी।

४०४. वार कै—कै बार, कितने समय। वारन—दरवाजों तक।

४११. हरिश्राए हैं—हरे हो गए हैं।

४१२. रुजू—उनकी श्रोर मुँह किए हुए, ढले हुए।

४१५. नैम—नियम।

४२७. आँखें जुड़ती हैं, कुटुंब टूटते हैं और दुर्जनों के हृदय में गांठ पड़ती है।

४३२. कनकनै—टूटनेवाले।

४४२. सुमन—(१) सुंदर मन। (२) फूल।

४५०. मक्खियाँ तेल में पड़ते ही मर जाती हैं।

४७०. असनेही—जिनमें प्रेम का भाव नहीं है। लादे—स्नेहहीन लोगों के मन भार-रूप ही हैं, इसलिये 'लादे' कहा।

४७१. बिछलै जाइ—फिसल जायँ, कुचल जायँ।

४९४. कलानिधि—कला का खजाना (खोला) है। कलानिधि—चंद्रमा।

५०७. बिथर—भगाना, अलग करना।

५०८. तरवन—कर्ण-भूषण।

५२१. टिहुनी—कोहनी।

५२९. तरनि—तरणि, सूर्य।

५३०. करार—इकरार, प्रतिज्ञा। करार—किनारा, इकरार-रूपी किनारा।

५३८. बिसाहनी—सौदा। जगाती—चुंगी वसूल करनेवाला।

५४०. मुनि—अगस्त्य मुनि।

५४२. प्या—पिला।

५४३. का गद—क्या शक्ति।

५४६. आरकस—आरा चलानेवाले।

५५५. वरुनिका—वरुणी, पलकों पर के बाल।

५५७. मयान—म्यान।

५६१. लिख जोग—योग्य लिखी (यह पहले पत्र मे लिखने का महावरा था), पत्र के द्वारा।

५६३. मेखला—योगी का वस्त्र जिसमें रंग विरंगे कपड़ों के टुकड़े या रंग विरंगे तागे लगे रहते हैं।

५६४. सासन—शासन, आज्ञा।

५७१. गरुआ—गले तक गहरा। गरुआ—गले (लग)।

५७२. जखोरा—ज़खीरा (अ०) संग्रह, ढेर, कोष।

५८६. घट—घटकर, कम।

५९२. विहित—जिसके लिये आज्ञा है।

५९७. गज—कपड़ा नापने का गज।

६००. अफरत—तृप्त होते हैं। सुरत—स्मृति से, स्मरण करके।

६०६. इतराजी—विरोध। इत राजी—यहाँ राजी।

६०८. अरात—बैरिन।

६१३. इसक—इश्क, प्रेम। मुसक—मुश्क, कस्तूरी। बोइ—सुगंध।

६१८. गाँठ गठीले—जिनमें गाँठें पड़ी हों।

६२१. गार—लेप। गार—गाली।

६२४. मौसर—मयस्सर।

६२५. व्योरौ—भेद, फर्क।

६२६. अमर-पख—पितृ-पक्ष (श्राद्ध), दुज—ब्राह्मण। काग—श्राद्ध में कौओं को बुलाकर ग्रास खिलाया जाता है।

६३४. करबी—एक घास, तुच्छ वस्तु।

६४३. कूबरो—टेढ़ा, वक्र।

६५२. हैफ—शोक।

६६१. विजयादशमी को नीलकंठ का दर्शन शुभ माना जाता है, इसलिये लोग ढूँढ़ ढूँढ़कर उसका दर्शन करते हैं।

६६२. चंदहि—चंद्रमा ही।

६६९. लगर सतूना—कोयल का बच्चा जिसे कौवा अपना बच्चा समझकर पालता है किंतु जो अंत में उलटे कौवे से वैर करता है।

६७२. मीत—(१) मित्र, (२) सूर्य।

६७३. अमृत सरावी—अमृतस्रावी, अमृत का स्रवण करनेवाला; चंद्रमा।

६७४. आम का बौर और फल अँबिया कहलाता है।

६७६. बेकलक कसाब—बेदर्द (निठुर) कसाई।

६७७. जबह्—जिबह, हत्या। कसकाई—दुखी होता है।

६८०. आजजि—आजिजी, गरीबी, दीनता, विनय।

६८५. मधुसूदन—मधु नामक राक्षस को मारनेवाले। बिरद—यश।

६९०. गीधौ—गर्वित हुआ। गीध गति—जटायु की गति जिसे रामचंद्र ने मुक्ति दी थी। गीधे पतित—गर्वित पापी, हठ-पूर्वक पाप करनेवाला।

(५) राम-सतसई

१. अहिपतिधर—शेषनाग को धारण करनेवाला, क्षीरसागर।

२. नगधर—गिरिधारी, कृष्ण। बिपुंगवासन—गरुड़ है वाहन जिनका, विष्णु, कृष्ण। आसु—शीघ्र।

६. खेहै कै मोल—मिट्टी के मोल।

१०. महताबी—आतिशबाजी।

१२. पटीर—चंदन।

१४. दगे—जलाते हैं। धन-गात—स्त्री के शरीर को।

१५. बिसूलैं—शूल की तरह घाव करते हैं। रंध—रंध्र, छेद।

१६. बिहसिन—हँसनेवाली।

१७. तरलाई—चंचलता। पारा, बिजली और युवतियों की आँखें चंचल होती हैं।

१८. बकुल—मौलसिरी।

१९. बे-हूनरी—बिना हुनर की, कला-हीन। सौसन—एक प्रकार का रंग।

२३. अनारपन—अनाड़ीपन।

२७. गुनहीं—गुण। गुनहीन—गुनाहियों को (आसक्तों को)।

३०. चारी—गुप्त बात को प्रकट कर देना। कँटारी—कंटकित, पुलकित।

३४. करि यारी—मित्रता करके। करियारी—काली।

३५. सोख धनी—गर्विष्ठा रमणी। गौनो—गमन। गौनो—द्विरागमन।

४४. तलवेली—किसी वस्तु की प्राप्ति की घोर उत्कंठा, बेचैनी। नटसाल—बरछी की नोक जो टूटकर घाव में पड़ी रह जाती है।

४५. उलहै—उत्साहित होता है।

५०. अनी—सेना।

५१. लाइ—(१) लगन, (२) अग्नि।

५५. लवलासीहु—प्रेम की लगावट।

५६. कसऽब—किसी प्रकार।

५७. बंधुर—सुंदर।

६४. दगादगी—दगाबाजी, धोखा।

६५. तूस—पशमीना। तुराई—गद्दा।

६९. ठोढ़ी और आम के निचले भाग का आकार बहुत समान होता है। बौराय—(१) बौर लगने पर, (२) बावला होकर।

७४. निगुनी—गुणहीना। निगुनी—बिना तागे की, अर्थात् छाती पर डपटी हुई।

७५. निदाघ—ग्रीष्म।

७७. बिबि (द्वि द्वि)—दो दो।

८१. लोटन—त्रिवली । चोट न—चोटों को ।

८३ लहरि—नशा । दसी—डसी हुई ।

८८. करहाट—कमल । हाटक—सोना ।

९३. ऍगिराय—ऍगड़ाती है । सतराय कै—क्रोध प्रकट करके ।

१०६. माधव—कृष्ण ।

१०८. कलाधर की कला—चंद्रमा की कला, यहाँ पर नाखून का घाव । नाथ-नाथ—शिव ।

११२. भौम बालहि—मंगल नक्षत्र जो पृथ्वी का पुत्र माना जाता है, यहाँ पर लाल बेंदी से अभिप्राय है । मंगल का भी रंग लाल होता है ।

११५. निहारु—देख । निहारु—नीहार, ओस, पाला ।

१२६. सुकवाय—सुकवाना, अचंभे में आना ।

१३३. थरहरे—काँपते हुए ।

१३४. सौंहैं—सम्मुख, सामने । सौंहैं—सौगंध ।

१३८. परिरंभन—आलिंगन ।

१४०. सनखौहैं—नख-क्षत-युक्त । अनखौहैं—रुष्ट ।

१४२. सब विधि...नाइ—काम शास्त्र के सिद्धांत और प्रयोग दोनों में प्रवीण ।

१४८. पनस-फल—कटहल का फल जिस पर काँटे काँटे से उठे रहते हैं ।

१५८. कजाकी (कज्जाकी)—डाकेजनी ।

१६८. कोति—दिशा, तरफ । सूरदास ने इसे 'कोद' लिखा है ।

१७८. कन—जरा, तनिक ।

१८०. निचोल—कपड़ा । चोल रँग—लाल रंग ।

१८२. कुसुम—यहाँ पर जंगली कुसुम जिसकी पत्तियाँ काँटेदार होती हैं । केदार—खेत । केदार—शिव अर्थात् कुच ।

१८६. लांक—कमर। भरी आंकरी—अँकवार भरी, आलिंगन किया।

१९६. हिम-भानु—चंद्रमा। नलिन—कमल।

१९९. भीखन—भीषण। तैख—तेज़।

२००. वितान—चंदोवा। वितान—तना हुआ।

२०५. सिरी—श्री, शोभा।

२०८. सबीहि—सबी को, चित्र को।

२१०. बनक—बनाव, शृंगार, सजधज।

२११. छ मासे—छः माशे। उमंग के कारण उड़ी सी जा रही है, इसलिये तराजू पर उसका भार नहीं पड़ता।

२२०. नीम रजा—आधा राजी।

२२२. घेरु—(लोगों से) घिरा हुआ। पाटल—हाथ पर का गुलाब चूमकर नायक ने रति की इच्छा प्रकट की। गुलाब के दल की उपमा बहुधा अधरों से दी जाती है। नायिका ने हाथ बंद करके यह सूचित किया कि जब कमल बंद होने लगेंगे तब (संध्या समय) मिलूँगी। हाथों की उपमा कमल से दी जाती है। द्वौमिथ—दोनों, नायक और नायिका।

२३४. नार—गर्दन।

२३५. लोयननि—लोचनों, आँखों।

२३६. पसोपेस—आगा पीछा सोचना। कुन ससपंज—किंकर्तव्य-विमूढ़ता। मुकुताइ—छुड़ाकर। मुकुता—मुक्ता, मोती (आँसू)। कंज—कमल (नेत्र)।

२४३. सकारे—प्रातःकाल। बफारे—दवाओं की गरम भाप।

२५०. खुभी—चुभी हुई। खूंठी—कान में पहनने का एक गहना। खुभी—लौंग के आकार का कान में पहनने का एक गहना। निसराए...न—निकाले नहीं निकलती।

२५३. सुवसीठि—चतुर दूती ।

२५८. घरियारी—घड़ियाल, जो गजर बजाता है। गजर—समय की सूचना देने के लिये घंटे बजाना ।

२६२. सौंध—सौध, महल ।

२७४. प्रभंजन—आँधी । यहाँ पर वायु से तात्पर्य है। करत प्रभंजन—तोड़ते हैं। प्रभृत—कोयल । यदि प्रभृति का बिगड़ा रूप मानें तो 'इत्यादि' ।

२७८. सतरौंहैं—रुष्ट ।

२८२. मलयज—चंदन । घनसार—कपूर । गजगैनि—गज-गामिनी ।

२९२. एनी—मृग ।

२९५. कड़े झमकड़े—कड़ों की झनझनाहट ।

२९८. जालिमा—जुल्म करनेवाली ।

२९९. गुर—बड़े। ससिसेखर—महादेव, यहाँ पर शिवलिंग ।

३००. गुरु—(१) बृहस्पति, (२) बड़ी। सुर—(१) देवता । (२) नासिका-रंध्रों से निकलनेवाली साँस ।

३०६. बनमाली—बन से माली (आ गए)। बनमाली—कृष्ण ।

३१८. चिलक—चमक ।

३१९. सारसमुखी—चंद्रमुखी । आरस—आलस्य ।

३२५. भेद—रहस्य ।

३२६. निलै— निलय, घर ।

३२७. बन—जल ।

३४४. उबीठि—अधिक व्यवहार के कारण अरुचिकर लग जाना ।

३४५. परनाली—प्रणाली, नहर ।

३४८. अर—हठ, आग्रह ।

३५०. गड़ारे—जिसमें गड्ढे बहुत हों । निबुक—छुटकारा ।

३५३. चोल—(पीतांबरी) चोला ।

३५४. सरसिज-निसा—कमल (नायक के मुख) के लिये रात्रि (दुःखद) है । ससि—नायिका का चंद्रमुख ।

३६४. कंबुक—शंख ।

३८२. सारस—कमल ।

३८४. पिय मन करत बरात—स्वामी का मन बरात को (जाने को) करता है अर्थात् बरात में जानेवाले हैं ।

३८६. सर—तालाब (दर्पण) । ससि—मुख । कुज—मंगल (लाल बेंदी) । सनि—शनैश्चर (काली बेंदी) । मंगल का रंग लाल और शनैश्चर का नीला माना जाता है ।

३८८. चौबारे—चतुर्द्वारि, वह छत जिसपर खंभों से चार दरवाजे से बने हों । अरी—अड़ी हुई । अरो—अड़ा हुआ ।

३९४. ईछन—आँखें ।

३९५. सुबरन—सुंदर वर्णवाले । रजत—चाँदी । सुबरन—सोना ।

३९६. उनदौंहें—उनींदे ।

४००. तेह—क्रोध ।

४०१. गुनी—छःगुना । छिगुनी—कनिष्ठिका ।

४०३. चरचारीहि—दोष ढूँढ़नेवालों (चर) और बदनामी (चारी) से ।

४१०. लागे नैन नहि—नींद न आई । लागे नैन—प्रेम में आँखें जुड़ीं ।

४११. भारद—भार रूप । दारद—दर्द देनेवाला ।

४१४. घरहाइन—बदनामी। चाइन—चुगलखोर स्त्रियों में।

४१६. विसिख—बाण। झपकेत—कामदेव जिसकी पताका पर मछली का चिह्न है।

४१७. नवोढ़—नवोढ़ा, नई ब्याही हुई।

४३३. हिय गहन—हृदय को ग्रहण किया है जिस प्रेमी ने।

४३४. हरितन हरित—हरी हरी वस्तुओं को। हरि-तन हरित—कृष्ण का हरा (श्याम) शरीर।

४३६. सनवा—सन। मनवा—कपास। परे—गिरे हुए।

४४८. भा—आभा, शोभा, चमक।

४५५. छलंक—छलाँग।

४५८. चरवाही—बेहयाई।

४६४. दावरी—दौड़ी।

४६५. सु-गरत—गर्त, गढ़ा।

४६७. सुकाहि—सूखता है।

४६८. सरदा—सरधा एक मीठा फल होता है।

४७०. मै—मय।

४७५. सद्द-रद-छद—दाँतों के ताजे घाव।

४८१. चामीकर—सोना।

४८२. चुभकी—डुबकी।

४८४. थारे (राजस्थानी)—तेरे।

४८५. गेंद—गेंदे का फूल।

४८८. बिरह-दहन—विरहाग्नि।

४८९. सुबुक—हलके। चिहुँटन—चुनने को।

४९३. छरी—छड़ी की तरह पतली।

४९४. धूमजात—बादल

४६७. सुमनसपति—देवताओं के स्वामी इंद्र।

५०२. कुंद मघा—बरसाती कुंद। कुंद जुही की तरह एक प्रकार का फूलों का वृक्ष होता है जिसकी कलियों से बहुधा दाँतों की उपमा दी जाती है। सुभा—शोभा। मोगरा—बड़े बेले का फूल।

५०३. लिंब—नीबू।

५०४. बारी—बालिका। बारी—वाटिका।

५१२. चंदचूड़हिं—शिव। नखन छद—नाखून के घाव। न खनहुँ—क्षण भर भी नहीं।

५२२. बरसाइत—जेठ की अमावस। इस दिन स्त्रियाँ बट-सावित्री की पूजा करती हैं। शुभ मुहूर्त। बरसाना—ब्रज के निकट एक गाँव है।

५२६. छायल—मूर्छित। छरकायल—खुले हुए, बिखरे हुए।

५२८. पूतरी—आँख की पुतली।

५३०. झवियनि—चाँदी या सोने की बहुत छोटी-छोटी कटोरियाँ जो बाजूबंद, जोशन, हुमेल आदि गहनों में रेशम या सूत मे पिरोकर गूँथी जाती हैं। घोंरि—गुच्छा।

५३२. उत रत है—उधर प्रेम-मग्न होकर।

५४१. हिरकी—पास भेजी।

५४३. भानै—तोड़े।

५४४. बंधुजीव—वीरबहूटी।

५६३. बीती—दूसरी स्त्री की।

५६७. सकारहिं—प्रातःकाल ही।

५६८. निचलाई—समाप्त हुई।

५७१. तोम सर—बाणों का समूह।

५७२. जहूर-प्रकट। बिलूर फानूस—बिल्लौरी काँच का झाड़।

५७४. गंधवाह—सुगंधि का वहन करनेवाला, पवन।

५७७. वनी—सजी हुई।

५७८. नारंगी—कुच का प्रतीक। नायक ने नारंगी दलने से कुचमर्दन की इच्छा जनाई।

५८४. कुलंग—बाज की जाति का एक छोटा पक्षी।

५८५. परवाल—अधर का प्रतीक। नायक ने अधर-रस-पान की इच्छा प्रकट की। कच—बाल, संध्या की सूचना। कुच—घट। नायिका ने बालों को छूकर कुचों पर हाथ रखकर उत्तर दिया कि संध्या समय घड़ा लेकर (पनघट पर) आऊँगी।

६०३. गोरस—इंद्रियों का रस। गोरस—गव्य रस, दुग्ध इत्यादि का स्वाद।

६०५. वंजुल—अशोक।

६०६. निचले—निश्चल। पानिप—आभा, आब।

६१५. परसहु—छूकर भी।

६१६. असम—कामदेव।

६१७. रिजु—ऋजु, सरल।

६१९. लोयन—लोने, लावण्यमय। लोयन—लोचन।

६२३. वरसाना—व्रज-मंडल का एक गाँव।

६२४. ईठि—इष्ट, मित्र, सजनी, सखी।

६२७. छरी—छली हुई।

६४५. माधव—वसंत। माधव—कृष्ण। माधव-पुंज—महुए के पेड़ों का समूह।

६४७. सिलीमुख—भ्रमर, बाण।

६५१. दैं—धौं, तो।

६७१. बझाय—फँसाकर।

६७३. नै—नय, न्याय, नीति।

६७८. छपे—छिपने पर, अस्त होने पर। छपाकर—चपाकर, चंद्रमा। कुहू—अमावस की रात।

६७९. वरहि—जलने ही की। अब तो रात-दिन जलने ही की बात रह गई।

६८४. नभचर लली—देव-कन्या। हरसोग—शोक को हरने-वाली। रली—क्रीड़ा।

६८६. वनजात—कमल। वन जात—वन जाते हुए। जल-जात—कमल। जल जात—जल (आँसू) बहता है।

६८७. मंद—शनि। शनि का रंग श्याम माना जाता है।

६९१. निचोही—नीची। राज—शोभा देती है।

६९२. मनु हारि—मन हारकर। मनुहारि—मनाना।

७०३. छरी—छली हुई। अपछरी—अपसरा।

७०४. कूरम केतक पात—कछुआ और केतकी के पत्ते अर्थात् नायिका ने अभिसार-स्थान का संकेत किया कि जहाँ जल के किनारे केतकी के पेड़ हैं।

७०५. मोरी—मोर है जिसका शिरोभूषण।

७०६. ईठि आज...ठौर—प्रिय की दृष्टि को यहाँ आज एक और प्रिया (ईठि) दिखाई दी।

७०८. लोचन...कान लों—कान तक पहुँचे हुए विशाल नेत्र। कान—कृष्ण। सहसान—मोर। मोर बादल को देख उतना सुख नहीं पाते जितना कृष्ण को देखकर पाते हैं।

७०९. नट मरकट—मदारी का बंदर।

७१०. तम—अंधकार (कृष्ण) चाँदनी—(राधा)।

७२४. लगी...आगि—अग्नि इसलिये नहीं जलती है कि न जलने से वह नववधू फिर फिर फूँकेगी तो मुझे उसके दर्शनों का लाभ होगा और यदि जल जाऊँगी तो वह अपना मुख हटा लेगी।

७२५. तरनि—तरणि, सूर्य। जोह—देख।

(६) वृंद-सतसई

६. रागी—प्रेमी।

८. निबौरी—नीम का फल।

११. निपजै—जिसमें खूब फसल उगी हो। सलभ—टिड्डी।

२०. पिसुन—दुर्जन, चुगलखोर।

४३. वहेड़ा के पेड़ पर भूत का निवास माना जाता है, उसका एक नाम ही भूतवास है। कर्षफले भूतवासे कलिद्रुमे वहेडके।

४८. गुर—गुड़।

४९. धात—धातु। शरीर में सात धातुएँ मानी जाती हैं जो दूध पीने से वृद्धि पाती हैं। सेंहुड़ का चोप भी देखने में दूध के समान होता है, किंतु उसको खाने से मनुष्य मर जाता है।

५३. आरसी—दर्पण।

६१. करार—चैन, शांति।

८८. काथ—कत्था, खैर।

९१. कनक भखी—धतूरा पीनेवाले।

९२. लहर—नशा, खुमार।

१०२. चार—चाल, गति।

११६. कुलजा—कुलवती स्त्री। कुलटा—दुराचारिणी।

१२२. अरहट—रहँट।

१२३. भाजन—वर्तन।

१२६. जनार्दन—भक्त (जन) को पीड़ा देनेवाला। हर—नाशक। शंकर—मंगल करनेवाला।

१३३. नृप दुहनि—राजकुमारियों को, नृप-दुहिताओं को रुक्म एक राजा था, जिसने सोलह सौ राजकुमारियाँ बंदी कर रखी थीं। कृष्ण ने उसको मारकर इनको मुक्त किया और सब कुमारियों ने कृष्ण को ही स्वामी रूप से वरण किया।

१४०. बिभौ—वैभव, ऐश्वर्य।

१४१. बूँद कि तेल—तेल की बूँद से अभिप्राय है। अशुद्ध व्याकरण प्रयोग।

१४२. बद—बुरा।

१४७. बँध्यो—जिसमें पानी नहीं खींचा जाता। गँधीलौ—गंदा।

१४९. खाँड—खाड़, खड्ड, गढ़ा।

१५४. प्रतीकार—रोक। शब्दार्थ इसका बदला होता है।

१५६. बनराइ—वृत्त।

१५७. नग—पर्वत।

१५८. रसरी—रस्सी। करी—हाथी।

१५९. जलेस—सागर। कलेस—क्लेश, दुःख।

१६२. हरि—सिंह। असम—जो अपनी बराबरी का न हो।

१६४. भाँड—हँसी मजाक के लिये प्रसिद्ध हैं।

१६५. काबरि—भील। गोपी—कृष्ण की स्त्रियाँ। पथवान—पार्थ। रथवान भी पाठ मिलता है।

१६६. तोय—पानी।

१६७. हाथी के हजारों कर नहीं है एक ही सूँड़ (कर) के कारण वह करी कहाया।

१६८. देवल—देवालय, मंदिर।

१७१. अंजनगिर—सुरमे का पहाड़।

१७४. उमहै—उत्साहपूर्वक। पयोधर—स्तन।

१७६. बनजन—कमलों को।

१७९. निसप्रेही—निःस्पृह, जिसे कुछ चाह न हो।

१८२. उनयौ—झुका हुआ। पयोद—बादल।

१८७. साँचो—संचित की हुई। कन—अन्न।

१८८. सेयो—सेवित किया हुआ। सराय—सरे, बने। पयोधि—सागर।

१९१. सरस—अधिक।

२०१. काम—पहली पंक्ति मे कार्य, दूसरी पंक्ति मे काम-क्रीड़ा।

२०६. मुंडे की लिखावट मे मात्राएँ नहीं लिखी जातीं, अभ्यास और अनुमान से पढ़ ली जाती है।

२०७. वैसैा—बेंट।

२११. विष और अमृत एक ही समुद्र से निकले हैं।

२१४. पाँच—पंच-रत्न; लाल, नीलम, हीरा, मोती और पुखराज।

२१६. कुबानि—बुरी आदत।

२२२. अन्नपूर्णा जगत् को अन्न देती है परंतु पति की माँगी भिक्षा पर आधार रखती है।

२२४. बाफतैा—धूप-छाँह कपड़ा।

२२५. घूघा, घूक—उल्लू।

२३६. घन—घनसार, कपूर।

२४०. फनीन कौं—सर्पों को।

२४५. अंधे को बोलकर और बहरे को हाथ के इशारे से रास्ता बताया जाता है।

२४७. विफरैं—फैलने पर।

२५८. गुन—बत्ती (रस्सी)।

२५९. कोटि—धनुष के किनारे। इसी कारण धनुष दो करोड़ का स्वामी हुआ।

२६२. गिरि सुर तरु न रख्यो उदधि मुनि अँचयो जिहिं बार—जब कुंभज ऋषि ने समुद्र का जल पी लिया तब पहाड़ और कल्प-वृक्ष उसकी रक्षा न कर सके, यद्यपि समुद्र ने उनकी रक्षा की थी।

२७५. तिन-समूह—तृण (घास) का ढेर।

२७६. ससा—खरगोश। अखेट—आखेट, शिकार।

२८६. कालयमन...मुचुकुंद उठाय—कालयमन कृष्ण का पीछा कर रहा था। कृष्ण उस गुफा मे चले गए जहाँ मुचुकंद चादर ओढ़े सो रहे थे। कालयमन ने समझा कृष्ण ही सो रहा है। इसलिये उसने चादर उठाई। मुचुकुंद ने उसे शाप देकर भस्म कर दिया।

२९६. पौराणिक मुनि सूत ने बलराम को प्रणाम नहीं किया, इसलिये बलदेवजी ने उनको कुश के आघात से मार डाला।

२९८. सूद्र—शंबुक नामक शूद्र।

३००. दधि—उदधि, समुद्र।

३०४. अपरापत—अप्राप्त, भविष्य, भाग्य।

३०६. मैनाक—पर्वतों के पहले पंख होते थे, यह पुराणों में लिखा है। इंद्र ने क्रोध करके सब पर्वतों के पंख काट डाले। परंतु मैनाक पर्वत समुद्र की शरण गया और पंख काटे जाने से बच गया।

३०८. ढंपन—आच्छादन, ढकना। बन—कपास, रुई।

३०९. पींजन—धुनना।

३१८. बिससि—विश्वास करके। जीवन—पानी।

३२७. काँगही—कंघी।

३५८. भोडर—अभ्रक।

३६१. अहि करंड—वह डलिया या पिटारी जिसमें साँप रखा जाता है।

३७१. कपट पुरुष—खेतों में काली और सफेद रंग की हाँड़ी उलट करके रखी जाती है जो दूर से आदमी सी जान पड़ती है।

३७५. करिसन—कृपि।

३७७. कुवखान—निंदा, विगर्हणा। दगला—रुईदार अँगरखा। अरगजो—केसर, चंदन, कपूर आदि के मेल से बना हुआ एक सुगंधित द्रव्य जो शरीर में लगाया जाता है।

३८२. घन—घने, वहुत।

३८५. ऊढ़े—उनए हुए।

३८७. विरतंत—वृत्तांत।

३८८. दुरद—द्विरद, हाथी।

३६८. कुरज—एक प्रकार का पत्ती जो हजारों कोस दूर उड़ जाता है, परंतु अपने अंडों को नहीं भूलता और अंत में उन्हीं के पास लौट आता है।

४११. धार—धाड़, डाका।

४१४. नारदी विद्या—लोक-रत्तण की दृष्टि से इधर की वातें उधर पहुँचाना जैसा नारद मुनि किया करते थे।

४१५. जिस ऋतु में अंगूर पकता है उसमें कौवे का मुँह फर जाता है।

४२२. गंगोदक—गंगा-जल।

४२३. नग—नगीना। कहते हैं, अँगूठी पर डाँक देने से नगीने की सुंदरता और भी बढ़ जाती है।

४२५. रतन दीप—जिस दिए में रत्नों से प्रकाश होता है।

४२७. महातम—माहात्म्य। महा तम—महा अंधकार। अदीत—आदित्य, सूर्य।

४३०. मानिक या लाल (रत्न) की चटक सोने पर जड़े जाकर ही खुलती है।

४३२. लहत...पेप—कछुए के अंडे चंद्रमा के प्रकाश में ही परिपक्व होते हैं।

४३६. बीर—बाली।

४३७. जीवन—जल।

४३८. गुन सनेह—स्नेह (प्रेम) का गुण। गुन सनेह—बत्ती और तेल।

४४१. मछली खाने से प्यास लगती है।

४४२. घन—बादल। घन—घना, बहुत।

४४३. गिरि तारे—लंका जाने के लिये सिंधु-बंधन के अवसर पर। सिला—अहल्या।

४४४. सेतबंध—पुल बाँधना।

४५२. उपकरन—उपकरण, सामग्री।

४५३. सुरभि—वसंत ऋतु।

४५४. भुक्त—खाए हुए। कपित्थ—कैथ।

४५५. नालेर—नारियल।

४५७. आदेस—नमस्कार, प्रणाम।

४६१. आफू—अफीम।

४६२. बिनायक—विघ्ननाशक। मार्ग में गदहे का मिलना शुभ शकुन माना जाता है।

४६५. मुचलका—एक प्रकार की जमानत।

४६६. वास—निवास। बास—सुगंधि।

४७१. ऐराकी—ऐरावत, इंद्र का हाथी। परस—स्पर्श, संबंध।

४८०. कथा है कि एक गरीब पर पार्वतीजी को बहुत दया आई। महादेवजी से उन्होंने प्रार्थना की कि इसे धनी बना दो। महादेवजी ने कहा कि इसके भाग्य ही मे नहीं है। हमारे देने से क्या होगा? पार्वतीजी ने कहा—आप जब उसे धन दे देंगे तो वह धनी कैसे न होगा। महादेवजी ने कहा—स्वयं देख लो। यह कहकर उन्होंने जिस मार्ग से वह जाता था उसी मार्ग पर बहुत सा धन डाल दिया

जिसमें वह उठा ले जाय। परंतु ज्योंही वह अभागा मनुष्य धन के निकट आया, त्योंही उसके मन में विचार आया कि हम कभी आँखें मूँदकर नहीं चले। देखें इसमें कैसा मालूम होता है। यह सोचकर वह आँख मूँदकर चलने लगा और धन उसकी दृष्टि में न पड़ा।

४९१. मसलत—परिश्रम।

५०४. रिजक—भोजन।

५१३. लष्ट पुष्ट—मिल-जुलकर। जष्ट मुष्ट—(यष्टि) लाठी और (मुष्टि) मुक्का।

५३०. छतना—छाता।

५३३. थाप—थप्पड़। जिय हानि—प्राणदंड।

५३६. छकानी—छः कानों में गई हुई। तीन आदमियों के बीच की।

५३७. धातु—स्वर्ण, सोना। लोगों का विश्वास है कि बाघिन का दूध सोने के पात्र के अतिरिक्त और किसी में नहीं ठहरता।

५५१. थिर—स्थिर, स्थावर। चर—जंगम सृष्टि। सोध—खोज।

५५३. जूथ बिछोही—अपने दल से बिछुड़ा हुआ।

५५८. किलकिला—एक पक्षी जो समुद्र के जीवों का शिकार करता है।

५५९. इलाज—उपाय।

५६०. दुरभर—कठिनता से भरा जानेवाला।

५६२. अरधंगी—अर्द्धांगी होने से आधे ही अन्न की आवश्यकता पड़ेगी। दार—स्त्री, पत्नी प्रभृति। कुमार—स्वामी कार्त्तिकेय का विवाह ही नहीं हुआ। इसलिये वे कुमार कहलाते हैं।

५६६. तंदुल—सुदामा चावल भेंट करने ले गया था। मुनि—दुर्वासा और उनके साथी ऋषिगण जिन्हें श्रीकृष्ण ने, पात्रस्थ चावल का एक कण खाकर, पूर्णतया तृप्त किया था।

५६७. ब्राह्मन—सुदामा। श्रीपति—लक्ष्मीनाथ, विष्णु के अवतार कृष्ण।

५७५. सालि—धान।

५७७. नृप कन्या—रुक्मिणी।

५७६. पारथ—पार्थ, अर्जुन। भारथ—भारत, महाभारत का युद्ध। छल—अर्जुन ने शिखंडी के पीछे से भीष्म पितामह पर बाण चलाए थे।

५८५. निहुरै—नम्र होता है।

५८६. अर्जुन—सहस्रार्जुन, सहस्रबाहु, हैहय कार्तवीर्य। जमदग्नि मुनि ने सहस्रबाहु का राजसी ठाट से अतिथि-सत्कार किया। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। जब उसे ज्ञात हुआ कि मुनि के पास कामधेनु है तो वह जमदग्नि को मारकर उसे ले चला। परशुराम ने उसे मार डाला और तपोबल से अपने पिता को जीवित किया।

५९५. हरवी—हलकी (बात)। गरुवे—भारी (व्यक्ति)।

५९७. भँभूरे—बवंडर।

६०५. कविराज—शुक्राचार्य।

६११. पिपीलिका—च्यूँटी।

६२१. हुलास—उल्लास, प्रसन्नता।

६२४. विक्रमादित्य बहुत प्रजावत्सल और विद्या-व्यसनी राजा प्रसिद्ध हैं।

६३१. पैसार—प्रवेश। निसार—बाहर निकलना।

६३७. लोपत—उल्लंघन करते।

६३८. वैसी बिरियाँ—वैसे समय में, विपत्ति-काल में।

६५५. सुरिंद—सुरेंद्र, इंद्र।

६६१. मनुहारि—मान।

६६६. जामदग्नि—जामदग्न्य, परशुराम।

६७०. सरवन—श्रवण कुमार जो अपने अंधे माता पिता को काँवरी के दोनों पलड़ों में रखकर इधर उधर ले जाया करता था।

६७३. चंदेरीपति—शिशुपाल।

६७५. लच्छ, लछ—लक्षण, चिह्न।

६७७. हे—थे।

६८१. तिय—पूतना। परिहरी—त्याग दिया।

६८३. परनै—ब्याह में।

६८७. विकथा—सामान्य कहानी।

६९५. ओप—कांति।

७०६. संवत ससि (१), रस (६), वार (७), ससि (१) अर्थात् १७६१, अंक उलटे गिने जाते हैं।

(७) विक्रम-सतसई

१. स्यामा—राधिका। राधा गोरी थीं। श्यामा कहने से उनके वर्ण की ओर संकेत नहीं है। रूढ़ि से श्यामा का अर्थ केवल सुंदरी लिया गया है।

१२. पेरौ—पेला हुआ, पीसा हुआ।

१४. साके—वश।

१५. रोर—कोलाहल, रौला, यहाँ पर आर्त्त की कराह।

१६. जाजरी—जर्जर, पानी खाई हुई।

१७. त्रन—तृण।

२९. सकात—डरता हूँ।

३१. जरतारी—जिस पर जरी का काम हो।

३३. सिताब—चमक या जल्दी। गुलफ—गुल्फ, एड़ी के ऊपर की गाँठ।

३७. तरल—चंचल। तरौना—कर्ण-भूषण। बिथुरे—फैले हुए। सुथरं—स्वच्छ।

३८. गरकाब—जलमग्न, डूबे हुए अर्थात् अंतरस्थ। सहाब—शहाब, गहरा लाल रंग।

४६. जावक—मेंहदी।

४९. पाटी—माँग के द्वारा बालों के दो हिस्से।

५५. रबिसुत—यम।

६१. खौर भौर—चंदन-चर्चित।

६३. आफताब—सूर्य। ताब—चमक। महताव—आतिशबाजी।

६५. सतलरी—सात लड़वाली माला।

७३. मिही—महीन, बारीक।

७६. सान—शान।

७७. भोगवती—ऐश्वर्यशालिनी।

८४. नोखी—अनोखी। अटपटी—बेतुकी, बेमेल।

८६. बनिन—बनी हुई स्त्रियों की।

९०. रजत—चाँदी। चलदल कौ पात—पीपल का पत्ता जो सदा हिलता ही रहता है।

९७. विधि विधि करि—नाना प्रकार से।

१०५. गुलाल—रोरी, पाँवों की लाली के कारण रास्ता लाल दिखाई देता है।

११०. कंदुक—गेंद जिसमें रंग भरा रहता है और फेंकने में पिचकारी का सा काम देता है। रावरो (सं० राय+पुराई, प्रा० राय+उर+ई) छोटा महल।

११८. सकेले लेत—इकट्ठा करती है।

११९. न जुरी—न जुड़ सकी, न टिक सकी।

१२४. अजिर—आँगन।

१२८. चक—चक्रवाक, चकवा।

१३०. मृगमाला—मृगों का समूह। अहेरी—शिकारी।

१३२. गुंमज—गुंबज।

१३३. कुंद—मंद। कुदकली—चंपा की कली। कनिकी—छोटा टुकड़ा।

१३४. गॉस—रोक टोक, वंधन, प्रतिरोध।

१३७. खँगी—गड़ी, चुभी, धँसी।

१३८. आसव—मदिरा।

१४२. कल—चैन।

१४५. रंध्र गलिन—गलियों की खुली जगहों से।

१४७. ओलक—ओझल।

१५१. चौज—चोज, चमत्कारपूर्ण उक्ति।

१५९. अर बस—हठ वश।

१७४. अगाऊ—पहले ही।

१७९. नाखी—नष्ट की।

१८३. मूठ—जादू की मूठ।

१९२. कनियारे—तेज कनीवाले।

१९४. अमनैकी—आम्नायक, वंशगत अधिकार से युक्त।

१९८. अगड़—अकड़, ऐंठ, दर्प।

२०५. मकर सऊ—मकर संक्रांति।

२१०. रसाल—आम का पेड़।

२१२. मैन—(मदन, मअन, मयन) कामदेव।

२२३. जाहि—चला जा रहा है।

२२४. उसिसवाँ—तकिया।

२३३. धुप करिए—चुप करिए।

२३७. धमारिन—होली। अतन—कामदेव।

२४२. लोद—लोध्र, यहाँ पर लोध की छड़ी। सतून—स्थूण, खंभा। उजवति—फेंकती है।

२४३. कसोदर—पतली कमरवाली।

२४५. गरक—गर्क, डूबी हुई। झपटनिवार—झपटनेवाली।

२४६. नहल—नहर।

२४७. उषन—उष्ण।

२४९. वर साइति—शुभ मुहूर्त। बरसाइत—जेठ की अमावास्या। वर—पति। साइत—मुहूर्त। बरसाइत—व्रट-सावित्री का पूजन।

२५५. खूँदै—कूटती है। रूँधै लेइ—घेरे लेती है।

२६१. भाउन—भावन, सुंदर।

२६३. दावन—जलाने।

२६४. दावनगीर—दामनगीर, साथी, सखा।

२६८. मरोरैं—ऐंठ। इतराहट।

२७५. जसन—जश्न, आनंदोत्सव। पान पान—नागबेल के पत्ते। पान—हाथ, पाणि।

२७७. सुरही—एक प्रकार की सोलह चित्ती कौड़ियाँ।

२८६. फौकै—डींग मारता है।

२८८. बृष—वृष, दूसरी राशि। जब सूर्य वृष राशि में जाता है तब गरमी बहुत जोर से पड़ती है।

२९९. वृषभानु-कुमारि—राधा। वृषभानु राधा के पिता थे।

३०४. नेत—ठहराव, निश्चय, व्यवस्था।

३११. पसरत—पसरते हैं, फैलते हैं, पिघलते हैं।

३१६. मारतंड—मार्तंड, सूर्य।

३१७. घाटौ—पाट दो, घटा सी उमड़ा दो।

३२०. छतज—रक्त जो क्षत से निकलता है।

३२४. दर की—दरवाजे की, उस घर की रहनेवाली।

३४१. नूर—प्रकाश (यहाँ पर अपना गुण, दुर्गंध और चरपराहट)।

३४३. चित-हित—हार्दिक प्रेम।

३४५. आन—औरों को। सु—सो, वह। आन—आकर।

३५१. औसु—आस।

३५५. सहूर—शऊर, अक्ल।

३६३. जेब—शोभा।

३६७. उकत—उक्ति।

३७०. नाहीं—नाह, स्वामी।

३७४. सकत—डरते हुए, शंका करते हुए। सकत—सकती।

३७५. लकि—डरी।

३७७. बंसी—मछली पकड़ने की वल्ली। गारौ—चारा।

३८१. सौ जोर मुख—मुँहजोर।

३८३. फतूह—फतेह, विजय।

३८८. निनद—निनाद, शब्द।

३९०. गुलै गुलाब—गुलाब का फूल। यहाँ पर गुलाब का शरबत।

४०२. गुहौ—गुथा हुआ। तामरस—कमल।

४१०. समाइ—मग्न होकर।

४३६. ग्रह—गृह, घर।

४४१. हिलकी—हिचकी। मिलकी—मिलनेवाले या मिलने के इच्छुक।

४४२. हटकी—मना की हुई।

४४६. नेह—प्रेम।

४५४. सीक—सीत्कार अर्थात् सी-सी शब्द करना।

४५५. बरजाइ—बलपूर्वक; पर यहाँ, बड़ी कठिनाई से।

४६०. उर-घर—वक्षस्थल।

४६२. बरोठै—बैठक में।

४६६. आगर—आगा।

४६९. निसारत—निशा-रति; रात्रि में रति होगी, यह बात कही।

४७१. फुरहरू—जाड़ा सूचित करने के लिए कँपकँपी लेना।

४७२. मित्र—सूर्य। मित्रहि—यार को, प्रेमिक को।

४७५. अमनैक—रोक-टोक न माननेवाले।

४७९. मित्र—(१) स्नेही, प्रेमी। (२) सूर्य।

४८०. हरदब—प्रत्येक बल से। अरदब—आड़ में से।

४८३. गत—गति, दशा। सारी—साड़ी।

४८८. ईछन—ईक्षण, आँखें।

४९३. उमहात—प्रसन्न होती है।

४९६. लुमरी—युवती। हुमरी—उभरे हुए।

४९७. लूमर—युवा, जवान। सुरेर—ऊँचे स्वर से।

५०६. अपत—अपत्र, पत्तों से रहित। जपत—जब्त।

५१६. रौदा—प्रत्यंचा, धनुष की डोरी।

५३७. भाग नगर—(१) भाग्य-रूपी नगर। (२) भागलपुर। काबिल—(१) योग्य। (२) काबुल। दिली—(१) हार्दिक। (२) दिल्ली। निपट कुमाऊँ—(१) बहुत दूर, अप्राप्य। (२) कुमाऊँ प्रदेश। मोरंग—(१) मोरँग, मेरा रंग। (२) नेपाल का पूर्वी प्रांत। रह्यो—(१) रह गया, उतर गया। (२) रहा, वास किया। विहार—रति-क्रीड़ा। (२) विहार प्रांत। सूरति (१) सुरत, सम्मिलन। (२) सूरत नगर।

५३८. बदी—भाग्य में लिखी हुई। बदी—खराब होती हुई, टलती। नदी सी—नदी की तरह बड़े वेग से उमड़ती हुई। नदी सी—मानो नदी में नहाई हो, इस प्रकार पसीने से तर हो गई।

५३९. विगलित—टूटे फूटे।

५४०. आन—मुनादी। आनि—आकर।

५४१. ना फुरमा—आज्ञा न माननेवाला। फुरमान—आज्ञा।

५५२. अभिरामिनि—सुंदर।

५५५. सौहैं—सम्मुख। सौहैं—सौगंध।

५५९. वह माला सौत के हाथ की गुही हुई समझकर उसने उतार डाली।

५७०. जरूर—जोरावर या अवश्य। आरसी—दर्पण।

५७२. कोइन—(१) आँखों की कोएँ, (२) कोंई, कुमुदिनी। रोचन—गोरोचन। रोचन—सुंदर लगनेवाला।

५७३. बिन गुन मन—बिना डोरी और मणियों (की माला)।

५७६. लीक—रास्ता, मार्ग (पुरानी पर-स्त्री-गमन की आदत)। लीक—लकीर।

५८१. मिचौहैं—अधमुँदे।

५९६. कलक्किन—मुर्गे। नीरजनी—कमलिनी।

६१३. बरही—मोर।

६१८. सिरात—समाप्त होती है। इतराति—गर्व करती है।

६१९. सटकारे—लंबे। कारे—काले। सरल—सीधे, जो घुँघराले न हों।

६२०. सगबगी—सराबोर। सौंधे—सुगंधि।

६२३. भा रद—कांति को हीन कर देती है।

६२५. जोषा—योषा, स्त्री।

६२६. गरक गुलाब सों—गुलाब से (मार्ग) भरमा दिया। नायक-नायिका के चलने से उनके पाँवों की अरुण आभा मार्ग पर पड़ी है, उसी से ऐसा मालूम पड़ता है।

६३१. सहूर—शहूर, सलीका।

६३९. दिय अलाप—गाया। हिंडोल—हिंडोला राग।

६५१. चुरी—चूड़ी। कर की—हाथ की। करकी—टूटी।

प्रतीपानुक्रमणिका

[पहला अंक सतसई का, दूसरा दोहे का और
तीसरा पृष्ठ का है।]

आ

छ

ज

ढ

त

ध

प

छूट